मध्यकालीन
हिन्दी और पंजाबी प्रेमाख्यान

(दिल्ली-विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० ओमप्रकाश शर्मा
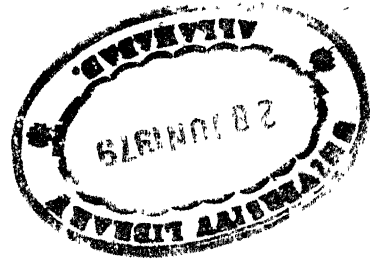
प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

दिल्ली-६ : : पटना-४

Madhyakaleen Hindi aur Panjabi Premakhyan

By Dr. OMPARKASH

Thesis Approved in 1969 for the Degree of Ph. D of the University of Delhi

Price Rs. 60.00

प्रकाशक | हिन्दी साहित्य संसार,
१५४३, अमीरचन्द मार्ग, दिल्ली-६
शाखा | खजान्ची रोड, पटना-४

मूल्य | साठ रुपये (६०-००)
मुद्रक | अशोक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-६

स्वर्गीय पिता पं० रामचन्द्र शर्मा को—

हमारी योजना

'मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी प्रेमाख्यान' हिन्दी अनुसंधान-परिषद् ग्रन्थ-माला का पचासवाँ ग्रन्थ है। हिन्दी अनुसन्धान-परिषद्, हिन्दी-विभाग दिल्ली विश्व-विद्यालय की संस्था है, जिसकी स्थापना अक्तूबर १९५२ में हुई थी। परिषद् के मुख्यतः दो उद्देश्य है। हिन्दी वाङ्मय-विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के है—एक तो वे जिनमें प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रथों का हिन्दी रूपान्तर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओ के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की गई हैं; तीसरे ऐसे है जिनका अनुसंधान के साथ, उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ, प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अब तक प्रथम वर्ग के अन्तर्गत १४ ग्रन्थों का, दूसरे में ३२ और तीसरे वर्ग के अन्तर्गत तीन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है।

प्रस्तुत ग्रंथ द्वितीय वर्ग का तैंतीसवाँ प्रकाशन है। इसमें मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी साहित्य के प्रेमाख्यान-काव्य के विविध पक्षों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पंजाबी प्रेमाख्यान काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने के अतिरिक्त इस रचना में हिन्दी प्रेमाख्यान-साहित्य की विविध प्रवृत्तियों के साथ उनकी तुलना की गई है। रचना-व्यवस्था, कथावस्तु संगठन, चरित्र-चित्रण, प्रेम-निरूपण, भावसमृद्धि, काव्यरूप और अभिव्यक्ति-कौशल के विभिन्न संदर्भो में दोनों भाषाओं के इस साहित्य के अनुशीलन के परिणामस्वरूप अनेक नये तथ्य प्रकाश में आये हैं, जो भारतीय भाषाओं के साहित्य-प्रेमियों के लिए उपयोगी एवं रुचिकर होंगे।

परिषद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिषद् की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते है।

सावित्री सिन्हा
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

निवेदन

दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत मेरा शोध-प्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी प्रेमाख्यानों का तुलनात्मक अध्ययन' किञ्चित् परिष्कृत रूप मे आपके समक्ष प्रस्तुत है इसमें हिन्दी के शताधिक मध्यकालीन प्रेमाख्यान काव्यों और पंजाबी के लगभग चालीस प्रेम-किस्सों के विविध पक्षो का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। 'प्रस्तुति' और 'उपसहार' के अतिरिक्त इसमे आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय विवेच्य कृतियों के कर्तृत्व और मुख्य वर्ण्य से सम्बद्ध है, अध्येता की दृष्टि से इसमें इन रचनाओं की कथाए देना भी उपयोगी होता, परन्तु आकार-वृद्धि के भय से ऐसा नही किया जा सका। अनेक हिन्दी-प्रेमाख्यानो की कथाएँ अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध है, उनके सकेत यथास्थान दे दिये गये है। पंजाबी की कुछ लोकप्रिय कथाएँ श्री संतराम वत्स्य (पंजाब की प्रेम कथाएँ) और श्री हरिकृष्ण प्रेमी (पजाब की प्रीत कहानियां) ने हिन्दी पाठकों को सुलभ करा दी है। अतः उन्हें भी छोड दिया गया है। आगामी अध्यायों में क्रमशः रचना-व्यवस्था, कथालोचन, चरित्र-चित्रण, प्रेम-निरूपण, भाव-सम्पदा, काव्य-रूप और अभिव्यक्ति-कौशल के आधार पर विवेचन-विश्लेषण कर इन की मुख्य प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का यत्न किया गया है।

हिन्दी और पंजाबी के प्रेमाख्यान-काव्य मे साम्य कम और वैषम्य अधिक है। हिन्दी रचनाओं का महत्त्व अपनी साहित्यिक-सांस्कृतिक गरिमा के कारण है तो पंजाबी रचनाएँ लोक-सस्कृति की निश्छल प्रस्तुति के कारण सग्राह्य है। हिन्दी की अधिकांश कृतियों में सौन्दर्य-बोध की सूक्ष्मता है जबकि पंजाबी के प्रेम-किस्सों में जीवन का अकृत्रिम स्वर विद्यमान है। एक ओर आदर्श का आग्रह है और दूसरी ओर यथार्थ अभिव्यक्ति की व्यग्रता ये अन्तर ऐतिहासिक परिस्थितियों और राजनीतिक वातावरण के परिणाम हैं जिनकी ओर इस प्रबन्ध में यथास्थान संकेत किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन से इस मान्यता का खण्डन हो जाता है कि दाऊद, मंझन, जायसी प्रभृति कुछ कवियों की रचनाएँ फारसी की मसनवी-पद्धति के अनुकरण पर लिखी गईं। रचना-व्यवस्था से लेकर अभिव्यक्ति-कौशल तक सभी प्रकरणों में इस तथ्य की सावधानी पूर्वक परीक्षा की गई है और यह बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि हिन्दी का प्रेमाख्यान-काव्य फारसी मसनवी-पद्धति की रचनाओं की

अपेक्षा संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यों के अधिक निकट है परन्तु, पंजाबी प्रेमाख्यानो पर फारसी मसनवियों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया है।

मुसलमानो द्वारा रचित हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य को शेष प्रेमाख्यान-काव्यधारा से पृथक् कर, उसकी प्रतीकात्मक व्याख्या करने से भी मै राहमत नही हो सका हूँ। मेरे विचार मे ये रचनाएँ किसी विशिष्ट साधना-पद्धति की अपेक्षा एक उदार जीवन-विधि का ही सकेत करती है। इनके रचयिताओं के धर्म-सम्प्रदाय अथवा इनमे किन्ही सूफी-सतों की वंदना-सम्बन्धी छन्दो को देखकर इन्हे अलग कठघरे मे बन्द कर देना कदापि उचित नही। लोकभाषा में लिखने वाले इन सहृदय कवियों ने लोकमानस में सौजन्य, सहानुभूति, उदारता और प्रेम की निष्कलुष निर्झरिणी प्रवाहित करने का यत्न किया है। इनकी दृष्टि मे इश्के-मजाजी किसी भी प्रकार इश्के-हकीकी से कम महत्त्वपूर्ण नही रहा। इनका इश्क कुफ्र और दीन की कैद से आजाद है। फिर भी इन की रचनाओं में कई बार किसी रहस्य को समझाने की घोषणा ऐसी शका उत्पन्न कर देती है। मैं, इसे 'यः जानाति स पडितः' की काव्य-रूढि का ही रूपान्तर मानता हूँ। पुनः, धर्मध्वज वृद्धो की क्रूर दृष्टि से बचने के लिए भी यदि कुछ उपाय किया गया हो तो कोई आश्चर्य नही साधना-पद्धति का विवेचन देखने के लिए पंजाबी की रचनाएँ— 'अहसनुलकस्सिस' (अहमदयार) और 'हीर-रांझा' (फजलशाह) देखी जा सकती हैं, जिनमें साधना की शब्दावली और धार्मिक ग्रथो के उद्धरण भी मिलते है। अतः, यह मानना अधिक उचित प्रतीत होता है कि इन (दाऊद, मझन, जायसी आदि) कवियों की कृतियों मे जाति, सम्प्रदाय या धर्म से अलग रहकर मानव-हृदय की एक तड़पन को अभिव्यक्ति दी गई है।

यद्यपि इस विषय पर कार्य करने का निश्चय १९५८ में ही कर लिया गया था तथापि विभिन्न परिस्थितियों के कारण १९६५ से पहले इस दिशा मे संतोषजनक प्रगति न हो सकी। अनेक अन्य बाधाओं के अतिरिक्त पंजाबी रचनाओं की अनुपलब्धि मुझे विशेषरूप से सत्रस्त किये रही। मेरा अनुमान था कि ये कृतियाँ गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हो जाएँगी किन्तु खोज करने पर विदित हुआ कि गुरुमुखी लिपि की अपेक्षा विवेच्य साहित्य फारसी लिपि में अधिक लोकप्रिय रहा है। देश-विभाजन के परिणाम-स्वरूप इसकी लोकप्रियता में ह्रास आया और ये रचनएँ लुप्त होती गई। अब इन्हें प्राप्त करना दुष्कर कार्य है। कुछ दुष्प्राप्य रचनाओ को उपलब्ध कराने मे श्री गोबिंदसिह लांबा (भाषा-विभाग, पटियाला), डॉ० मैथिलीप्रसाद भारद्वाज (हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़) और डॉ० निरंजनलाल शर्मा (हस्तिनापुर कालेज, नई दिल्ली) का मैं विशेष रूप से आभारी हूं। डॉ० भारद्वाज ने अपना शोध-प्रबंध (हिन्दी प्रेमाख्यान और पंजाबी किस्सा-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन) विश्व-विद्यालय में प्रस्तुत करने से पूर्व ही कुछ दुर्लभ रचनाएँ मुझे सौंप कर अविस्मरणीय

ग्रात्मीयता का परिचय दिया था। डॉ० रामलाल वर्मा, पं० चंन्द्रकान्त बाली ग्रौर डॉ० बिशनसिंह यादव ने समय-समय पर ग्रनेक सत्परामर्श देकर मेरा उत्साह बढ़ाया, इस स्नेह-सौजन्य के लिए धन्यवाद देना ग्रक्षम्य धृष्टता होगी।

प्रस्तुत विषय पर शोध करने का सुझाव ग्रादरणीय प्रो० नगेन्द्र ने दिया था, इसका वर्तमान रूप-निबन्धन उनके द्वारा प्रदत्त प्रेरणा का ही प्रतिफल है। शोध-कार्य डॉ० हरिभजनसिंह (प्रोफेसर एव ग्रध्यक्ष आधुनिक भाषा-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) के निर्देशन मे संपन्न हुग्रा। उनके सरल स्नेह ग्रौर सहज सवाद-वृत्ति के फलस्वरूप मुझे अधिक गहराई में झाँकने ग्रौर विषय को ग्रधिक चारुता से प्रस्तुत करने की दृष्टि मिली परन्तु, उसका उपयोग अपनी सीमाग्रों में रह कर ही कर पाया हूं। मेरे लिए उनके ग्रनुग्रह से उऋण हो पाना कठिन है।

पूज्य गुरुवर प० परमानन्द शास्त्री (भू० पू० प्राध्यापक संस्कृत-विभाग, पजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ) इस प्रयास की पूर्णता से पूर्व ही स्वर्ग सिधार गये। 'करुणाविमुखेन मृत्युना हृता त्व वद किन्न मे हृतम्' कह कर ही संतोष करना पड़ता है। उनका वैदुष्य ग्रौर शिष्य-वात्सल्य मेरे सबल रहे हैं।

राजधानी कालेज, कीर्तिनगर, नई दिल्ली-१८ **ओम्प्रकाश**

विषय-सूची

प्रस्तुति

मध्यकाल

प्रस्तुत प्रवन्ध की सीमाओं को निश्चित करने के लिये सर्वप्रथम 'मध्यकाल' शब्द पर विचार करना उचित प्रतीत होता है। 'भारतीय इतिहास मे मुस्लिमशासन की स्थापना के पूर्वकाल को इतिहासकारों ने प्राचीनकाल ठहराया है तथा ब्रिटिशशासन की स्थापना के उत्तरकाल को आधुनिक काल की संज्ञा दी है। इन दोनों के बीच का मुस्लिम प्रभुत्व का युग मध्यकाल कहलाता है'।[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी इस प्रकार के विभाजन को पाश्चात्य विचारकों से प्रभावित बताते हुए स्पष्ट कहते है कि "यह शब्द अंग्रेजी के 'मिडिल एजिज़' के अनुकरण पर बना लिया गया है। उन्नीसवी शताब्दी के पाश्चात्य विचारकों ने साधारणतः सन् ४७६ ई० से लेकर १५५३ ई० तक के काल को मध्ययुग माना है।'[2] 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में पश्चिमी देशों के इतिहास को आधार मान कर मध्यकाल के विषय में लिखा है कि 'यह शब्द विवादास्पद है। स्थूल रूप से रोमनसाम्राज्य के पतन से लेकर धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में नवजागरण के आरंभ तक के काल को मध्यकाल कहा जाता है'।[3] इसके अनुसार पांचवी से पन्द्रहवीं शती का समय मध्यकाल ठहरता है।[4] कहते है, यह शब्द सर्वप्रथम इटली के विद्वानों द्वारा प्रयोग में लाया गया परन्तु वे लोग भी इसकी सीमाओं की निर्विवाद तिथियां नही बता सके।[5]

वैसे तो मध्यकाल के आरंभ के संबंध मे तीसरी शती के मध्य की अनेक तिथियां प्रस्तुत की जाती है परन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार 'टायनबी' के अनुसार इसके प्रारम्भ का कार्य ३७५ ई० से आरंभ होकर ६७५ ई० मे पूर्ण हुआ।[6] यूरोप में सामान्य रूप से धार्मिक नवजागरण (रिनेसां) के कारण पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो में इस काल की समाप्ति मानी जाती है परन्तु 'ट्रेवेलीन' इस विचार से सहमत नही। उसकी धारणा है कि यह काल अठारहवी शताब्दी तक भी समाप्त

१. पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, डॉ० अवधबिहारी पाण्डेय, पृ० ३
२. मध्यकालीन धर्म-साधना, पृ० १०
३. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग १५, पृ० ४४६
४. वही, पृ० ४४८
५. यूरोपियन लिट्रेचर एंड लैटिन मिडल एजिज़, अर्नेस्ट राबर्ट, पृ० २०
६. वही, पृ० २१

नही हुआ । उसके अनुसार औद्योगिक क्रान्ति के कारण लोगो के रहन-सहन और विचार-प्रणाली में नवजागरण अथवा धार्मिक पुनर्जागरण की अपेक्षा कही अधिक परिवर्तन हुआ । रहन-सहन और चिन्तन-धारा के अतिरिक्त उसके प्रभावस्वरूप यूरोप की साहित्यिक परम्पराओ मे भी महान् परिवर्तन हुए ।[1]

वास्तव मे यह एक लम्बा काल है ओर स्थान-भेद तथा रुचि-भेद के कारण इन तिथियों के विषय मे मतभेद की संभावना सदा बनी रहेगी । 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के विद्वान् सम्पादकों ने संभवत. इसीलिए इस शब्द को परंपराप्राप्त प्रयोगमात्र माना है । उन्होने लिखा है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा यह शब्द अधिकाधिक अर्थहीन होता जाएगा ।[2]

हिन्दी और पंजाबी साहित्य में मध्यकाल—हिन्दी मे सर्वप्रथम मिश्रबन्धुओं ने सम्वत् १४४५ वि० से मध्यकाल का आरंभ माना है ।[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी सीमाएं १३७५ वि० से १६०० वि० तक स्वीकार की है ।[4] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार आदिकाल की समाप्ति के अनन्तर १४०० ई० से १८०० ई० (आधुनिक काल के प्रारभ) तक मध्यकाल है ।[5] यद्यपि उन्होंने उसे मध्यकाल की संज्ञा से अभिहित नही किया है परन्तु भक्ति-साहित्य के साथ मध्यकालीन विशेषण लगाकर इस नाम से सहमति प्रकट की है ।[6] श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने १४०० से १७०० विक्रमी को पूर्वमध्यकाल एव १७०० से १६०० विक्रमी को उत्तर-मध्यकाल माना है ।[7] हिन्दी साहित्य में विद्वानो के 'काल-विभाजन' सबधी इन विभिन्न मतों की सतर्क समालोचना कर डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने मध्यकाल की सीमाएं १३५० से १८५७ ईसवी मानी है ।[8]

पंजाबी भाषा के आदिकालीन साहित्य के विषय मे हमारा ज्ञान आज भी शून्यप्राय ही है । उसमें आदिकाल के लिए डॉ० मोहनसिंह ने 'पूर्व नानक-युग' या 'गोरखनाथ-युग' शब्दो का प्रयोग किया है और इसकी सीमाए आठवी शती से पन्द्रहवीं शती तक मानी है ।[9] डॉ० कालासिंह बेदी ने पजाबी भाषा के आदिकाल की समाप्ति १५०० ई० से मानी है ।[10] डॉ० मोहनसिंह ने आधुनिक काल का प्रारम्भ

१. यूरोपियन लिट्रेचर एंड लैटिन मिडिल ऐजिज्, अर्नेस्ट राबर्ट, पृ० २४
२. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग १५, पृ० ४४८
३. मिश्रबन्धु विनोद, भूमिका, पृ० १६
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १
५. हिन्दी साहित्य, पृ० ४३ एवं ३५६
६. वही, पृ० ६१
७. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ३०
८. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ११२-१२३
९. ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ११
१०. पंजाबी साहित्तधारा, सं० डॉ० हरचरणसिंह, पृ० ४३

१८६० ई० मे माना है[1] तो भाषा-विभाग, पटियाला द्वारा प्रकाशित पंजाबी साहित्य के इतिहास मे १८८० ई० मध्यकाल की अन्तिम सीमा स्वीकार की गई है।[2] सुरिन्दर सिंह नरूला एव डॉ० गोपाल सिंह दरदी १८५७ ई० के बाद आधुनिक काल का आरंभ मानते है[3] जबकि डॉ० सुरिन्दर सिंह कोहली के अनुसार बीसवी शती ईसवी के आरम्भ से ही आधुनिक काल का वास्तविक प्रारम्भ हुआ है।[4]

वास्तव मे विक्रमी छठी से चौदहवीं शती के मध्य का समय ससार की आधुनिक भाषाओं की उत्पत्ति एवं विकास का काल है। यूरोप में इसी काल मे लैटिन एव ग्रीक से आधुनिक यूरोपीय भाषाओ की उत्पत्ति हुई[5] तो भारत में भी इसी काल मे अपभ्रंश से आधुनिक भाषाओं का प्रस्फुटन एव विकास हुआ। "तत्कालीन अपभ्रंश को हिन्दी कहना उतना ही उचित या अनुचित है जितना कि उसे मराठी, उड़िया, बंगला, आसामी, गोरखाली, पंजाबी अथवा गुजराती कहना।"[6] सम्वत् एक हजार के आसपास उत्तरी भारत मे सिद्धो, नाथो और उनसे प्रभावित साधु-सन्तों का जनता पर ही नही साहित्य-क्षेत्र पर भी अपूर्व प्रभाव था। सिद्धो और नाथों के प्रभाव के कारण उस समय एक ऐसी काव्य-शब्दावली स्वीकृत हो चुकी थी जिससे सर्वसाधारण के श्रोत्र परिचित थे। साथ ही अनेक विदेशी आक्रमणो के कारण राजपूत (असिजीवी) सामन्तो के प्रति जन-सामान्य की अभ्यर्थना और श्रद्धा भी इस एकता का कारण थी। "नवी से बारहवीं शताब्दी के काल मे परिनिष्ठित अपभ्रंश राजपूत राजाओ की प्रतिष्ठा और प्रभाव के कारण, जिनके दरबारों में इसी शौरसेनी की परवर्ती या उसी पर आधृत भाषाए व्यवहृत होती थी और जिसे चारणो ने समृद्ध और शक्ति-सम्पन्न बनाया था, पश्चिम मे पजाब और गुजरात से लेकर पूर्व में बगाल तक समूचे आर्य भारत मे प्रचरित हो गई। संभवतः यह उस काल की राजभाषा मानी जाती थी। निश्चय ही एक सुगठित एवं कविजनोचित भाषा होने के कारण उस समय सभी प्रकार की काव्य-रचना के लिये यह उपयुक्त समझी जाती थी।"[7] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि राजपूत दरबारों मे शौरसेनी के परवर्ती विकसित रूप का राजभाषा एव काव्य-भाषा के रूप मे व्यवहार होता था। यह भाषात्मक एकता असिजीवी सामन्तों, नाथों एव सिद्धों के प्रभाव स्वरूप थी। राजनीतिक दृष्टि से विशृंखलित होते हुए भी इस देश में उस समय अपूर्व भाषात्मक ऐक्य था।

---

१. एन इंट्रोडक्शन टु पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ७
२. पंजाबी साहित्त दा इतिहास—मध्यकाल, भाषा-विभाग, मुख पृष्ठ
३. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, नरूला, पृ० २७४, दरदी, पृ० २०६
४. पंजाबी साहित्त दा इतिहास. पृ० ४६८
५. आउट लाइन आव् हिस्ट्री, ऐच० जी० वेल्ज, पृ० ४१४
६. हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, भूमिका, पृ० ११, १२
७. ओरिजिन ऐंड डेवेलपमेंट आव् बंगाली लेंग्वेज, एस० के० चटर्जी, पृ० ११३

भारतीय भाषाओं में जितना भेद आज है इतना कभी नही रहा । प्राकृतों से पूर्व संस्कृत के व्यवहार के समय यास्काचार्य के 'निरुक्त' से अत्यल्प प्रादेशिक भेद का आभास मिलता है ।[1] प्राकृत-काल में यह भेद कुछ बढा । अपभ्रंश में पहुंचते पहुंचते यह खाई अधिक चौड़ी हुई परन्तु इस काल में भी शब्दावली एवं छंदों में पर्याप्त समानता थी । विक्रमी चौदहवी शताब्दी से हमारी साहित्यिक भाषाओ का विकास यद्यपि भिन्न भिन्न दिशाओं में होने लग पड़ा था परन्तु परम्परा में कोई विशेष भेद लक्षित नही होता । नामदेव ने मराठी के अतिरिक्त ब्रज में भी पद लिखे और सुदूर पूर्व बंगाल में तो कई कवियों ने ब्रज-मिश्रित भाषा को अपनाया परन्तु यह विकास-भेद पन्द्रहवीं शताब्दी में भयकर रूप से प्रकट होने लगा । अतः चौदहवी शताब्दी विक्रमी के अन्त तक ही इन भाषाओं का आदिकाल या प्रारभिक काल है जिसके अनन्तर मध्यकाल का आरभ मानना युक्तियुक्त है । यूरोप की आधुनिक भाषाए भी चौदहवी शती मे ही समर्थ हो पाई और सशोधन-परिमार्जन द्वारा सबल अभिव्यक्ति के योग्य हुई[2] । पंजाबी साहित्य में भी इसे १५०० ईसवी तक ले जाने में कोई सबल तर्क उपस्थित नही किया जाता । ग्रंथों की उपलब्धि न होना कोई निराशा की बात नही । इस काल की रचनाएं खोजने के यत्न भविष्य में अवश्य सफल होंगे ।

मध्यकाल की समाप्ति के विषय में भी साहित्य के इतिहासकार एकमत नही है । वस्तुतः, मध्यकाल की समाप्ति का समय वही माना जाना चाहिए जबकि जनसाधारण में मध्यकालीन संस्कार और विचार-विशेष जैसे व्यक्तिपूजा, एकाधिकार, जागीरदारी आदि को तिलांजलि देकर आधुनिकता, समानता, देश-प्रेम आदि की समष्टिवादी विचारधारा को अपनाने की इच्छा जागृत होने लगी । जेम्स एडगर स्वेन ने यूरोप में मध्यकाल की सीमाएं ४७६ ई० से १५०० ई० तक मानते हुए भी उसमे उन सभी रचनाओं को लेने का आग्रह किया है जो पुरातन सभ्यता से आधुनिकता की ओर परिवर्तन मे सहायक हैं, चाहे वे बाद की ही क्यों न हों । निश्चित तिथियों के बन्धन मे रहकर हम इस सम्बन्ध मे औचित्य का पालन नही कर सकते क्योंकि भिन्न-भिन्न देशों में यह परिवर्तन अलग-अलग समय में हुआ है । कई पिछड़े हुए देश तो आज भी उन परिस्थितियों में जीवन बिता रहे है जिनमें यूरोपीय देश आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व थे ।[3] उनके सम्बन्ध में यह मानना असंगत न होगा कि वहां आज भी आधुनिकता का सूर्योदय नही हुआ ।

---

१. 'अथापि प्रकृतयः एकेषु भाष्यन्ते, विकृतयः एकेषु । शवतिगतिकर्मा, कम्बोजेष्वेव भाष्यते, विकारमस्यार्येषु भाषन्ते शव इति । दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु ॥

—निरुक्त, अध्याय २, प्रथम पाद ।

२. आउट लाइन आव् हिस्ट्री, एच० जी० वेल्स, पृ० ५१६

३. ए हिस्ट्री आव् वर्ल्ड सिविलाइजेशन, एडगर स्वेन, पृ० २५८

आधुनिक युग के साहित्य में औद्योगिक विकास, सामाजिक चेतना, राजनीतिक परिस्थितिया, सांस्कृतिक संसर्ग आदि के प्रभावस्वरूप जनसाधारण और कवि-समुदाय के व्यक्तित्व में अनेकविध परिवर्तन अनिवार्य थे। भारत में ये परिवर्तन अंग्रेजी राज्य के साथ आरम्भ हुए। १७५७ ई० में प्लासी के युद्ध के उपरान्त भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे मुगल-प्रभाव क्रमशः क्षीण तथा अंग्रेजों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढता गया। उन्नीसवी शती के आरम्भ में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज मे भारतीय भाषाओ का अध्यापन आरम्भ हुआ। उन्नीसवीं शति के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचारार्थ भारत में स्कूल खुलने लगे।[1] १८२६ ई० मे 'उदन्तमार्तण्ड' नामक हिन्दी पत्र का प्रारम्भ हो चुका था।[2] सन् १८५७ मे प्रथम स्वातन्त्र्य सग्राम के दमन के अनन्तर समूचे भारत मे अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित हो गया। 'सन् १८६० के बाद देश में पूर्ण रूप से शान्ति और व्यवस्था कायम हो गई। यातायात के साधन सुलभ हो गए और क्रमश उनमे सुधार होता गया। यही से वास्तविक आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ होता है।[3] हिन्दी काव्य में इस नवीनता या आधुनिकता के वाहक थे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। सन् १८६७ मे उन्होने 'कविवचन-सुधा' एव सन् १८७३ मे 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' द्वारा हिन्दी को नये चाल में ढालना आरम्भ कर दिया।[4]

पजाबी मे भी इसी के आस-पास आधुनिक साहित्य का समारम्भ माना जाना चाहिए। लुधियाना मे ईसाई पादरियो के प्रचार एव अंग्रेजी शिक्षा का केन्द्र तो सन् १८३४ में खुल गया और महाराजा रणजीतसिह ने सन् १८३५ मे वहाँ एक रिसाला प्रशिक्षण के लिए भेजा था।[5] लाहौर में शिक्षा-विभाग का कार्यालय १८६० ई० मे[6] और 'ओरिएंटल कॉलेज' १८६४ ई०[7] में खुला। सन १८७० तक पंजाब के बड़े-बडे नगर रेल-मार्ग द्वारा आपस में मिल चुके थे।[8] मिशनरियों के प्रचार को निरस्त करने एव अपने धर्म-प्रसार के लिए 'सिहसभा-लहर'[9] 'आर्य-समाज'[10] एवं 'सनातन-धर्म' सम्बन्धी आन्दोलन १८७० ईसवी के बाद ही आरम्भ हो गए। ये सब आधुनिकता के प्रसाद थे जिनका प्रभाव जनसाधारण पर पड रहा था और उनमे नवीन युग-चेतना का उदय हो रहा था।

"साहित्य मे आधुनिकता का वाहन प्रैस है और उसके प्रचार के सहायक है यातायात के समुन्नत साधन।[11] अत., इनके प्रचार के अनन्तर मध्यकाल का अवसान

---

१. पंजाब, गंडासिह, पृ० ३७२
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४२७
३. हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३६३
४. वही, पृ०३ ६३
५. पंजाब, गंडासिह, पृ० ३७२, ७४
६. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, दरदी, पृ०३१५
७-१०. गंडासिह, पृ० ३६८, ३५६, १३२, १५०
११. हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३६१

मानना ही तर्कसंगत है। जैसा कि 'पंजाबी साहित्त' के सम्पादकों ने किया है, आधुनिक युग के समारम्भ को १८८० ईसवी तक ले जाना कदापि उचित नही। पंजाबी मे भी किशनसिंह आरिफ, भगवानसिंह आदि कुछ ऐसे कवि है जिनकी रचनाए उनके जीवन-काल में ही छप चुकी थी। अत, साहित्य में भी आधुनिकता के वरदानों का उपयोग करने वाले इन कवियो को मध्ययुगीन मानना उचित नही।

हमारा मन्तव्य इसमें सदेह नही कि साहित्य मे कालो का सीमा-निर्धारण, ऐतिहासिक घटनाओ के समान निश्चित नही किया जा सकता। न तो किसी साहित्यिक प्रवृत्ति के आरम्भ की कोई निश्चित तिथि बताई जा सकती है और न समाप्ति की ही, परन्तु प्रवृत्ति विशेष का अध्ययन ही यदि लक्ष्य मान लिया जाए तो पंजाबी मे यह प्रवृत्ति देश-विभाजन तक अत्यन्त लोकप्रिय रही। सन् १८७० के अनन्तर तो पंजाब के प्रत्येक गाँव में किस्सा-कवियो की बाढ सी आ गई, परन्तु इनका महत्व स्थानीय ही अधिक रहा। इनमे न तो शैली की नूतनता थी और न विषय की, कथाएं भी वही प्राचीन थी। अत, ये अधिक प्रसिद्धि प्राप्त न कर सके। साहित्यिक क्षेत्र मे इनका चिरस्थायी प्रभाव भी परिलक्षित नही होता। आज के आलोचकों के मतानुसार, भगवानसिंह एवं किशनसिंह आरिफ जैसे प्रतिनिधि कवियो का भी प्रामाणिक जीवन-वृत्त इनकी मृत्यु के साठ-सत्तर वर्ष उपरान्त ही उपलब्ध नही। अतः, इस प्रकार के विस्तार से बचने के लिए समय का बन्धन स्वीकार करना एक प्रकार से आवश्यक ही है।

यह स्पष्ट किया ही जा चुका है कि आधुनिक युग की पृष्ठभूमि यद्यपि बहुत पहले से तैयार हो रही थी तथापि इसका समारंभ १८५८ ईसवी के प्रसिद्ध गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट से ही मानना उपयुक्त होगा जिसके अनुसार सम्पूर्ण भारत ईस्ट इंडिया कंपनी की बजाय सीधे रूप से अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत आ गया। काव्य मे ये प्रभाव कुछ वर्षो मे ही स्पष्ट होने लग पड़े। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने भी संवत् १९२५ से ही नई धारा का प्रथम उत्थान माना है।[1] इससे पहले के २५ वर्ष तो पुरानी धारा के प्रवाह से ही आप्लावित रहे। उनमें विशेष विदग्धता का परिचय नही मिलता। अत., इस शोध-प्रबन्ध में संवत् १४०० से सवत् १९२५ तक ही मध्यकाल स्वीकार किया गया है।

हिन्दी से तात्पर्य

मूल रूप से 'हिन्दी' फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है हिन्द से सम्बन्धित।[2] भाषा के अर्थ में हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य अथवा द्रविड़-कुल की भाषा के लिए इसका प्रयोग निर्विवाद रूप से हो सकता है। छठी शती ईसवी मे बादशाह नौशेरवाँ के दरबारी कवि ने 'पंचतन्त्र' का अनुवाद करते

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८८

२ हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ८८७

हुए इसे ज़बाने-हिन्दी का ग्रन्थ कहा है जबकि यह वस्तुत संस्कृत की रचना है। इसी प्रकार अल्बेरुनी (११वी शती), फारसी कवि औफी (१३वी शती), अमीर खुसरो (१३-१४वी शती) आदि मुस्लिम लेखकों ने भी हिन्दी का प्रयोग भारत की सभी भाषाओं के लिए किया है[१] परन्तु हिन्द देश मे आज कई भाषाएं बोली जाती है और एक को छोडकर आज कोई भी इस नाम से अभिहित नही होती। न तो वह देश की एकमात्र भाषा है और न ही सभी भाषाएं इस एक (हिन्दी) नाम को स्वीकार करती है। सभी हिन्द वासी अभी तक इसे बोलने या समझने मे भी समर्थ नही।

एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार 'हिन्दी' शब्द 'हिन्दू' से व्युत्पन्न 'हैन्दवी' शब्द से विकसित माना जाता है। यह भी ठीक नही, क्योंकि भारत के सभी हिन्दू भी इस भाषा को नही बोलते। हिन्दी का सम्बन्ध हिन्दुओ से तो बहुत बाद में जुडता है।[२] सम्वत् १३८४ से १८६० तक के अनेक लेखकों के उद्धरण इस बात के प्रमाण है कि भारत मे नवागतुक मुसलमान अपनी भाषा को हिन्दी कहते थे।[३]

शब्द से क्या अर्थ ग्रहण करना चाहिए इस विषय मे अत्यन्त विस्तार से विचार करते हुए महाभाष्यकार पतजलि ने अन्त मे यही निश्चित किया कि जो अर्थ आचार्य निश्चित करें वही ग्रहण किया जाना चाहिए।[४] आचार्यो का मत जानने के लिए जब हम खोजबीन करते हैं तो हमे पता चलता है कि उनके विचार में हिन्दी शब्द के तीन अर्थ हो सकते हे —

(१) मूल अर्थ, (२) शास्त्रीय अर्थ, (३) प्रचलित और साहित्यार्थ।[५]

मूल अर्थ के विषय में पिछले पृष्ठों में विचार किया जा चुका है। शास्त्रीय अर्थ का का ज्ञान भाषा-विज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है।

हिन्दी का शास्त्रीय अर्थ —भाषा-वैज्ञानिकों ने हिन्दुस्तानी, बांगर, ब्रज, कन्नौजी तथा बुंदेली को पश्चिमी हिन्दी[६] कहा है और अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढी इन तीन को पूर्वी हिन्दी।[७] डॉ० बाबूराम सक्सेना नें पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत बागडू, हिन्दुस्तानी

---

१. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० ६८
२. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चन्द्रकान्त बाली, पृ० २१
३. क. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ८८८-८६
   ख. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त, पृ० ६८
   ग. पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चन्द्रकान्त बाली, पृ० २७-२८
   घ. पंजाबी शाइरां दा तज़करा, मौला बख्श कुश्ता, पृ० ८
   ङ. पंजाबी बोली दा इतिहास, भाषा-विभाग, पृ० ५०-५१
४. आचार्याचारात् संज्ञा सिद्धिः। यथा लौकिक वैदिकेषु।
   पातंजल महाभाष्य, 'वृद्धिरादैच' सूत्र का भाष्य॥
५. भाषा-विज्ञान, श्यामसुन्दरदास, पृ० १०६
६. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, ग्रियर्सन, पृ० २६१
७. वही, पृ० २६६

बुंदेली और ब्रज इन चार बोलियों को ही माना है तथा पूर्वी के अन्तर्गत अवधी एवं छत्तीसगढी को ।[१]

इसका अभिप्राय यह है कि "भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी एवं बिहारी तथा इनकी उपभाषाए मैथिली, मगही, भोजपुरी, मारवाडी आदि हिन्दी की सीमा के भीतर नही आती" ।[२]

हिन्दी का साहित्यार्थ— मूल एव शास्त्रीय अर्थ पर दृष्टिपात कर लेने के अनन्तर साहित्यिक एवं लोक-प्रचलित अर्थ के विषय में भी विचार करना अधिक व्यावहारिक होगा ।

"राजस्थान और पंजाब की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार की पूर्वी सीमा तक तथा उत्तर प्रदेश के उत्तरी सीमान्त से लेकर मध्यप्रदेश के मध्य तक के अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा को हिन्दी कहा जाता है ।"[3] इस विशाल प्रदेश मे प्रचलित अनेक स्थानीय बोलियों का भाषाशास्त्रीय ढाचा एक सा नहीं है परन्तु सभी अपने साहित्यिक प्रयत्नों मे केन्द्रोन्मुखी भाषा का प्रयोग करते है । इसलिए डॉ० रामकुमार वर्मा ने मेवाडी, मारवाड़ी, ब्रज, कन्नौजी, अवधी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, बिहारी एव मैथिली को हिन्दी स्वीकारते हुए इनमें रचित समस्त साहित्य को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत मानने का आग्रह किया है ।[४] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र पूर्व में बंगाल, पश्चिम में पंजाब, दक्षिण में मध्यदेश और उत्तर मे हिमालय की तराई माना है ।[५] इन प्रदेशों के लोग अपने दैनंदिन व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करते है । भिन्न-भिन्न बोलियों को बोलते हुए भी वे हिन्दी भाषी ही कहे जाएंगे । वास्तव में आज हिन्दी को एक भाषा न मान कर एक परम्परा के रूप मे ग्रहण करना अधिक समीचीन है ।[६]

डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने एक सामान्य लिपि देवनागरी, भौगोलिक एकता एवं सांस्कृतिक एकता को इन विभिन्न भाषाओं को एक समूह में बाधने वाले सूत्र माना है ।[७] वस्तुतः उनके ये तीनों सूत्र अपने आप में नितान्त शिथिल हैं । यह सुविज्ञात है कि सिख गुरुओं तथा जायसी, उसमान आदि मुसलमान कवियों की रचनाएं देवनागरी लिपि मे न होने पर भी हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत स्वीकार की जाती हैं । भौगोलिक एकता से क्या तात्पर्य है ? इसे तो अनेक बड़ी-बड़ी नदियां एवं वन-प्रदेश खंडित

---

१. सामान्य भाषा-विज्ञान, पृ० २७२
२. हिन्दी भाषा का उद्गम एवं विकास, डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० २१८
३. हिंदी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १
४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३३
५. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० २१
६. हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २
७. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ६६

करते है । इसी प्रकार सांस्कृतिक एकता की बात है। कुछ लोग तो सम्पूर्ण (आधुनिक) भारत एवं पाकिस्तान, नेपाल तक की संस्कृति एक मानते हैं और कुछ हिमाचल, पंजाब एव हरियाणा की सस्कृति मे भी महान् भेद देखते है। वास्तव मे इन भाषाओं को एक समूह मे बांधने का दायित्व भावना पर है। इसी भावनात्मक ऐक्य के कारण ये लोग अपनी प्रान्तीय बोलियों को बोलते हुए भी अपने आपको हिन्दी भाषी कहते है और व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करते है। न तो इनकी परम्पराएं समान है न धार्मिक विश्वास ही और न भौगोलिक स्थितियां परन्तु फिर भी यदि ये अपनी भाषा को हिन्दी कहते है तो हमे उसे हिन्दी स्वीकार करना ही पड़ता है।

आज उस समस्त भू-भाग में जिसे मध्यदेश[1] की संज्ञा दी जाती है, खड़ी बोली साहित्य के आसन पर विराजमान है। इस भू-भाग की पत्र-पत्रिकाओं, शिष्ट बोल-चाल स्कूल-शिक्षण और पत्र-व्यवहार की भाषा खड़ी बोली ही है किन्तु साथ ही मारवाड़ी, ब्रज, अवधी मैथिली आदि साहित्यिक बोलियों को भी हिन्दी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है।[2]

हमारा मन्तव्य— इस रचना मे साहित्य सम्बन्धी विचार-विमर्श होने के कारण हिन्दी के साहित्यिक अर्थ को ही स्वीकार किया गया है। अतः, इसमें डिगल, हिन्दवी, ब्रज, अवधी, प्रारम्भिक दक्खिनी आदि के प्रेमाख्यानों को हिन्दी प्रेमाख्यानों की सीमा मे ग्रहण किया गया है।

पंजाबी से तात्पर्य

पंजाबी के प्रमुख कोशकार भाई कान्हसिंह ने 'पंजाबी' के चार अर्थ लिखे है। (१) पंजाब का निवासी (२) पंजाब की भाषा (३) पजाब से सबंधित (४) गुरमुखी लिपि।[3] हमारा सम्बन्ध केवल द्वितीय अर्थ से है। पजाब[4] की भाषा पजाबी कहलाती है परन्तु पंजाबी पंजाब की एकमात्र भाषा हो, ऐसी बात नही।[5] न ही पजाब की सभी भाषाएं इस नाम के अन्तर्गत आती है। पंजाब में बोली जाने वाली भाषाओं मे से पंजाबी भी एक है, इतना मात्र सत्य है। दिल्ली के आस-पास के प्रदेश, पूर्वी पंजाब के कुछ जिले और पहाड़ी प्रदेश को छोड़ कर शेष पंजाब की भाषा पंजाबी कहलाती है चाहे वह पंजाब पाकिस्तान मे हो चाहे भारत में।[6]

'पंजाबी' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के राज-

१. हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १
२ हिन्दी भाषा का इतिहास, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५९
३. गुरु शब्द रत्नाकर (महान् कोश), पृ० ५९६
४. पंजाब से अभिप्राय यहां विभाजन से पूर्व के पंजाब से है।
५. ग्रियर्सन आन पंजाबी, भाषा-विभाग, पृ० १२
६. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ४२८

रथानी कवि सुन्दरदास[१] की रचनाओं में मिला कहा जाता है।[२] परन्तु यह ज्ञात नही हो सका कि उन्हें 'पंजाबी' शब्द से कौन सी भाषा अभीष्ट थी और उसकी क्या सीमाएँ थी। खुसरो ने इसे लाहौरी तथा 'आइने अकबरी' के कर्त्ता अबुलफजल ने इसे मुलतानी कहा है।[३] तदनन्तर १६७० ई० के आस-पास हाफिज बरखुरदार ने इसे पजाबी कह-कर पुकारा है।[४] हाफिज से पहले और पीछे तक भी इसे प्राय: 'हिन्दी'[५] ही कहा जाता रहा है।

पंजाबी का शास्त्रीय अर्थ— पजाबी की माझी, कच्छी आदि कई उपभाषाएं है परन्तु प्रधान रूप से लहंदा एव माझी दो मे ही साहित्य मिलता है। पिछली शती के उत्तरार्ध मे मालवी मे भी साहित्यिक रचनाएं होने लगी हैं। यद्यपि ग्रियर्सन ने इन दोनों भाषाओं को अलग अलग माना है तथापि इन दोनो के सीमा-निर्धारण मे वे भी असमर्थ रहे है।[६] उनके विचार मे आज के पजाबी क्षेत्र से किसी समय लहंदा के साथ अत्यन्त मिलती जुलती कोई भाषा बोली जाती थी।[७] वे पजाबी को अन्तर्वर्ती समूह की भाषा मानते है और लहंदा को बहिरंग समूह की।[८] परन्तु डॉ० चटर्जी ने ग्रियर्सन साहब के वर्गीकरण को तर्कदुष्ट बताकर नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया और लहंदा एवं पंजाबी दोनों को 'उदीच्य शाखा' की भाषाएं स्वीकार किया।[९]

पंजाबी का साहित्यार्थ— भाषाशास्त्रीय वृत्त से बाहर निकलकर देखें तो मध्य-कालीन पंजाबी साहित्य में दो समानान्तर धाराए प्रवाहित होती दिखाई देती है— १. गुरुमत-काव्यधारा, २. मुस्लिम-काव्यधारा, इन दोनो ही धाराओ मे विविधता के तत्त्व समान है। गुरुमत-काव्यधारा की लिपि गुरुमुखी एव प्रकृति व्रजभाषानुगामिनी रही। मुस्लिम कवियों की लिपि फारसी परन्तु प्रकृति पंजाबी निष्ठ थी। फलत:, एक ओर गुरुमुखी लिपि के कारण ब्रजभाषा का रूप बदल कर पंजाबी प्रधान हो गया दूसरी ओर सयोग एवं साहचर्य के कारण फारसी शब्द पजाबी छलनी से छनकर प्रयुक्त होने लगे। दोनों ही रूपों में भाषा की अस्मिता एवं तद्भवात्मकता की रक्षा के साथ-साथ

---

१. सुन्दरदास के परिचय के लिए देखें—हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० ८७ एवं हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १६५

२. एन इंट्रोडक्शन टु पंजाबी लिट्रेचर, डॉ० मोहनसिंह, पृ० १८

३. ए कम्पैरेटिव फानोलाजी आव हिन्दी एंड पंजाबी, बी० बी० अरुण, परिचय, पृ० ११

४. पंजाबी शाइरां दा तजकरा, मौलाबख्श कुश्ता, पृ० ८

५. (क) वही पृ० ८, (ख) पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चन्द्रकान्त बाली (ग) पंजाबी बोली दा इतिहास, संतसिंह सेखों, पृ० ५१।

६. ग्रियर्सन आन पंजाबी, पृ० २

७. वही, पृ० ८

८. भारत का भाषा सर्वेक्षण, ग्रियर्सन, पृ० २२२

९. ओरिजन ऐंड डवैलपमेंट आव् बंगाली लैंग्वेज, पृ० ६ का मानचित्र

आदान-प्रदान की प्रक्रिया भी सक्रिय रही। फारसी लिपि के कारण नवागन्तुक फकीरों, सूफियों एवं मुसलमान शासकों के सम्पर्क से भाषा का उपकार होने की पूर्ण संभावना थी परन्तु राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप गुरुमत-काव्यधारा में ब्रजोन्मुखता उत्तरोत्तर बढती गई एवं दसवें गुरु तक पहुचते-पहुंचते ब्रज का अनुपात इतना बढ़ गया कि उनकी भाषा को ब्रज कहना ही अधिक उचित है।[1] इसी प्रकार दूसरी ओर पजाबी मे फारसी का अनुपात उत्तरोत्तर बढ़ता गया।[2] धीरे-धीरे इसका रूप विकसित अथवा परिवर्तित होकर उर्दू मे बदल गया, परन्तु तब तक पंजाबी मे भी इस रूप को संभालने वाले कुछ पजाबी प्रेमी जागरूक हो गए। हमारे विवेच्य साहित्य मे फारसी से प्रभावित पजाबी का ही स्थान मुख्य है। फारसी का प्रभाव स्वीकार करते हुए भी इस भाषा का पंजाबी रूप स्पष्ट है। इस तथ्य को स्वीकृति प्रदान करते हुए सर्वश्री किरपाल सिंह एवं परमिदर सिंह ने दोनों धाराओ के योगदान का विश्लेषण इस प्रकार किया है—सम्पूर्ण भाषात्मक विश्लेषण के अनन्तर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये हिन्दू सिक्ख लेखक ब्रजी की ओर मुड़ते रहे और इनकी भाषा जनसाधारण से दूर हो गई। मुसलमान लेखकों में अरबी फारसी शब्दो की बहुलता होने पर भी उनकी भाषा का मूल स्वरूप पंजाबी का ही रहा। इन्ही लेखको के कारण पंजाबी भाषा जीवित रही।[3] गुरुमत-काव्यधारा के समान उसमें पंजाबी के स्वरूप का लोप नहीं हुआ।

हमारा मन्तव्य—आलोच्य काल-सीमा के अन्तर्गत मांझी एव लहंदी मे ही साहित्यिक रचना हुई। अतः, प्रस्तुत प्रबन्ध में पंजाबी से अभिप्राय लहंदी एवं माझी पंजाबी से ही है।

प्रेमाख्यान

प्रेमाख्यान एक समस्त पद है। प्रेम का आख्यान, प्रेमप्रधान आख्यान अथवा प्रेममूलक आख्यान -- इसके भिन्न-भिन्न विग्रह हो सकते है परन्तु सभी में प्रेम तत्त्व एवं आख्यान तत्त्व की प्रधानता स्पष्ट है। अतः, प्रेम एवं आख्यान का संक्षिप्त परिचय अनिवार्य है।

प्रेम—व्याकरण की दृष्टि से 'प्रियस्यभावः' प्रेम कहा जा सकता है। प्रिय को 'प्र' आदेश कर 'इमनिच्' प्रत्यय लगाने से यह शब्द व्युत्पन्न होता है। अथवा 'प्री-तर्पणे' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय लगा कर भी इसे सिद्ध किया जाता है। पहली व्युत्पत्ति के अनुसार इसका प्रयोग भावपरक तथा दूसरी के अनुसार साधन-परक होने के कारण यह 'प्रसन्नता' अथवा 'प्रसन्न करने वाला' इन दो अर्थों मे प्रयुक्त हो सकता है। कोशों

१. गुरुमुखी लिपि में हिंदी काव्य, डॉ० हरिभजनसिंह, पृ० २-५
२. पंजाबी बोली दा इतिहास, संतसिंह सेखों, पृ० २४८-६१
३. पंजाबी साहित्त दी उत्पत्ति ते विकास, पृ० ६४

में भी इसका प्रयोग इन्हीं अर्थों में है।[1]

कोशकारों एवं वैयाकरणों से मुख्यार्थ ग्रहण कर दार्शनिकों, साधकों एव साहित्यकारों ने अपने चिन्तन, अनुभव तथा अध्ययन के आधार पर प्रेम की कई परिभाषाए प्रस्तुत की है।[2] इन सभी के आधार पर, प्रेम के, भौतिक एवं आध्यात्मिक दो मुख्य रूप स्वीकार किये जा सकते है।

प्रेम का मूलाधार ममत्वातिशय या रति है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार अनुकूल विषयों के प्रति मानसिक आसक्ति को रति कहते है।[3] यही आसक्ति जब हृदय को द्रवित कर प्रगाढ़ हो जाती है तो प्रेम कहलाने लगती है।[4] 'उज्ज्वलनीलमणि' में इस सान्द्रता को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जब ध्वस-कारणों के उपस्थित होने पर भी यह भाव-बंधन ध्वस्त न हो तो इसे प्रेम कहा जाता है।[5]

वासना प्रेम का मूल उत्स है परन्तु पूर्ण प्रेम मे वासना का स्थान नही है। स्वार्थमूलक होने के कारण वह अनेक प्रकार के विकारों का पोषण करती है। इसीलिए प्रेम को यौन सम्बन्ध से श्रेष्ठ माना जाता है वासना के उन्नयन से ही प्रेम को गरिमामय स्थान पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। हेय होने पर भी प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुचने के लिए वासना का विशेष महत्त्व है। प्रेम के सदर्भ मे इसे किसी प्रकार भी अस्वीकृत नही किया जा सकता। यह उसका एक अ श है, चाहे छोटा ही सही। वासना का आविर्भाव होने पर ही उसके परिमार्जन अथवा उन्नयन की प्रक्रिया आरंभ हो सकती है। वासना का सम्बन्ध हमारी इन्द्रियों से है। श्रोत्र, चक्षु, जिह्वा, नासिका, त्वचा के भिन्न-भिन्न कार्यो से काम या वासना का जन्म होता है।[6] परन्तु इसमे जब मन और अत्मा का संश्लेषण होता है तभी प्रेम का उदय समझना चाहिए। वासना तो सहभोज, वार्तालाप, आदान-प्रदान से जागृत रखी जा सकती है परन्तु प्रेम को इन

---

१. (क) प्रेम तु प्रियता हार्दम् स्नेहः;—अमरकोश १।७।२७
(ख) प्रेम नर्म;—मेदिनी कोश
(ग) सौहार्दे स्नेहे हर्षे,—वाचस्पति कोश, पृ० ४५४०
(घ) Love affection, favour, kindness, joy, delight.
Apte's Sanskrit Dictionary, P. 1139.

२. देखें नारदभक्तिसूत्र ; हरिभक्तिरसामृतसिन्धु ; उज्ज्वलनीलमणि ; चिन्तामणि (शुक्ल) ; फिलासफी आव् लैक्स; (आसवाल्ड); साइन्स आव् इमोशन्स, (डॉ० भगवानदास) आदि

३. रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्। —साहित्यदर्पण ३।१७६; विमला टीका, पृ० १०५

४. सम्यङ् मसृण स्वान्ते ममत्वातिशयाङ्कितः
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते। —हरिभक्तिरसामृतसिंधु, पृ० १०६

५. सर्वथा ध्वंसरहितं, सत्यापि ध्वंसकारणे
यद् भावबन्धनं यूनोः सा प्रेमा परिकीर्तितः। —उज्ज्वलनीलमणि, पृ० ४१८

६. श्रवणात् दर्शनात् रूपाद् अंग लीलाविचेष्टितैः
मधुरैः संलापैश्च कामः समुपजायते। —नाट्य-शास्त्र, २२।१५०

बाह्य उपादानों की भी आवश्यकता नहीं। वह तो अभाव एवं संघर्ष में ही अधिक पनपता है। कारण यह है कि वासना लौकिक वस्तु है किन्तु प्रेम चाहे लौकिक वस्तु से हो चाहे अलौकिक शक्ति से, सदा अलौकिक है। कुछ विचारक एवं कवि तो प्रेम के सूक्ष्म रूप को बहुत दूर तक ले गए है। उनके अनुसार प्रेम केवल मनुष्य का ही व्यापार नही यह जड़ पदार्थों में भी व्याप्त होता है---

जल मंहि वसइ कुमोदणी चंदउ वसइ अगासि।
ज्यउ ज्याही कइ मनि वसइ सउ त्यांही कइ पासि।।[१]

इसी तथ्य को भवभूति ने बहुत पहले उद्घोषित किया था—

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपिहेतु
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकम्
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त :।[२]

अर्थात् प्रीति का कारण बाह्य नहीं होता। यह तो कोई आन्तरिक आकर्षण ही है जो सूर्योदय से कमल खिल उठता है और चन्द्रकान्तमणि चन्द्रोदय से द्रवित होने लगती है। 'सानेट्स् फ्राम पोरचगीज' में लगभग यही बात इलैजिबैथ ब्रौनिंग ने कही है।[3]

प्रेम के मूल में कोई कारण नहीं होता। अकाट्य आकर्षण उसकी पहली शर्त है। आरम्भ में रूपाकर्षण को उसका हल्का सा कारण माना जा सकता है परन्तु वह इस नैसर्गिक प्रक्रिया को लौकिक दृष्टिकोण के अनुकूल बनाने का ही यत्न है, अन्यथा अधिक सुन्दर रूप से भेट होने पर वह आकर्षण छिन्न हो जाना चाहिए। पुनः, कालक्रम से 'रूप' में विकृति आने पर भी उसमे शिथिलता नही आती। वह तो सभी स्थितियों में समरस रहता है। कालक्रम से उसकी सघनता एवं तीव्रता में किंचिन्मात्र

---

१. ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिह तथा सहयोगी, पृ० ४४

२. उत्तररामचरितम् ६।१२

3. If thou must love me, let it be for nought
Except for love's sake only. Do not say
"I love her for smile—her look—her way
Of speaking gently,—for a trick of thought
A sense of pleasant ease on such a day"
For these things in themselves, Beloved, may
Be changed, or change for thee,—and love, so wrought
May be unwrought so.
Selections from Elezabeth Barret Browning's Poetry, p. 187,

भी अन्तर नहीं आता[१]। साहित्यिक क्षेत्र में इसी 'प्रेम' को आदर्श माना जाता है। 'प्रेम' की तीव्रता इतनी प्रबल मानी गई है कि सौहार्द जागृत हो जाने पर दोनों प्राणियों का अपना रूप ,रंग, व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है, दोनों एक रूप हो जाते है।[२]

प्रेमियों की इसी अद्वैतता ने सूफियों को प्रभावित किया,[३] भक्तों पर जादू डाला। इस दशा का अनुवर्तन विद्यापति की राधा में स्पष्ट दिखाई देता है --

अनुखन माधव माधव सुमइरत
सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल
अपने गुन लुबधाई।[४]

सूर की राधा भी इस दशा को प्राप्त होती है—

राधिका कान्ह को ध्यान करै, तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै।
त्यौं अँसुवां बरसै बरसाने को, पाती लिखै लिखि राधिका ध्यावै।
राधे ह्वै जात तही छिन में वह प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपु में आपुन ही उरझै, सुरझै बिरुझै समुझै समुझावै।[५]

विद्यापति और सूरदास की राधा ने प्रेम की जिस चरम दशा का वरण किया था शाह हुसैन की हीर भी उस दशा को कैसे छोड़ देती --

माही माही कूकदी, मै आपे रांझण होई।
रांझण रांझण मैनूं सब कोई आखे हीर न आखे कोई।[६]

यह दशा पंजाबी के कवियों को इतनी प्यारी है कि शाह हुसैन के अनन्तर दमोदर, वारिस, हामद आदि ने भी इसका वर्णन किया है। इस अवस्था में न तो प्रेमी किसी से डरते हैं, न किसी के बंधन को स्वीकार करते हैं। उनमे लोकोत्तर स्वच्छन्दता एवं साहस का संचार हो जाता है। इसी लोकोत्तर स्थिति में पहुंच कर प्रेम प्रशंसनीय एवं जगद्वन्द्य हो जाता है। तब साधारण लौकिक जीव ही नहीं असाधारण सन्त-महात्मा भी उसका लोहा मानते हैं। यही कारण है कि भाई गुरदास जैसे भक्त कवि ने लिखा भी—

---

१. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्न हार्योरसः।
—उत्तररामचरितम्, १।३९

२. गुणरहितं कामनारहितं, प्रतिक्षणं वर्धमानमविच्छिन्नं, सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।
तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति, तदेव भाषयति, तदेव चितयति।
—नारदभक्तिसूत्र ५४, ५५,

३. विस्तार के लिए देखिए—तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पं० चंद्रवली पाण्डेय, पृ० १४३

४. विद्यापति की पदावली, सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० २८३

५. भ्रमरगीतसार—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १५६

६. पंजाबी दुनियां, जनवरी-फ़रवरी १९५९, पृ० ३०

लैला मजनूं आशकी चहूं चक्की जाती।
सोरठ बीजा गावीए जस सुघड़ा बाती।
सस्सी पुन्नू दोसती होई जात अजाती।
महीवाल नूं सोहणीं नै तरदी राती।
रांझा हीर बखाणीए ओह पिरम पराती।
पीर मुरीदां पिरहड़ी जस गावण परभाती।।[1]

गुरु गोविन्दसिंह ने भी इन प्रेमवीरों के महत्त्व को स्वीकार किया।[2] प्रसिद्ध भारतीय प्रेमाख्यान नल-दमयन्तीके नायक राजा नल को तो 'पुण्य श्लोक' कहा ही गया हैं। अतः, स्पष्ट है कि उदात्तावस्था में भौतिक प्रेम ही अलौकिक एवं बन्दनीय हो जाता है।

प्रेमाख्यानों में हमें दोनों प्रकार का प्रेम उपलब्ध होता है। उनमें आध्यात्मिक आवरण से परिवेष्टित प्रेम का वर्णन करने वाली रचनाएं भी है और प्रेम को एक शारीरिक आवश्यकता मानकर चलने वालों के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व भी है। प्रेम के दोनों ही रूप सुरम्य है। किसी भी एक को काम्य एवं दूसरे को वर्ज्य नही कहा जा सकता। पजाबी के कवि हाफिज़ बरखुरदार ने कहा है कि ईश्वर ने जो भी प्राणी उत्पन्न किया उसमें इश्क समाया हुआ है। ईश्वरीय विचार को देखो किसी मे तो वह हकीकी (अलौकिक) और किसी में मजाजी (लौकिक) है।[3] सभी का अपना-अपना महत्त्व है।

यह भी स्वीकार करने में संकोच नही करना चाहिए कि प्रेम जीवन मे एक प्रमुख आस्था है। उसी से प्रेरित होकर उत्तमोत्तम रचनाओ का अवतरण हुआ है। किसी ने इसे स्पष्ट स्वीकार किया है और किसी ने इस तथ्य को मूक स्वीकृति दी है परन्तु सत्य यही है—

तीन लोक चौदह भुवन सबै पड़ा मोही सूझि।
प्रेम छांडि किछु और न लोना जो देखौं मन बूझि।।[4]

आख्यान--प्रेम-कथाओं के लिए प्रेमाख्यान शब्द का प्रयोग आधुनिक आलोचकों की ही देन है। कथा-रचयिताओं ने इस शब्द का प्रयोग नही किया। हिन्दी मे इसके

---

१. वारा भाई गुरदास. वार २७, पृ० २९५
२. यारडे दा सानूं सत्थर चंगा, भट्ठ खेड़िया दा रहणां। —खिआल पातशाही दस
३. जो मखलूक उपाईआ खालिक हर हर इशक समाणा।
किसे हकीकी किसे मजाजी वेख खिआल रवाणा।।
—यूसफ जुलेखा, भाषा-विभाग, पृ० ४२
४. पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ९३

लिए कथा[1], कहानी,[2] बात,[3] तथा समय[4] शब्दों का प्रयोग हुआ है और पंजाबी में प्राय: 'किस्सा' शब्द का।[5] पंजाबी में यह शब्द, जोकि मूलत: अरबी का है, मुसलमानों द्वारा इतिवृत्तात्मक या कथात्मक रचनाओं के लिए प्रयुक्त होने लगा। अरबी एवं फारसी के कोशों मे इसका यही अर्थ मिलता है।[6] भाई साहब भाई कान्हसिंह ने भी

---

१. दाऊद—तउर कहा मंइ यहु खंडु गांवउं। कथा कवित्त कई लोग सुनावउं॥
—चांदायन, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३२७

कुतबन—पहिले हिंदुई कथ्था अही। फुनि रे काहुं तुरकी लै कही॥
—मृगावती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३६८

दामो—सुणउ कथा रसलील विलास।
—लखमसेन पदमावती कथा, सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० १७

जायसी—सन् नौ सै सैंतालिस अहै। कथा अरंभ बैन कवि कहै॥
—पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० २३

नारायणदास—इतनी कथा सुनै दे कान। —छिताई वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १५०

मंझन—कथा एक चित दइयं उपानी। सुनहूँ कान दै कहौ बखानी॥
—मधुमालती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३४

गणपति—कवि कायरथ कथा कही नरसा सुत गणपत्ति।
—माधवानल कामकंदला प्रबंध, सं० मजूमदार, पृ० ३

२. पुहकर—मन दै श्रवन सुनो सुरग्यानी। इहि विधि कहौ जो प्रेम कहानी॥
—रसरतन, सं० डॉ० शिवप्रसाद सिंह, पृ० १६

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती और कुंवर कहानी। कहु भाषा मों हो विज्ञानी॥
—इन्द्रावती, सं० श्यामसुन्दरदास, पृ० ४

३. माधवशर्मा—रस की ऐसी बात न कोई, मैं देषी ढुंडीर वहै सोई॥
मधुमालती वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, में संकलित माधवशर्मा की कृति
—मधुमालती रसविलास, पृ० ३०६

मंझन—रस कै बात रसिक पै जानै। विनु रस रसिक निरस कै मानै॥
—मधुमालती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३६

४. चतुरभुजदास—आगम समीयो सरस अति नीको।—मधुमालती वार्ता सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८

रतन रंग—रतन रंग कवि मन बुधि ठई। समौ विचारि नाथ निरमई॥
—छिताई चरित, सं० हरिहर निवास द्विवेदी, पृ० ७६

५. दमोदर—नाउं दमोदर जात गुलाटी जै इह किस्सा चाइआ।
—हीर दमोदर, सं० निहाल सिंह रस, पृष्ठ १७

बरखुरदा—कुल किस्सिआं दा बेहतर किस्सा हुकम रब्बे दे आइआ।
—यूसफ जुलेखा, भाषा-विभाग, पृष्ठ ४

वारिस—इस प्रेम दी झोक दा सब किस्सा जीभ सोहणी नाल सुणाईए जी।
हीर वारिस, भाषा-विभाग, पृष्ठ २.

६. (क) ए डिक्शनरी आव् मार्डन रिटन अरेबिक, पृ० ७६५
(ख) पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी (स्टीनगैस), पृ० ६७२
(ग) लुगाते किश्वरी, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, पृ० ३६५

इसका अर्थ कहानी या आख्यान ही माना है।[१] पंजाबी के विद्वान् पद्य कथात्मक रचना को किस्सा स्वीकार करते है।[२]

यद्यपि इस संदर्भ में 'बात', 'कहाणी', 'कथा', 'किस्सा' आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु ये प्रयोग किसी विशिष्ट परिभाषा के द्योतक नही है। हिन्दी में 'रसरतन' के लेखक पुहकर कवि एक ही पद्य में अपनी रचना को कथा भी कहते हैं और कहानी भी—

पुहकर सुकवि चित्त यह आई,
वरन कहौं कछु कथा सुहाई।
मन दै श्रवन सुनो सुर ग्यानी,
इहि विधि कहौ जो प्रेम कहानी ।।[३]

इसी प्रकार हाशम ने 'सस्सी' की रचना को कहानी[४] कहा है तो अन्य दो रचनाओं 'शीरी फरहाद' एवं 'हीर,रांझा' को किस्सा कहा है।[५] 'मंझन' कथा के साथ-साथ 'बाता' का भी प्रयोग करते है—

अंम्रित कथा कहौं अब गाई। रसिक कान दै सुनहु सोहाई ।।
रस कै बात रसिक पै जानै। बिनु रस रसिक निरस कै मानै।[६]

अतः, यह मानना पड़ेगा कि इन शब्दों का प्रयोग की एक परम्परा मात्र थी और उसका सर्वसुलभ अर्थ एक ऐसी रचना थी जिसका आधार कोई कथा होती थी। मूल-रूप में पंजाबी का किस्सा एवं हिन्दी के कथा, कहानी आदि शब्द पर्यायवाची ही है। पंजाबी में 'गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोश'[७],'पंजाबी कोश'[८] 'हिन्दी में हिन्दी साहित्य

---

१. गुरु शब्द रत्नाकर (महान. कोश) पृ० २४५

२. (क) पंजाबी साहित्त दी उत्पत्ति ते विकाश, परमिंदरसिंह किरपालसिंह, पृ. २८४, २८५
(ख) साहित्त दी परख, डॉ० गोपालसिंह, पृ. १, १६५
(ग) पंजाबी साहित्त दा इतिहास—मध्यकाल, भाषा-विभाग, पृ० १

३. रसरतन, सं० डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० १६

४. हाशम रचनावली, सं० प्यारासिंह पद्म, पृ० १०४

५. वही, पृ० १५८, ३८।

६. मधमालती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३६

७-८. किस्सा शब्द पर टिप्पणी क्रमशः पृ० २४५ और ६०३

कोश',[१] 'बृहत् हिन्दी कोश'[२], 'मानक हिन्दी कोश'[३], 'हिन्दी शब्दसागर'[४] आदि सभी इसी तथ्य को पुष्ट करते हैं।

कथा-आख्यायिका की परम्परा--कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य में आदि काल से। है अतः, बहुत पुराने समय से इस प्रकार के साहित्य की रचना आरम्भ हो चुकी थी। पश्चिम के अनेक प्रसिद्ध विद्वानो ने कथाओं का उद्गम-स्थान पूर्व को ही माना है। फारसी एवं यूरोपीय साहित्य मे उपलब्ध होने वाली अनेक कथाओं का मूल प्राचीनतम भारतीय कथा-सग्रहों, बौद्ध जातकों, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि में उपलब्ध हो जाता है।[५] यहीं से ये भिन्न-भिन्न पश्चिमी देशों में संक्रमण करती रहीं।[६]

अनुमान है कि ये कथाएं अरब के मार्ग से होती हुई यूरोपीय देशों मे फैली। पेशावर (पाकिस्तान), जो अरब की ओर जाते समय प्राचीन भारत का सीमान्त नगर था, में एक बाजार का नाम 'किस्सा ख्वानी' है। यह शब्द फारसी शब्द किस्सा-ख्वानी अथवा किस्सा-ख्वाहानी का सीधा या विकृत रूप प्रतीत होता है। ख्वाहानी का अर्थ इच्छा, आकांक्षा अथवा चाह है[७] तथा किस्सा-ख्वानी का किस्सा कहना।[८] दोनों ही रूपों में यह शब्द सार्थक प्रतीत होता है। संभवतः, व्यापार-मार्ग के इस विश्रामस्थल पर अनेक किस्सा-गो (किस्सा-ख्वा) अथवा किस्सा-अभिलाषी अपना मनोरंजन करते हों। यह भी संभव है कि इस स्थान पर श्रोता व्यापारियों को कथा सुनाकर कथा-व्यापारी बदले में धन लेते हों[९] और यह किस्सों के क्रय-विक्रय का स्थान हो।

भारत में अधिक लोकप्रिय होने के कारण इसके मौखिक एवं लिखित दोनों ही प्रकार के रूप उपलब्ध होते हैं और साहित्यालोचन के क्षेत्र में आचार्यों ने बहुत पहले इसके भेदों एवं विशेषताओं पर विचार करना आरंभ कर दिया था। छठी शताब्दी में भामह ने अपने 'काव्यालंकार' में आख्यायिका एवं कथा के लक्षण दिए है इनके अनुसार आख्यायिका में औत्सुक्य को विशेष महत्त्व प्राप्त नही होता, उसमें अभिव्यक्ति-सौन्दर्य एवं अर्थ-औदात्त्य ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। नायक स्वयं अपने वृत्त को कहता है, कथा उच्छ्वासों मे विभाजित होती है, बीच बीच में वक्त्र, अपवक्त्र छंदों का प्रयोग होता

१. आख्यान एवं आख्यायिका पर टिप्पणी, पृ० ८८
२. आख्यान एवं किस्सा शब्दार्थ, पृ० १३३, २८७
३-४. किस्सा शब्द पर टिप्पणी, क्रमशः ५३५ और २३८
५. लीगेसी आव् इंडिया, स० जी० टी० गैरेट में संकलित एच० आर० राबिनसन का लेख, 'इंडिया इन यूरोपियन लिट्रेचर एंड थाटस, पृ० २३
६. हिस्ट्री आव् इंडियन लिट्रेचर, विंटरनित्ज, वा० ३, भाग १, पृ० ३०१-७
७. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी (स्टीनगैस) पृ० ४८१
८. वही, पृ० ९७४
९. साहित्य, वर्ष १२, अंक २, पृ० ५६-५९ पर श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का 'कथा-शैली की परम्परा शीर्षक लेख।

है। इसके विपरीत 'कथा' में वक्त्र, अपवक्त्र छंदों एवं उच्छ्वासों के प्रयोग का निषेध है। 'कथा' की भाषा संस्कृत या अपभ्रंश कोई भी हो सकती है। उसके विषय कन्याहरण, युद्ध, वियोग आदि होते है। अन्त में नायक की विजय का वर्णन होता है परन्तु वक्ता नायक नही होता। भला कुलीन व्यक्ति अपने गुणों का व्याख्यान स्वयं कैसे कर सकता है ?[1] आख्यायिका से कथा की अन्य मुख्य भेदक रेखा उसका 'साभिप्रायकृत कथन-युक्त' होना है। सभवतः, यहाँ आचार्य का अभिप्राय किसी प्रकार की 'रूपक-योजना' से है। परन्तु आचार्य दण्डी ने आचार्य भामह के नियमों एवं कथा, आख्यायिका के विभाजन को अनुचित बताते हुए बड़े सबल शब्दो मे कहा—

'तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥

काव्यादर्श १।२८

उन्होंने तो आगे चलकर कथा एवं 'सर्ग बन्ध-काव्य' में भी किसीं प्रकार की विभाजक रेखा को अस्वीकृत करते हुए कहा —

कन्याहरण,संग्रामविप्रलम्भोदयादया :।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिकाः गुणा :॥

काव्यादर्श, १।२९

परन्तु आचार्य दंडी ने भी इसे गद्य का भेद ही माना।[2] रुद्रट पहला व्यक्ति है जिसने महाकाव्य के ही समान 'महाकथा' को भी पूर्णरूप से लक्षणबद्ध कर दिया। उन्होने उस समय उपलब्ध भिन्न-भिन्न भाषाओं की कथाओं को दृष्टि में रखकर 'महाकथा' का बड़ा विस्तृत लक्षण दिया है। 'महाकथा में प्रारम्भ में श्लोको के माध्यम से इष्टदेवों एवं गुरुजनों को नमस्कार कर, अपने कुल का परिचय तथा कथा लिखने का उद्देश्य प्रकट करे। इसके अनन्तर लघु अक्षरों वाले अनुप्रासयुक्त गद्य में कथा शरीर का निर्माण करे। इसमें पहले की तरह (पुरेव-जैसे महाकाव्य मे बताया है) नगर-वर्णन प्रभृति बातें होनी चाहिए। आदि में या तो एक विस्तृत् कथान्तर द्वारा प्रधान कथा का प्रवेश करवाए अथवा एक लघु भूमिका की योजना करे। वह शृंगार के सभी भेदों तथा कन्यालाभ के फल से युक्त होनी चाहिए। इस प्रकार कथा संस्कृत में गद्य तथा अन्य भाषाओं में पद्य में होती है।[3] रुद्रट के अनन्तर अग्निपुराण एवं हेमचन्द्र

१. काव्यालंकार, भामह १।२५-२९
२. काव्यप्दर्श, १।२३
३. श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून् नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो लध्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णक प्रभृतीनि॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपंचितं सम्यक्।
लघु तावत संधानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभफलां वा सम्यक् विन्यस्य सकल शृंगारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥
—काव्यालंकार, १६।२०-२३.

के काव्यानुशासन में कथा के अनेक भेदों का उल्लेख मिलता है। अग्निपुराण में प्रबन्ध के पाँच भेद माने गये है---आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, कथानिका और परिकथा।

इनके विस्तृत लक्षण भी अग्निपुराणकार ने दिये है।[1] इनमें मुख्य कथा एवं आख्यायिका ही है और दोनों के लक्षण लगभग वही है जो भामह ने दिए हैं। हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' के आठवे अध्याय के सातवे और आठवें सूत्र की व्याख्या में कथा के उपाख्यान, आख्यानक, निदर्शन, प्रवह्लिका, मन्थल्लिका, मणिकुल्या, खंडकथा, उपकथा, परिकथा, सकलकथा और बृहत्कथा– ग्यारह भेद किये हैं।[2] इनमे से उपाख्यान, आख्यानक, निदर्शन, प्रवह्लिका, खडकथा, और उपकथा तो मुख्यकथा की गौण या सहायक कथाएं ही प्रतीत होती है। मंथल्लिका एक प्रकार की व्यंग्य कथा है जिसमें किसी सम्मानित व्यक्ति का उपहास किया जाता है। मणिकुल्या को प्रहेलिकात्मक कथा कहा जा सकता है जिसमें वस्तु पीछे से प्रकट की जाती है। परिकथा एकोद्देश्यात्मक भिन्न-भिन्न कथाओं का संग्रह मात्र है। शेष दो, सकलकथा एवं बृहत्कथा, में से प्रथम 'आख्यायिका' के अधिक समीप बैठती है, क्योंकि उसमें प्रारम्भ से फल-प्राप्ति तक पूरे चरित्र का यथा-तथ्य वर्णन होता है। बृहत्कथा का 'कथा' से अधिक साम्य है जिसमें किसी विशाल महत्वपूर्ण विषय को लेकर अद्‌भुत कार्य सिद्धि का वर्णन होता है।[3] हेमचन्द्र ने कथा-रचना के माध्यम के विषय में गद्य और पद्य की चर्चा करते हुए स्पष्टरूप से इस भेद को निराकृत किया—

गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।[4]

काव्यानुशासन, ८।८

परन्तु उनका यह निर्णय सर्वमान्य नहीं हुआ और आचार्य विश्वनाथ ने भामह, दण्डी आदि के साथ सहमति दर्शाते हुए इसके लिए गद्य की अनिवार्यता का पुनः प्रतिपादन किया —

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।[5]

आचार्य विश्वनाथ ने कथा एवं आख्यायिका के जो लक्षण दिए है, उनमें से किसी भेदक रेखा को खोज निकालना अति कठिन कार्य है। वास्तव में आचार्य की उक्ति 'आख्यायिका कथावत्स्यात्'[6] अंशरूपेण नही, समग्ररूपेण तथ्य है। संस्कृत मे कोई ऐसा समर्थ कवि नही हुआ जो पद्यों में किसी कथा की रचना कर उसे पद्य रचना भी स्वीकार करवाता। इसके विपरीत पैशाची में रचित 'बृहत्कथा' की उपेक्षा किसी भी आचार्य के लिए संभव नही थी। यही कारण है कि अन्य भाषाओं में पद्यबद्ध रचना

१. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, सं० रामलाल वर्मा, पृ० २७-२८
२-४. काव्यानुशासन, प्रकाशक श्री महावीर जैन विद्यालय, पृ० ४६२-६५
५. साहित्यदर्पण ६।३३२ विमला टीका, पृ० २२६
६. वही, पृ० २२६

भी कथा कहलाने की अधिकारिणी थी, परन्तु किसी सर्वमान्य लक्ष्य-ग्रन्थ के अभाव में सस्कृत मे नही ।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकालना असंगत न होगा कि संस्कृत-काव्यशास्त्र में भी उस उत्तरवर्ती काल मे कथा एवं आख्यायिका का विषय एवं शैली सम्बन्धी अन्तर मिटता गया । इसलिए हिन्दी मे भी इनके समानार्थक शब्दो में कोई विशेष भेदक रेखा दृष्टिगोचर नही होती । कही कही इनमें सूक्ष्म अन्तर भी प्रतिपादित किए जाते है[1] किन्तु उनके मूल मे कोई ठोस आधार नही है । निष्कर्षत· प्रेमाख्यान के सन्दर्भ में आख्यान शब्द या किस्सा शब्द स्थूल रूप से कथात्मकता के ही परिचायक है । इनमे किसी प्रकार के सूक्ष्म भेदों की कल्पना द्रविड़ प्राणायाम ही है ।

प्रेमाख्यानों का स्वरूप

इन प्रेमाख्यानो में दो ही तत्त्व प्रमुख है—प्रेम और आख्यान। 'प्रेम' वर्ण्य है और 'आख्यान' माध्यम । प्रेम को इनकी आत्मा एवं आख्यान को शरीर कहना अधिक उपयुक्त है । शरीर एव आत्मा एक दूसरे के अभाव में लोकातीत ही होते है । लोक में तो दोनों का समान महत्त्व है । अतः इनमे भी किसी एक के महत्त्व को न्यूनाधिक नहीं माना जा सकता । हिन्दुओं अथवा मुसलमानों द्वारा रचित प्रेमाख्यानों में कोई उद्देश्यात्मक अन्तर चाहे मान लिया जाए परन्तु उनमे वर्ण्य—विषय एवं वर्णन—माध्यम की पूर्ण समानता है । 'हिन्दू प्रेमाख्यान-रचयिताओं ने भी मुसलमानों द्वारा चलाई गई प्रेमकथा-पद्धति के आदर्शो का पूर्ण रूप से पालन किया है,'[2] और इन मुसलमानों ने भी इस देश की परम्पराओं के अनुकूल ही साहित्य-निर्माण किया है ।

आलोच्य साहित्य में प्रेम का वर्णन करने के लिए जो आख्यान चुने गये है वे मुख्यत· लोक-प्रसिद्ध, पौराणिक, काल्पनिक अथवा मिश्रित तथा यदा कदा विदेशी उत्स से लिए गए है । इनमें कथा-काव्य एवं चरित-काव्य के जो गुण दृष्टिगोचर होते हैं, उनमें से मुख्य निम्नलिखित है—

१. मुख्य उद्देश्य जन-मन-रंजन होता है, अन्य सभी उद्देश्य गौण होते हैं । फलतः नायक धीर-ललित या धीरप्र-शान्त होता है ।

२. मनोरंजन की भावना प्रधान होने के कारण इनमे प्रायः महाकाव्यों जैसे औदात्य का अभाव रहता है ।

३. अयथार्थ में यथार्थ का आभास देने के लिए आरम्भ मे नायक एवं नायिका के माता-पिता, देश और नगर का सविस्तार वर्णन होता है । कई बार नायक-नायिका

---

१. छिताई वार्ता (सं० माताप्रसाद गुप्त) के परिचय में पृ० १४ पर ये अन्तर इस प्रकार बताए हैं—जैसे कथा के अन्त या आदि में उसके श्रवण एवं पठन का फलनिर्देश, आख्यान में प्राचीनता एवं प्रसिद्धि का समावेश तथा वार्ता या बात में परम्परा-प्राप्त वृत्तान्त की भावना।

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३२

के जन्म के लिए माता-पिता के अपूर्व तप-त्याग, एवं दान-पुण्य के द्वारा उनके व्यक्तित्व को दैवी सिद्ध करने का यत्न होता है ।

४. नायक-नायिका के मन में चित्र-दर्शन, स्वप्न, गुण-श्रवण अथवा प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा प्रेम उत्पन्न होता है। उस प्रेम के स्वरूप को विकसित करने मे कवि अपना महत्त्व समझता है।

५. नायक का प्रेमी रूप अत्यन्त मुखर रहता है । उसमें किसी प्रकार के सामाजिक या पारिवारिक दायित्व की भावना का प्रायः अभाव पाया जाता है ।

६. असंभव एवं अप्राकृतिक घटनाओं तथा अतिमानवीय तत्त्वों द्वारा इन रचनाओं में चमत्कारपूर्ण अंशों का समावेश किया जाता है। जिससे कथा अनेक बार विशृंखलित हो जाती है।

७. यद्यपि इनमें कथा ही मुख्य होती है फिर भी रसात्मकता, भाव-व्यंजना एवं अन्य काव्यगुणों की उपेक्षा नही की जाती ।

८. वस्तु-वर्णन के प्रति भी कवि उदासीन नही रहता। अधिकतर परिगणन-शैली अथवा रूढ़िबद्ध वर्णनों का समावेश होता है।

इन रचनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों की मान्यताओं मे अतिव्याप्ति एव अव्याप्ति दोनो ही प्रकार के दोष परिलक्षित होते हैं। एक वर्ग में हर एक कथा को प्रेमाख्यान कहने की प्रवृत्ति चल पड़ी है और जायसीकृत चित्रलेखा तथा ईश्वरदास की सत्यवती कथा[1] अथवा नूरमुहम्मद की 'अनुराग बांसुरी' भी प्रेमाख्यानों में गिने जाने लगे हैं। जबकि इनमें से प्रथम दो मे तो 'प्रेम' का अभाव ही है[2] और तीसरी में तो लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से 'दीन' का प्रचार है और उसमें प्रत्येक पात्र का नाम विशेष अर्थ-व्यंजक है। अतः, पं० चन्द्रबली पांडे इसे धर्मकथा कहना ही अधिक

---

१. (क) मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पांडेय, पृ० ७५, ६८
(ख) हिंदी सूफी काव्य की भूमिका, रामपूजन तिवारी, पृ० १३८
(ग) हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० १२
(घ) ईश्वरदासकृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां, सं० डा० शिवगोपाल मिश्र और रावत ओम्प्रकाश सिंह, भूमिका, पृ० ४६
(ङ) चित्रलेखा, सं० शिवसहाय पाठक, भूमिका पृ० २

२. (क) श्री तिवारी यह स्वीकार करते हैं कि ये रचनाएं धार्मिकता की दृष्टि से लिखी गई हैं।
—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, पृ० १३८
(ख) डॉ० श्याममनोहर पांडेय तो बाद में इसे प्रेमाख्यान कहना उचित नहीं मानते।
—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ६६
(ग) श्री हरिहरनिवास द्विवेदी प्रेमकथा से इसका सम्बन्ध नहीं मानते।
—ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां, प्रस्तावना, पृ० १६

उपयुक्त समझते हैं।[1] डा० सरला शुक्ल भी इसे धर्मकथा का ही स्पष्टीकरण मानती हैं।[2]

दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि गवासी रचित 'सबरस' भी इसी कोटि की कृति है, जिसमे अक्ल, दिल, हुस्न, नजर, हिम्मत आदि पात्रो के द्वारा इश्क को अक्ल से महत्वपूर्ण सिद्ध किया है। इसे भी धर्मकथा ही मानना चाहिए क्योकि इसमें धार्मिक मान्यताओं को ही रूपक के आश्रय से स्पष्ट किया गया है।

इस अतिव्याप्ति के अतिरिक्त अव्याप्ति के भी उदाहरण है। अन्यत्र[3] 'ढोला मारू रा दूहा,' 'मैनासत' जैसी रचनाओं को भी इसलिए प्रेमाख्यान मानने में झिझक प्रकट की गई है क्योंकि इनमें स्वकीया का प्रेम है जबकि विशुद्ध प्रेमाख्यानों में वर्णित प्रेम परकीया का प्रेम होता है परन्तु जैसा कि हमने पहले स्पष्ट किया है, इन रचनाओं मे 'प्रेम' की तीव्रता बरबस इन्हें प्रेमाख्यान की परिधि मे ले आती है। निस्संदेह इनका प्रेम निष्ठा-जनित ही है परन्तु अपने आप में वह शुद्ध प्रेम ही है और नायक नायिका मे वही एक मात्र आकर्षण है। इनकी तुलना रामचरितमानस से करना उचित नही, क्योंकि मानस मे राम-सीता के प्रेम का महत्त्व अत्यन्त गौण है। वहाँ दुष्ट-दलन, कर्तव्य पालन आदि ही महत्त्वपूर्ण है। पुनः हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मुसलमान कवियों को रामचरित मे राम एवं सीता का प्रेम ही अधिक आकर्षित करता रहा है परन्तु कथा के धार्मिक महत्त्व एव परिवेश को देखते हुए किसी ने उसे प्रेमाख्यानक के ढंग पर विकसित करने का साहस नही किया। उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर राम-सीता एवं रावण के उद्धरण स्पष्टतः प्रमाणित करते है कि उन्हें राम एव सीता की प्रेम-निष्ठा नल-दमयन्ती के चरित्र[4] के समान ही प्रभावित करती रही है।

प्रसिद्ध प्रेमाख्यान कवि जानकृत 'कथा छीता' की ये पंक्तिया द्रष्टव्य हैं:—

छीता सीता ज्यों हरि, राबन ह्वै पातिसाहि।
परी अवस्था राम की राम कहै दुख काहि॥

जो कोऊ ह्वै सम लषन की। करै उपाव विपति लखि मन की॥
हनूमान सौ जो संग होइ। हनूमान रिप सव सुख होई॥

---

१. अनुराग बांसुरी, पृ० २५

२. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० ४६

३. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० २४३

४. भारत में सूफियो को नल-दमयन्ती के चरित्र ने अधिक प्रभावित किया क्योंकि इससे उन्हें अपने सिद्धान्त व्यक्त करने का मौका मिला। 'कथा छीत' फैजीकृत नलदमन अति प्रसिद्ध फारसी रचना है।

लै आवै वह जीवन मूर। पुरि आवै दुख घाव संपूर ।।[1]

इसी प्रकार माधवानल एव काम कन्दला का प्रेम भी प्रेमाख्यानकों के प्रेम से भिन्न मानना[2] उचित नही। लौकिक दृष्टि से अधिक स्वाभाविक एव परस्पर साक्षात्कार से विकसित होने के कारण यह तो और भी अधिक वास्तविक है। इसी प्रकार के प्रेमाख्यानों में प्रेम को शुद्ध रूप मे अंकित किया जाता है। प्रेमाख्यानों के प्रेम के विषय में हमारी विचारधारा को सूफी प्रेमाख्यानों की व्याख्याओं ने इतना अधिक भ्रमपूर्ण कर दिया है कि हम अपने परम्परा-प्राप्त प्रेमाख्यानों को विस्मृत कर चुके है। 'प्रतीक' या अध्यात्मवाद कभी भी प्रेमाख्यानों का अनिवार्य गुण नहीं रहा। 'ढोला मारू, 'छिताई वार्ता,' 'रसरतन,' 'मधुमालती वार्ता' (चतुर्भुज) एवं जान कवि की अनेक रचनाएं तथा पंजाबी की अनेक कृतियां सभी इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं।

इस प्रबन्ध में प्रेमाख्यान के अन्तर्गत वे सभी कथात्मक काव्य गृहीत किए गए हैं जो प्रेम को मुख्य मान कर रचित हुए हैं, चाहे वे हिन्दुओं ने लिखे है चाहे मुसलमानों ने, चाहे सगुण भक्तों ने और चाहे लोक-कवियो ने। उनका उद्देश्य चाहे लोक-रंजन हो चाहे किसी आध्यात्मिक मतवाद की अभिव्यक्ति। इन सबको तीन भागो में बांटा जा सकता है—

१. लौकिक प्रेम का वर्णन करने वाले।
२. आध्यात्मिक आवरण मे प्रेम का वर्णन करने वाले।
३. प्रेम की तीव्रता, शक्ति या प्रभाव का निरूपण करने वाले।

इनमें स्वकीया का प्रेम भी है, परकीया का भी और सामान्या का भी परन्तु इनमें प्रेम का स्वर इतना तीव्र है कि उसकी उपेक्षा कर उन्हे प्रेमाख्यान की सीमा से बाहर नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता

बीसवी शताब्दी के आरम्भ तक आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रति उपेक्षा की भावना ही प्रधान रही। वर्तमान शती के द्वितीय चरण में इन भाषाओं के प्रति निजत्व की भावना जागृत हुई और उच्च कक्षाओं मे इनका अध्ययन-अध्यापन आरंभ हुआ। उत्तरोत्तर इनका प्रचार एवं प्रसार बढ़ रहा है। जन-जीवन एवं प्रशासन में इन भाषाओं के प्रचलन के कारण अब यह भी आवश्यक है कि इनके साहित्य की समान प्रवृत्तियों का विवेचन विश्लेषण हो। जिससे एक दूसरे को समझने के साथ-साथ गुणावगुणों के ग्रहण एवं त्याग की प्रक्रिया आरम्भ हो। आज का युग अपने मे

१. छिताई चरित, सं० हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० १५२
२. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० २५३

ही सीमित रहने का नही । अपने घेरे से बाहर निकल कर पड़ोसियों एवं साथियों को समझने मे भाषाओ के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन विशेष उपयोगी है । हिन्दी एवं पंजाबी भाषाएं कितनी निकट है इस सम्बन्ध में डॉ० मोहनसिह का यह कथन उद्धृत करने का मोह संवरण नही किया जा सकता कि उत्तर प्रदेश के किसी व्यक्ति से वार्तालाप करते समय एक अनपढ़ पंजाबी वर्तमान काल एवं सबध द्योतक 'दा' के स्थान पर 'ता' तथा 'का' का प्रयोग कर यह समझता है कि वह अब हिन्दी या उर्दू बोल रहा है और भाषा के मामले मे वह दूसरे पक्ष के समान हो गया है ।[1] परन्तु यह सब होते हुए भी साहित्यिक स्तर पर दोनों ही भाषाओं के मध्य लिपि की दृढ़ दीवार बाधा बनकर खड़ी हुई है । इसी कारण पजाबी प्रदेश में रचित विशाल हिंदी साहित्य के प्रति भी हिंदी के मनीषियों में अचेत उपेक्षा की भावना बनी रही । जो अभी तक भी दूर नहीं हो पायी ।

प्रस्तुत प्रबंध, इन पड़ोसी परतु आपस मे अपरिचित, साहित्यो के परिचय का एक विनम्र प्रयास है । राष्ट्रभाषा की समृद्धि एवं गौरव के लिए तो यह आवश्यक है ही कि भिन्न भिन्न भाषाओं के साहित्य का ज्ञान उसमे समाविष्ट हो, स्वसृभाषाओं के लिए भी यह गौरव का विषय है कि उनके साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को भिन्न भिन्न संदर्भो में आँक कर उनका मूल्यांकन किया जाए । ताकि अपने साहित्य की विशेषताओं एवं हीनताओं के संदर्भ में आत्मनिरीक्षण कर स्वस्थ जिजीविषा के द्वारा निरंतर उन्नति के मार्ग पर बढ़ा जा सके ।

उपलब्ध सामग्री

हिन्दी एवं पंजाबी भाषाओं में अति निकट का संबंध होते हुए भी प्रस्तुत विषय पर अभी तक कोई भी आलोचनात्मक विश्लेषण , तुलनात्मक अध्ययन अथवा शोध-प्रबन्ध नही लिखा गया । इससे पूर्व 'हिन्दी एवं पंजाबी सन्त-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' डॉ सुदर्शन सिंह मजीठिया ने प्रस्तुत किया जिसपर नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा १९६१ मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई ।[2] पंजाब विश्वविद्यालय ने १९६६ में प्रस्तुत डॉ० यश गुलाटी के शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी और पजाबी की सूफी कविता के तुलनात्मकअध्ययन' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की । पहला शोध-प्रबंध हमारे विषय की सीमाओं से बाहर है और दूसरे प्रबंध में अनुसंधाता एक अद्‌भुत दुविधा मे फॅस गया । एक ओर तो पंजाबी मे सूफी फकीरों शाह हुसेन, सुलतान बाहू, शाह शरफ बुल्लहे शाह, अली हैदर जैसे मुक्तक कवियों को ही सूफी कवि स्वीकार किया जाता है और दूसरी ओर "हिन्दी मे कथा के प्रति इस आग्रह के कारण......यह मत बना लिया

१. ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ६

२. संत साहित्य, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली से १९६२ में प्रकाशित ।

गया है कि सूफी कवि केवल प्रेमाख्यान ही लिखता है और कोई प्रेमाख्यान किसी मुसलमान द्वारा रचित होने पर सूफी काव्य है।"[1] ऐसी स्थिति मे शोधकर्ता को मध्यमार्ग अपनाना पड़ा। उन्होने पंजाबी की कुछ किस्सा-कृतियो जैसे 'हीर-वारिस', गुलाम रसूलकृत 'सस्सी पुन्नू', अब्दुलहकीम बहावलपुरी रचित 'यूसफ जुलेखा' अहमदयार कृत 'अहसनुल कस्सिस', मुहम्मदबख्शकृत 'सैफुलमुलूक' आदि को भी इस अध्ययन के अन्तर्गत समाविष्ट किया। परन्तु उनके अध्ययन का केन्द्रबिन्दु सूफी मत एवं सिद्धान्त है। इन प्रेमाख्यानो की शैली अथवा कथा-सगठन पर लेखक ने अत्यन्त सक्षेप से विचार किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे उन्ही विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार हुआ है जिनका सम्बन्ध साहित्यिक सौष्ठव से है किसी मत या सिद्धान्त को स्पर्श करने का भी इसमे साहस नही किया गया। अतः डॉ० गुलाटी के प्रबन्ध से प्रस्तुत प्रबंध की सीमाएं सर्वथा भिन्न है।

यद्यपि तुलनात्मक रूप मे दोनों भाषाओं मे इतना ही काम हुआ है परन्तु दोनो ही साहित्यों में प्रेमाख्यान-काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण इस ओर विद्वानों ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है। हिन्दी का सामान्य विद्वान् पजाबी में रचित हीर एवं सस्सी की कथाओं से परिचित होने के लिए उत्सुक है। अपने प्रेमाख्यान-साहित्य को भिन्न भिन्न भाषाओं के साहित्य के साथ रखकर तौलने की उत्सुकता श्री परशुराम चतुर्वेदी की "भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा" एव श्री रामपूजन तिवारी की "हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका" नामक रचनाओं से स्पष्ट है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य मे एकसूत्र की खोज करने वाले उत्साही विद्वानो द्वारा इस ओर रुचि दिखाना स्वाभाविक ही है। परन्तु लिपि की बाधा के कारण यह अभिलाषा अपूर्ण ही रही। दोनो ही भाषाओं के साहित्य में रचना विशेष के मुद्रित संस्करणो एवं अमुद्रित पांडुलिपियों के अतिरिक्त कुछ आलोचनात्मक सामग्री भी उपलब्ध होती है। हिन्दी में उपलब्ध सामग्री इस विशाल साहित्य की गरिमा एवं महत्त्व के अनुरूप ही है। उस सारी सामग्री का उल्लेख न तो आवश्यक ही है और न उपयोगी। केवल महत्त्वपूर्ण रचनाओं का ही उल्लेख किया जा रहा है।

हिन्दी - आचार्य शुक्ल की 'जायसी-ग्रंथावली' से पूर्व पडित सुधाकर द्विवेदी एव जार्ज ग्रियर्सन द्वारा 'पदमावत' के प्रारंभिक खंडों का सम्पादन तो हो चुका था। परन्तु उसका प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य शुक्ल को ही है। उन्होंने 'जायसी-ग्रन्थावली' में 'पदमावत' तथा जायसी की अन्य प्राप्त कृतियों को संपादित कर एक आलोचनात्मक भूमिका भी लिखी। जिसमें 'पदमावत' के ऐतिहासिक आधार, प्रेम-पद्धति, प्रबंध-कल्पना, संबंध-निर्वाह, वस्तुवर्णन, रहस्यावाद आदि अनेक विषयों का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया। इस महाकवि पर अनेक प्रबंध लिखे जाने के उपरांत

---

१. हिन्दी और पंजाबी को सूफी कविता का तुलनात्मक अध्ययन, यश गुलाटी, पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबंध की टंकित प्रति, पृ० ५५८

आज भी इस भूमिका के महत्व मे किचिन्मात्र न्यूनता नहीं आई। शुक्ल जी ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' मे 'प्रेममार्गी (सूफी) शाखा' के अन्तर्गत कुतबन, मझन, जायसी, उसमान, शेखनबी तथा नूरमुहम्मद का परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का भी संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया। यद्यपि भारतीय प्रेमाख्यानों की किसी ऐसी ही धारा का क्रमबद्ध विवेचन उनके इतिहास में नही हुआ परन्तु अनेक हिन्दू- प्रेमाख्यानक कवियों का परिचय भी उन्होंने यथास्थान दिया।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने 'आलोचनात्मक इतिहास' में प्रेम-काव्य के अन्तर्गत इस काव्यधारा का परिचय दिया।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अनेक रचनाओं के पाठों को वैज्ञानिक पद्धति से संपादित कर शुद्ध पाठ प्रस्तुत करने मैं महत्वपूर्ण योग दिया है। पांडुलिपियो के वैज्ञानिक सम्पादन के कारण अनेक समस्याएं स्वतः सुलझ गई है। उन्होंने सर्वप्रथम 'जायसी-ग्रंथावली' के प्रकाशन से इस कार्य का श्रीगणेश किया। इसके अनन्तर 'छिताई वार्ता,' 'बीसलदेव रास' चतुर्भुज कृत'मधुमालती वार्ता' मंझनकृत 'मधुमालती' दाऊदकृत 'चांदायन' एवं कुतबनकृत 'मृगावती' जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं के पाठसम्पादन के साथ-साथ ग्रंथारंभ में भूमिकाओं के द्वारा कवियों एवं रचनाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त हिन्दी प्रेमाख्यानों की विविध प्रवृत्तियों पर उनके अनेक गवेषणापूर्ण लेख भी पत्र-पत्रिकाओं मे छपते रहे है जिनमें मध्ययुगीन हिन्दी काव्यो मे पूरक कृतित्व,[१] रास-परम्परा का विस्मृत कवि जल्हण,[२] ढोलामारू रा दूहा और कबीर ग्रंथावली,[३] लोरकहा और मैनासत[४] आदि विशेष महत्व के हैं। इनके द्वारा उन्होंने इन रचनाओं की तिथियों एवं अन्य समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

डॉ० माताप्रसाद के ही समान श्री परशुराम चतुर्वेदी भी प्रेमाख्यान-साहित्य पर कार्य कर रहे हैं। 'सूफी-काव्य-संग्रह' में उन्होंने सूफी कवियों की रचनाओं के कुछ अंशों का भूमिका सहित प्रकाशन किया है। 'भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा' नामक पुस्तक में उन्होंने सूफियों के अतिरिक्त असूफी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध प्रेमाख्यानों के कथा-चक्रों एवं उनके उद्देश्यों का अध्ययन किया है। 'मध्य-युगीन प्रेम-साधना' में उन्होने जायसी की प्रेम-साधना के अतिरिक्त मध्ययुगीन प्रेम साधना पर भी एक विस्तृत लेख लिखा। एक अन्य रचना 'हिन्दी काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह' में भी इन काव्यों पर विचार हुआ है। 'भारतीय हिन्दी परिषद्' से प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य' में सूफी-साहित्य का प्रकरण उन्होंने ही लिखा है। 'नागरीप्रचारिणी

---

१. हिन्दुस्तानी जनवरी १८५६।
२. हिन्दी अनुशीलन, मार्च १९४७।
३. उत्तर भारती, अक्तूबर १९५६।
४. भारतीय साहित्य, १९५६।

सभा' द्वारा संचालित योजना के अन्तर्गत 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग) का भी उन्होने सम्पादन किया है। इसमे सं० १४०० से १७०० के मध्य लिखे गए उत्तरी एवं दक्खिनी प्रेमाख्यानों का सुन्दर परिचय है।

'हिन्दी साहित्य की भूमिका' 'हिन्दी साहित्य' तथा 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' मे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन रचनाओं पर विचार किया है। 'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' मे 'पदमावत' की छंद-पद्धति एवं दोहा-चौपाई की उत्पत्ति की समस्या को उन्होने तर्कयुक्त ढग से प्रस्तुत किया है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पदमावत' की 'सजीवनी' व्याख्या के द्वारा 'पदमावत' के अर्थ-गांभीर्य एवं जायसी की प्रतिभा की अद्वितीयता की प्रतिष्ठा की है। ग्रंथ के आरंभ में संलग्न भूमिका द्वारा इस कवि के सबध में प्रचलित अनेक शकाओं एवं समस्याओ का समाधान भी डॉ० अग्रवाल ने प्रस्तुत किया है।

ग्रंथानुसंधान की दृष्टि से डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ की रचना 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य', डॉ० सरला शुक्ल की 'जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और और काव्य' डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव की 'भारतीय प्रेमाख्यान', डॉ० हरिभजन सिंह की 'गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी काव्य', डॉ० सियाराम तिवारी के 'हिन्दी के मध्यकालीन खडकाव्य' एव डॉ० शिवप्रसाद सिंह की 'सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन रचनाओ मे अनेक प्रेमाख्यानों का परिचय एवं मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत प्रबंध में इन सभी ग्रथों से सहायता ली गई है।

'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' नामक शोध-प्रबंध में डॉ० श्याममनोहर पांडेय ने हिंदी के सूफी एवं असूफी प्रेमाख्यानों का विविध पक्षो के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में चित्रित प्रेम के स्वरूप, कथा-सगठन, शील-निरूपण प्रतीक-योजना एव भाषा-शैली का पहली बार तुलनात्मक अध्ययन कर यह स्पष्ट किया कि "सूफी प्रेमाख्यानों ने भारतीय जनजीवन से पोषण-तत्व लिया। उनके प्रेम-निरूपण, कथा- संगठन, चरित्रांकन, प्रतीक-योजना, काव्य-रूप सब पर भारतीय प्रभाव है।"[1]

हिन्दी के प्रेमाख्यानक कवियों में जायसी ने श्रेष्ठ काव्य-प्रतिभा के कारण अनेक विद्वानों, आलोचकों एवं अनुसंधाताओं को आकर्षित किया है। आचार्य शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अतिरिक्त डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ का शोध-प्रबंध 'सूफी महाकवि जायसी', एवं डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत रचित 'जायसी का पदमावत, काव्य और दर्शन,' एवं डॉ० प्रभाकर शुक्लकृत 'जायसी की भाषा'

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान. पृ० २७०।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।[1]

पंजाबी—पंजाबी साहित्य में किस्सा-काव्य को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है परन्तु कुछ वर्ष पूर्व तक इस ओर विद्वानों की दृष्टि अत्यन्त उपेक्षापूर्ण रही। सर्वप्रथम बावा बुधसिंह ने 'प्रेम कहानी', 'कोइल कू' एवं 'बबीहा बोल' द्वारा विद्वानों को इन रचनाओ के सौष्ठव के प्रति आकर्षित करने का यत्न किया। उनके बाद डॉ० मोहनसिंह ने 'ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर', 'एन इंट्रोडक्शन टु पंजाबी लिट्रेचर' एवं 'पंजाबी अदब दी मुखतसिर तवारीख' नामक रचनाओं में किस्सा-काव्य एवं भिन्न-भिन्न किस्सा-कवियो पर सक्षिप्त टिप्पणिया दी । प्रारंभिक कार्य की दृष्टि से लाजवंती रामाकृष्णा का 'पंजाबी सूफी पोइट्स' भी उल्लेखनीय है ।

पंजाबी साहित्य के इतिहासों में भी इन प्रेमाख्यानों का सामान्य परिचय मात्र मिलता है । डॉ० गोपालसिह दरदी, सुरिन्दरसिह नरूला, सुरिंदरसिह कोहली एवं कृपालसिह कसेल और परमिन्दरसिंह, मौलाबख्श कुश्ता प्रभृति विद्वानों के इतिहासों में प्राप्त परिचयों मे कोई विशेष अन्तर सामने नही आता । अनेक कवियों का तो नामोल्लेख भी इनमे नहीं, केवल वारिसशाह का ही विस्तृत आलोचनात्मक परिचय दिया गया है । भाषा-विभाग द्वारा प्रकाशित पंजाबी साहित्य के इतिहास में भी इन रचनाओं तथा कवियों का सामान्य परिचय मात्र मिलता है । इनके जीवन-दर्शन, काव्य-शिल्प अथवा किस्साकाव्य-धारा का सामूहिक परिचय कही भी एक साथ उपलब्ध नहीं होता ।

हाल ही में इन ग्रंथों के पाठानुसंधान के प्रति कुछ जागरूकता देखने को मिली है। भाषा-विभाग, पटियाला से हाफिज बरखुरदार, मुकबल, वारिस, अलीहैदर, अहमदयार एवं मुहम्मदबख्श की रचनाओं के सुन्दर सस्करण प्रकाशित हुए है । इनके अतिरिक्त हाशम-रचित 'सस्सी' के पाठ पर डॉ हरनामसिह शान का अनुसन्धान मूलक अध्ययन उल्लेखनीय है । डॉ० जीतसिंह सीतल को 'हीर-वारिस' के पाठानुसंधान पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है । परन्तु मुद्रित संस्करण में पाठभेद का उल्लेख न होने के कारण भाषा-विभाग का संस्करण ही अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है । ग्रंथ का का प्रथम भाग 'हीर-वारिस भूमिका' अवश्य सराहनीय है जिसमें वारिस के जन्म स्थान, काव्य-प्रतिभा एवं भाषा का सविस्तार विवेचन किया गया है ।

इनके अतिरिक्त सर्वश्री गंगासिह, निहालसिंह रस, प्यारासिंह पदम, स० स० पदम, उजागरसिंह आदि विद्यानुरागियों ने परिश्रमपूर्वक दमोदर, अहमद, हाशम, फज़लशाह प्रभृति कवियों की रचनाओं का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित करवाया है इन

---

१. जायसी सम्बन्धी रचनाओं के विशेष परिचय के लिए देखें—

क. जायसी का पदमावत काव्य ओर दर्शन, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० २७-३४ ।

ख. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, डॉ० शिवसहाय पाठक, पृ० १९-३६ ।

ग. जायसी की भाषा. डॉ० प्रभाकर शुक्ल, आमुख, पृ० ठ से द ।

रचनाओं की भूमिकाओं में कवियों एवं कृतियों का परिचय देकर अध्ययन को समृद्ध करने का यत्न किया गया है।

इस महत्वपूर्ण धारा में वारिस की हीर के अतिरिक्त केवल 'मिरज़ा साहिबां' के कथाचक्र पर पर ही अनुसंधान हुआ है। 'पंजाबी काव्य में मिरज़ा साहिबा' की प्रेम-कथा का अध्ययन' विषय पर सन् १९६३ मे डॉ० विश्वनाथ तिवारी को पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

इसके अतिरिक्त पंजाबी प्रेमाख्यानों पर पंजाबी की दो प्रसिद्ध पत्रिकाओं के पांच विशेषांक उल्लेखनीय है। 'पंजाबी दुनिया', पटियाला का दमोदर अंक (१९५१) वारिस अंक (१९५५), वारिस अंक (१९६४), किस्सा-काव्य अंक (१९५६) तथा 'साहित्य समाचार' लुधियाना का किस्सा-काव्य अंक (१९६२) विशेष महत्वपूर्ण है। प्रथम तीन विशेषांको मे दमोदर एवं वारिस पर उपलब्ध सामग्री का सुन्दर संकलन है तथा चौथे और पांचवें किस्सा-काव्य विशेषांकों में किस्सा-काव्य की सामान्य विशेषताओं एवं प्रसिद्ध कवियों पर लेख है। इनमें समग्र धारा के सदर्भ मे कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण, रसाभिव्यंजना अथवा अभिव्यक्ति-कौशल पर कुछ भी नही कहा गया। अधिकांश लेखों में कवि विशेष पर निबंध ही लिखे गए है। परन्तु यह कहना सर्वथा उचित है कि इस समय पंजावी साहित्य में ये दो ही पुस्तकें है जिनके द्वारा पंजाबी किस्सा-काव्य का अधिकाधिक परिचय प्राप्त किया जा सकता है। जगजीतसिह छावडा ने 'कवि वारिस शाह' मे वारिस शाह का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है डॉ० आत्मजीतसिह के शोध प्रवंध 'पंजाबी काव्य मे शृंगार रस' में किस्सा-काव्य के अन्तर्गत शृंगार रस का भी विवेचन किया गया है। इस विषय पर उन्हें १९६६ मे दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

इन रचनाओं के अतिरिक्त हिन्दी एव पंजावी की अनेक मुद्रित अथवा हस्तलिखित पांडुलिपियों की गणना उपलब्ध सामग्री मे की जा सकती है, जिसका निर्देश पुस्तक सूची एवं प्रबधातर्गत यथास्थान कर दिया है।

उद्‌देश्य एवं अध्ययन-प्रक्रिया

अज्ञात तथ्यों की खोज अथवा ज्ञात तथ्यों के पुनराख्यान द्वारा ज्ञान-क्षेत्र के सीमा-विस्तार को अनुसधान कहा जाता है। इस क्षेत्र में किसी नवीन सामग्री की खोज मेरा उद्देश्य नही है। ज्ञात सामग्री का ही इसमें प्रायः उपयोग किया गया है। हिन्दी के विद्वान् अधिकतर पंजाबी की सामग्री से अपरिचित हैं और पंजावी के अधिकांश विद्वान् हिन्दी की सामग्री से। यहां दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध सामग्री को एक स्थान पर रखकर ज्ञात अथवा अल्पज्ञात तथ्यों के विश्लेषण एवं तुलना द्वारा दोनों भाषाओं की साहित्यिक परम्पराओं, भाव एवं कला सम्बंधी अभिरुचियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

पंजाबी एवं हिंदी के प्रेमाख्यान-साहित्य की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों में समानता कम एवं विभिन्नता अधिक है हिंदी प्रेमाख्यानों के साथ उसकी तुलना और भी जटिल कार्य हो जाता है। तुलना के आधार को कवि विशेष तक ही सीमित रखने से दोनों भाषाओं के साहित्य की विविध प्रवृत्तियो का परिचय भी नही मिल सकता। अत: इस प्रबध में हिंदी एव पंजाबी के प्रेमाख्यानो का संक्षिप्त सर्वेक्षण कर भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के विवेचन-विश्लेषण के साथ-साथ उनकी तुलना प्रस्तुत की गई है। साथ ही यथासभव उन समताओं-विषमताओं के कारणों को खोजने का भी प्रयास किया गया है।

प्रेमाख्यानो की रचना-व्यवस्था, कथानक, कथारूपविधि एवं कथा-वस्तु-सगठन, चरित्रचित्रण, प्रेम-निरूपण, भाव-सम्पदा, काव्यरूप, अभिव्यक्ति-कौशल पर पृथक् पृथक् अध्यायों में विचार किया गया है। इसमें प्रवृत्तियों के अध्ययन को ही प्रमुखता दी गई है। अत:, अनेक प्रेमाख्यानों का उल्लेख मात्र ही हो पाया है। पुन: तुलनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के विषय में ही यहां विवेचना की गई है अत:, यह सर्वथा सभव है कि अनेक रचनाओ की निजी विशेषताए अछूती रह जाएं। ऐसा विस्तार तो 'स्वतंत्र अध्ययन' करने पर ही संभव हो सकता है।

इस प्रबंध में, पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, अनुगमन शैली से प्राप्त तथ्यों को ही तुलना का आधार बनाया गया है, इस विधि पर चलकर कुछ पूर्व निर्धारित निर्णयों पर भी विचार किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि साहित्य के क्षेत्र मे कोई भी निर्णय अन्तिम सत्य नही होता परतु हमने यथासंभव निरपेक्ष भाव से ही अद्यावधि प्राप्त तथ्यों पर निर्भर रहकर ही कुछ निर्णय प्रस्तुत किए है। भविष्य में नूतन-उपलब्धियों के आधार पर उनमें परिवर्तन होना संभव है।

●●●

: १ :

सामग्री-सर्वेक्षण

हिन्दी के प्रेमाख्यान

हिन्दी में प्रेमाख्यान-परम्परा का सूत्र भारतीय साहित्य के विशाल भंडार से अनुबद्ध है। लौकिक सस्कृत-साहित्य में यह स्रोतस्विनी अपने अजस्र प्रवाह के कारण लोक-मन को आह्लादित करती रही है। दुष्यन्त-शकुन्तला, नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध तथा माधवानल-कामकंदला की कथाओं ने मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया—यह मानने के लिए हमारे पास पर्याप्त अन्त साक्ष्य विद्यमान हैं। 'मृगावती[1]', 'पदमावत[2]', 'रसरतन[3]' आदि मध्यकालीन प्रेमाख्यानों में इनके उल्लेख एवं इनके आधार पर स्वतन्त्र रचनाओं की उपलब्धि से इस विषय मे कोई शका शेष नहीं रहती। इसके अतिरिक्त इस्लामी परम्परा से प्राप्त कथाओं ने भी इस धारा को उपकृत किया है।

---

१. मिरगावती सुनि जिउ रहसाई। कामां जनौ माधौनल पाई ॥
विहसा नाउ सुनत मिरगावति। नल जानहु भेंटी रे दमावति ॥

—मृगावती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७२

२. (क) जस दुखंत कहां साकुंतला। मधौनलहि कामकंदला ॥
भए अंक नल जैसे दमावति। नैना मूंद छपी पदुमावति ॥

—पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० १९१

(ख) आजु मिलै अनिरुध को ऊखा। देव अनंद दैतन्ह सिर दूखा ॥

—वहीं, पृ० २६०

३. दमयन्ती नल प्रीति कहानी। भाषति सरस मधुर मुष वानी ॥
बहुत अनंद प्रेम गुन गावै। एक एक अच्छर रसु भावै ॥

माधव काम की कीर्ति बखानी। जिहि सुनि मन बिसरावै रानी ॥
ऊषा कथा जबै अनुसारी। तब चितई भरि नैन कुमारी ॥

—रसरतन, सं० डॉ० शिवप्रसादसिंह, पृ० ४१

उपलब्ध मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यानों में नरपतिनाल्ह रचित **बीसलदेव रासो**[1] प्राचीनतम रचना है। श्री नाहटा भाषा के आधार पर इसे सोलहवी-सत्रहवीं शती की रचना मानते हैं और डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसका रचनाकाल १३४३ ई० (सं० १४००) के आस-पास माना है[2] परन्तु डॉ० तारकनाथ अग्रवाल ने अन्तः साक्ष्य से प्राप्त तिथियों, भाषा एवं ऐतिहासिक आधार की विशद विवेचना द्वारा यह सिद्ध किया है कि इस ग्रंथ के रचना-काल के सम्बन्ध मे कोई निश्चित तिथि स्थिर नही की जा सकती।[3] इस कृति मे बीसलदेव की पत्नी राजमती के विरह का मर्म-स्पर्शी वर्णन है। कथा सुखान्त है, विरहिणी नायिका अपने पति से मिलकर सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करती है।

मुल्ला दाऊद कृत **चंदायन**[4] १३८० ई० (७८१ हि०) की रचना है।[5] इसमे लोरक एवं चंदा के प्रेम तथा मैना के विरह की कथा वर्णित है। हिन्दी में मुस्लिम कवियो द्वारा लिखित यह प्राचीनतम उपलब्ध रचना है। इसमें एक विवाहित पुरुष (लोरक) के साथ परविवाहिता नारी (चंदा) के प्रेम एवं पलायन का वर्णन होने के कारण सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं की अवहेलना हुई है। संभवतः इसी कारण इस प्रकार की कथाओं को हिन्दी-साहित्य में प्रश्रय नही मिला। रचना-व्यवस्था की दृष्टि से इसमे अन्य प्रेमाख्यानकारों की कृतियों से पूर्ण साम्य इस बात का प्रमाण है कि बाद के कवियों ने दाऊद द्वारा चलाई गई परम्परा का अनुगमन किया। अपने समय मे यह रचना पर्याप्त लोकप्रिय थी। इसका उल्लेख बदायूनी ने अपनी पुस्तक 'मुन्तखबुत्तवारीख' में किया है।[6]

मारवणी एव मालवणी के संयोग एवं वियोग पर आधारित ढोला मारू की लोककथा ने अनेक कवियों को आकर्षित किया[7]। इसका दोहा-बंध रूप, जिसके रचयिता

---

१. कवि तथा रचना के विस्तृत परिचय के लिए देखिए—बीसलदेव रासो, सं० डॉ० तारकनाथ अग्रवाल, भूमिका।

२. बीसलदेव रस, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ५६

३. बीसलदेव रासो, पृ० १६-५६

४. कवि तथा रचना के परिचय के लिए देखिए—चंदायन, सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, अनुक्रम, पृ० १६-६५ एवं चांदायन, सं० माताप्रसाद गुप्त।

५. बरस सातै सै होय इक्यासी। तिहि याह कवि सरसे उभासी॥
—चांदायन, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १५

६. अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० ३३३

७. विशेष परिचय के लिए देखिए ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिंह एवं सहयोगी; तथा ढोला मारू रा दूहा, सं० श्री शंभुसिंह।

'कल्लोल'[१] बताए जाते हैं (परन्तु 'कल्लोल' किसी कवि का नाम है, यह सन्दिग्ध ही है), पुरातन है। कुशललाभ ने 'ढोला मारू चउपई' (रचनाकाल १६१६ ई०) मे इसे स्वीकार किया है—

दूहा घणा पुराणा अछई,
चउपई बन्ध कियो मईं पछई ॥[२]

इस दोहा-बंध के रचनाकाल के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। "यदि यह कुशललाभ के चउपई-बंध से २०० वर्ष पहले का भी हो तो ढोला मारू का दूहा-बंध रूप संवत् १४०० के पहले का नही हो सकता।"[३] नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित **ढोला मारू रा दूहा** के सम्पादकों ने इसका रचनाकाल सं० १००० और १६१८ के मध्य माना है।[४] इस विषय मे व्यक्त अनेक मतों की विवेचना के अनन्तर श्री शंभुसिह ने इसे पद्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध या उसके आस-पास की रचना मानना ही उचित समझा है।[५] इस प्रेमाख्यान में वियोग वर्णन ही प्रमुख है, सयोग-वर्णन तो अति गौण है। "नायक-नायिका के नाम से रहित वह अष्टयाम-वर्णन ऊपर से जोड़ा हुआ प्रतीत होता है और मूल प्रबन्ध की भावना से मेल नहीं खाता।"[६] इस रचना में लोकजीवन की सीधी सादी मानवीय भावनाओं को मुखरित करने के लिए कथा का सूक्ष्म आधार स्वीकार किया गया है। "विरह और मिलन की नाना परिस्थितियों, मनोदशाओं और प्रेमभावनाओं के बड़े ही हृदयग्राही, स्वाभाविक, वैविध्यपूर्ण और मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलते हैं।"[७] वस्तु-वर्णनों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ मे राजस्थान की जातीय कविता का स्वरूप निखर आया है। "क्या देश-वर्णन, क्या रमणी-सौन्दर्य-वर्णन, क्या ऋतु-वर्णन, क्या करहा-वर्णन सभी में राजस्थान की जातीयता की छाप लगी हुई है।"[८]

दामो कवि ने १४५६ ई० मे **लखमसेन पदमावती कथा**[९] की रचना की।[१०]

---

१. चतुर तणां चित रंजवण, कहियइ कवि कल्लोल।
—ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिह एवं सहयोगी, पृ० २७७

२ ढोला मारू रा दूहा, पृ० ३५

३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पांडेय, पृ० ६०

४. ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिह तथा सहयोगी, पृ० ८

५. ढोला मारू रा दूहा, सं० शंभुसिंह, पृ० २८

६. ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिंह तथा सहयोगी, प्रस्तावना, पृ० १०१

७. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० २०२

८. ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिंह तथा सहयोगी, प्रस्तावना, पृ० १०१

९. कवि का विशेष परिचय प्राप्त नही होता। कथा के लिए देखें 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य', डॉ० शिवप्रसाद सिंह, पृ० १५०-५५ और—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याम-मनोहर पांडेय, पृ० ९५-९८

१०. संवतु पनरइ सोलोत्तरा, जेष्ठ बदि नवमी बुधवार।
सप्त तारिका नक्षत्र द्रढ़ जाणि, वीर कथा रस करूं बखाण॥
—लखमसेन पदमावती कथा, सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० १७

इस कथा को यद्यपि लेखक ने वीर-कथा कहा है, परन्तु कथा का मुख्य स्वर प्रेम का ही है।[1] इस पर किसी ऐसे योगी सम्प्रदाय का प्रभाव भी लक्षित होता है जिसमें नर-बलि होती थी। कथा अत्यन्त संक्षिप्त एवं वर्णनात्मक है। सम्पूर्ण रचना में संयोग एव चमत्कारविषयक घटनाओं पर अधिक बल दिया गया है।

कवि दाऊद द्वारा अपनाई गई परम्परा का अनुसरण करते हुए १५०३ ई० (९०९ हि०) मे कुतबन ने **मृगावती**[2] की रचना की।[3] कुतबन ने अपनी रचना में 'शाहेवक्त' की प्रशंसा करते समय हुसेन शाह का वर्णन किया है।[4] काव्य की रचना-तिथि (९०९ हि०) के साथ इसका समन्वय न हो सकने के कारण यह विषय विवादास्पद रहा है।[5] परन्तु डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त ने तत्कालीन मुद्राओं एवं अन्य ऐतिहासिक तथ्यो के प्रमाण से यह निश्चित किया है कि कुतबन का संबध जौनपुर के हुसेन शाह शरकी से ही था।[6] अन्तःसाक्ष्य स्पष्ट होने के कारण रचना-तिथि निर्विवाद है। इसमे चंद्रगिरि के राजा गनपति देव के पुत्र राजकुंवर एवं कंचन-पुर की राजकुमारी मृगावती के प्रेम का वर्णन है। सन् १६६६ मे इसी कथा को आधार बनाकर ओडछा के राजा सुजानसिह के भतीजे अर्जुनसिह की आज्ञानुसार मेघराज प्रधान[7] ने इसी नाम की दूसरी रचना प्रस्तुत की, प्रधान की रचना कुतबन के अनुकरण पर लिखी गई प्रतीत होती है। यह रचना काव्य-वैभव की दृष्टि से कुतबन की कृति से निम्नकोटि की है। इससे कुतबन के १०५ वर्ष बाद भी इस कथा की महत्ता एवं लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ता है। फायज कवि कृत दक्खिनी मसनवी 'रिजवा शाह वा रूहे अफज़ा' की कथा भी इसी से मिलती-जुलती है।

सन् १५१८ में रचित किसी भीम कवि की रचना **सदयवत्स सावलिंगा** का भी पता चलता है। इसकी सूचना श्री अगरचंद नाहटा ने 'राजस्थान भारती,' अप्रैल १९५० में दी है। सदयवत्स सावलिंगा की प्रेम-कथा का प्रचार भी बहुत था, इस तथ्य का पता 'संदेश रासक' के एक पद्य से चलता है। श्री नाहटा ने भीम की उपर्युक्त

---

१. सरस विलास कामरस भाव, जाइु दुरीय भनि हूऊ उछाह।

—लखमसेन पदमावती कथा, पृ० १७

२. कवि एवं कथा के परिचय के लिए देखिए—मिरगावती, सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, अनुशीलन, पृ० १-१६; तथा मृगावती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १-१८

३. इनहिं के राज यहि रे हम कहे। नौ से नौ जो संवत् अहै।।

—मृगावती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ८

४. वही, पृ० ५-८

५. (क) मृगावती, सं० श्री शिवगोपाल मिश्र, पृ० ८-१०

(ख) मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृ० ६८

६. मिरगावती, पृ० २१-२५

७. मेघराज प्रधान की कथा के लिए देखिए—मिरगावती, सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ८२

कथा के अतिरिक्त खरतरगच्छ के जैन कवि केशव-रचित **सदैवच्छ सावलिंगा चौपई**[1] का भी उल्लेख किया है, जोकि सन् १६४० की रचना है । राजस्थान में इस कथा के कई छोटे-बडे रूपान्तरो का भी श्री नाहटा ने उल्लेख किया है ।[2]

नारायणदास के **छिताई चरित**[3] की रचना १५२६ ई० में हुई । श्री हरिहर निवास द्विवेदी इसे सन् १४७५ और १४८० के मध्य की रचना मानते है ओर रचना मे उल्लिखित सवत् १५८३ को उसके सुनाने की तिथि बताते है । रचना मे उल्लिखित स्थापत्य, चित्र एवं संगीत कला की राजा मानसिंह के समय प्रचलित शैलियों से समानता दिखाकर उन्होंने अपने मत की पुष्टि की है ।[4] परंतु, कथा सुनाने की भी तिथियाँ निर्दिष्ट करने की परम्परा के अन्य उदाहरण जब तक न मिल जाएँ तब तक उनकी यह स्थापना विवादास्पद ही रहेगी । उपलब्ध रचना में रत्नरग एवं देवचंद ने भी कुछ जोड़ दिया है ।[5] इसमें छिताई और सौरसी के प्रेम का वर्णन करते समय इतिहास एवं कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण किया गया है । अलाउद्दीन का चरित्र जायसी के 'पदमावत' में वर्णित उसके चरित्र से विशेष भिन्न है । 'छिताई चरित' मे किसी प्रकार के आध्यात्मिक संकेत नही हैं। कथा का आरम्भ संयोग-वर्णन से होता है । इसके अनन्तर वियोग और पुनः संयोग मे कथा समाप्त होती है ।

माधवानल कामकंदला[6] की प्रेम-कथा ने अनेक कवियों को आकृष्ट किया है । आनदधर (१४ वीं शती) रचित 'माधवानलाख्यानम्' इस कथा पर आधारित प्राचीनतम उपलब्ध कृति मानी जाती है । इसके अनुकरण पर अपभ्रंश एव हिंदी मे अनेक काव्य लिखे गए । इनमे गणपति कृत **माधवानल कामकंदला प्रबन्ध** की रचना १५८४ वि०[7] में हुई ।

यह रचना प्रेमाख्यान-साहित्य में अपनी कई विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण है । यह समकालीन अपभ्रंश एवं प्राकृत के प्रबंधों में अनुकृत होनेवाली संस्कृत महाकाव्यो की रूढ़िबद्ध परम्परा पर रची गई है । इसमे नायक एक मध्यवर्गीय पुरोहित-पुत्र है और नायिका गणिका है । कहानी सर्वत्र प्राजल भावनाओ से ओत-प्रोत है । दोनो

---

१. कथा-परिचय के लिए देखिए—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृष्ठ ९५
२. राजस्थान भारती, अप्रैल १९५०, पृष्ठ ४७
३. कवि एवं कथा-परिचय के लिए देखें--छिताईचरित, सं० श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, पृष्ठ १२-४६
४. छिताईचरित, प्रस्तावना, पृष्ठ २९-३१
५. हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च १९५९. डा० माताप्रसाद गुप्त का लेख—प्राचीन हिन्दी-काव्यों में पूरक कृतित्व ।
६. कथा के लिए देखिए—माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, सं० मजूमदार, भूमिका, पृष्ठ ७-८ तथा भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृष्ठ २२६
७. वेद भुजंगम बाण शशि विक्रम वरस विचार ।
श्रावणनी शुदि सप्तमी स्वाति मंगलवार ॥
—माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृष्ठ ३ः९

के प्रेम की तीव्रता एव एकनिष्ठता कथा का केन्द्र-बिदु है। कथा के बीच बीच में अप्रासंगिक वर्णनों एव औपदेशिक अंशों के कारण एकरसता भंग हुई है, परन्तु तत्कालीन लोकरुचि के समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इनका महत्त्व अवश्य स्वीकार किया जा सकता है।

इस कथा पर आधारित निम्नलिखित रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

(क) माधव शर्मा ने **माधवानल कामकंदला रस-विलास** की रचना १६०० वि० मे जैसलमीर में की।[१] इसकी खण्डित प्रति हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में सुरक्षित है। इसके कुल ४३६ छंदों मे से प्रारभ के २१७ छद नही है।

(ख) कुशललाभ-रचित **माधवानल कामकंदला चउपई** संवत् १६१६ की है।[२] इसमें दोहा, चउपई, गाथा, वस्तु आदि छदों का प्रयोग हुआ है। इसमे संस्कृत के भी अनेक छद संकलित है।

(ग) आलम कृत **माधवानल कामकंदला** ९९१ हि० (सन् १५८३) की है।[३] कवि ने शाहे वक्त के रूप मे अकबर की स्तुति की है। रचना में पॉच पाँच अर्द्धालियों के बाद एक एक दोहा ओर सोरठा है।

(घ) दामोदर ने **माधवानल कथा** में रचना-काल तो नही दिया, परन्तु इसकी प्रतिलिपि संवत् १७३७ की उपलब्ध हुई है।[४]

(ङ) कविकेस ने १७०७ मे **माधवानल नाटक** की रचना की।[५] यद्यपि ग्रंथ का नाम नाटक है, परन्तु यह शुद्ध रूप से काव्य-ग्रंथ है। इसमे २७ प्रकार के कुल ३६७ छद है।

(च) बोधा कृत **विरह-वारीश** का रचनाकाल पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने १८०९ वि० के बाद माना है[६]। इस रचना में भाव-गम्भीरता तो है ही, इसका छद-वैविध्य भी अनुपम है। इसमें मात्रिक, वर्णिक, सम, अर्धसम,

---

१. संवत सोला सै वरसि, जैसलमेर मझारि।
फागुन मासि सुहावने, करी बात बिसतारि॥
—हि० सा० स० प्रयाग की प्रति।

२. संवत सोल सोलोत्तरइ, जेसलमेर मझारि।
फागुण सुदि तेरसि दिवसि, विरचि आदितवारि॥
—माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ४४१

३. हिन्दी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, सं० श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, पृ० १७६

४. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ५०९

५. रिषिनि अंक सिर गगन है, सत्रह सै लिखि पास।
भादौ सुदि दूजी कला, बरनौ विप्र विलास॥
—माधावनल नाटक, सं० डॉ० सत्येन्द्र जी वर्मा, पृ० २

६. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २००४, पृ० २२-२३

विषम आदि सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है।

(छ) हरिनारायण-रचित **माधवानल कामकंदला** (रचनाकाल १८१२ वि०) का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने किया है।[१]

इनके अतिरिक्त श्री अगरचंद नाहटा एवं डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव के साक्ष्य के आधार पर डॉ० सत्येन्द्र जी वर्मा ने पुरुषोत्तम वत्स कृत **माधवानल कथा चऊपई** (रचनाकाल १६३० वि०), लालकवि कृत **माधवानल कथा** (अप्राप्य), जगन्नाथ कृत **माधव चरित्र** (रचनाकाल १७४४ वि०) एवं किन्ही अज्ञात कवियों द्वारा रचित **माधवानल कामकंदला** तथा **मनोहर माधव विलास** का भी उल्लेख किया है।[२] महाराजा रणजीतसिंह के आश्रित कवि बुधसिह, जिनका रचनाकाल (१८८०-१९१० वि०) माना जाता है, द्वारा रचित **माधवानल कामकंदला** भी मिलती है।[३] इनमें से कुछ तो आनदधर के छायानुवाद मात्र है और कुछ पूर्ववर्ती काव्यो की छाया के साथ साथ किंचित् नवीनता लिए हुए हैं। नवीनता से संयुक्त होने पर इनके रूपाकार मे कई परिवर्तन हो गए है परन्तु मूल कथा सभी मे एक है।

जायसी का **पदमावत**[४] हिन्दी-प्रेमाख्यान-माला का सुमेरु है। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में मतभेद बना हुआ है। कुछ विद्वान् ९२७ हि० को शुद्ध पाठ मानते है और कुछ ९४७ हि० को।[५] इसकी रचना शेरशाह के राज्यकाल मे हुई, इसे मानने में कोई विवाद नही होना चाहिए क्योकि इस रचना में शाहे वक्त के रूप मे शेरशाह की विस्तृत संस्तुति है। सिंहल की रानी पदमावती तथा चित्तौड़ के राजा रतनसेन के प्रेम एव नागमती के विरह से गुम्फित यह कथा काव्यशास्त्रीय तत्वों, भारतीय सस्कृति एवं सूफी विचारधारा का अनुपम आगार मानी जाती है। जायसी की इस रचना को आधार बनाकर फारसी, बंगला एवं उर्दू मे अनेक रचनाएं लिखी गईं। इनमें उर्दू की रचनाएं प्रायः फारसी-रचनाओं के अनुकरण पर हैं। डॉ० गोपीचन्द नारग ने इसके नौ फारसी-रूपों का उल्लेख किया है जिनमें से अधिकांश सत्रहवी शती ईसवी के है। उन्होंने उर्दू

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३६६

२. उन्होंने लल्लूलाल जी रचित 'माधवविलास' के अतिरिक्त उर्दू में मजहरअली खां रचित 'माधोनल कामकुंडला' एवं आलम के अनुकरण पर हकीरिया की फारसी रचना का भी उल्लेख किया है। —माधवानल नाटक, भूमिका, पृष्ठ २-४

३. (क) पंजाब का हिन्दी साहित्य, श्री सत्यपाल गुप्त, पृ० ७७
(ख) पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चन्द्रकान्त बाली, पृ० ३३८

४. कवि एवं काव्य का परिचय अनेक स्थानों पर उपलब्ध है। विशेष परिचय के लिए देखिए—'जायसी का पदमावत : काव्य और दर्शन', डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० २७-३४; 'मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य', डॉ० शिवसहाय पाठक, पृ० १८-३०

५. पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राककथन, पृ० २३-२४

की भी छह प्रतियों का उल्लेख किया है ।[1]

मंझन की **मधुमालती**[2] भी हिन्दी-प्रेमाख्यान-साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है । सलीमशाह के समय मे १५४५ ई० (९५२ हि०) में इसकी रचना की गई ।[3] इसमे गढ़ कनयगिरि के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर एवं महारसनगर के राजा विक्रमराय की कन्या मधुमालती के प्रेम की सुखान्त कथा वर्णित है। मझन एक उदार मुसलमान कवि थे । इस रचना में प्रारम्भ के स्तुति-खण्ड के अतिरिक्त कोई उल्लेख ऐसा नही जिसके आधार पर इसे किसी मुसलमान कवि की रचना माना जा सके । मंझन के लगभग सौ वर्ष बाद फारसी मे मनोहर एव मधुमालती की कथा के आधार पर अनेक रचनाएँ हुईं । मुंशी अलीरजा ने 'किस्सा मधुमालती' (रचना १०५९ हि०) में मंझन की उपजीव्यता को स्वीकार किया है ।[4] डॉ० गोपीचंद नारग ने विभिन्न सूचियों के आधार पर आकिलखां राजी की मसनवी 'महरोमाह' (१०६५ हि०), नासिर अली कृत मसनवी 'कंवर मनोहर व मधुमालत', हसामुलदीन हिसारी कृत मसनवी 'हुस्नो इश्क' (१०७१ हि०), माधोदास गुजराती की 'मैका व मनोहर' (१०९८ हि०) आदि सात रचनाओं का उल्लेख किया है ।[5]

चतुर्भुज कायस्थ द्वारा रचित **मधुमालती वार्ता**[6] को डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव ने सन् १७८० ई० की रचना माना है ।[7] चतुर्भुज ने अपनी कृति में रचना-तिथि का उल्लेख नही किया परन्तु माधव शर्मा की एक रचना 'माधवानल कामकंदला' जो उसी प्रति में प्राप्त हुई है जिसमें उनका संशोधित मधुमालती का रूप मिला है, मे रचना तिथि इस प्रकार है—

संवत सोला सै वरसि, जैसलमेर मझारि ।
फागुन मासि सुहावने, करी बात बिसतारि ।।[8]

यदि माधव शर्मा का संशोधन इस कृति के आस-पास का हो तो चतुर्भुजदास की रचना अवश्य सोलहवीं शती विक्रमी के मध्य की होगी ।[9] इसमें लीलावती नगरी

---

१. उर्दू मसनवियाँ, पृ० १५२-१५६

२. कथा एवं कवि के परिचय के लिए देखिए—मधुमालती, सं० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० १३-४८

३ सन् नौ सै बावन जब भए । सती पुरुष कलि परिहरि गए ।।
तब हम जिय उपजि अभिलाषा । कथा एक बांधउं रस भाषा ।।
—मधुमालती, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३३

४. उर्दू मसनवियाँ, पृ० ७०

५. वही, पृ० ७१

६. कवि एवं कथा-परिचय के लिए देखिए—मधुमालती वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका ।

७. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ४३५

८. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हस्तलिखित प्रति

९. मधुमालती वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ४

के राजा चन्द्रसेन की पुत्री मालती एवं मत्री पुत्र मधुकर के प्रेम की कथा है। कथा में सयोग शृंगार की प्रमुखता है। इसमें किसी प्रकार की अन्योक्ति या समासोक्ति के द्वारा अन्यार्थ बताने का प्रयत्न नही किया गया।

जटमल नाहर कृत **प्रेम विलास प्रेमलता कथा** की रचना सन् १५५६ (१६१३ वि०) में हुई। यह कथा यद्यपि साधारण कोटि की है, परन्तु एक जैन श्रावक द्वारा रचित होने के कारण महत्त्वपूर्ण है। इसमें घटनाओं की चमत्कारिक योजना एव पात्रों के उद्गारों द्वारा प्रेम की अलौकिकता की व्यजना की गई है। इस रचना मे वियोग की अपेक्षा संयोग को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।[1]

सन् १५६७ ई० (१६२४ वि०)[2] मे साधन ने **मैनासत** नामक कृति में लोरक एवं मैना के प्रेम को आधार बनाकर मैना के प्रेम, विरह एवं सत् का वर्णन किया है। श्री हरिहरनिवास द्विवेदी का विचार है कि यह रचना सन् १४८० और १५०० के बीच किसी समय लिखी गई।[3] उर्दू मे भी इस ढग की अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। उत्तरी भारत मे उर्दू की प्रथम मसनवी मुहम्मद अफजल कृत 'विकट कहानी' इसी प्रकार की रचना है। गवासी ने 'मैना सतवती' मे यही कथा ली है, परन्तु कथा में कुछ हेर-फेर कर चदा के व्यक्तित्व को अत्यन्त हीन चित्रित किया है। 'मैना सतवंती' में चदा को दुष्कर्म के लिए सज़ा दी जाती है एव मैना का सम्मान किया जाता है। लेखक ने बताया है कि किस्सा फारसी से लिया गया है, परन्तु किस्से के वातावरण से अनुमान लगाया जा सकता है कि फारसी मे इसका आधार कोई भारतीय लोककथा है।

सन् १५६८ ई० (१६२५ वि०) के आस-पास नन्ददास ने **रूपमंजरी** की रचना की।[4] रूपमंजरी सगुण ब्रह्म को रूपमार्ग से प्राप्त करने की साधना का प्रतीकात्मक काव्य है। इसमें नन्ददास ने अपनी भक्ति-पद्धति के दो रूपों का वर्णन किया है। एक, ससीम लोक-सौन्दर्योपासना द्वारा निःसीम दिव्य सौन्दर्य को पाना और दूसरा प्रेम के उपपति-भाव द्वारा भगवान् के नैकट्य को प्राप्त करना। कवि ने रूपमजरी के रूप में इन्दुमती की आसक्ति द्वारा रूपोपासना के मार्ग का वर्णन किया है और कृष्ण में जार-भाव से रूपमंजरी की आसक्ति द्वारा भक्ति के माधुर्य भाव को दिखाया है।[5] इस रचना पर सूफियों का प्रभाव मानना[6] उपयुक्त नहीं, क्योंकि इसमे नायक या नायिका को भगवान् के रूप में स्वीकार नही किया गया प्रत्युत् लोक-विश्वास

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० २११
२. हिन्दुस्तानी, जुलाई-सितम्बर १९५९ में डॉ० माताप्रसाद गुप्त का लेख।
३. मैनासत, पृ० ८८
४. रचना परिचय के लिए देखें—नंददास ग्रंथावली, सं० ब्रजरत्नदास, भूमिका, पृ० १०५-११४
५. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, डॉ० दीनदयालु गुप्त, पृ० ७९५
६. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृ० १०९

द्वारा भगवान् माने जानेवाले कृष्ण को ही प्रेमी के रूप में चुना गया है।

नरपति व्यास विरचित **नलदमयन्ती** का रचनाकाल सन् १५७५ ई० (सवत् १६३२ वि०) माना गया है।[1] उपलब्ध प्रति का लिपिकाल सवत् १६८२ है (सवत् १६८२ वर्षे भाद्रवारे वदि दिने कथा नलदमयन्ती सम्पूर्णम् शुभ भूयात्), परन्तु डॉ० शिवगोपाल मिश्र का मत है कि यह संवत् १५८३ के आस-पास की रचना है क्योंकि यह रचना 'छिताई वार्ता' के साथ एक ही प्रतिलिपि मे मिली है और दोनों में ही १५-१५ मात्राओ की अर्द्धालियाँ है। अतः ये दोनों रचनाएँ निकट की ही है। 'छिताई वार्ता' का रचना-काल असदिग्ध रूप से १५८३ विक्रमी है। अतः यह भी उसके आस-पास की ही रचना है।[2] नरपति व्यास ने 'नैषध' की ही कथा का आधार लिया है, परन्तु उसमे थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर कथा को रोचक बनाने का प्रयत्न किया है।

कृष्ण-रुक्मिणी-प्रेम की कथा उन कुछेक कथाओं मे से है जिन्होंने अनेक कवियों को आकर्षित किया है। डॉ० सियाराम तिवारी ने ऐसे १८ कवियों की अधोलिखित रचनाओ का परिचय[3] दिया है—

रचना	लेखक
१. **रुक्मिणी मंगल**	विष्णुदास
२. **रुक्मिणी मंगल**	नददास
३. **रुक्मिणी व्याहलौ या श्याम स्नेही**	आलम
४. **वेलि क्रिसन रुकमणी री**	पृथ्वीराज
५. **रुक्मिणी मंगल**	नरहरि
६. **रुक्मिणी मंगल**	हीरामणि
७. **रुक्मिणी मंगल**	पदमैया
८. **रुक्मिणी विवाहलो**	कृष्णदास गिरधर
९. **रुक्मिणी हरण**	साँया जी
१०. **रुक्मिणी मंगल**	हीरालाल
११. **रुक्मिणि मंगल**	मेहरचद
१२. **रुक्मिणि मंगल**	हेतराम कृष्ण
१३. **रुक्मिणी मंगल**	विष्णुदास
१४. **रुक्मिणी मंगल**	हीरालाल
१५ **रुक्मिणी मंगल**	ठाकुरदास
१६. **रुक्मिणी मंगल**	रामलाल
१७. **रुक्मिणी स्वयंबर**	ला० मग्घूलाल
१८. **रुक्मिणी परिणय**	महाराज रघुराजसिंह

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १०३

२. हिन्दुस्तानी, अंक २, १९५९, नरपति व्यास की नल दमयन्ती कथा पर डॉ० शिवगोपाल मिश्र का लेख।

३. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, पृ० ११०-१३१

इन काव्यों के अन्तर्गत कथा में यत्किंचित् परिवर्तन करके कृष्ण एवं रुक्मिणी के प्रेम को सर्वत्र पौराणिक पृष्ठभूमि के अनुसार ही वर्णित किया गया है । प्रायः इन सभी मे पूर्वमध्यकाल के प्रेमाख्यानो एव रीतिकाल के रीतिकाव्यों का समन्वय है । एकाध रचना में कृष्ण का वीर रूप भी प्रमुख है । इन काव्यों में केवल रुक्मिणी के चरित्र पर ही ध्यान दिया गया है । नंददास, आलम एवं पृथ्वीराज के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाएं प्रायः इतिवृत्तात्मक ही है तथा काव्यालकरण की दृष्टि से भी वे साधारण ही हैं । पृथ्वीराज को छोडकर अन्य कवियो की भाषा ब्रजी है । नन्ददास एवं पृथ्वीराज के अतिरिक्त अन्य कवियों ने अनेक छदों का प्रयोग किया है ।[१]

कृष्ण-रुक्मिणी सम्बन्धी इन प्रेमाख्यानों में **वेलि क्रिसन रुकमणी री** महत्त्वपूर्ण रचना है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि महाराज पृथ्वीराज ने सन् १५८० (१६३७ वि०) में इसकी रचना की ।[२] 'रूप मजरी' के ही समान इसमे भी नायक भगवान् कृष्ण हैं। कवि का दृष्टिकोण प्रेम एव भक्तिमूलक है । ग्रंथ मे कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण, उनके विवाह, रति-क्रीडा और अन्त मे प्रद्युम्न-जन्म का वर्णन है । कथा का आधार 'श्रीमद्भागवत' मे वर्णित रुक्मिणी-हरण की लोक-प्रसिद्ध कथा है । कृति मे आए वय.सन्धि, नखशिख, सुरतान्त आदि के चित्रों पर रीतिकालीन काव्य-शैली का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता हैं ।

जल्ह कवि कृत **बुद्धि रासो** १६२५ वि० के बाद की रचना है ।[३] इसमें चम्पावती के राजकुमार एवं जलधितरगिनी नाम की एक रूपवती स्त्री की प्रेम-कथा है । कथा 'बीसलदेव रासो' के ढंग की है जिसमे पति के लौटने की अवधि बीतने पर भी जब पति नही आता तो विरहिणी संसार से विरक्त होकर अपने वस्त्राभूषण उतार फेकती है और उसकी माँ उसे संसार की ओर आकृष्ट करने का यत्न करती है । इतने मे राजकुमार आ पहुंचता है, और दोनों आनन्द-उत्साह के साथ दिन व्यतीत करते है ।[४] डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इस कवि का समय महाकवि चंद के आस-पास माना जाने की सम्भावना व्यक्त की है ।[५]

गोलकुण्डा के कुतुबशाही दरबार के आश्रित मुल्ला वजही ने सन् १६१० (१०१८ हि०) मे **कुतबमुश्तरी**[६] नामक प्रेमाख्यान की रचना की ।[७] इस काव्य में प्रेम और

---

१. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, पृ० ३०१-३०४

२. वरसि अचंल गुण अंग ससी संवति, तवियौ जस करि श्री भरतार ॥
—वेलि क्रिसन रुकमणी री, सं० डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, पृ० २००

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मोतीलाल मेनारिया, पृ० १२१

४. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ७६

५. रासो साहित्य विमर्श, पृ० १७२

६. कथा एवं कवि-परिचय के लिए देखिए—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग), पृष्ठ ३६८-७१ तथा कुतबमुश्तरी, भूमिका, पृ० ३-५

७. कुतबमुश्तरी, सं० बिमला वाघ्रे एवं हाशमी, पृ० ५

बिरह का सुन्दर चित्रण हुआ है। कथा मे ऐतिहासिकता की पुट अवश्य है परन्तु मुख्य रूप से वह काल्पनिक है। उत्तरी भारत के प्रेमाख्यानो मे प्रयुक्त होनेवाली अधिकाश कथानक-रूढ़ियों का उपयोग इसमें भी हुआ है।

सन् १६१३ ई० (१०२२ हि०) मे उस्मान ने **चित्रावली**[1] एवं १६१६ ई० (१०२६ हि०) मे शेखनबी ने **ज्ञानदीप** की रचना की[2]। दोनों ही रचनाएँ[3] जहांगीर के शासनकाल की है और इनमें जहांगीर की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की गई है। ज्ञानदीप मे गृहीत कथा अन्य मुसलमान कवियों की कथा-परम्परा से कुछ भिन्न है। इसमें नायिका एवं उसकी सखी नायक पर अनुरक्त होकर उसे प्राप्त करने के यत्न में जोगिनें बनकर घर से निकलती है। इसमे अलौकिक तत्त्व बहुत अधिक है। रचना सुखांत है। नायक दोनो नायिकाओं को स्वीकार कर सुखपूर्वक राज्य करता है।

सन् १६१६ (सवत् १६७३)[4] मे कवि पुहकर रचित गौरवास्पद कृति **रसरत्न**[5] उपलब्ध होती है। इसमें संयोग-वियोग की विविध दशाओं का साहित्य की रीति एव शृंगार के मुक्तक कवियो की पद्धति पर वर्णन होने के कारण शुक्ल जी ने इस रचना का विशिष्ट स्थान माना है।[6] इसमे रूढ़िबद्ध रीति-कवियों की शैली पर पूर्वराग, प्रवास, मंडन, नखशिख, नायिकाभेद, षड्ऋतु-वर्णन आदि के सरस एवं प्रौढ़ वर्णन है। गणपति कृत 'माधवानल कामकदला प्रबंध' के ही समान इस रचना में भी सयोग एव वियोग शृगार के भिन्न-भिन्न प्रसंग-माणिक्यो को ग्रंथित करने के लिए कथासूत्र की कल्पना की गई है।

मिस्र के बादशाह आसिमनवल के पुत्र सैफुलमुलूक तथा गुलिस्ताने ऐरम की राजकुमारी बदी-उल-जमाल की प्रेमकथा को आधार बनाकर १६१६ ई० (१०२७ हि०) में गवासी ने **सैफुलमुलूक व बदी-उल-जमाल** नामक ग्रंथ दक्खिनी मे लिखा।[7] यह एक प्रसिद्ध सामी प्रेमकथा है। पंजाबी में लुत्फ अली एवं मुहम्मद बख्श ने तथा हिन्दी मे जान कवि ने कुछ नामों को परिवर्तित कर 'रतनावती' नाम की रचना में

---

१. सन् सहस्र बाइस जब अहै। तब हम बचन चारि एक कहै॥
—चित्रावली, सं० श्री जगन्मोहन वर्मा, पृ० १४

२. एक हजार सन् रहे छबीसा। राज सु लही गनहु बरीसा॥
संबत सोलह सौ छिहंतरा। उक्ति गरंत कीन्ह अनुसरा॥
—ज्ञानदीप, हस्तलिखित।

३. कवि एवं काव्य के परिचय के लिए देखिए—हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ० सरला शुक्ल, पृ० ३४९ एवं ४१६

४. रसरतन, सं० डॉ० शिवप्रसाद सिंह, भूमिका, पृ० ४३

५. कवि एवं काव्य के परिचय के लिए देखिए—वही, भूमिका।

६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८९

७. कवि एवं काव्य के परिचय के लिए देखें—सैफुलमुलूक व बदी-उल-जमाल, सं० राजकिशोर पांडेय एवं सिद्दीकी, भूमिका।

इसी कथा को ग्रहण किया है। कथावस्तु 'मृगावती', 'मधुमालती' जैसे प्रेमाख्यानो से मिलती-जुलती है। उन्ही रचनाओं मे प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियों का उपयोग इसमे भी हुआ है। गवासी की अन्य रचना **मैंना सतवंती** का उल्लेख पीछे हो चुका है।[१]

मुकीमी के **चंदरबदन महियार**[२] की रचना-तिथि विवादास्पद है। हाशमी इसे १०५०[३] हि० की रचना मानते है और कादरी ने 'उर्दू-ए-कदीम' मे इसका रचनाकाल १०९८ हि० बताया है।[४] इसमें एक मुसलमान नायक की निष्ठा से आकृष्ट होकर हिन्दू नायिका के प्राण त्यागने की कथा है। सैयद नूर अल्ला ने 'तारीखे आदलशाहिया' में एव शाह तजलीअली तजली ने 'तोजके आसफिया' मे इस घटना को ऐतिहासिक सत्य बताया है। 'दक्कन मे उर्दू' के लेखक नसीर-उल-दीन हाशमी ने भी इसकी सत्यता स्वीकार की है, परन्तु अब्दुल कादिर सरवरी ने 'उर्दू मसनवी का इरतकास' मे स्पष्ट किया है कि इसका मकसद इस्लाम की उत्तमता सिद्ध करना था। डॉ० नारग ने इस विषय पर विस्तृत विचार करते हुए डॉ० जहीर-उल-दीन मदनी को उद्धृत करते हुए इसकी पुष्टि की है। उन्होने ऐसी सोलह उर्दू मसनवियो का उल्लेख किया है जिनमे से पॉच तो 'चदरबदन महियार' की कथा पर ही आधारित है और ग्यारह मे भी यही कथा थोड़े हेर-फेर से लिखी गई है। इनमे से अधिकाश अठारहवी शती ईसवी के उत्तरार्द्ध की है।[५]

कुतबशाही शासनकाल मे कवि फायज ने किसी फारसी रचना के आधार पर १०९४ हि० (१६८२ ई०) मे **मसनवी रिज़वांशाह व रूहे अफज़ा** लिखी।[६] यह रचना कुतबन की मृगावती से बहुत मिलती है। इसमे भी नायिका हिरणी के रूप मे ही नायक को मोहित करती है, नायक उसे प्राप्त कर उसके साथ रहता है, परतु पिता की मृत्यु का सदेश प्राप्त कर नायिका चली जाती है। कुतबन की अपेक्षा इस कथा मे अलौकिक अंशों की योजना अधिक है। कथा सुखात है। बुढ़िया धाय का कार्य इसमे विशेष उल्लेखनीय है, यह पात्र कुतवन की रचना मे नही है।

इब्न निशाती का **फूलबन** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दक्खनी की यह

---

१. गवासी एवं उनकी रचनाओं के विस्तृत परिचय के लिए देखिए—'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (भाग ४), पृष्ठ ३७४-८३

२. कवि एवं कथा के परिचय के लिए देखिए 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (चतुर्थ भाग), पृ० ३८३-८५

३. दक्कन में उर्दू, नसीरुलदीन हाशमी, पृ० १३२

४. उर्दू मसनवियाँ, डॉ० गोपीचंद नारंग, पृ० १७६

५. उर्दू मसनवियाँ, पृ० १८०-२०५

६. दस्या फारसी मुखतसर बात कूं,
दिया शाख व बरग इस हकायत कूं।
—मसनवी रिज़वां शाह व रूहे अफज़ा, सम्पादक : सैयद मुहम्मद, पृ० १०

रचना कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। इब्न निशाती ने इसे फारसी की किसी रचना 'जसातीन' से लिया है। इसमें एक दरवेश कंचन पटन के नरेश को कथा सुनाता है। कथा में कथा कहने की प्रवृत्ति इसमे स्पष्ट है। इसमे दरवेश एवं कचन पटन के राजा, कश्मीर के बादशाह, फूल एव बुलबुल, एक राजा, मंत्री एवं उसकी रानी तथा हमायूँ फाल और समनबर की कहानियाँ हैं।[1]

हिन्दी प्रेमाख्यानक साहित्य में कवि जान का नाम महत्त्वपूर्ण है। यह महत्त्व काव्य सम्बन्धी गुणो की अपेक्षा रचनाओं के आकार एव सख्या की दृष्टि से ही अधिक है। पं० मोतीलाल मेनारिया ने उनकी ७५ रचनाओं का नामोल्लेख किया है।[2] सन् १६१३ से १६४४ की तीस साल की अवधि में इन्होंने निर्बाध रूप से ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचनाओं मे जहांगीर, शाहजहां एव औरंगजेब की प्रशंसा मिलती है। स्पष्ट है कि इस कवि ने इन तीनों का शासन-काल देखा था।

इनके अधिकांश ग्रथ 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' में सुरक्षित हैं। इनमे से निम्नलिखित को कथा-संगठन के आधार पर प्रेमाख्यानों[3] के अंतर्गत लिया गया है—कथ. कुलवंती, कथा कौतुहली, कथा कामलता, कथा पुहुपबरिषा, कथा रूपमंजरी, कथा रतनमंजरी, कथा रतनावती, कथा कामरानी और प्रीतमदास, कथा मधुकर मालती, कथा छीता, कथा मोहनी, कथा छबिसागर, कथा कवलावती, कथा कनकावती, कथा नलदमयन्ती, कथा सुभटराय, कथा अरदेसर पातिसाह, ग्रंथ लैलैमजनूं, कथा खिजरखां देवलदे, कथा कलंदर, कथा बादीनामा, कथा सतवंती, कथा सीलवंती, कथा चद्रसेन राजा सील-निधान, कथा कलावती, कथा निरमलदे, कथा बलूकिया बिरही और कथा तमीम अंसारी। इन कथाओं का आरम्भ यद्यपि अन्य प्रेमाख्यानो में प्राप्त परम्परा के ही अनुसार है, तथापि अधिकाश में काव्य-सौष्ठव की अपेक्षा कथा-वर्णन के प्रति ही कवि सावधान है। डॉ० श्याममनोहर पाडेय का मत है कि "इनमे कोई उल्लेखनीय विशेषताएँ नही है। ये सभी रचनाएँ प्रेम-निरूपण, कथा-संगठन तथा चरित्रांकन की दृष्टि से कमज़ोर हैं। कही कही काव्यात्मक सौन्दर्य की झलक अवश्य मिलती है पर ऐसे स्थल कम ही हैं। जान की एक विशेषता अवश्य है कि उनके समय मे जो प्रचलित कथाएँ थी उनमें कई कथाओ को लेकर उन्होंने काव्य रच डाला है। उन्होंने फारसी, संस्कृत और हिन्दी स्रोतो का उपयोग किया है। देवलदेवी की कथा अमीर खुसरो ने लिखी है। नल दमयंती यहाँ की प्रख्यात कथा रही है। मैंनासत भी मध्ययुग की हिंदी की लोक-प्रचलित कथा रही है, जिसका साधन ने उपयोग किया है। इसी प्रकार

१. कथा एवं कवि के परिचय के लिए देखिए—फूलवन, सं० देवीसिंग चौहान, भूमिका।

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १५२

३. जान कवि के प्रेमाख्यानो पर, डॉ० रामकिशोर मौर्य का शोध-प्रबध प्रयाग विश्वविद्यालय से १९६४ में प्रस्तुत एवं स्वीकृत हो चुका है। उन्होंने कवि की २८ रचनाओ को प्रेमाख्यान माना है। यह प्रबंध अभी अप्रकाशित है। जान की अधिकांश कृतियों के परिचय के लिए देखिए—हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ० सरला शुक्ल, पृ० ३८०-४१५

छिताई की कथा भी मध्ययुग में प्रचलित रही।"[1] डॉ० पाण्डेय का यह मत सत्य के पर्याप्त समीप है। वास्तव में जान का महत्त्व अपने समय की कथाओं को काव्य-बद्ध करने में ही है। उन्होंने अपने काल की कई कथाओं को परिवर्तित भी किया। उदाहरण के लिए मंझन की 'मधुमालती' के वक्ता, श्रोता एव नायक आदि मे कुछ परिवर्तन किया है। यदि मंझन की मधुमालती पक्षी बनने के उपरांत अपनी सम्पूर्ण गाथा ताराचद को सुनाए और बाद में ताराचंद उनको परस्पर मिलाने के यत्नादि करे तो यह जान कवि की 'कथा पुहुपवरिषा' बन जाती है। मनोहर के स्थान पर सुरपति है तथा सुकेशी इसमें मधुमालती की स्थानापन्न है। निर्मलदे और पुरुषोत्तम क्रमशः प्रेमा एवं ताराचद है। 'कथा रतनावती' कुछ नाम परिवर्तन कर 'सैफुलमुलूक बदी-उल-जमाल' की कथा है। कथा किसी मूल फारसी मसनवी का परिवर्तित रूप प्रतीत होती है। क्योंकि पजाबी के कवि मियां मुहम्मद बख्श रचित 'सैफुलमुलूक' में भी कथावतरण की वही घटना है जो कि दक्खिनी 'सैफुलमुलूक' एवं 'रतनावती' में है। कथा 'कामलता' १६१० ई० मे दक्खिनी मे रचित 'कुतबमुश्तरी' (मुल्ला वजही) से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। अतः, कवि जान का हिन्दी मे वही स्थान है जो पजाबी मे अहमदयार या अमाम बख्श का है।

इस माला में एक नवीन पुष्प **सूर रंभावत** के जोड़ने का श्रेय डॉ० हरि-भजनसिंह को है। कवि भूपत ने इसकी रचना १६४७ ई० (१७०४ वि०) में की।[2] इसमें मनिकपुर के राजा के पुत्र सूरप्रताप तथा सभलनगर की राजकुमारी रभावती की प्रेमकथा है। कथा का वातावरण बाधा-विहीन, विघ्न-मुक्त, सम्पन्न एव प्राचुर्य-युक्त है। जहा कहीं भी अवसर मिला है कवि ने निसकोच भाव से भोग-विलास का वर्णन किया है। इसमें 'मुख्यतः अनमेल विवाह के प्रति एवं साधारणत. विवाह-बंधन के प्रति अत्यंत विरोध' प्रदर्शित किया है[3]। कवि ने प्रेम के वियोग पक्ष का भी वर्णन किया है।

बाबा धरणीदास का **प्रेम प्रगास** (रचनाकाल १६५६ ई० के आसपास)[4] तथा दुखहरन की **पुहपावती** (रचनाकाल १६६९ ई०)[5] दोनों[6] ही प्रतीकात्मक

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ११३

२. कवि एवं काव्य-परिचय देखें—गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ३९१

३. वही, पृ० ४००

४. संमत सत्रसो चली गैउ। तेरह अधीक ताहि पर भैऊ॥
शाहजहां छोड़ि दुनिआइ। पसरी औरंगजेब दोहाइ॥
— मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ११३ से उद्धृत।

५. संवत सत्रह सै छबीसा। हुत सन सहस दुइ चालीसा॥
कहेउ कथा तब जस मोहि ग्याना। कोइ सुनी रोवत कोइ हंसाना॥
—पुहपावती (ना० प्र० सभा की प्रति), भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३३६ से उद्धृत।

६. पुहपावती एवं प्रेम प्रगास की कथाओं के परिचय के लिए देखें—'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', पृ० ११३-११६ एवं भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३५७-५४

प्रेमाख्यानक रचनाएँ हैं। पहलो में स्त्री और पुरुष के प्रतीक में कवि ने आत्मा-परमात्मा की कथा लिखी है—

इस्त्रि पुरुष के भाव, आतमा और परमात्मा।
बिछुरे होत मेराय, धरनी प्रसंग धरनी कहत ।।

(प्रेमप्रगास)

और दूसरी मे आत्मा को जागरूक रखने के लिए प्रेम-कहानी का वर्णन है—

"जागै कारन मैं चित जानि। हिअ उपजाइ प्रेम कहानी ।।
इह जग रैनि अंधीरी है, जागै कौन उपाई।
तब इह रचना मन रची, कहत सुनत नीसु जाई ।।

(पुहुपावती)

डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव का मत है कि पुहुपावती का रहस्यवाद जायसी से लेकर कबीर और मलूकपंथियो के विविध दार्शनिक तत्त्वो एवं अन्य निर्गुणियो के विश्वासों के समन्वय से निर्मित हुआ है जो उस समय की धार्मिक पृष्ठभूमि को प्रतिबिम्बित करता है।[1] कथा-संगठन आदि की दृष्टि से ये दोनों रचनाएँ एक जैसी है।

नल-दमयन्ती की कथा भी प्रेमगाथाओं का प्रिय विषय रही है। अकबर-कालीन कवि फैजी[2] ने इसे फारसी भाषा मे पद्यबद्ध कर विदेशी मुसलमानों में इसका प्रचार किया। हिन्दी मे इस कथा के आधार पर सूरदास लखनवी ने १६५७ ई० मे एक बृहत् प्रेमाख्यान काव्य **नलदमन** की रचना की।[3] उनका जन्म यद्यपि लाहौर में हुआ परन्तु इस ग्रथ की रचना के समय वे लखनऊ मे निवास करते थे। ग्रथ का आधार विख्यात पौराणिक कथा ही है। कथा में स्थानस्थान पर समासोक्ति एवं यत्र-तत्र अन्योक्ति पद्धति का आश्रय लेकर अलौकिक पक्ष को उभारने का यत्न किया गया है। कवि ने सयोग एवं वियोग दोनों पक्षो का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है, तथापि संयोग के चित्र अधिक गाढ़े है। कवि प्रेम के दार्शनिक महत्त्व से अभिभूत है। जिस प्रकार आग लकड़ी से प्रकट होकर उसे जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार इस शरीर में उत्पन्न होकर प्रेम भी इसे जलाकर ईश्वर से मिला देता है।[1]

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३८४

२. फैज़ी की रचना नलदमन १००३ हिजरी की है। फैज़ी की यह मसनवी अपनी साहित्यिक विशेषताओं एवं कथा की मनोरंजकता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हुई। उर्दू में इस विषय पर लिखी गई रचनाएं फैज़ी के ही अनुकरण पर है।

—उर्दू मसनवियाँ, डॉ० गोपीचंद नारंग, पृ० २१

३. ग्रन्थ एवं कवि परिचय के लिए देखें—नलदमन, सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल एवं श्री दौलतराम जुयाल, भूमिका।

१. अगिन परगट जब काठ तै, काठैं देइ जराइ।
तबहि काठ तासौं मिलै, नातर मिलौ न जाइ ।।

—नलदमन, पृ० ६

इस कथा को सूफी प्रेमाख्यान कहा गया है।[१] परंतु यह अनुमान मात्र है। कवि ने कहीं ऐसा नही कहा और न वह अपने आपको सूफी कहता है। विश्लेषण करते समय सम्पादकों को भारतीयता की झलक कहीं अधिक मिली है।[२] प्रेम को अमर कहने से ही यदि यह मानना आवश्यक हो तो अलग बात है, अन्यथा कवि ने दमयंती एवं नल के माध्यम से स्थान स्थान पर अवर्ण-अभेष के प्रेम के सकेत करते हुए इनके प्रेम का सरस वर्णन किया है। नल एवं दमयंती दोनों ही आरम्भ से अंत तक प्रेमी-प्रेमिका के रूप में हमारे सामने आते है। कहीं कहीं ऐसा आभास होता है कि वे साधक हैं, परन्तु यह स्थिति दोनों की है। उनमें से किसी एक को ईश्वर की पदवी देना असभव है।

नल दमयंती की कथा को आधार बनाकर रचित नरपति व्यास एव जान कवि की रचनाओं का विवरण पीछे दिया जा चुका है, इनके अतिरिक्त कुंवर मुकुन्दसिंह ने संवत् १७९८ में **नल-चरित्र**, सेवाराम ने संवत् १५८३ में **नलदमयन्ती-चरित्र** या **नल पुराण** प्रभृति रचनाओं में प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।[3]

पं० चन्द्रकान्त बाली ने कवि गिरधर द्वारा रचित **नलदमयंती**[४] एवं मुल्तान-निवासी रामचन्द्र की **नलदमयंती**[५] का भी उल्लेख किया है। कवि गिरधर की रचना १७५१ सं० एव रामचन्द्र की स० १७२१ की बताई गई है। एक अन्य कवि महाराज कृत **नलदमयंती रास** (स० १५३९) का भी उल्लेख मिलता है।[६] राजस्थानी कवि वैरागी नारायण ने भी **नलदमयंती आख्यान** की रचना स० १६८२ में की।[७] इस प्रकार माधवानल काम कदला अथवा कृष्ण रुक्मिणी कथाचक्र के समान नलदमयंती कथा भी अत्यन्त लोकप्रिय रही।

सन् १६८३ मे हस कवि द्वारा रचित **चंदरकुंवर री बात**[८] परस्त्री प्रेम-वर्णन के कारण उल्लेखनीय है। यद्यपि 'चदायन' में यही विषय हमारे समक्ष उपस्थित किया गया था, परन्तु हिन्दी-कवियों मे सामाजिक स्वास्थ्य की चेतना अधिक जागृत होने के कारण यह विषय लोकप्रिय नही हो सका। यथासंभव परपति या परकीया

---

१. नलदमन, भूमिका, पृ० १३-३०

२. 'नलदमन' की भूमिका में विद्वान् सम्पादक ने पृष्ठ ३१, ३८, ३९, ४० पर इससे मिलते-जुलते विचार प्रकट किए है। सारे वक्तव्य के अन्त में पृ० ६४ पर निष्कर्ष इस प्रकार है—"जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया है वह सूफी न होकर भारतीय ग्रंथों से प्राप्त किया।"

३. नलचरित्र एवं नलपुराण के रचयिता एवं रचना के लिए देखें—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, क्रमशः पृ० ३८५-३६५ एवं ४१६-४२१

४. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३१६

५. वही, पृ० २६८-२६९

६. रास एवं रासान्वयी काव्य, सम्पादक डॉ० दशरथ ओझा एवं डॉ० दशरथ शर्मा, पृ० २०६

७. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, तृतीय भाग, पृ० १७८-७९

८. कथा-परिचय के लिए देखें—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २९६-९९

संबन्धी कथाओं को कृष्ण के व्यक्तित्व से सम्बद्ध कर अलौकिकता प्रदान की गई है। हमारे सामाजिक जीवन में इस विषय का स्थान निर्विवाद है । लंबी-लंबी विदेश-यात्राओं के कारण गृहस्थी पर पड़ने वाले कुप्रभाव एवं दूषित परिणाम व्यक्त करने के लिए भी ऐसी रचनाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

'सत्रहवी' शताब्दी में राजस्थान मे अनेक 'बात' नामधारी प्रेम-कथाएँ लिखी गई पर वे राजपूताने के बाहर तो कुछ प्रभाव ही नहीं डाल सकी, स्वयं राजपूताने में भी बहुत सीमित क्षेत्रों में उनका प्रचार रहा ।[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' मे इस प्रकार की बारह रचनाओं का नामोल्लेख किया है ।[2]

गुरु गोविन्दसिंह रचित **'पाख्यान चरित्र'** की लगभग चार सौ कथाओं में बारह प्रेमाख्यान हैं। इनकी रचना १६९६ ई० में आनन्दपुर मे हुई। यूँ तो ये सभी कथाएँ एक बृहत्तर कथा-योजना की अंग है परन्तु उनका अलग-अलग महत्त्व भी है। जिन रचनाओ की प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत गणना की जा सकती है वे निम्नलिखित हैं --

१. कृष्ण राधिका	**चरित्र संख्या**		**१२**
२. माधवानल कामकंदला	,,	,,	**९१**
३. हीर रांझा	,,	,,	**९८**
४. सोहणीं महीवाल	,,	,,	**१०१**
५. सस्सी पुन्नूं	,,	,,	**१०८**
६. मिरजा साहिबा	,,	,,	**१२९**
७. उषा अनिरुद्ध	,,	,,	**१४२**
८. नल दमयन्ती	,,	,,	**१५७**
९. सम्मी ढोला	,,	,,	**१६१**
१०. रतनसेन पदमावती	,,	,,	**१६६**
११. यूसफ जुलेखा	,,	,,	**२०१**
१२. कृष्ण रुक्मिणी	,,	,,	**३२०**

इनमें पंजाबी लोकथा, फारसी कथा-साहित्य एवं भारतीय पुराण-साहित्य से कथाओं को ग्रहण किया गया है। रचियता ने आवश्यकतानुसार उचित काट-छांट, परिवर्तन-परिवर्द्धन आदि के अधिकार का पूर्ण प्रयोग किया है। फलतः कथाएँ संक्षिप्त हो गई है और उनके वातावरण, चरित्र-चित्रण आदि में भी पर्याप्त अन्तर आया है। मुस्लिम पात्र-प्रधान प्रेमकथाओं---हीर-रांझा एवं सस्सी-पुन्नूं को पौराणिक परंपरा से संबद्ध कर गुरु जी ने मौलिकता एवं साहस का परिचय दिया। इतना ही नहीं उन्होंने लोक-प्रसिद्ध रूप के विपरीत इन कथाओं तथा 'रतनसेन पदमावती' कथा को भी सुखान्त बनाया है।

१. हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २८२

२. वही पृष्ठ २८२

'पाख्यान चरित्र' में यद्यपि लेखक ने अधिकतर कामातुर नारियों के छल-छिद्रों को अनावृत करने मे निर्ममता का परिचय दिया है परन्तु, इन प्रेमाख्यानों मे उसने नारी पात्रो की गरिमा का भी उत्कृष्ट वर्णन किया है। कही भी किसी भी, पात्र का पग प्रेम-मार्ग से एक क्षण के लिए भी नही डगमगाता। हिन्दी प्रेमाख्यानों मे प्रयुक्त होने वाली अनेक रूढ़ियों का प्रयोग गुरु जी ने किया है। ये कथाएँ सीधे-सादे रूप में कही गई हैं। उनमे कला के उत्कर्ष की ओर घ्यान नही दिया गया। गुरु गोविद सिंह ने हिन्दी प्रेमाख्यान-साहित्य को कुछ नवीन कथाएँ तो दी ही, इसके साथ-साथ एक नवीन रचना-पद्धति भी दी। प्रसिद्ध कथाओं को संक्षिप्त एव हृदयग्राही स्वरूप मे प्रस्तुत करने की उनकी शैली अद्भुत है।

गुरदासगुणी ने पंजाबी की प्रसिद्ध प्रेम-कथा को १७०६ ई० में हिन्दी मे **'कथा हीर रांझनि की'** के नाम से काव्य-निबद्ध किया—

'पातसाह के सन् पचासे।
इउं आयो हिरदे गुरदासे॥
कथा हीर रांझे की कहूँ।'[१]

'कथा हीर रांझनि की' नामक ग्रंथ इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि पंजाब मे अद्यावधि उपलब्ध प्राचीनतम प्रेमाख्यान 'हीर दमोदर' के अनुकरण पर ही इसकी रचना हुई, कवि ने इसे स्वीकार किया है—

'करौं कथा जो पाछे सुनी। जिउं बरनी दामोदर गुनी॥'[२]

परन्तु गुणी ने दमोदर का अनुवाद प्रस्तुत नही किया है। श्री सत्येन्द्र तनेजा ने दोनों की तुलना कर गुणी के मौलिक योगदान की चर्चा की है।[३] रचना-व्यवस्था, विषय-वर्णन एव भाषा की दृष्टि से यह रचना हिंदी और पंजाबी काव्य-परम्पराओं के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है।

नल दमयन्ती एवं माधवानल कामकंदला ही के समान उषा-अनिरुद्ध की प्रेम-कथा भी अत्यन्त लोकप्रिय रही है। इस कथा को आधार बनाकर लिखी गई एक रचना कवि परशुराम की है।[४] परशुराम सन् १५४३ (संवत् १६००) के आसपास विद्यमान थे।[५] इनकी किसी भी रचना मे रचनाकाल प्राप्त नही होता परन्तु

---

१. कथा हीर रांझनि की, भाषा-विभाग, पृ० ३८
पंडित चन्द्रकान्त बाली ने 'पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इसे औरंगजेब के जन्म सम्वत् से उलझाने का यत्न किया है। प्रायः बादशाहों के सन्-सम्वत् सिंहासनारूढ होने से ही आरम्भ होते हैं। औरंगजेब १०६८ हिजरी में सिंहासन पर बैठा। उसका पचासवां वर्ष १११८ हिजरी या १७०६ ई० बनता है।

२. वही, पृ० ३८

३. वही, भूमिका, पृ० २६

४. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० २४४

५. सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य, डॉ० शिवप्रसादसिंह, पृ० २०३

डॉ० श्यामसमनोहर पाण्डेय ने इसका रचनाकाल १५७३ ई० लिखा है।[1] इसके अतिरिक्त डा० सियाराम तिवारी ने इस कथा को लेकर रचित निम्नलिखत ग्यारह रचनाओं का उल्लेख[2] किया है—

रचना का नाम	लेखक	रचनातिथि
१. उषा-हरण	देवीदास	ई०सन् १६८५ के आसपास
२. उषा-अनिरुद्ध विवाह	गोपाल	सोलहवीं शती ई० का अन्त
३. उषा-अनिरुद्ध की कथा	भारण शाह	१७४० ई०
४. उषा-चरित्र	रामदास	१७५० ई० से पूर्व
५. उषा-चरित्र	कुन्जमणि	१७७४ ई०
६. उषा-अनिरुद्ध विवाह	रामचरण	१८०२ ई०
७. उषा-हरण	जीवनलाल नागर	१८२६ ई०
८. उषा-कथा	लालदास	१८३६ ई०
९. उषा-लीला	सुन्दरलाल	१८४४ ई०
१०. उषा-हरण	प्रेमानन्द	१८४६ ई०
११. उषा-चरित्र	पहार कवि	१८५० ई० से पूर्व

ये समस्त प्रेमाख्यान इस कथा की लोकप्रियता के प्रमाण है। इनमे स्वप्न-दर्शन-जन्य पूर्वराग एव प्रेम का सुन्दर वर्णन है। इस कथा का नायक सर्वथा निष्क्रिय है। इन रचनाओ में अलौकिक तत्वों की भरमार है। प्रायः सभी में विवाह से पूर्व ही उषा अनिरुद्ध का हास-विलास वर्णित है। केवल जीवनलाल नागर ने नारद द्वारा विवाह का उल्लेख किया है। इनमें उषा के अतिरिक्त सभी चरित्रों का विकास रुका सा लगता है। 'इनमे शृंगार रस अपने सारे अंगों-उपांगों के साथ उपस्थित है।'[3] वियोग शृंगार का वर्णन स्वप्न-दर्शन जन्य पूर्वराग के कारण है। इस वियोग का आधार स्वप्न भी अलौकिक और अस्वाभाविक है जिसके कारण इसकी गहनता न्यून हो गई है। इनमें कोई भी वैसा प्रतिभावान् कवि नही है जो विरह के मार्मिक चित्र उरेह सके'।[4] इन रचनाओं मे अधिकतर कथा-वर्णन की ही प्रवृत्ति प्रधान है।

सन् १७२५ ई० (हि० ११३८) में कवि हुसेन अली ने **पुहपावती** नामक प्रेमाख्यान

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १०६

२. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, पृ० २४४-२५३

३. वही, पृ० ३६५

४. वही, पृ० ३६६

की रचना की ।[1] यह कथा दुखहरन की पुहपावती से भिन्न है । इसमें काशीपुर के राजा मानिकचद एवं रूपनगर के नरेश की पुत्री पुहपावती की कथा है। कथा में नायक-नायिका के मिलन मे किसी प्रकार की बाधाएँ उपस्थित नही होती । यद्यपि कथानक रूढ़ियाँ अन्य प्रेमाख्यानों के समान ही हैं ।

सन् १७३५ ई० में कासिमशाह ने **हंसजवाहर**[2] की रचना की ।[3] फारसी में भी १२५६ हि० में जयसुखराम ने इसे पद्यबद्ध किया ।[4] यह कवि जायसी से प्रभावित है । अत. उन्हीं कथानक रूढ़ियों का उपयोग किया गया है जो 'पदमावत' में मिलती है परंतु 'पदमावत' में समकालीन ऐतिहासिक वातावरण का जो प्रतिबिम्ब सुरक्षित हैं उसका इसमें अभाव है । इसकी दूसरी विशेषता यह है कि न तो इसमें पात्रों के नाम हिंदू रीति के है और न ही घटनास्थल भारतीय । घटनास्थल रूम, बलख, चीन जैसे सुदूरवर्ती देश हैं परंतु नामों एवं स्थानों के इस वैशिष्ट्य के रहते हुए भी कथा का सम्बंध भारतीय लोकजीवन से विशेष है ।[5] अन्त में कासिमशाह ने अपनी रचना के कथा-रूपक की ओर भी सकेत किया है ।[6]

सन् १७४१ में सभाचंद सोंधी रचित **कथा कामरूप** पटियाला स्थित भाषा-विभाग में सुरक्षित है ।[7] यह कथा भी अन्य प्रेमाख्यानों के समान कथानक रूढ़ियों से समृद्ध है । सभाचद ने यह दावा किया है कि प्रेमरस से ओत-प्रोत यह कथा फारसी में तो मिलती थी परंतु भाषा में इसका अस्तित्व नहीं था ।[8] कवि का यह कथन सही नहीं जँचता क्योकि महाकवि केशव के भाई हरिसेवक मिश्र द्वारा लिखित एक 'कामरूप कथा' का उल्लेख डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है ।[9] एक अज्ञात कवि द्वारा

१-२. कवि एवं रचना के परिचय के लिए देखे—हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ० सरला शुक्ल, पृ० ४९७-५०४ एवं ४३०-४५०

३ ग्यारह सै उंचास जो आजा, तब यह कथा प्रेम कवि साजा ।

—हंसजवाहर, पृ० ८

४. उर्दू मसनवियां, डॉ० गोपीचंद नारंग, पृ० १११

५. अवध के प्रमुख कवि, व्रजकिशोर मिश्र, पृ० १०६

६. कासिम कथा जो प्रेम बखानी । बूझे सोई जो प्रेमी ज्ञानी ॥
कौन जवाहर रूप सोहाई । कौन शब्द जो करत बड़ाई ॥
कौन हंस जो दरशन लोभा । कौन देश जेहि ऊँचे शोभा ॥
कौन पंथ जो कठिन अपारा । कौन शब्द जो उतरे पारा ॥

—हंसजवाहर, पृ० २७२

७. सप्तसिंधु अगस्त १९५५, श्री महेन्द्र का लेख ।

८. देखी हती फारसी माहीं । भाखा में देखो कहूँ नाहीं ।

—कथा कामरूप (हस्तलिखित)

९. हिन्दी साहित्य, पृ० २८१

रचित **कामरूप की कथा** का उल्लेख डॉ० सरला शुक्ल ने किया है।[1] ये कथाएं[2] सभाचंद सोंधी के कथानक से बहुत अधिक मेल खाती है। अतः ऐसा अनुमान लगाना नितांत उचित है कि उत्तरी भारत में यह कथा प्रसिद्ध रही होगी। पजाबी के कवि अहमदयार ने भी इस कथा को पद्यबद्ध किया है।

सन् १७४३ में नूर मुहम्मद ने **इन्दरावती**[3] की रचना की। नूर मुहम्मद की यह रचना अति विस्तृत है। कवि ने इस कथा को रूपक बनाने की दृष्टि से पात्रों के नाम वैसे ही रखे है। मार्गदर्शन करने वाला तपस्वी 'गुरुनाथ', 'राजकुंवर' की रानी सुदंर सांसारिक मोह का ही रूप है। स्थानों के कई नाम भी द्वयर्थक ही है, अगमपुर, पृथ्वीपुर, देहांतपुर आदि। कथा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में विभाजित है। राजकुँवर एवं इन्द्रावती का विवाह हो जाने पर पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है। उत्तरार्द्ध में रानी सुन्दर ही की गाथा है जो असीम धैर्य एवं उत्साह से पुत्र का लालन-पालन करती है एवं राज्य तथा अपने सत् की रक्षा करती है। अन्त में राजकुंवर अपनी नवविवाहिता प्रेमिका इन्द्रावती को लेकर उसके पास आ जाता है। प्रथम पत्नी का इतना उत्कर्ष अन्य प्रेमाख्यानों मे दुर्लभ है। लेखक इससे किस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है, यह स्पष्ट नही किया गया।

अलीमुराद कृत **कुंवरावत** की एक प्रति श्री गोपालचंद्रसिह के निजी संग्रहालय में सुरक्षित है। हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज विवरणों में इसका उल्लेख नहीं है।

१. हिन्दी के सूफी कवि और काव्य, पृ० ५७४

२. कामरूप एवं कामकला का किस्सा अत्यन्त लोकप्रिय किस्सा रहा है। इसके आधार पर प्राचीनतम उपलब्ध रचना मीर मुहम्मद काज़िम हुसैनी जोकि अब्दुल्ला कुतुबशाह का नौकर था (१६२६-७२) की है। रीव (कैटलाग आव् दि पर्शियन मैनुस्क्रिप्ट इन ब्रिटिश म्यूज़ियम, चर्ल्स रीव) का विचार है कि यह कथा संस्कृत से ली गई है। उसके अनन्तर हिम्मत खां ने इसे 'किस्सा कामरूप' (१०९२ हि०) के नाम से तथा मुराद ने मसनवी 'दस्तूरे हिम्मत' (१०९६ हि०) के नाम से फारसी में लिखा। उर्दू में प्राचीनतम उपलब्ध रचना तहसीनुलदीन (११७० हि०) की है जो मुराद की रचना का अनुवाद है। तहसीनुलदीन की रचना पर गारसां दा तासी बहुत मुग्ध थे। उन्होंने उसका अनुवाद फ्रांसीसी में 'लैस एवेंचर्स डि कामरूप' के नाम से किया वह १८३४ में पैरिस में प्रकाशित हुआ। १८३५ में तासी ने उसका दक्खिनी पाठ भी प्रकाशित किया। डब्लू० फ्रेंकलिन ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। इसका संक्षिप्त सरकरण १८८१ में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। जर्मनी में भी इसका अनुवाद हुआ और गेटे nchatzbare) कहा था। तहसीनुलदीन के बाद उर्दू में इसको कई कवियों ने काव्यबद्ध किया।

—उर्दू मसनवियां, डॉ० गोपीचंद नारंग, पृ० ८०-८८

तहसीनुलदीन की यह कथा सभाचंद की कथा से बहुत मिलती है। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों के प्रेरणास्रोत समान रहे होंगे।

३. कवि एवं रचना के परिचय के लिए देखें—इन्द्रावती, सं० श्यामसुन्दरदास, भूमिका।

डॉ०सरला शुक्ल ने अपने शोध-प्रबंध में इसका विवेचन किया है[१]। श्री गोपालचंद्रसिंह की प्रति खडित है, फलतः ग्रंथ का रचनाकाल संदिग्ध है। डॉ० यश गुलाटी ने इस प्रति में आये भिन्न-भिन्न योगी संप्रदायों, संलग्न मुक्तकों में आये पूर्ववर्ती संतों के नामोल्लेख तथा कुछ अन्य अन्तः साक्ष्यों के आधार पर इसका रचना काल १७८० ई० के आस-पास सिद्ध किया है।[२] इस कथा में अनेक फारसी एवं भारतीय कथानक-रूढ़ियों का सम्मिश्रण किया गया है।

शेख निसार ने **यूसफ जुलेखा** की रचना १७९० ई० (१२०५ हि०) में की।[3] उन्हे यह सच्ची कथा कहने की प्रेरणा हजरत याकूब के पत्र-विरह से मिली जिसकी असह्यता का अनुभव उन्हें अपने बाईस वर्षीय पुत्र लतीफ की मृत्यु पर हुआ।[४] इस शामी कथा को हिदी में सर्वप्रथम अपनाने का श्रेय शेख निसार को ही है। डा०सरला शुक्ल का विचार है कि शेख निसार जामी की 'यूसफ जुलेखा' से प्रभावित है। यूसफ से जुलेखा का मिलन, विवाह तथा गृहस्थ जीवन मे दाम्पत्य प्रेम का प्रकाश जामी के अनुकरण पर ही है।

किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित एवं १८४८ ई० में लिपिबद्ध **रमणशाह शाह-जादा वा छबीली भठियारी'** की कथा उपलब्ध हुई है।[५] इस कथा मे प्रेम की अपेक्षा नारी चातुरी पर ही अधिक बल है। नायक मुसलमान है, दो नायिकाओं में एक हिंदू, एवं दूसरी मुसलमान है। "कुमारी विचित्र कुंवर का विवाह रमणशाह से हिन्दू रीति से करवा कर हिन्दुओं और मुसलमानो के बीच जो सांस्कृतिक साम्य उपस्थित हो चला था, उस ओर संकेत किया गया है।"[६]

१८४८ ई० की एक अन्य रचना फाजिलशाह कृत **प्रेमरत्न** की सूचना भी है।[७] जिसमे नूरशाह एवं माहेमुनीर की प्रेमकथा है। कवि मृगेन्द्र कृत **प्रेमपयोनिधि** (रचनाकाल स० १९१२) में राजकुमार जगत प्रभाकर एवं राजकुमारी ससीकला के प्रेम की अलौकिकता भरी सुखांत कथा है।[८]

इस प्रकार हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान-काव्यों का भडार अत्यन्त समृद्ध है। उसे हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन सभी सम्प्रदाय के कवियों ने सम्पन्न बनाया है।

१. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० ५८२-५९७
२. हिन्दी और पंजाबी सूफी कवियों का तुलनात्मक अध्ययन, टंकित, पृ० ६०३
३. हिजरी सन् बारह सो पांचा। बरनेऊ प्रेमकथा यह सांचा॥

—हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह, पृ० ३३२

४. वही, पृ० ४११-१४
५. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० ३२३
६. वही, पृ० ३२५
७. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृ० ६०७।
८. कवि परिचय के लिए 'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ३४२ तथा कथा के लिए 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य', पृ० ३३७ देखिए।

उसमें हिन्दुई, अवधी, ब्रज, राजस्थानी एवं ग्वालियरी आदि उपभाषाओं का साहित्य समाहित हो जाता है। उसमें अनेक प्रकार के छन्दों के माध्यम से कवियो ने भाव-प्रकाशन किया है। कुछ रचनाओं में उन्मुक्त प्रेम का वर्णन है तो कुछ मे प्रेम का गंभीर स्वरूप उपस्थित किया गया है, कुछ साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की है तो कुछ सामान्य कोटि की भी। इन सब में भिन्नता में एकता का सूत्र खोजने के लिए परिश्रम करने पर, केवल प्रेम एवं आख्यान ये दो ही समानताए मिलती हैं। इन सबका वर्ण्य प्रेम है और माध्यम आख्यान।

पंजाबी के प्रेमाख्यान

गुरुवाणि धारा का प्रचार पंजाब में पंद्रहवी शताब्दी ई० के अन्तिम दशक से प्रारम्भ होकर दो-ढाई शताब्दियों तक व्यवस्थित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से चलता रहा। इस परम्परा ने समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। इसने सहस्रों नर-नारियों को इकट्ठे बिठा कर हिन्दू-मुस्लिम पौराणिक कथाओं तथा दार्शनिक शब्दावली से सुपरिचित करवाया, जन-रुचि को परिमार्जित कर संगीत की ओर आकृष्ट किया, इन विशिष्ट उपलब्धियों के अतिरिक्त इस धारा की अपनी न्यूनताए भी थी, नित्यप्रति एक ही प्रकार के सदर्भो, सिद्धांतों तथा शब्दावली के श्रवण से लोकमेधा जड़ एवं काव्यास्वादन की प्रवृत्ति कुण्ठित हो गई। मुक्तक शैली की रचनाओं के अधिक प्रचार के कारण प्रबध-काव्य की धारा अवरुद्ध हो गई। प्रारंभिक पजाबी साहित्य मे प्रबंधकाव्यों के अभाव का यही कारण है। इस भाषा के काव्य में आध्यात्मिक संदेश की एक विशाल निधि वर्तमान थी जो समाज के एक वर्ग विशेष को तो सतुष्ट कर सकती थी परंतु इसके साथ समग्र लोक-चेतना का तादात्म्य अस्वाभाविक था, इसलिए जनसाधारण आत्म-तोष के लिए लोक कथाओं एवं लोक गीतों की ओर आकृष्ट हुए। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह लोक-साहित्य उत्सवों एव मेलों के लोक-गायकों---ढाढ़ियों, मिरासियों एवं भाटों द्वारा गाया जाता था। फरीद एव नानक जैसे वंदनीय महापुरुषों के प्रभाव के कारण आध्यात्मिक परम्पराओं में उलझे हुए पंजाबी साहित्य में एक नवीन धारा का श्रीगणेश करने का श्रेय लोकरुचि की इस तीव्रता को ही है। साधारण जनता ने इन लोककथाओं तथा इनके पात्रों के साथ इतनी अधिक एकात्मकता स्थापित कर ली थी कि शाहहुसैन एवं बुल्ल्हेशाह जैसे सूफी तथा भाई गुरदास जैसे गुरुभक्त को भी इनका महत्व स्वीकार कर इन्हें अपने काव्य में मान्यता देनी पड़ी। भक्तों एवं सूफियों की वाणियों में इनके महत्व की स्वीकृति से लोक-रुचि निर्भय हो गई। फिर तो दामोदरों और पीलुओं ने उसे लोकमुखों से उठाकर साहित्य में प्रतिष्ठित कर दिया।

भाई गुरदास की सत्ताईसवी वार'सौरठ बीजा गावीए' में प्रयुक्त 'गावीए' के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय तथा उससे पहले प्रेम-काव्य गाकर सुनाने की प्रथा थी और लोक-कवि तथा ढाढ़ी, मिरासी आदि पेशेवर गायक

विवाहादि सामाजिक उत्सवो एवं मेलों में इन्हे गाते होंगे। किस्सा शब्द के प्रचलन से पूर्व पजाबी साहित्य में इस कथात्मक काव्यरूप के लिए 'वार' शब्द का प्रयोग मिलता है। इस तथ्य से उन विद्वानो के विचार का निराकरण हो जाता है जो पजाबी किस्सा-काव्य का आरंभ मुसलमानो के आगमन एवं प्रभाव के परिणामस्वरूप मानते है। वस्तु के आधार पर किस्सो के निम्नलिखित स्रोत बताए गए है—

१. राधाकृष्ण, नल दमयंती, भर्तृहरि, आदि संबधी प्राचीन भारतीय कथाओं पर आधारित रचनाएं।

२. फारसी अरबी से अनूदित यूसुफ जुलेखा, शीरी फरहाद, लैला मजनूं आदि की प्रेम-कथाएं।

३. पंजाबी की अपनी लोक-कथाओं पर आधारित रचनाएं, जैसे हीर रांझा, सोहणी महीवाल, पूरणभगत, रसालू आदि।

४. बलोची, सिंधी, राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रचलित आख्यानों के आधार पर रचित सस्सी, ढोला-मारू आदि आख्यान।[1]

यह वर्गीकरण कथा-स्रोत से ही संबंधित है। इसमें वस्तु एव अभिव्यक्ति पक्ष की ओर ध्यान नही दिया गया। इन तत्वों को दृष्टि में रखते हुए डा० गोपाल सिह ने पंजाबी किस्सा-काव्य को दो भागों में विभाजित किया है—

१. **कथा-काव्य**—पद्य मे किसी छोटी कहानी का वर्णन करना। राजा विक्रम, भर्तृहरि, गोपीचंद, पूरणभगत, पजफूलां रानी आदि से सम्बधित अनेक छोटी-छोटी रचनाएं इसी कोटि की है।

२. **किस्सा-काव्य अथवा मीट्रीकल रोमांस**—लौकिक प्रणय से संबंधित रचनाओं को इस कोटि के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए हीर, सोहणी, जुलेखा आदि के आख्यान इसके उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किए है।[2]

परंतु यह वर्गीकरण भी वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रथम कोटि की रचना पूरणभगत दूसरी कोटि में भी गिनी जा सकती है और दूसरी कोटि की अनेक रचनाएं केवल कथामात्र ही हैं। इन वर्गीकरणों को उद्धृत करने का प्रयोजन पंजाबी किस्सा-काव्य के विषय एवं क्षेत्र के विस्तार का संकेत करना मात्र है। इनकी संख्या भी विशाल है। परंतु इस खंड मे मध्यकाल में रचित केवल प्रेमाख्यानक रचनाओं का ही परिचय दिया जा रहा है। इसमें संदेह नहीं कि पजाबी साहित्य में इन प्रेमाख्यानों को विशेष महत्व मिला है।

प्रथम उत्थान—दमोदर से पूर्व पंजाबी में 'राय कमाल दी वार' 'सूमेदी वार'[3] आदि का उल्लेख मिलता है परंतु वे संक्षिप्त हैं। वैसे तो डा० मोहनसिंह किसी पुष्य या पुंड्य

१. साहित्त प्रकाश, परमिदर सिंह किरपाल सिंह, पृ० ८१
२. साहित्त दी परख, पृ० ७०-७३
३. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, दरदी, पृ० ५५-६०

कवि रचित 'सस्सी' को प्रथम प्रेमाख्यान मानते है[1] परंतु उपलब्ध सामग्री के आधार पर **हीर दमोदर** पंजाबी का प्रथम प्रबंधकाव्य है और पजाबी साहित्य को दर्शन की ऊंची घाटियों से उतार कर लोकरुचि के समतल पर पहुंचाने का श्रेय अभी तक दमोदर[2] को ही दिया जाता है। दमोदर की हीर का रचनाकाल विवादास्पद है। परतु अंत.साक्ष्य के आधार पर यह निर्विवाद है कि दमोदर की यह रचना अकबर के शासन के सुव्यवस्थित होने पर लिखी गई, अतः इसे सोलहवी शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध की रचना मानना चाहिए। पजाबी साहित्य मे अभी तक दमोदर के काव्य-नैपुण्य को समुचित प्रतिष्ठा प्राप्त नही हुई। दमोदर की रचना लोकतत्वों से समृद्ध है। शिक्षा दीक्षा अत्यत साधारण होने पर भी लोक-रुचि की परख एव लोक-जीवन का अनुभव इनकी रचना मे सर्वत्र अनुस्यूत है। इनकी रचना का मुख्य गुण घटना-क्रम का सुनियोजन एव सुन्दर प्रबध-परिकल्पना है।

१. हिस्ट्री आव् पंजाबा लिट्रेचर, पृ० १९ की टिप्पणी; परन्तु इस कवि को मिश्रबन्धुओं ने तथा ग्रियर्सन आदि ने हिन्दी का कवि माना है। इनकी कोई भी रचना नही मिलती, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि पुष्य भाट ही पुष्पदंत है। (हिंदी साहित्य, पृ० ८)

२. दमोदर—इसके बारे में हमारा ज्ञान अत्यल्प है। अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है कि वह गुलाटी खत्री था, कही बाहर से आकर 'चूचक' के नगर में बस गया था और वही पर दुकान करता था। दमोदर ने अपनी रचना में कई स्थानो पर अपने आपको घटना-प्रवाह का प्रत्यक्ष द्रष्टा बताया है। कथा में अनेक बार अकबर का उल्लेख किया और अन्त में एक पद्य में विक्रमी सम्वत् का उल्लेख कर विद्वानो के समक्ष उलझन उपस्थित कर दी। वह पद्य इस प्रकार है—

पंदरा सै अते उनत्तरी सम्मत विक्रम राए।
हीर ते रांझा होए अकट्ठे झेड़े रब्ब मुकाए।
पातशाही जो अकबर संदी दिन दिन चढ़े सवाए।
आख दमोदर दे असीसां शाहिरो बाहर आए॥ (हीर दमोदर, पृ० २१४)

इस १५२९ वि० को अकबर काल से संगत करने के लिए किसी ने पन्द्रह सौ उन्नतरा (१२६९) और किसी ने सोलह सौ उन्नतरी (१६२९) किया, किसी ने इसे हीर एवं रांझे के मिलन का संवत् माना तो किसी ने कथा के इस भाग की समाप्ति का। पं०-चन्द्रकान्त बाली ने इसे १५२९ + ९० = १६१९ वि० बताते हुए पंजाब में विक्रम शक सम्वत् की परंपरा का उल्लेख किया है। (पंजाब प्रांतीय हि० सा० का इतिहास, पृ० ११९)। इस आधार पर उन्होने रासो की संगत समस्या को भी सुलझाने का प्रयत्न किया है। डॉ० जीतसिंह सीतल ने सूक्ष्म-विश्लेषण कर अनेक अन्तः तथा बाह्य साक्ष्यो के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि हीर एवं रांझा की जोड़ी पंद्रहवी शती ई० के पूर्वार्द्ध मे वर्तमान रही (हीर वारिस-भूमिका, पृ० ५३)। अतः यह स्पष्ट है कि यह सम्वत किसी भी प्रकार सही नही है। दमोदर ने अपनी रचना को अधिक प्रामाणिक जताने के लिए ही इस प्रकार के उल्लेख किये हैं। यहां यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि सईदसईदी (१६२८-१६५८) ने भी अपने काव्य 'अफसाना दिल पजीर" में ऐसा ही दावा किया है और घटना को काव्यबद्ध करने वाला प्रथम कवि उद्घोषित किया है, जबकि उससे पहले १५७५-१५७९ ई० में किसी समय बाकी कोलाबी की रचना 'मसनवी हीर रांझा' उपलब्ध हो चुकी है।

दमोदर के अनन्तर पीलू[1] रचित **मिरजा साहिबां**[2] पंजाबी मे महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। पीलू ने पंजाबी साहित्य को एक नवीन कथा ही नही एक नवीन दृष्टिकोण भी प्रदान किया है। आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुसार दुर्दैव एव दुख ईश्वरीय देन है परन्तु पीलू ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपना कर यह स्पष्ट कर दिया कि दुर्भाग्य और दुख मनुष्य के चरित्र की उपज है। उपलब्ध रचना कुछ फुटकर छन्दों का संग्रह मात्र है। पीलू की रचना में भी लोक-तत्व ही प्रमुख है। उसमे वर्णन का संक्षेप, नाटकीयता, अतिशयोक्ति एवं अलौकिकता के साथ-साथ भाषा की ग्रामीणता विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पंजाबी प्रेमाख्यान के प्रारम्भिक काल मे ये दो ही रचनाएं उपलब्ध होती है। इसमें सदेह नहीं कि इस काल (१३५० ई०—१६५० ई०) में अनेक कवियों ने रचनाएं लिखी[3] परन्तु आज वे अनुपलब्ध है। केवल दो ही उपलब्ध है—एक सुखान्त और दूसरी दुखान्त। एक सुव्यवस्थित प्रबध काव्य और दूसरी विश्रृंखलित प्रबधहीन खड कृति, एक में लोकवार्ता के तत्व एवं काव्य-तत्व साथ-साथ उपलब्ध होते हैं, दूसरे में लोकतत्व ही प्रधान हैं। एक की भाषा लहदी और दूसरे की केन्द्रीय पजाबी, परन्तु दोनो में ग्राम्यता भरपूर है।

द्वितीय उत्थान—पंजाबी किस्सा-काव्य को फारसी की ओर मोडने का श्रीगणेश हाफिज बरखुरदार[4] ने किया। हाफिज एक प्रबुद्ध कलाकार था। उसने पंजाबी में तीन प्रेमाख्यान लिखे हैं और इन तीनों का ही अपना अलग-अलग महत्व है। **'सस्सी'** यदि इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह भारत की ही प्रेमकथा है और हाफिज ने उसे सर्वप्रथम

१. दमोदर की ही भाँति पीलू का व्यक्तित्व भी पंजाबी इतिहासकारों के मध्य विवाद का विषय है। गुरु अर्जुनदेव के समकालीन एक भक्त पीलू का उल्लेख इतिहास में मिलता है। डॉ० वि० ना० तिवारी ने किस्साकार पीलू के विचार एवं भाषा आदि अन्तः एवं स्थानीय साक्ष्यो के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि भक्त पीलू 'मिरजा साहिबां' का कर्त्ता है (डॉ० वि० ना० तिवारी का शोध प्रबंध, टंकित प्रति, पृ० २७)।

२. पीलू की रचना "मिरजा साहिबां' की कोई प्राचीन हस्तलिखति प्रति उपलब्ध नही है। रिचर्ड-टैंपल ने उसे एक मिरासी के मुख से सुनकर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लीजेंड्स आफ पंजाब' में उद्धृत किया, वहीं से बाबा बुधसिंह ने 'बबीहा बोल' में उसे संकलित किया है।

३ खुलासे-तुल-तारीख (सुजान राय, रचनाकाल (१६९९ ई०) में ऐसा संकेत है कि कई कवियों ने हीर-रांझा की कथा का वर्णन किया।

—ईर अहमद, सं० स० स० पद्म, पृ० १२३

४. हाफिज़ बरखुरदार—पंजाबी साहित्य में दो हाफिज़ बरखुरदारों की चर्चा चल रही है। 'मिरजा साहिबा' के लेखक हाफिज़ ज़िला लाहौर के गांव 'मुसलमानी' के निवासी थे। 'यूसफ जुलेखा' एवं 'सस्सी पुन्नूं' उनके दो अन्य किस्से भी उपलब्ध होते हैं। भाषा के आधार पर ये तीनों कृतियाँ एक ही लेखक की हैं। इन्होंने यूसफ जुलेखा का किस्सा आलमगीर औरंगजेब के समय १०९० हि० (१६७९ ई०) में पूर्ण किया।

काव्यबद्ध किया तो **यूसफ जुलेखा** के द्वारा उसने पंजाबी में विदेशी कहानी को अपना कर नया द्वार खोल दिया। **मिरजा साहिबां** लिखकर उसने लोक-काव्य की प्रचलित परंपरा से भी अपना सम्बन्ध बनाए रखा। हाफिज बरखुरदार ने 'यूसुफ जुलेखा' में कई भारतीय एव विदेशी प्रेम-कथाओं के संकेत भी दिए है,[1] संभव है परवर्ती कवियों ने उनसे प्रेरणा प्राप्त की हो। हाफिज की भाषा यद्यपि आडम्बर रहित है परन्तु उसमे फारसी प्रभाव के कारण नई उपमाओं और कथन के नए ढ ंग का समावेश आवश्यक ही था। यह प्रभाव मिरजा साहिबा एवं सस्सी में अपेक्षाकृत कम है।

अन्य कथाओं की अपेक्षा हीर की धारा का प्रवाह अधिक है। दमोदर के अनन्तर अहमद[2] ने १६८२ ई० में हीर की रचना की।[3] अहमद इसे दुखान्त रूप देने वाला पहला कवि था। उसी ने इसमें इस्लामी संस्कारों का सम्मिश्रण किया। किस्सा-काव्य में बैत छन्द का भी श्रीगणेश अहमद ने ही किया। अहमद ने कथा का जो प्रारूप अपनाया, वही बाद के कवियो मे स्वीकृत हुआ। अहमद ने ही प्रथम बार इसे शुद्ध रूप से लौकिक प्रेम की कथा बनाकर उपस्थित किया। दमोदर मे कही-कही जो आध्यात्मिक सस्पर्श थे, वे भी समाप्त कर दिए गए।

अहमद से प्रेरित होकर १७४६ ई० के आस-पास मुकबल[4] ने **हीर रांझा** का किस्सा लिखा। मुकबल की हीर सुखान्त है और उसका महत्व किस्से के सक्षेप एवं सुसगठन में है। मुकबल में सदाचार पक्ष की प्रधानता एवं उत्तेजक शृ गार का अभाव है। भाषा यद्यपि केन्द्रीय पजाबी है परंतु उसमे फारसी शब्दावली का निःसकोच प्रयोग हुआ है।

मियां चिराग ऐवाण ने ११२१ हिजरी मे औरंगजेब के पुत्र शाह मुअज्जम (बहादुरशाह) के समय मे (१७०७-१७१२) एक सक्षिप्त सी '**हीर**' लिखी।[5] इनकी रचना से पता चलता है कि उस समय यह प्रेम-कथा अति प्रसिद्ध थी।

---

१. यूसफ जुलेखा, भाषा-विभाग, पृ० ४३ एवं १११

२. अहमद—इनके विषय मे केवल इतना ही ज्ञात है कि इन्होने औरंगजेब के समय 'हीर' लिखी—हीर अहमद; सं० स० स० पद्म, भूमिका, पृ० १८

३. वही, भूमिका, पृ० २०

४ मुकबल—इनके जीवन एवं जन्म-स्थान के विषय में भी हमारा ज्ञान शून्य है। इनके 'जंगनामे' से केवल यह पता चलता है कि ये मुहम्मद शाह रंगीले के समकालीन थे और इनका नाम शाह-जहान मुकबल था।

—मुकबल, भाषा-विभाग, भूमिका, पृ० १-२

५. पुन्नी हीर तुमाम थीआ तारीख पंजम शाअबानी।
यारां सै सन् साल इक्कीवाँ विच मोमन दिल जानी॥
जमाना शाह मुअज्जम सच्चा सजावल मालक रुमानी।
आलिम फाजिल आदल गाजी रैईअत अहसानी॥

—पंजाबी जबान दा अदब ते तारीख, अब्दुलगफूर कुरैशी, पृ० २३९

पंजाबी सा० दा इतिहास—मध्यकाल, भाषा-विभाग, पृ० २२ .पर 'बारां सै' छपा है जो स्पष्ट रूप से मुद्रण की भूल प्रतीत होती है।

अंकित हुआ है। तत्कालीन पंजाब की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशा का वारिस ने सुन्दर एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। वारिस को अपनी काव्य-कला पर गर्व है और बाद के कवियों ने उसके महत्व को स्वीकार भी किया है।[1] वारिस विस्तार-प्रिय कवि है। उसने सांसारिक प्रेम तथा मनुष्य की प्रकट अप्रकट सभी इच्छाओं को व्यक्त किया है। उसकी कविता में संगीत का अद्वितीय आकर्षण है।

मौलवी लुत्फअली[2] ने १२०६ हिजरी में **मसनवी सैफ़ुलमलूक** की रचना की। कवि ने स्वयं उसे 'सैफलनामा' कहा है परंतु प्रसिद्ध 'सैफ़ुलमलूक' ही हुआ। रचनाकाल पुस्तक के अंत में दिया हुआ है परतु पाठ भेद[3] के कारण सदेह बना है। श्री मुहम्मद बशीर-अहमद ने ११६५ माना है। हमारा विचार है कि बारहवी शती हिजरी से नौ वर्ष गिनने पर १२०६ हि० ही इसका सही रचनाकाल है। कवि के आश्रयदाता नवाब बहावल खाँ की मृत्यु १२२४ हि० मे हुई और उसकी प्रशंसा में, इस रचना में कवि ने अनेकशः, कथा-प्रवाह रोककर, पद्य लिखे हैं। इसकी भाषा लहंदी है जिस पर मुलतानी का विशेष प्रभाव है परन्तु फारसी शब्दावली अधिक है। साहित्यिक दृष्टि से यह रचना विशेष महत्व की है। कथा गवासी के 'सैफ़ुलमलूक बदी-उलजमाल' से पूर्णतया मिलती है।

वारिस के समकालीन हामद ने भी १२२० हि० मे **किस्सा हीर रांझा** समाप्त किया।[4] उसने अपने किस्से में गुरदास खत्री, मुकबल एवं अहमद की रचनाओं से

---

१. (क) वरिसशाह सुखन दा वारिस ॥

—अहमदयार, अहसनुलकरिसस, भाषा-विभाग, पृ० २७१

(ख) बारिसशाह सुखन दा वारिस निदे कौन इन्हां नूं।
हरफ उहदे ते उंगल धरनी नाहीं कदर असानूं ॥

—मियाँ मुहम्मद बख़्श, सैफुलमलूक, भाषा-विभाग, पृ० ६५७

२. मौलवी लुत्फअली—११२९ हिजरी में बहावलपुर के समीप पैदा हुए और रियासत बहावलपुर के नवाब बहावलखाँ (मृत्यु १२२४) के दरबार में पहुँच गए। इस रचना के अतिरिक्त उनकी अन्य कोई रचना उपलब्ध नही होती, यद्यपि कुछ धार्मिक रचनाओं की सूचना है।

—मसनवी सैफुलमूलूक, सं० मुहम्मद बशीर अहमद, भूमिका, पृ० १३-२१

३. 'बारहवीं सखत सदी थों जो हिक पजक चा धनीवे।'
एवं 'बारहवीं सखत सदी थों हिक पंजक चार धनीवे'

अतः रचनाकाल बारहवीं सदी समाप्त होने के बाद या पहले पांच या नौ वर्ष माने जा सकते हैं। इस आधार पर इसकी रचना तिथि ११६१, ११६५, १२०५ और १२०६ हिजरी में से कोई भी मानी जा सकती है।

(पहला पाठ मुहम्मद बशीर द्वारा संपादित रचना 'मसनवी सैफुलमलूक' पृ० ३७१ पर है एवं दूसरा शेखगुलाम अली बरकत अली लाहौर द्वारा मुद्रित 'सैफुलमलूक' पृ० ७१ पर। मौलाबख्श कुश्ता ने अपनी रचना पंजाबी शाइरां दा तज़करा में (पृ० १३६) इसका रचनाकाल १२०६ हि० ही माना है।

१. सन् बारां सौ वीह सी खास हिजरी, आते बार जानो वीरवार मीआं।
रज्जब सत्तवी जान तारीख आही कथा जी जान होई कार मीआं।

—हीर हामद, पंजाबी शाइरां दा तज़करा, मौला बख्श कुश्ता, पृ० १३४ पर उद्धृत

प्रेरणा ग्रहण करने का उल्लेख किया है,[1] इसीलिए भाषा में यत्र-तत्र हिन्दी शब्दावली का पुट मिल जाता है। इस कथा की मूल प्रेरणा धार्मिक है जिसकी पुष्टि रचना के प्रारम्भिक अंश से हो जाती है। इस रचना में प्रत्येक घटना का शीर्षक पंजाबी चौपाइयों में है। कवि ने रचना के आरम्भ में एक छोटा सा 'कथावतरण' भी दिया है। ये दोनों बातें पंजाबी प्रेमाख्यानो में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती, कवि की अपनी ही उद्भावनाएं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि लोक पर चलने वाला नहीं।

हीर पंजाबी किस्सा-काव्योद्यान का वट-वृक्ष है। इसके आस-पास अन्य किस्सा कृतिया विशेष प्रसिद्ध नही हो पाईं। वे तो छोटी-मोटी झाडियो के रूप मे ही इधर-उधर सिर उठाती रहीं। जो भी कवि अपने महत्व को प्रतिष्ठत कराना चाहता वह इस कथा पर अवश्य कलम आजमाता, यह स्थिति आधुनिक काल तक रही है। बेहवल ने हाफिज बरखुरदार को आधार मानकर १७७८ ई० में **सस्सी पुन्नु** की रचना की। यह रचना पर्याप्त विस्तृत है। इन्होंने **हीर** की कथा को भी पद्यबद्ध किया।[2] १७८५ मे मुंशी सुंदरदास आराम कृत **किस्सा सस्सी पुन्नू**[3] भी उपलब्ध होता है। मुंशी महोदय ने फारसी में अनेक रचनाएं की परन्तु पंजावी मे इनकी एकमात्र यही रचना उपलब्ध होती है।

मौ० नूरमुहम्मद ने १२१५ हि० (१८०० ई० के लगभग) में '**चंदरवदन महियार** की प्रेमकथा लिखी। यह इसी नाम की किसी फारसी मसनवी पर आधारित है। दक्खिनी में मुकीमी ने बहुत पहले (१६२७ ई०) इसे लिखा था। इस कथा को लेकर उर्दू में भी अनेक मसनवियां लिखी गई है जिनका उद्देश्य शुद्ध रूप से मुसलमान प्रेमी की विजय दिखाना था।[4]

मौलवी अब्दुलहकीम बहावलपुरी ने १२१८ हि० (१८०२ ई०) में जामी की 'यूसफ जुलेखा' के आधार पर **यूसफ जुलेखा** की रचना की। वही विषय है वही छंद, वास्तव मे यह जामी का अनुवाद सा लगता है।[5] उपयुक्त पंजाबी शब्दों के प्रयोग में कवि की सामर्थ्यहीनता के कारण भाषा फारसी शब्दावली से बोझिल हो गई है।

---

१. चाःल आपणे मंग के मुकबले तों।
 लूण आहमदे दा विच पावसां मैं।
 घिउ हट्ट गुरदास दा विच्च पावां।
 खिचड़ी जोड़ के देग रभावसां मैं॥
 —पंजाबी साहित्त दा इतिहास, नरूला, पृ० २११ से उद्धृत

२. सस्सी हाशम, सं० हरनामसिंह शान, पृ० १३१

३. वही, पृ० १३०।

४. उर्दू मसनवियाँ, डॉ० गोपीचन्द नारंग, पृ० १८१-२०५

५. पंजाबी शाइरां दा तज़करा, मौला बख्श कुश्ता, पृ० १३६

वारिस के अनन्तर इस काव्यधारा में उल्लेखनीय नाम हाशम का है।[1] हाफज बरखुरदार के बाद हाशमशाह ही ऐसा प्रतिभाशाली कवि है जिसने अनेक किस्से एवं अन्य विविध रचनाएं लिखी। हाशम की रचनाएं हिन्दी एवं फारसी में भी उपलब्ध होती है।[2] परन्तु उनकी प्रसिद्धि पंजाबी रचनाओं के कारण ही है। इन्होंने **शीरी फरहाद, सोहणीं-महिवाल, सस्सी-पुन्नू** एवं **हीर-रांझे की बिरती** ये चार प्रेमाख्यान लिखे।[3]

सोहणी की कथा को सर्वप्रथम पद्यबद्ध करने का श्रेय हाशम को ही है। यद्यपि शाह हुसैन एव भाई गुरदास की रचनाओं में भी इस कथा की ओर संकेत किया गया है परन्तु हाशम से पूर्व इसे आधार बना कर लिखी गई एक भी रचना उपलब्ध नहीं होती। इसमें सन्देह नही कि हाशम रचित 'सोहणी महीवाल' में कला का वह सौन्दर्य नही है जो 'सस्सी' मे है परन्तु, शब्द-प्रयोग के सौन्दर्य के दर्शन 'सोहणी महीवाल' में भी होते है। विरह-वर्णन मे हाशम की 'सस्सी' का स्थान सर्वोपरि है। हाशम ने विरह-पीड़ा को प्रकट करने में अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। उसकी रचनाओं में कथा-विस्तार का अभाव अवश्य है परन्तु भावों की गम्भीरता अथाह है। इन दो के अतिरिक्त 'शीरी फरहाद' सम्बन्धी इस्लामी कथा को भी पजाबी में सर्वप्रथम पद्यबद्ध करने का श्रेय हाशम को ही है। हाशम की रचना के मुख्य स्वर को देखते ही कुछ आलोचक उन्हें प्रबन्ध-कवि नहीं मानते, यद्यपि उनका उद्देश्य विरह की तीव्रता को प्रकट करना है[4] तथापि इसका आधार तो कथा ही है। अतः, प्रबन्धत्व का अभाव मानना उचित नही।

बरखुरदार से हाशम तक पजाबी किस्सा-काव्य का उत्कर्ष-काल है। इसमें अनेकविध रचनाएं लिखी गईं। विदेशी कथाओं एव फारसी मसनवियों के अधार पर

---

१. हाशम शाह (१७५३-१८४३) जाति के कुरैशी सैयद थे। बढ़ई के काम के साथ-साथ चिकित्सा-कार्य भी करते थे। इनका जन्म ११६६ हि० में जगदेवकला (अमृतसर) में हुआ। चिकित्सा-कार्य के कारण ये जन-क्षोभ का शिकार होकर महाराजा रणजीतसिंह के कारागार में भी रहे। यही पर महाराजा से परिचय बढ़ा। फलतः महाराजा की चिकित्सा करने के पुरस्कार स्वरूप एक जागीर मिली। चिकित्सा के अतिरिक्त ज्योतिष में भी इनका अच्छी रुचि थी। अरबी, फारसी एवं हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। इनके जन्म-मरण की तिथियों के विषय में पर्याप्त मतभेद का उल्लेख भी हरनामसिंह शान ने अपनी रचना 'सस्सी हाशम' में किया है।

२. यथा हिन्दी ज्ञान प्रकाश, श्लोक, चिन्ताहर-टीका पंजग्रंथी, वही,

३. हाशम रचनावली, सं० प्यारासिह पदम पृ० ३७-४०

४. इस सम्बन्ध में मुहम्मद बख्श का कथन भी उल्लेखनीय है :—

ढूंडि रवाइत सच्ची कूड़ी करना सी इह कारा।
कर इस दरद बिआन करन दा, आहा मतलब सारा॥

—सैफुलमलूक, भाषा-विभाग पृ० ६५८

भी रचनाएं लिखी गईं। पंजाबी प्रेमाख्यानों को फारसी मसनवियों की शैली पर ढालने का क्रम इस काल में आरम्भ हो गया। यद्यपि हीर की कथा ने लोकमानस एवं कवि मानस मे महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था परन्तु अन्य देशी विदेशी आख्यानों की भी रचना होती रही।

तृतीय उत्थान--हाशम एवं उसके समकालीन अन्य कवियों की दृष्टि में संभवतः रचनाओं की संख्या अधिक महत्वपूर्ण हो गई। यद्यपि हाशम ने भी चार प्रेमाख्यान लिखे परतु प्रेम-वेदना की तीव्रता ने उनकी रचनाओ के काव्य-तत्व को अक्षुण्ण रखा। बाद के कवियों के लिए यह संभव न हो सका।

अहमदयार[1] अपनी रचनाओं की विशाल संख्या पर गर्वित है।[2] उन्होने भिन्न-भिन्न देशी, विदेशी, धार्मिक एवं प्रेम-कथाएं लिखी। अहमदयार रचित प्रेमकथाएं निम्नलिखित है। (१) **हीर रांझा,** (२) **सस्सी पुन्नू,** (३) **राजबीबी नामदार,** (४) **कामरूप कामलता,** (५) **चंदबदन,** (६) **लैला मजनूं,** (७) **सोहणी महीवाल,** (८) **हातमनामा,** (९) **अहसनुलकस्सिस।**

अहमदयार की कई रचनाएं अति संक्षिप्त हैं। उनमें मौलिकता एवं कल्पना की कमी भी स्पष्ट परिलक्षित होती है परतु भाषा का वैभव अद्वितीय है। डॉ० मोहनसिह ने तो यहां तक लिखा है कि इनकी रचनाओं के आधार पर शुद्ध, साभिप्राय एवं विकासोन्मुखी 'लहंदी' के मुहावरों एवं लोकोक्तियों का कोश तैयार किया जा सकता है[3]। इनकी कृतियों में कही-कही सुन्दर आलंकारिक चमत्कार एवं शृंगार के नग्न चित्र भी मिलते हैं। 'अहसनुलकस्सिस' मे तो कुरान की आयतें अपने मूल रूप मे गुंफित हैं जिसके कारण यह रचना अधिक बोझिल एवं नीरस हो गई है।

अहमदयार के ही समान अमाम बख्श[4] ने भी अनेक रचनाएं लिखीं।

---

१. अहमदयार (१७६८-१८४५)—इनका जन्म एक किसान परिवार में जिला गुजरात के इस्लामगढ नामक ग्राम में हुआ। खेतीबाड़ी में रुचि न होने एवं किसी स्त्री के प्रेम में बदनाम हो जाने के कारण घर से निकल गये। शेष जीवन मुराला नामक गाँव में बिताया। इनकी रचनाओं को तीन कोटियों में बांटा जा सकता है—प्रेमकाव्य, इस्लामी धर्मग्रंथ एवं ऐतिहासिक काव्य। अधिकांश किस्से फारसी काव्यों की कथाओं एवं लोक कथाओं पर ही आधारित हैं, यह तथ्य कवि ने अपनी रचना अहसनुलकस्सिस (पृ० २७३) में स्वीकार किया है।

२. जितने किस्से जोड़े जे ओह गिणन लग्गा में सारे।
सुणन वाले बेज़ार हो जावण, नाले लिखणहारे॥
—अहसनुलकस्सिस, भाषा-विभाग, पृ० २७३

३. ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ७२।

४. अमाम बख्श (१७७८-१८६३ ई०)—जिला सियालकोट के निवासी थे। कुरान पढ़ाना एवं कविता लिखना इनका कार्य था। इनकी रचनाओं पर फारसी मसनवियों का प्रभाव प्रत्यक्ष है। अधिकांश रचनाओं का स्रोत भी फारसी मसनवियां हैं। प्रेमकथाओं के अतिरिक्त इनकी कुछ धार्मिक रचनाएं भी उपलब्ध होती हैं।

लैला मजनूं, गुलसनोबर, चन्दरबदन, किस्सा मलिकजादा शाहपरी, शाह बहराम, गुलबदन प्रेमकाव्य है। इनकी रचनाओं में काव्य-वैभव की अपेक्षा 'कथारस' की ही प्रधानता है। अधिकांश रचनाएं अलिफ लैला की कथाओं अथवा फारसी मसनवियो पर आधारित है। इनकी रचना 'शाह बरहाम' नवीनता एवं द्रुत कथा-वर्णन के कारण विशेष प्रसिद्ध है।

कादरयार[1] ने यद्यपि अपने सम-सामयिकों के ही समान अनेक कृतियां प्रस्तुत की है परन्तु प्रेमाख्यान के रूप में केवल **सोहणी-महीवाल** की ही रचना की। प्रियतम के मिलन के लिए व्याकुल एवं प्रेम में अविचल 'सोहणी' का रुदन अत्यन्त मर्म-स्पर्शी है। कादरयार की इस कृति में जैसी भाव-प्रवणता है वैसी उसकी अन्य किसी रचना मे उपलब्ध नही होती।

सम्वत् १८८२ अर्थात् १८२५ ई० में रचित जोगसिंह की हीर विशेष प्रसिद्ध रही है।[2] दमोदर के अनन्तर संभवतः यही महत्त्वपूर्ण हिन्दू कवि है जिसने इस धारा में पदार्पण किया। इसके उपरान्त कई अन्य हिन्दू-सिक्ख कवियो ने इस प्रवाह में योगदान प्रारम्भ कर दिया। यह रचना १८८९ ई० में 'मुजतबाई प्रेस' लाहौर में छपी थी[3] परन्तु अब दुर्लभ है। डॉ० दरदी ने कवि गंगाराम द्वारा लिखित 'मैनांवती' का भी उल्लेख किया है। यह पाडुलिपि पजाब यूनिवर्सिटी लाहौर में सुरक्षित है। कर्त्ता का परिचय अज्ञात है।[4]

सैयद फजलशाह[5] को भी इस सूची में सम्मिलित करना न्यायसगत है। यद्यपि इनकी काव्य-रचना वृद्धावस्था तक चलती रही परन्तु जो प्रसिद्धि उनके **सोहणी-महीवाल** को मिली, वह अन्य किसी रचना को न मिल सकी। वास्तव मे उनके नाम के

---

१ कादरयार (लगभग १८०५-१८५० ई०) जिला शेखूपुरा (पाकिस्तान) में एक मुसलमान जाट परिवार में हुआ। अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। यद्यपि अनेक रचनाओं का आधार हिन्दू कथाएं हैं तथापि महिराजनामा एवं रोज़ानामा जैसी धार्मिक रचनाओं के प्रमाणस्वरूप इन्हें कट्टर मुसलमान मानने में कोई सन्देह नही। इन्हें राजा रणजीत सिंह के दरबार में आश्रय एवं सम्मान प्राप्त था। इन्होंने कई कथाएं प्रथमतः पंजाबी में पद्यबद्ध कीं जैसे पूरन भगत, राजा रसालू, हरिसिंह नलुआ।

२. 'पंजाबी दुनिया' जुलाई १९५८ में शमशेरसिंह अशोक का लेख—हीर रांझे दी सीहरफियां, पृ० ५७-६९।

३. पंजाबी प्रकाशनां दी सूची पृ० १४४

४. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, पृ० ३०५

५. फज़लशाह (लगभग १८२७-१८९०) ने अपनी प्रथम एवं प्रसिद्ध रचना सोहणी महीवाल १२६५ हि० (१८४८-४९ ई०) में लिखी। इस प्रकार प्रारंभ से ही उन्हें कविता लिखने की रुचि थी। इनकी कबर लाहौर में मुलतान रोड पर है। उन्होंने हीर, लैला मजनूं, जुलेखां तथा सस्सी भी लिखी।

साथ 'सोहणी' इसी प्रकार संबद्ध है जिस प्रकार वारिस के साथ 'हीर' एवं हाशम के साथ 'सस्सी' । इस रचना मे यमक, वक्रोक्ति एवं श्लेष आदि शब्दालंकारों के उन्मुक्त प्रयोग द्वारा कवि के शब्दार्थ-ज्ञान का सुन्दर परिचय मिलता है । इनकी **हीर** १८६७[1] की रचना है । इसमे भी कवि ने वही शैली अपनाई है।

फज़्लशाह के समकालीन मियां मुहम्मदबख्श जेहलमी[2] अपने प्रेमाख्यान **'सैफुलमुलूक'** के कारण पंजाबी साहित्य मे विशेष स्थान का अधिकारी है। विस्तार में 'सैफूलमलूक पंजाबी का सबसे बड़ा प्रेमाख्यान है । यह रचना किसी फारसी मसनवी पर आधारित है। गवासी का 'सैफुलमलूक' एवं जान की 'कथा रतनावती' घटनाचक्रकी दृष्टि से एक जैसी रचनाएं है । 'सैफुलमलूक' पजाबी का शब्दकोष होने के साथ-साथ काव्य-कला एवं उच्च कल्पना से भी भरपूर है। यद्यपि कवि ने **शीरीं फरहाद, मिरजा साहिबा सोहणी महिवाल** नामक तीन अन्य प्रेमाख्यान भी लिखे परन्तु जो काव्य-वैभव 'सैफुल-मुलूक' मे है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता । 'सैफुलमुलूक' की रचना १२७९ हिजरी[3] (१८६४ ई०) में तैंतीस वर्ष की अवस्था मे की। इनकी अन्य प्रेमाख्यान रचनाएं इस से पूर्व की ही होनी चाहिएँ। रचना के कारण को स्पष्ट करते हुए लेखक ने अपने भाई के एक पत्र का उल्लेख किया है जिसमे उन्होंने लिखा है "कि यद्यपि तूने छोटे-छोटे कई किस्से लिखे है परन्तु अब एक वृहद् रचना करना सीख । आज तक तू छोटे-छोटे पोखरों मे ही तैरता रहा है । अब नदी में भी तो आ "।[4] इस रचना मे इश्क मजाजी एवं हकीकी के अतिरिक्त काव्य-कौशल को दर्शाना भी कवि का उद्देश्य था, यह कवि ने स्पष्ट कर दिया है[5] ।

उस अवधि में यद्यपि रचनाओं की संख्या में वृद्धि हुई परन्तु उनमे काव्य-गुणों की उपेक्षा के कारण महत्त्वपूर्ण रचनाओं की सख्या अंगुलियों पर ही गिनी जा सकती

---

१. वारह सौ चौरासी सन् हिजरी साअत सअद अमाम बेली।
किस्सा आशकां दा दरद इश्क भरिआ होया तमत तमाम बेली ॥

—हीर रांझा (फज़्लशाह) पृ० १८७

२. मियां मुहम्मद बख्श का जन्म जेहलम नदी के किनारे मीरपुर के समीप एक छोटे से गांव में हुआ। इनके जन्म सम्बत् का पूरा-पूरा पता तो नही परन्तु अनुमान है कि इनका जन्म सन् १८३१ ई० के आस-पास हुआ। इन्होंने इस्लाम प्रचार औरसूफी सिद्धान्तों की व्याख्या में अनेक रचनाएं लिखीं। अनुमान है, ये दीर्घजीवी थे।

३. सैफुलमुलूक, भाषा-विभाग, पृ० ७५

४. निक्के किस्से बहुत सीहरफी की होइआ तुध लिखे ।
ऐसी सोईं तुसी भी मीआं सुखन करन हुण सिक्खे ॥
छप्पड़ियां विच्च तर डिठोई आ नदीआं विच होखां ।
या दस ज़ोर तबीयत वाला या मुड़ ताइब होखां ॥

—सैफुलमुलूक, पृ० ६०

५. वही, पृ० ६०

है। यह भी उल्लेखनीय है कि कथा एवं काव्य की दृष्टि से पंजाबी की सर्व समृद्ध कृति भी इसी समय मिलती है। 'सैफुलमुलूक' के साथ ही पंजाबी किस्सा-काव्य का पुनरुद्धार मानना चाहिए और और इसके बाद इस क्षेत्र में हिन्दू-सिक्ख कवि भी प्रसिद्ध हुए। इस काल मे रचना करने वाले प्रायः सभी कवियों ने प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त इस्लामी शरह् की व्याख्या, विश्लेषण एवं धर्म-प्रचार को सम्मुख रखकर भी रचनाएं लिखी। अहमदयार ने 'हातमताई', 'तमीम अनसारी', 'वफातनामा', 'जंग अहमद', 'जंगबदर', अमामबख्श ने 'बदी-उल-जमाल', 'मुनाजात मियां वड्डा', कादरयार ने 'महिराजनामा', 'रोजानामा', फजलशाह ने 'तुह्फाए फजल' में सदाचार सम्बन्धी पद्य लिखे। मियां मुहम्मदबख्श ने तो 'गुलजारे-फकर', 'हिदायतुल-मुसलमीन', 'तुह्फा-मीरा' आदि अनेक ऐसी रचनाए लिखी। इसी कारण इन कवियो की भाषा में फारसी प्रभाव सर्वत्र अमरबेल के समान छाया हुआ है। यह प्रभाव पंजाबी किस्सा-काव्य के साथ एकाकार ही हो गया। आधुनिक काल में, जबकि इस क्षेत्र में अनेक हिन्दू-सिक्ख कवियों ने भी पदार्पण किया तो वे भी इसे स्वीकार करते हुए आगे बढते है।

पंजाबी किस्सा-काव्य के इस सर्वेक्षण को समाप्त करने से पूर्व **तीन बातों** की ओर संकेत कर देना अत्यन्त आवश्यक है। **पहली** यह कि सीहरफियों के रूप में अनेक छोटी-छोटी रचनाएं मिलती है जिनमें पजाब की प्रेमकहानियों की मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन है जैसे मीरन की 'सीहरफी हीर', मौलवी अबेदुल्ला की 'हीर सीहरफी', अली हैदर की 'सीहरफी हीर', आदि। परन्तु इनमें कथा के प्रति कम एवं आचार अथवा धर्म की ओर अधिक रुचि दिखाई गई है। अतः इनको प्रेमाख्यान या किस्सा मानना असंगत है। इस प्रबंध में इन पर विचार नहीं किया गया। **दूसरी** यह कि पंजाबी किस्सा-साहित्य के अन्तर्गत प्रेमाख्यान सम्बन्धी रचनाए ही नही, अन्य रचनाएं भी गृहीत होती हैं। संख्या एवं काव्य की दृष्टि से इनका महत्त्व अधिक नहीं। इनमें कादरयार का 'पूर्णभक्त' ही अधिक प्रसिद्ध हुआ है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे उन्हें भी स्पर्श नही किया गया। **तीसरी** यह है कि आधुनिक काल में पजाबी साहित्य में इन प्रेमाख्यानों की लोकप्रियता अप्रत्याशित रूप से बढ़ी। विभाजन (१९४७ ई०) से पूर्व पजाब में जनसाधारण इनके प्रति विशेष रूप से आकृष्ट था। मुद्रण की सुविधा उपलब्ध हो जाने पर ये किस्से हजारों की संख्या में छपते और बिकते रहे। इस मुद्रण मे अधिकतर साधारण कवियों, सामान्य पाठकों एवं प्रकाशकों ने ही अधिक रुचि ली। शिक्षित समुदाय इस ओर से आंख मूंदे बैठा रहा। फलस्वरूप रचनाओं में क्षेपकों एवं अशुद्धियों की भरमार होती गई। इसके साथ अनेक नए कवियों ने लोकप्रियता अर्जन के लिए इस क्षेत्र को अपनाया। इनकी सख्या इतनी अधिक है कि उसकी तालिका स्वतन्त्र शोध-प्रबन्ध का विषय है। इनमें हिन्दू-सिक्ख लेखकों की संख्या भी पर्याप्त थी, जिनमें भगवानसिंह, किशनसिंह आरिफ, कालिदास गुंजरांवालिया, ज्ञानी दित्तसिंह, सदाराम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल का पंजाबी किस्सा रचना-व्यवस्था एवं

वर्णन-शिल्प मे मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यानों के अधिक समीप होता गया है। इन हिन्दू-सिक्ख कवियों ने उसमें उसी प्रकार के मंगल-अंश, नखशिख, बारहमासे आदि वर्णन जोड़कर तथा अन्त मे आध्यात्मिक रूपकों का सकेत देकर उन्हें हिन्दी प्रेमाख्यानों के अधिक समीप ला दिया। पचास के लगभग ऐसी रचनाएं प्रस्तुत प्रबन्ध की समय-सीमा के बाहर होने के कारण विवेचन मे स्वीकार नही की गई।

विभाजन के बाद ग्रामों की उन्नति, वैज्ञानिक सुविधाओ एव नए-नए मनोरंजन के साधनों की उपलब्धि, माध्यमिक शिक्षा के विस्तार आदि के कारण यह रुचि एकदम समाप्त हो गई। जन-सामान्य तो किस्सा-काव्य से दूर होने लगा है परन्तु पंजाबी के विद्वान् अब इस ओर सावधान होने लगे है और यह संतोष का विषय है कि उन्होंने कई रचनाओं के प्रमाणिक पाठों की खोज आरभ कर दी है।

मध्यकालीन किस्सा-काव्य के तीन महारथी

पंजाबी के किस्सा-कवियों में तीन नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है **दमोदर, वारिस एवं हाशम**। यद्यपि अभी तक दमोदर को उचित महत्त्व नही दिया गया परन्तु किस्सा कवियों मे उसे महत्त्वपूर्ण स्थान से अधिक देर तक वचित नहीं रखा जा सकता। इस परम्परा को आरंभ करने का श्रेय तो उसे है ही वह वारिस से भी किसी बात में कम नहीं। उसने वारिस के समान कुत्सित वृत्तियों के चित्रण के द्वारा हीन लोक-रुचि को उत्तेजित नही किया। वारिस ने कुत्सित वृत्तियों के वर्णन से लोक-रुचि को जिस प्रकार आत्मवश किया था, वह रीति आज के बौद्धिक युग मे अपना महत्त्व खो बैठी है। दमोदर में न तो वारिस के समान व्यर्थ का विस्तार है और न हाशम के समान कथा की हत्या करने वाला वर्णन-सयम। उसकी रचना मे विस्तार एवं संयम का संतुलन है। दमोदर की रचना मे घटना निर्वाह एवं प्रबन्ध कल्पना वारिस से कहीं उत्तम है।

इसी प्रकार वारिस एवं हाशम की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। वारिस किसी बात को संक्षेप में नही कह सकता तो हाशम उसे विस्तार से प्रस्तुत करने मे असमर्थ है। पंजाबी किस्सा काव्य के ये दोनों महारथी अपनी-अपनी शैलियो मे सिद्धहस्त है।

पंजाबी प्रेमख्यानों की प्रसिद्ध कथाएं—विस्तार एवं लोकप्रियता

यद्यपि पंजाबी में देशी, विदेशी, काल्पनिक एवं ऐतिहासिक सभी प्रकार की कथाओं को काव्यबद्ध किया गया है परन्तु इनमे से 'हीर-रांझा', 'सोहणी-महीवाल', 'सस्सी-पुन्नू' एव 'मिरजा-साहिबां--ये चार ही लोकप्रिय रही है।

हीर-रांझा की कथा का आरंभ सबसे पहले हुआ। दमोदर से अहमद तक, अहमद से मुकबल तक, मुकबल से वारिस तक वारिस से फजलशाह तक, और फजलशाह से मौलाबख्श कुश्ता तक पचास से भी अधिक कवियो ने इस कथा पर हाथ आजमाया। पंजाबी के अतिरिक्त फारसी मे भी कितने ही कवियों ने इसको काव्य-निबद्ध किया।

यह सब कुछ इस कथा की लोक-प्रियता का प्रमाण है [1]।

सर्वप्रथम हाफिज बरखुदार ने **सस्सी-पुन्नू** की कथा को काव्यबद्ध किया। निस्सन्देह इस कथा की लोकप्रियता हीर से कम रही परन्तु इसका क्षेत्र हीर से कहीं अधिक विस्तृत है। यह कथा सिंध एवं राजस्थान में भी लोकप्रिय है। श्री हरनामसिंह-शान ने पंजाबी में इस कथा को लिखने वाले सत्तर कवियों की रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया है।[2]

सोहणी-महीवाल की कथा भी इन दो रचनाओं के ही समान प्राचीन है परन्तु इसे काव्य-निबद्ध करने का काम बहुत बाद में हाशम ने किया। मध्यकाल में उसके बाद कादरयार, अहमदयार और फजलशाह कृत रचनाएं उपलब्ध होती है परन्तु आधु-निक काल के कवियों ने इस कथा के माध्यम से अपनी प्रतिभा की परीक्षा की है। श्री प्यारासिंह पद्म ने आज तक उपलब्ध ऐसे इक्यावन कवियों की सूची दी है।[3] परन्तु इनमें से कुछ ही रचनाएं आकार प्रकार के कारण महत्त्वपूर्ण है। 'पंजाब के बाहर राजस्थानी, सिंधी और गुजराती मे भी सोहणी के किस्से उपलब्ध होते है। राजस्थान में ढोला मारू रा दूहा के ही समान सोहणी रा दूहा प्रसिद्ध है'।[4]

मिरजा साहिबां का किस्सा भी अत्यन्त प्राचीन है। पीलू ने (१५६३-१६३० ई० के लगभग) सर्वप्रथम इसे पद्यबद्ध किया। परन्तु मध्यकाल मे इस कथा पर आधारित केवल पीलू एवं हाफिज बरखुदार की ही संक्षिप्त रचनाएं मिलती है। इस उपेक्षा का कारण अभी तक अज्ञात है। आधुनिक काल मे अन्य कथाओं से यह कथा अधिक लोक-प्रिय रही है। डॉ० विश्वनाथ तिवारी ने अपने शोध-प्रबंध मे तीस कवियों की रचनाओं का विवरण दिया है। इनमे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी है,[5] परन्तु उनमें से अधि-कांश मे न तो भाषा का सौन्दर्य है, न कथावस्तु का सुनियोजन और न ही शैली की मनोहरता।[6] बावा बुधसिंह का विचार है कि 'हीर-रांझा' के बाद यही किस्सा अधिक लोकप्रिय है'।[7]

रचना-प्रयोजन

रचनाओं एवं कवियों का यह संक्षिप्त सर्वेक्षण दोनों ही भाषाओं के प्रेमाख्यानों के रचना-उद्देश्य एवं सामान्य प्रवृत्तियों की जानकारी के बिना अधूरा ही रहेगा, अतः इन पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए।

---

१. विस्तार के लिये देखें—हीर वारिस भूमिका, पृ० १३३
२. सस्सी-हाशम, पृ० १२६ से १४५
३. सोहणी-हाशम, पृ० ४४
४. वही, पृ० ४५
५. डॉ० तिवारी का शोध प्रबंध (टंकित), पृ० ४ से ४४
६. वही, पृ० ४४
७ बबीहा बोल, पृ० ८८

हिन्दी :—

गुप्त रहस्य को समझाना :—हिन्दी के अनेक ग्रंथो में रचना का उद्देश्य किसी गुप्त रहस्य का वर्णन कहा गया है। दाऊद ने 'चांदायन' के अर्थों को मन में बूझने का सकेत दिया है।[1] 'मृगावती' मे कुतबन ने तो स्पष्ट कहा है—

बहुत अरथ हहिं एहि मंह, जो कोई सुधि सेउं बूझ।
कहेउँ जहां लगि पारेउं जो किछु हिरदै मैं सूझ[2] ।।

हंसजवाहर[3] एवं इन्द्रावती[4] मे भी गूढ़ार्थ की बात का स्पष्टीकरण लेखक ने उद्देश्य रूप में वर्णित किया है।

इन सब रचनाओ मे यह स्पष्ट किया गया है कि कथा का उद्देश्य किसी रहस्य का उद्घाटन है। संभवतः यह रहस्य प्रेम का महत्त्वपूर्ण एवं कठिन मार्ग ही है। सूरदास लखनवी ने इसे स्पष्ट कह भी दिया—

कै आरंभ तब कथा बखानी। कीन्हीं प्रगट पेम निधि बानी ।।

× × ×

बहुत ठौर निज अरथ दुरावा। सब काहू पै जाइ न पावा ।।[5]

यश-प्राप्ति एवं अमरत्व लाभ : एक अन्य वर्ग इन रचनाओं द्वारा यश अथवा अमरता प्राप्त करने की कामना करता है। जायसी ने 'पदमावत' के अंत मे कथा-रचना के लिए किये गये स्वपरिश्रम एवं उद्देश्य का विस्तारपूर्वक परिचय दिया है। यह संसार नश्वर है, केवल यश-शरीर ही शेष रहता है। अतः यश-प्राप्ति के लिए हीं उस महाकवि ने रचना की। अन्तिम पद्य मे वृद्धावस्था का रोमांचकारी वर्णन संभवतः इसीलिए किया है कि मृत्यु समीप है और यश-शरीर अनश्वर।[6] 'मधुमालती' में भी मंझन ने प्रेम की संजीवनी द्वारा अमर बनने का उपदेश देकर कविता-गात्र द्वारा नाम की अमरता का वर्णन कर अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है।[7] इसी प्रकार पुहकर ने

---

१. दाउद येइ कवि जइ गाइ, मन महि लेहु बिचारि।
तथा 'इकु इकु सुनि सुनि बोलु बिचारौ'।
—चांदायन, पृ० १५ और पृ० ३२७

२. मृगावती; पृ० ३६६

३. हंसजवाहर, पृ० २७२

४. यह पोथी सो बुझै, जौ कहं ज्ञान विवेक।
× × ×
परगट मै तो कहै कहानी। गुप्त अरथ समुझै मुनि ज्ञानी ।।
—इन्द्रावती उत्तरार्द्ध (हस्तलिखित), वल्लभ खंड।

५. नल दमन, पृ० २०

६. पद्मावत, पृ० ७१३-१५

७ मधुमालती, पृ० ४८१-८२

'प्रथी मे नाऊं' रखने के लिए काव्य रचना की।[1] उसमान ने 'चित्रावली[2]' एवं शेख-निसार ने 'यूसफ जुलेखा' में रचना के द्वारा अमरता की कामना प्रकट की है।[3]

काव्य-कौशल-प्रदर्शन—कुछ रचनाओं का उद्देश्य अपना काव्य-कौशल प्रकट करना है। गणपति की रचना सरस्वती देवी को प्रसन्न करने अर्थात् काव्य-प्रतिभा को प्रकट करने के लिए की गई है।[4] पृथ्वीराज ने वेलि यद्यपि धार्मिक पुण्य-लाभ के लिए भी लिखी परन्तु ग्रंथ के अन्त मे अभिव्यक्त आत्माभिमान यह स्पष्ट संकेत देता है कि कवि का मुख्य उद्देश्य अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन था।[5] 'ज्ञानदीप' में भी शेखनबी ने अपने काव्यकौशल के चमत्कार के प्रदर्शन की बात स्वीकार की है।[6] दक्खनी के 'क़ुतबमुशतरी',[7] 'सैफुलमुलूक बदी-उल-जमाल'[8] एव 'फूलबन'[9] में भी रचना का उद्दे-श्य अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखाना ही है।

मनोरंजन—कुशललाभ ने कुंवर हरिराज के मनोरंजन के लिए रचना की।[10] कई रचनाओं का उद्देश्य विविध वर्गों को मनोरंजन प्राप्त कराना था। चतुर्भुज ने कहा है कि मेरी रचना से राजा को राजनीति, मत्री को बुद्धि, ज्ञानी को ज्ञान एवं कामी को विलास प्राप्त होता है।[11] दामोदर, आलम, उसमान, शेखनवी एवं मृगेन्द्र ने कथाओं के आदि या अन्त मे ऐसे सकेत दिए हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न

---

१. रसरतन, पृ० २६७

२. चित्रावली, पृष्ठ १२

३ हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० ४१४

४. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ३३८

५. वेलि क्रिसन रुकमणी री, १९२-२००

६ ललित रूप जो आषर, गढे। चुनि-चुनि अमर कोष से काढ़े॥
सबरस पाइ किहेउ सनमाना। जो आनंद हिए होइ निदाना॥
—ज्ञानदीप, हस्तलिखित।

७. क़ुतब मुश्तरी, पृ० ३१

८. सैफुलमुलूक बदी उल जमाल, पृ० २४

९. फूलबन. पृ० ९-१०

१०. क माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० ४४१
ख. ढोला-मारू-रा-दूहा, पृ० ३१५

११. राजा पढै सौ राजगति, मंत्री पढै ताहि बुद्धि।
कामी काम विलास रस ज्ञानी ज्ञान संसुद्ध॥
—मधुमालती वार्ता, पृ० ९३

भिन्न वर्गो के पाठकों का मनोरंजन करना भी इनका उद्देश्य था ।[1]

श्रुतिफल—हिन्दी में अनेक रचनाएं ऐसी हैं जिनके अन्त मे श्रुतिफल का वर्णन है । 'इस रचना के श्रवण एव पठन से गंगा-स्नान का पुण्य लाभ होगा, कभी वियोग नही सहना पड़ेगा' ।[2] इस श्रुतिफल से ऐसा आभास होता है कि रचना मे किसी देवी, देवता अथवा अवतार के किसी कृत्य विशेष का वर्णन है परन्तु ऐसा है नही । यह परम्परा नारायणदास, गणपति, कुशललाभ, पृथ्वीराज, सूरदास लखनवी आदि कवियों में भी उपलब्ध होती है ।

पंजाबी

पंजाबी— मे दमोदर ने स्वान्त सुखाय हीर की रचना की । क्योकि उसकी दृष्टि में इस कथा मे अनुपम प्रेम का वर्णन है ।[3] हाफिज बरखुदार ने यूसफ जुलेखा[4] एवं अहमदयार ने अहसनुलकस्सिस[5] में ऐसे संकेत दिए है कि इन रचनाओं को लिखने का उद्देश्य पुण्यार्जन था परन्तु मात्र इसी उद्देश्य के लिए ही ये रचनाए नही हुईं । इसके साथ-साथ इन रचनाओं के द्वारा वे अपने काव्य-कौशल को भी अभिव्यक्त करना चाहते थे—

मैं फिकराँ नाल परोते जाणों चुण चुण दुर्र यगाने ।
तां इह हार मुरत्तबकीता, आलमगीर जमाने ।।

× × ×

---

१. दमोदर—माधव-कथा पूरी हुई रसीआ कारण नेह ।

—माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ५०६

आलम—कामी पुरिष रसिक जे सुनहीं । ते या कथा रैनि दिन सुनहीं ।।

—हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह, पृ० २३१

उसमान—मैं अजान जग बाल सम, आन न कछू सोहाय ।
कहौं कहानी प्रेम की जेहि निसि जाय बिहाय ।।

—चित्रावली पृ० १५

शेखनबी—सब रस पाइ किहेउ सनमाना । जो आनंद हिए होइ निदाना ।।

—ज्ञानदीप (हस्तलिखित)

मृगेन्द्र—प्रेम पयोधि प्रेम की अद्भुत कथा महान ।
कौतुक हित बरनन करौं लखि रीझहि गुनमान ।।

—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३४२ से उद्धृत

२. दामोकृत—लखमसेन पद्मावती कथा पृ० ४६

३. हीर दमोदर, पृ० २१४

४. यूसफ जुलेखा, पृ० ११६

५. अहसनुलकस्सिस, पृ० २७४

जित्थे साहिब सबा इकट्ठे, बहिण मजालिस कढ के।
उह मुनसिफ होकर सुखन पछाणन अदल तराज़ू धर के ।।[1]

इसी प्रकार वारिस, लुत्फअली, अहमदयार तथा मुहम्मद बख्श ने अपनी रचना में साहित्यिक सौष्ठव का उद्देश्य रूप मे वर्णन किया है।

मौलवी लुत्फअली ने लिखा है कि 'योग्य एवं बुद्धिमान् पुरुष मेरी कहानी ध्यान पूर्वक सुनें। मैने एक राजकुमार एवं परी का किस्सा लिखा है। क्योकि यह ससार नश्वर है और मै चाहता हूं कि मेरा स्मृतिचिन्ह शेष रहे ।......मैंने बड़े सोच विचार के पश्चात् युवकों की मजलिस के लिए यह किस्सा पद्यबद्ध किया है। मैं प्रार्थना करता हूं कि यह हर मजलिस में पसन्द किया जाए। ....हे न्यायकारी, इस कवि के साथ न्याय कर ताकि मुझे संसार में कीर्ति एव सम्मान प्राप्त हो और विरोधी मेरा यश सुनकर पागल हो जाएँ।"[2] इस कथन मे कवि ने यश-प्राप्ति के साथ-साथ युवकों के मनोरंजन एव काव्यकौशल को भी अपना उद्देश्य माना है। मुहम्मदबख्श ने स्पष्टत: अपनी रचना में सूफी मत के सिद्धान्तों के प्रतिपादन का सकेत किया है।[3] अहमदयार की अनेक रचनाओ का उद्देश्य केवल प्रेमगाथा-वर्णन ही है। प्रेम की अनेक कथाएँ लिखकर कवि अपने समय में प्रसिद्ध होना चाहता था—

दिल दा शौक उसी वल टुरिआ जो कुझ आख सुनाईए।
अहमदयारा आलम सारा याद करे जिस जाईए ।।[4]

परन्तु काव्य-प्रतिभा के प्रति उसका दृष्टिकोण पूर्णतया उपेक्षायुक्त नहीं था यह 'अहसनुलकस्सिस' के अतिरिक्त 'सस्सी' में भी स्पष्ट किया गया है। कवि के विचार में "अपने गुणो का स्वयं ढिंढोरा पीटना व्यर्थ है। भोजन का स्वाद खाने वाला स्वय बताता है।'[5] अमामबख्श ने भी रचना का उद्देश्य अमर होना बताया है क्योंकि "यह ससार नश्वर है अत: कोई न कोई ऐसा कार्य करना चाहिए जिसके कारण मरने के पश्चात् कोई निशानी रह जाए"।[6]

---

१. अर्थ—मैंने सोच समझ कर एवं चुन चुनकर ये दुर्लभ मोती पिरोए हैं। तब कहीं आलमगीर के समय में यह हार तैयार हुआ है । यहां भी कुछ गुणज्ञ इकट्ठे होंगे तब वे न्यायपूर्वक मेरे कृतित्व का मूल्यांकन करेंगे ।

—यूसफ ज़ुलेखा, पृ० ११८

२. मसनवी 'सैफुलमुलूक, पृ० ६६

३. सैफुलमुलूक, पृ० ६५६-६६३

४. अर्थ—दिल के शौक के कारण मै उसी ओर चल पड़ा जो मुझसे कहने को कहा गया। ताकि, जिधर भी जाऊँ, सारा संसार मुझे याद करें।

—किस्सा कामरूप, पृ० ४

५. सस्सी पुन्नूं, पृ० १२५

६. किस्सा शाह बहराम हुसन बानो, पृ० १

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि इन कवियों के सम्मुख भी **यश-प्राप्ति अमरता-लाभ, काव्य-कौशल-प्रदर्शन** और **धार्मिक पुण्यार्जन** प्रयोजन रूप मे रहे परन्तु पंजाबी किस्सा-काव्य का मुख्य एव प्रधान उद्देश्य यार-दोस्तों की फरमाइश पूरी करना है। यार-मित्र किसी न किसी के इश्क की कथा को नए ढंग से सुनाने का आग्रह करते हैं और कवि उसे पूरा करने के लिए कवि-कर्म में प्रवृत्त होता है।

रल आखिआ आशकाँ मुकबले नूं, सानूं हीर दा इशक सुनाईए जी।[1]

और कवि महोदय ने

सुआल मन्न के आपने सज्जनां दा, किस्सा हीर दा आख सुनाईआ ए।[2]

यदि पहले अनेक कवि उस प्रेम-कथा का वर्णन कर चुके है तो क्या ? वह नए ढंग से सुनाई जा सकती है—

यारां असां नू आण सवाल कीता इशक हीर दा नवां बनाईए जी।[3]

मुकबल एव वारिस की ही भाँति हाशम, कादरयार एवं फजलशाह ने भी यारों की फरमाइश पर ही लिखा।[4] यारों ने संभवतः बरखुदार को 'यूसफ जुलेखा' लिखने की भी फरमाइश की थी—

जो मकसूद असाडा आहा हाजर पेश यारां दे।[5]

अमामबख्श ने अपनी रचना 'मलिकजादा शाह परी' मे विविध उद्देश्य व्यक्त किए हैं। 'एक दिन मसजिद मे सभी यार मिलकर बैठे एवं आनन्दवार्ता मे मग्न थे। वे कहने लगे कि पजाबी भाषा में अतिशीघ्र कुछ कहो; मित्रों ने जो कुछ कहा था मैंने स्वीकार कर लिया। इसे प्रेमी पढ़ेंगे, पापी भय खाएंगे। उनका मनोरथ पूर्ण होगा, मन बहलेगा और ईश्वर का भय होगा। आशिक इस इश्क चर्चा को पढ़-पढ़ कर अपना मुख सुशोभित करेंगे।[6]

---

१. अर्थ—मित्रों ने मिलकर मुकबल को कहा कि हीर के इश्क को सुनाओ।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० १

२. अर्थ—मैंने मित्रों का सवाल मानकर हीर का किस्सा सुना दिया है।
—वही, पृ० ७२

३. अर्थ—हमें मित्रों ने आकर यह सवाल किया कि हीर का इश्क नया बनाकर सुनाओ।
—हीर वारिस, पृ० २

४. हाशम रचनावली, पृ० ५१; कादरयार, पृ० ८६; सोहणी महीवाल, पृ० २

५. यूसफ जुलेखा, पृ० ११८

६. इक दिन मसजिद दे विच रल के बैठे यार तमामे,
लगे आपस अन्दर करने हो खुशहाल कलामी।
लगे कहन जबान पंजाबी आख बयान शताबी,
सुखन कबूली मैंहरसूली यारां जो फरमाए।
पढ़सन आशक डरसन फासक जो बद अमल कमाए,
मतलब पाउण, दिल परचाउण खौफ खुदा दा खाउण।
आशक ताईं इशक अदाईं पढ़-पढ मुंह सजाउण।
—किस्सा मलिकजादा शाहपरी (हस्तलिखित)

अत: पंजाबी प्रेमाख्यानों की रचना का मुख्य उद्देश्य यार-दोस्तों को प्रसन्न करना एवं इश्क के वर्णन द्वारा धर्म-संचय था। क्योंकि—

किस्सा आखणां आशकां कामलां दा।
इह भी बंदगी है धुरों नाल आई ॥[1]

इस प्रकार मुख्यतः दोनों भाषाओं मे कवियो के उद्देश्य लगभग समान होते हुए भी इस परम्परा की प्रसिद्धि भिन्न-भिन्न कारणों से रही है। अनेक रचयिताओं एवं कवि बनारसीदास के कथन[2] से यह तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य भी मनो-रजन की वस्तु बन चुका था परन्तु यह अनुमान तथ्य के अधिक समीप होगा कि पंजाबी किस्सा-काव्य की तुलना में मनोरंजन के लिए इसकी प्रसिद्धि बहुत कम रही होगी। जायसी का कथन—

कवि सो पेम तंत कबिराजा। झूंठ साच जेहि कहत न साजा ॥ (पदमावत पृष्ठ ४६३) महाकवि तुलसीदास की उस उक्ति के समक्ष रखकर विवेचित किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कवियों को 'वाणी का श्रम मिटाने के लिए रामचरित्-सर में नहलाने' की बात कही है। प्राकृत जन के गुणगान पर वाणी सिर धुन कर पछताने लगती है।[3] 'भक्ति-तत्त्व' अथवा 'प्रेम-तत्त्व' की बात जिस गभीरता का संकेत करती है वह मनोरंजन से भिन्न हो जाती है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों की सामान्य-रूप-रेखा

हिन्दी प्रेमाख्यानों में कथारंभ में स्तुति या वंदना के प्रसंग के अनन्तर चित्र-दर्शन, स्वप्नदर्शन, साक्षात् दर्शन के द्वारा नायक या नायिका मे प्रेमोदय दिखाया जाता है। अधिकतर पहले नायक से ही प्रेम का आरभ होता है परन्तु नायिकाएं भी प्रेम-पाश मे बंध जाती है। इसके अनन्तर नखशिख का सविस्तार वर्णन कर प्रेम को उद्दीप्त किया जाता है। हिन्दी की सभी रचनाओं में विस्तृत नखशिख-वर्णन की प्रवृत्ति अत्यन्त मुखर है। इसके अनन्तर प्रेमी नायक प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए योगी बनकर घर से निकल पड़ता है और मार्ग मे अनेक दैवी, दानवी अथवा प्राकृतिक बाधाओं से

---

२. हाशम रचनावली, पृ० ३८

३. तब घर में बैठे रहें, जाहिं न हाट बजार।
मधुमालति मिरगावति, पोथी दोइ उदार ॥ ३३५ ॥
ते बांचहि रजनी समै, आवहिं नर दस बीस।
गावै अरु बातें करै, नित उठि देहिं असीस ॥ ३३६ ॥
—अर्धकथानक, पृ० ३८

१. भगति हेतु बिधि भवन बिहाई, सुमिरत सारद आवति धाई।
राम चरित सर बिनु अन्हवाएं, सो श्रम जाइ न कोटि उपाए।
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।
—रामचरितमानस, बालकांड, दोहा ११

जूझता हुआ प्रेमास्पद के नगर में पहुंच जाता है। प्रायः सभी प्रेमाख्यानों मे यह प्रसंग अत्यन्त विस्तार से है। इस यात्रा काल में अनेक बार उसका परिचय एक सुन्दरी से हो जाता है जिसे वह अपना लेता है। अन्त में सभी बाधाओं को पारकर नायक-नायिका का विवाह हो जाता है।

विवाह का वर्णन हिन्दू धर्म के नियमों के अनुसार विस्तारपूर्वक सभी रचनाओ मे मिल जाता है। इस अवसर पर भिन्न-भिन्न पकवान्नो एवं लोकाचारों का वर्णन करने, तथा प्रथम समागम का विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति हिन्दी के प्रेमाख्यानो मे प्रायः सर्वत्र मिलती है। प्राय. माता, पिता अथवा प्रथम पत्नी का संदेश प्राप्त करके नायक अपने देश को लौटते हैं। इस अवसर पर कन्या की परवशता एव विदाई के हृदयविदारक वर्णन सभी रचनाओ मे उपलब्ध हो जाते हैं।

इन रचनाओं में नायक अथवा नायिका के परिचय अथवा किसी अन्य प्रसंग में नगर, कूप, सरोवर, गढ, सैन्य-प्रयाण आदि का वर्णन करने का अवकाश भी खोज लिया जाता है।

वियोग-काल में नायिका अथवा उपनायिका के विरह-वर्णन के लिए बारहमासा या षड् ऋतु का आश्रय लेना भी इन कवियों की मुख्य प्रवृत्ति है। नायिकाएं प्रायः राजकुमारियाँ है जो महलो की चहार दीवारियों मे बैठी-बैठी आंसू बहाती रहती है। कभी-कभी पूजा के बहाने नगर के मदिर आदि मे जाकर प्रियतम से मिल पाती है।

इन प्रेमाख्यानों में नायक की सहायता करने के लिए अलौकिक तत्त्वों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। भयानक जीव, सर्प, हाथी, पक्षी, देव, दानव, राक्षस आदि को वश मे करने के लिए नायक की सहायतार्थ उसका भाग्य या अलौकिक शक्तियां आ ही पहुंचती है और ये नायक सदैव अपने उद्देश्य में सफल होकर घर लौटते है।

अपनी बहुज्ञता का प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति भी हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रबल है। इसकी पूर्ति के लिए यथास्थान ज्योतिष-सिद्धान्त, शकुनापशकुन-विचार, नायिका भेद, षोडश शृंगार, औषधि-वर्णन, राग-रागिनियों का वर्णन, वृक्ष, लता, पुष्प आदि की नामावलियों का समावेश मिल जाता है।

इन रचनाओं में स्थान स्थान पर रामायण, महाभारत, पुराण तथा लोक-कथाओं को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। इन उद्धरणों में विदेशी स्रोतों से प्राप्त उद्धरण बहुत कम संख्या में ही प्रयोग किए गए है। एक स्थूल सर्वेक्षण के अनुसार विविध संदर्भों में उद्धृत लगभग अस्सी कथाओं मे से एक चौथाई संकेत ही विदेशी कथाओं के हैं जिनमें अधिकतर धार्मिक महत्त्व के हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानों में कवियों ने प्रायः भारतीय स्रोतों से प्राप्त होने वाली कथाएं ही अपनाई है।

विदेशी स्रोतों से बहुत कम कथाएं गृहीत हुई, उसमें भी धार्मिक आग्रह ही प्रधान था, परन्तु ये कथाएं विशेष लोकप्रिय नहीं हो सकी।

अधिकतर कवियों ने कड़वक-पद्धत्ति को अपनाया है। कुछ अर्द्धालियों के बाद एक घत्ता देने की प्रवृत्ति यद्यपि प्रधान है परन्तु अन्य छन्दों मे रची गई रचनाएं भी हिन्दी में कम नही।

हिन्दी की रचनाएं प्रायः सुखान्त है। जो रचनाएं दुःखान्त है उनमे भी नायक अपना सम्पूर्ण जीवन-सुख भोगकर किसी दैवी घटना के कारण ही मरता है।

हिन्दी कवियों में अपनी रचना के आकार को बढाने की प्रवृत्ति प्रायः परिलक्षित होती है। उषा-अनिरुद्ध, एवं रुक्मिणी-कृष्ण की लघु कथाओं को भी प्रायः वृहदाकार में प्रस्तुत करने के यत्न किए गए। इस कार्य के लिए प्रारंभिक भाग अथवा नायिका के विरह-वर्णन या युद्ध-वर्णन को विस्तृत कर दिया जाता है। विस्तृत आकार के कारण मानव-जीवन के विविध पक्षों का वर्णन इन रचनाओं में उपलब्ध हो जाता है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों की सामान्य रूपरेखा

पंजाबी प्रेमाख्यानों की रचनाओं के आरम्भ में भी प्रायः संक्षिप्त मगल का समावेश होता है। तदनन्तर यारों की फरमाइश पर कथा आरंभ कर दी जाती है। इन रचनाओं मे अधिकतर साक्षात् दर्शन से ही प्रेम का आरभ किया गया है। नायक घर-बार त्याग कर नायिका के पास ही रहता है। दोनों के प्रेम में प्रायः पारिवारिक या सामाजिक विषमता बाधा बनती है। इसी कारण पास-पास रहते हुए भी ये वियोग दुःख मे झूलते रहते हैं। इनका प्रेम प्रचारित हो जाता है और अपमान से बचने के लिए नायिका का विवाह कर दिया जाता है। इस घटना से दोनों के ही जीवन को भयंकर आघात पहुंचता है और वे मिलन के लिए समाज से छिपकर प्रयत्नशील रहते हैं। सम्पूर्ण जीवन इसी ऊहापोह मे व्यतीत हो जाता है। प्रेम कभी सफलतापूर्वक सुखान्त नही बनता। नायक एवं नायिका का अन्त अत्यन्त दुःखद अवस्था में होता है। प्रायः नायिका की मृत्यु ही पहले होती है और नायक उसके वियोग में प्राण त्याग करता है।

इन रचनाओं में भी नायिका के सौंदर्य का वर्णन किया गया है परन्तु कवि इस कार्य मे बहुत समय नही बिताते। पजाबी कवि अधिकतर संक्षेप-प्रिय है और उनकी रुचि दृश्य-वर्णन की अपेक्षा आख्यानपरक ही अधिक है। पजाबी प्रेमाख्यानों में 'कथोपकथन' की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल है। प्रायः कथोपकथन के माध्यम से ही कथा आगे बढ़ती है। विवाह आदि के लोकाचारों या दैनिक कार्यव्यापारों का वर्णन एक दो रचनाओं में ही है। इन रचनाओं में प्रेम की दुःखात्मकता का ही बार-बार वर्णन किया गया है। नगर, वापी, गढ़, सैन्य-प्रयाण, बारहमासा अथवा संयोग शृंगार के

जैसे विस्तृत वर्णन हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्राप्त होते है वैसे पंजाबी प्रेमाख्यानों मे नही ।

कथा-चयन की दृष्टि से अधिकांश पंजाबी कवि प्रदेश की सीमाओं में ही सिमटे रहे है और लोक-प्रसिद्ध तीन कथाओं को ही बार-बार काव्याधार बनाते रहे परन्तु, अठारहवीं शती के चतुर्थ चरण मे फारसी स्रोतों से कई अन्य कथाएं भी कवि-प्रिय हो गईं।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में छंद-वैविध्य के प्रति अरुचि पाई जाती है । प्रायः एक छन्दात्मकता ही इन कवियों की मुख्य प्रवृत्ति है । दमोदर, मुकबल, वारिस, हाशम, फजलशाह आदि सभी कवियों ने एक छंद में ही सम्पूर्ण रचना प्रस्तुत कर दी ।

ये कवि सामान्य काव्य-प्रतिभा के स्वामी थे, उस समय प्रतिभाशाली कवि आध्यात्मिक कविताओं की ओर प्रवृत्त हो रहे थे या हिन्दी-उर्दू मे रचनाएं कर रहे थे ये, रचनाएं तो सामान्य जनता के मनोरंजन के लिए सामान्य कोटि के कवियों द्वारा लिखी गई है; अतः इनमें बहुज्ञता-प्रदर्शन की वैसी लालसा नही मिलती जैसी कि हिन्दी प्रेमाख्यानों में । फलतः रचना का आकार विस्तृत नही हो पाता, वह एक प्रकार से सामान्य काव्य-तत्त्वों से युक्त इतिवृत्तात्मक 'काव्य' ही रह जाता है । आकार लघु होने के कारण जीवन की अनेकरूपता का चित्र इन रचनाओ मे नही मिलता, ये अधिकांशतः नायक, नायिका या उसके परिवार के आस-पास ही घूमती रहती हैं ।

निष्कर्ष

रचनाओं के इस सर्वेक्षण से कुछ बातें अत्यन्त स्पष्ट हो जाती हैं । हमारी काल सीमा के प्रारभिक वर्षों में ही हिन्दी में प्रेमाख्यानों की रचना आरम्भ हो गई और यह इन पांच सौ वर्षो में निर्बाध रूप से चलती रही । इस सम्पूर्ण काल में छोटी बड़ी अनेक प्रकार की लगभग सवा सौ रचनाओ की सूचना मिलती है । इन रचनाओं में विदेशी स्रोतो से गृहीत कथाओं को बहुत कम प्रश्रय मिला है । अधिकांश में काल्पनिक अथवा पौराणिक कथाएं ही लोकप्रिय रहीं । पंजाबी में उपलब्ध प्रथम रचना बहुत बाद की है । हिन्दी की पहली रचना जिसका रचनाकाल निर्विवाद है १३८० ई० की मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' है । इसके विपरीत पंजाबी में दमोदर कृत 'हीर-रांझा' अकबर के शासन काल में लिखी गई । दोनों ही साहित्यों के आरंभ में यह लगभग दो सौ वर्षों का विशाल अन्तर है । इस आरंभ के बाद लगभग १०० साल तक पंजाबी में फिर किसी रचना की सूचना नहीं मिलती । पीलू की छोटी-सी रचना दमोदर की समकालिक ही है । इस लम्बी अवधि में पंजाब में प्रेमाख्यानों का अभाव एक विषम समस्या है परन्तु यह परिस्थिति केवल पंजाबी के प्रेमाख्यान-साहित्य की ही नहीं, सम्पूर्ण पंजाब-प्रान्तीय साहित्य की है । पंजाब प्रान्त के हिन्दी साहित्य की उपलब्ध कृतियों में सम्वत् १७५० से पूर्व की रचनाओं की गिनती बहुत

थोड़ी है ।[1] इस काल में पंजाब का सूफी साहित्य अथवा गुरुमत संबंधी साहित्य ही विशेष रूप से उपलब्ध होता है । ऐसा अनुमान है कि अशान्त वातावरण मे, विश्रब्ध रक्षकों के अभाव में यह साहित्य-ज्ञान अज्ञान के अन्ध गह्वर में विलीन हो गया । सुजानराय भंडारी (औरंगजेबकालीन) ने अपनी रचना 'खुलासे-तुल-तवारीख' के पृष्ठ ७७-७८ पर लिखा है कि हीर-रांझे की प्रेम-कथा को अनेक कवियों ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक लिखा है । अतः यह तो सूचित हो जाता है कि रचनाएं लिखी गई परन्तु वे हम तक नही पहुंच सकी । औरंगजेब के शासन काल मे हाफिज बरखुरदार सम्भवतः पंजाबी प्रेमाख्यान का प्रथम प्रबुद्ध कलाकार है । सत्य तो यह है कि १६८० ई० के बाद ही पंजाबी मे यह परम्परा निर्विघ्न रूप से चल पाती है । हिन्दी प्रेमाख्यान-साहित्य का स्वर्णकाल तब तक समाप्त हो चुका था । इस प्रकार पंजाबी में यह धारा लगभग ३०० वर्ष ही पुरानी माननी चाहिए । इन तीन सौ वर्षों में रचित पजाब की ये रचनाएं आकारतः हिन्दी की रचनाओं से छोटी है । बृहदाकार हिन्दी रचनाओ की अपेक्षा ये रचनाएं आकार में 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', 'बीसलदेव रासो' या 'मैनासत' के अधिक समीप है ।

: २ :

रचना-व्यवस्था

हिन्दी में प्रेमाख्यानों की परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। हिन्दुओं एवं मुसलमानों ने इसे समान रूप से प्रश्रय दिया। मुसलमान कवियो के हिन्दी प्रेमाख्यानों एवं फारसी मसनवियो की रचना-व्यवस्था में कुछ समानता देखते हुए आचार्य शुक्ल ने इनकी रचना-व्यवस्था के सम्बन्ध में अपना अभिमत प्रकट करते हुए लिखा --"इनकी रचना बिल्कुल भारतीय चरित-काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिनमें कथा सर्गो या अध्यायो में विस्तार के हिसाब से विभक्त नही होती, बराबर चली चलती है केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसगों का उल्लेख शीर्षक रूप में रहता है। मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छद में हो पर परम्परा के अनुसार उसमें कथारभ के पहले ईश्वर-स्तुति, पैगम्बर की वदना और समय के राजा (शाहेवक्त) की प्रशंसा होनी चाहिए।[1]" उनके इस मत को बिना किसी ऊहापोह के सत्य और प्रामाणिक मान लिया गया और प्रेमाख्यानों पर लिखने वाले विद्वान् इसे दुहराते रहे, परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस ओर अधिक खोजबीन कर इस मत की सत्यता पर प्रश्न-वाचक चिन्ह लगा दिया गया है।[2] शुक्ल जी के इस कथन से कई एक भ्रांतियां उत्पन्न हो गई। उदाहरण के लिए कुछ लोगों ने मसनवियो को प्रेमाख्यान का पर्याय मान लिया और कुछ ने उसे एक छद मात्र, जिसमे आख्यान-काव्य लिखा जाता है। धीरे-धीरे ये भ्रान्तियां दूर हो गईं और हिन्दी जगत् में यह बात स्पष्ट हो गई है कि मसनवी न तो प्रेमाख्यान का ही पर्याय है और न छद विशेष, प्रत्युत 'शाइरी की एक सिन्फ' (काव्यरूप) है। "यह अरबी भाषा के 'मसना' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है दो-दो। चूंकि मसनवी के हर बैत में दो काफिए पृथक् होते है, इसलिए इसे मसनवी कहते है।"[3] उसमें किसी भी विषय को काव्यबद्ध किया जा सकता है। यदि मसनवी

---

१. जायसो ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ४

२. क. हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, श्री रामपूजन तिवारी, पृ० १८२
   ख. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ५३८-३९
   ग. चंदायन, सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ४०

३. लुगाते किश्वरी, पृ० ४३५

न होती तो युद्ध और समारोह, आचार तथा धर्म, इतिहास और तसव्वुफ, कला और दर्शन ये सभी विषय फारसी काव्य में अनभिव्यक्त रह जाते।[1] अतः हिन्दी एवं पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य को किसी परम्परा विशेष से संबद्ध करने से पूर्व कुछ प्रतिनिधि रचनाओं की रचना-व्यवस्था का विश्लेषण कर लेना अत्यावश्यक है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों की रचना-व्यवस्था

मुसलमान कवियों की रचनाएं—हिन्दी प्रेमाख्यानों के दो मुख्य वर्ग हैं। एक वर्ग मुसलसान कवियों का है दूसरा हिन्दू कवियों का। मुसलमान कवियों मे सर्व-प्रथम ज्ञात कवि दाऊद दलमई है। उनके 'चंदायन' में सिरजनहार एव मुहम्मद के गुणानुवाद के अनन्तर चार यारों का उल्लेख है। फिर शाहेवक्त फिरोज़शाह तुगलक की प्रशसा की गई है, तत्पश्चात् अपने गुरु की वन्दना, आश्रयदाता एवं (सभवत.) अपने पिता की प्रशंसा के अनन्तर कथारंभ की चर्चा तथा रचना-तिथि दी है।[2] कुतबन की 'मृगावती' में ईश्वर-महिमा, मुहम्मद-स्तुति, चार मीतों का वर्णन, पीर-प्रशसा, शाहेवक्त हुसेनशाह की विद्या, बुद्धि, यश और तेज के वर्णन के अनन्तर ग्रंथ-परिचय एवं कथारंभ है। रचना-तिथि के अतिरिक्त इसमें कवि ने रचना मे प्रयुक्त कुछ छंदो का नामोल्लेख कर बताया है कि यह रचना हुसेनशाह के आदेश पर हुई।[3] 'पदमावत' मे सर्वप्रथम 'आदि एक करतार' के स्मरण एव उसकी विविध सृष्टि तथा शक्तियों का बखान है। ईश्वर-महिमा एवं गुणगान में अपनी असमर्थता व्यक्त करने के अनन्तर जायसी ने हजरत मुहम्मद और उनके चार मीतों की प्रशंसा की है। शाहेवक्त, 'पियारे पीर' सैयद अशरफ की स्तुति एवं गुरु-परम्परा-वर्णन के उपरान्त कवि ने अपने विषय मे भी कुछ कहा है, यहां कवि अपने चार मित्रों एवं नगर का वर्णन करना भी नही भूला। तत्पश्चात् ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय देकर कथा आरभ की है।[4] जायसी ने इस प्रारम्भिक अ्रश मे विशेष रुचि ली है। उनकी अन्य आख्यानक रचना 'चित्ररेखा' में भी यही क्रम है।[5] इस लघु रचना मे यह भाग सम्पूर्ण रचना के पंचमांश के लगभग है।

मंझनकृत 'मधुमालती' में 'प्रेम प्रीति सुखनिधि के दाता' एकोंकार की स्तुति तथा वैभव का छ. कड़वकों में सविस्तार उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् मुहम्मद, चारो यार, शाहेवक्त शाह सलीम, पीर एवं अपने आश्रयदाता खिजरखां की स्तुतियों का वर्णन है।[6] कवि ने अपने पीर शेख मुहम्मद गौस की आठ कड़वकों में

१. मज़हब और शायरी, डॉ० एजाज़ हुसैन, पृ० २०४
२. चांदायन, पृ० १-१५
३. मृगावती, पृ० १-६
४. पदमावत, पृ० १-२४
५. चित्ररेखा, सं० शिवसहाय पाठक, पृ० ६५-७५
६. मधुमालती. पृ० ३-२०

श्रद्धापूर्वक प्रशंसा की है। तदनन्तर वचन, प्रेम, विरह, कर्म तथा योग का भी महत्त्व स्पष्ट कर कथारभ की है।[१] आलम की 'माधवानल कामकदला' में पारब्रह्म एव अकबर सुलतान की सस्तुति के अनन्तर ग्रंथ-परिचय दिया गया है।[२] उसमान ने 'चित्रावली' में सर्वप्रथम जगत के चतुर चितेरे की स्तुति की है। उसके अनन्तर मुहम्मद साहब, उनके चार मित्रों तथा शाहेवक्त जहागीर की विस्तृत प्रशसा है। तत्पश्चात् गुरु-परम्परा मे शाह निज़ाम एवं बाबा हाजी की प्रशसा के उपरान्त अपने निवास-ग्राम गाज़ीपुर तथा पांच भाइयों का वर्णन है।[३] स्तुति एवं कथारम्भ के मध्य कवि ने रूप, प्रेम एवं विरह के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। प्रस्तावना में कथा लिखने की तिथि एवं गुणवानों से दोष छिपाए रखने की प्रार्थना भी कवि ने की है।[४] शेखनबी ने 'ज्ञानदीप' में सर्वप्रथम अवर्णनीय निरजन नायक दीनदयाल और नबी की स्तुति के अनन्तर चारों मीतो तथा अदल-सदल शाह जहांगीर की प्रशंसा की है। रचना-काल एवं कवि के सक्षिप्त परिचय के अनन्तर कथारम्भ होती है।[५]

जान कवि ने प्रायः अपने सभी प्रेमाख्यानों का आरम्भ 'अलष-अगोचर' के गुणगान से किया है। इसके अनन्तर नबी मुहम्मद साहब, उनके चार मित्रों एवं शाहेवक्त की संक्षिप्त सी संस्तुतियां लिखकर कथा आरम्भ कर दी जाती है। शाहेवक्त के रूप मे जहाँगीर (कथा कंवलावती मे),शाहजहां (रतनावती, रतनमजरी, कथा कुलवंती, पुहपबरिषा, कथा खिजर खां सहिजादे देवलदे की, ग्रंथ लैलै मजनूं में) और औरगजेब (कथा सुभटराइ, कथा नल दमयंती मे) का पृथक्-पृथक् रचनाओं मे प्राय. एक ही प्रकार का संक्षिप्त सा वर्णन है। अनेक रचनाओ मे (कथा कौतुहली, कथा कलदर, कथा कनकावती, कथा कामलता, कथा मधुकर मालती) शाहेवक्त का उल्लेख तक नही है। एकाध रचना मे मन की चंचलता और ससार की नश्वरता का वर्णन भी आरंभ में आ गया है।[६] गुरु-प्रशंसाएं भी सर्वत्र नही है, उदाहरण के लिए 'कथा कौतुहली', 'कथा सुभटराइ की', 'कथा कुलवती' आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है।

कासिमशाह के 'हस जवाहर' में भी अलख एवं उसकी सृष्टि-रचना का महिमा-गान, अहमद सहित आदम की उत्पत्ति, चार यारों की प्रशसा, पीर मुहम्मद अशरफ एव शाहेवक्त मुहम्मदशाह की प्रशसा के अनन्तर अपना तथा अपने नगर

---

१. मधमालती, पृ० २१-२८
२. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १८४-८५
३. चित्रावली, पृ० १-१२
४. वही, पृ० १२-१५
५. ज्ञानदीप (हस्तलिखित), प्रथम सत्रह कड़वक।
६. ग्रंथ लैलै मजनू के प्रारम्भ में।

का परिचय दिया है । तत्पश्चात् सत्संगति की महिमा वर्णन कर पंडितों से टूटे वचन जोड़ने की प्रार्थना एवं रचना-तिथि लिखी है ।[1]

नूरमुहम्मद की 'इन्द्रावती' भी इस सम्प्रदाय के कवियों की महत्त्वपूर्ण कृति मानी जाती है । इसमे सिरजनहारा, अरबी नबी मुहम्मद, चार यार और शाहेवक्त मुहम्मद शाह की सक्षिप्त स्तुति की गई है ।[2] इसके अनन्तर कवि ने अपने नगर का संक्षिप्त परिचय देकर करबला की दुखद स्मृति मे एक दुखपूर्ण घटना लिखने की इच्छा व्यक्त की हे । तभी स्वप्न मे एक तपी द्वारा 'इन्द्रावती' लिखने का आदेश, रचना-तिथि एव अपनी अल्पज्ञता का वर्णन कर कथामुख में तपी की कथा का पुन: सकेत कर कथारम्भ की गई है ।[3] इसी प्रसंग में वचन की प्रशंसा भी उपलब्ध होती है ।[4]

शेख निसार की 'यूसफ जुलेखा' धार्मिक आख्यान होने के कारण महत्त्वपूर्ण है । उसमे सृष्टिकर्ता, मुहम्मद, चार मीत, और शाहेवक्त आलमशाह की प्रशंसा के अनन्तर कवि ने अपना परिचय दिया है । कथा—रचना की तिथि, प्रयोजन और श्रुतिफल के पश्चात् कथा आरंभ की गई है ।[5]

मुसलमान कवियो का दूसरा वर्ग दक्खिनी के कवियों का है । उत्तरी भारत के मुसलमान कवियों की अपेक्षा इन कवियों ने कुछ रूढ़ियों का अधिक दृढ़ता से पालन किया है । कुतबमुश्तरी (मुल्ला वजही) में 'रब्ब' की महिमा, मुहम्मद साहब, की स्तुती मेराज की घटना, इश्क की प्रशंसा, कविता की प्रशंसा, अपनी कविता की प्रशंसा एव इब्राहीम कुतबशाह (शाहेवक्त) की प्रशंसा के अनन्तर कथा का आरम्भ किया गया है ।[6] गवासी के 'सैफुलमुलूक' में हमद, दुआ, मुहम्मद साहब की प्रशंसा मेराज वर्णन, गुरु-परम्परा एवं पीर की प्रशसा, सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह तथा वचन की प्रशसा एव आत्म-परिचय के अनन्तर कथा का आरंभ है ।[7] इस कवि की अन्य प्रेमाख्यानक रचना 'मैना सतवन्ती' मे पाक रहमान की हमद, हज़रत मुहम्मद, चार यार एव पीर मही-उल-दीन की प्रशसा है ।[8] मुकीमी के 'चन्दरबदन महियार' में बारीताला का स्मरण, आत्म-निवेदन, मुहम्मद साहब एव उनके चार यारो की

१. हंस जवाहर, पृ० १-८
२ इन्द्रावती, सं० श्यामसुन्दर दास, पृ० १-२
३. वही, पृ० ३-६
४. वही, पृ० ५
५. हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह, पृ० ३२८-३३४
६. कुतबमुश्तरी, पृ० १-३६
७. सैफुलमुलूक, पृ० १-२५
८. मैनासतवंती, सं० गुलामउमरखां, पृ० ११८-१२२

प्रशंसा, इश्क तथा अपने काव्य की प्रशंसा के अनन्तर कथा का आरम्भ है ।[1] इब्ननिशाती के 'फूलबन' में ईश्वर-प्रशंसा एवं प्रार्थना, पैगम्बर, अली आदि धार्मिक नेताओं, इमाम हुसेन और अब्दुल्ला कुतबशाह की प्रशंसा के अनन्तर पुस्तक लिखने के कारण अपने काव्य-कौशल का बखान कर ग्रन्थ का आरम्भ किया है ।[2]

इस प्रकार हिन्दी के मुसलमान कवियों के सभी प्रेमाख्यानो के प्रारंभिक वर्णनों मे जो बात समान रूप से मिलती है, वह निम्नलिखित है—

अलख, अगोचर—ईश्वर का स्मरण

जो बातें अधिकांश मे मिलती है, वे निम्नलिखित है—

१ हज़रत मुहम्मद का वर्णन
२. चार यारों का वर्णन
३ गुरु-परम्परा और गुरु-प्रशंसा
४. शाहेवक्त की प्रशंसा
५. आत्म-परिचय एवं आत्म-निवेदन
६. प्रेम या विरह की महिमा

कुछ प्रसंग ऐसे है जो यत्र-तत्र ही मिलते हैं, वे निम्नलिखित है—

१. अपने मित्रों का वर्णन (जायसी के पदमावत मे)
२. मेराज की घटना का वर्णन (दक्खिनी के प्रेमाख्यानो में)
३. अपने भाइयों का वर्णन (उसमान की चित्रावली में)
४. सत्संगति की महिमा (कासिमशाह के हंस-जवाहर में)
५. वचन की प्रशंसा (मधुमालती, इन्द्रावती एवं सैफुलमुलूक मे)

हिन्दू कवियों की रचनाएं—हिन्दू कवियों द्वारा रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों मे भी प्रारंभ मे वन्दना या ईश्वर-स्तुति नियमपूर्वक मिलती है । 'बीसलदेव रासो' मे 'गवरकानंदन एवं हसवाहिनी देवी शारदा' की वन्दना है ।[3] कवि दामो की 'लखमसेन पदमावती कथा' मे अत्यन्त संक्षेप में 'सारदामाय' एवं गणेश को नमस्कार कर[4] कथा आरम्भ कर दी गई है ।

'छिताई चरित' मे गणेश, सरस्वती की सक्षिप्त सी वन्दना के अनंतर कथा आरंभ होती है ।[5] चतुर्भुज की 'मधुमालती वार्ता' मे भी एक ही पद्य मे सरस्वती

१. चन्दरबदन महियार सं० मुहम्मद अकबरुलदीन सिद्दीकी, पृ० ७५-८३
२. फूलबन, पृ० १-१०
३. बीसलदेव रासो, सं० डॉ० तारकनाथ अग्रवाल, पृ० १-४
४. लखमसेन पदमावती कथा, पृ० १७
५, छिताई चरित, पृ० १

गणेश को नमस्कार कर कथा प्रारम्भ हो जाती है।[1] गणपति के 'माधवानल कामकंदला प्रबंध' मे सर्वप्रथम रतिरमण को नमस्कार कर सरस्वती, गणेश की वन्दना की गई है। इसके पश्चात् कवि ने ग्रथ-रचना का प्रयोजन एव आत्म-परिचय देकर कथारंभ की है।[2] कुशललाभ ने 'माधवानल कामकदला चउपइ' मे 'सुमतिदातार सरस्वति देवि' को अति सक्षेप मे नमस्कार किया है।[3] अन्य रचना 'ढोला मारवणी री चउपइ' में भी कवि ने दो पद्यों मे ही 'माता सरसत्ति अविरलमत्ति' से विनय-याचना की है।[4] दामोदर-विरचित 'माधवानल कथा'[5] तथा साधन कृत 'मैनासत'[6] में भी अति सक्षेप से इस परम्परा का पालन कर कथा आरभ कर दी गई है। भक्त कवि नंददास की रूपमजरी' मे सर्वप्रथम प्रेममय परम ज्योति को नमस्कार किया है। तदनतर प्रेम-पद्धति का महत्त्व एव 'सरसुति' के पग छूकर कवि ने कुछ प्रार्थना की है[7] और तब कथा आरंभ हुई है। पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' मे एक ही पद्य मे 'परमेसर सरसति एव सद्गुरु' को नमस्कार कर माधव के गुण गाने का उपक्रम किया गया है।[8]

'रसरतन' में पुहकर ने अविनाशी, अगुन, गिरधर, रुद्र, सूर्य, सरस्वती, गणेश प्रभृति देवताओं की वन्दना के अनन्तर अपने से पहले कवियों को नमस्कार किया है। इसके पश्चात् कवि ने अपनी रचना का परिचय देकर शाहेवक्त नूरदीन जहांगीर के 'दल एव अदल' की विस्तृत प्रशंसा की है, एक पृथक् अध्याय में उसने अपने कुल का भी सविस्तार परिचय दिया है।[9] सूरदास लखनवी ने 'नलदमन' में आदि-अनादि का स्मरण कर, उसकी महिमा का विस्तृत वर्णन किया है। शाहेवक्त शाहजहा की प्रशंसा, गुरु देवरंग बिहारी के गुणगान एवं अपने परिचय के उपरान्त कवि ने कथा-स्रोत, रचना-तिथि आदि का वर्णन कर कथारंभ की है।[10] कविकेस-कृत 'माधवानल नाटक' मे गणेश, कालिका तथा विद्यागुरु की संस्तुति के अनन्तर आश्रयदाता रामसिह की वंश-परम्परा और उसकी आज्ञानुसार रचना-कार्य मे प्रवृत्त

१. मधुमालती वार्ता, पृ० १
२. माधवानल कामकंदला प्रबध, पृ० १-३
३. वही, पृ० ३८१
४. ढोला मारू रा दूहा, पृ० २७७
५. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ४४३
६. मैनासत, सं० हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० १७१
७. नंददास ग्रंथावली, सं० ब्रजरत्नदास, पृ० ११७-११८
८. वेलि क्रिसन रुकमणी री, सं० डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, पृ० १
९. रसरतन, सं० पृ० १-१५
१०. नलदमन, पृ० १-२१

होने का वर्णन है ।[1] दुखहरनदास ने 'पुहुपावती' में निराकार राम की स्तुति के उपरान्त शिव, काली और गणेश की वन्दना की है। फिर गुरु के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित कर तत्कालीन शाहेवक्त औरंगजेब की वन्दना के अनन्तर अपना परिचय दिया है ।[2]

गुरदास गुणी ने 'कथा हीर रांझनि की' में गणेश, रूपरंगहीन पुरुष, गुरुदेव तथा सुरसुती की वन्दना के अनन्तर शाहेवक्त औरगजेब की स्तुति गाई है ।[3] सभाचद सोंधी की 'कथा कामरूप' मे भी निर्गुण ईश्वर एव उसी के सगुण रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अन्य देवताओं की वन्दना कर गुरु का गुणगान किया गया है। रचना के अन्त में कवि ने शाहेवक्त मुहम्मद शाह की स्तुति मे एक दोहा लिखा है ।[4]

हिन्दी के हिन्दू एवं मुसलमान कवियों की रचनाओं के प्रारम्भिक अंशों का विश्लेषण

मुसलमान एव हिन्दू कवियों की रचनाओं के प्रारंभिक अंशों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रथारंभ में मंगल-पद्य लिखने की प्राचीन भारतीय परम्परा का पालन, हिन्दू-मुसलमान, दोनों ही धर्मों के कवियों ने किया है। मगल-पद्यों मे सभी ने अपने इष्टदेव का स्मरण अथवा वन्दन किया है। गुरू-परम्परा का वर्णन तथा गुरु को नमस्कार करने की परम्परा का निर्वाह अनेक मुसलमान और दो तीन हिन्दू कवियों ने ही किया है। हिन्दू कवियो ने अन्य देवी-देवताओ के अतिरिक्त सरस्वती देवी एव गणेश को विशेष रूप से नमस्कार किया है। सरस्वती वाणी की देवी हैं, काव्य में उसका विशेष महत्त्व है। कई मुसलमान कवियों ने भी वचन या सुखन की प्रशसा मे अनेक पद्य लिखे है। इन स्तुति-अंशों की परम्परा अक्षुण्ण होते हुए भी तीन प्रकार की है। एक: विस्तृत, दो : सक्षिप्त, तीन : मध्यमार्गी। विस्तृत परम्परा को अपनाने वाले अधिकांश मुसलमान कवियों के अतिरिक्त, पुहकर (रसरतन के रचयिता) और सूरदास लखनवी (नलदमन के रचयिता) जैसे हिन्दू कवि भी हैं। सक्षिप्त मंगलाचरण में एक परम्परा तो उन कवियों की है जिन्होंने एक दो पद्यो में ही इसका निर्वाह किया है जैसे नरपति-नाल्ह, दामो, चतुर्भुज कायस्थ, कुशललाभ, साधन, दामोदर। परन्तु मुख्य वर्ग उन कवियों का है जिनके ये अंश न तो मंझन, जायसी एवं पुहकर के समान अत्यन्त विस्तृत है और न ही दामो, कुशललाभ एवं साधन के समान अत्यन्त सक्षिप्त। इन कवियों ने दो-तीन कड़वकों अथवा आठ नौ पद्यों मे यथारुचि अपने इष्टदेव, गुरु और शाहेवक्त की प्रशसा या आत्मनिवेदन कर कथा-भाग आरंभ कर दिया है। मध्यमार्ग

---

१. माधवानल नाटक, सं० डॉ० सत्येन्द्र जी वर्मा, पृ० १-२
२. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३६५
३. कथा हीर रांझनि की, पृ० ३७-३८
४. कथा कामरूप, प्रथम और अन्तिम पृष्ठ, हस्तलिखित।

अपनाने वाले इन कवियों की संख्या पर्याप्त है। जिनमे नंददास, परशुराम, नरपति व्यास, भूपत, मुकंदसिह, आलम, बोधा, गुरदास गुणी, सभाचंद सोंधी आदि उल्लेखनीय है जान कवि की भी अनेक रचनाए इसी कोटि में आती है। 'कथा सुभटराइ की' जैसी एक-दो रचनाओ का यह भाग अत्यन्त संक्षेप से एक दो पद्यों में है।

'ढोला मारू रा दूहा' की रचना मौखिक परम्परा से सग्रहीत की गई है। अत. उसमे मगल-भाग नही है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों के प्रारम्भिक अंश

पंजाबी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान-साहित्य मे हिन्दू कवियों की दो रचनाए उपलब्ध होती है। एक तो दमोदर की हीर दूसरी जोगसिंह की हीर। प्रथम रचना उपलब्ध कृतियों मे प्राचीनतम है और दूसरी १८२५ ई० की। दमोदर ने चार पक्तियों के एक लघु छद में परम्परा का निर्वाह मात्र किया है। इनमे से तीन मे सृष्टि कर्ता 'साहिब' की स्तुति एव चौथी में आत्म परिचय है।[1] हीर जोगसिह में भी संक्षेप से दो दोहों मे 'गौर्यागणपति गणेश' की वदना के अनन्तर कथा आरम्भ कर दी गई है।[2]

पीलू की रचना 'मिरजा साहिबाँ' एक अंग्रेज काव्य-रसिक ने श्रुतिपरम्परा से प्राप्त कर लिपिबद्ध करवाई है। रचना के इस रूप मे स्तुतिपरक अंश नही है।

हाफिज बरखुदार की 'यूसफ जुलेखा' मे यह अंश अतिविस्तार से अंकित है। रोजी देने वाले वाहिद खालिक की प्रशंसा करने मे कवि ने विशेष रुचि दिखाई है। कवि कहता है कि उसकी किस-किस कुदरत का वर्णन किया जाये। जिस ओर भी विचार करे वह साहिब दिखाई देता है।[3] कोई व्यक्ति उसके बिना नही। चाहे हाथी हो चाहे घोड़ा, सभी में ईश्वर के दर्शन होते है।[4] इसके अनन्तर साहिब के वाहिद रसूल मुहम्मद की स्तुति करने मे आत्म-दैन्य का प्रकाशन किया है। कवि का विश्वास है कि यदि इस जिह्वा को गुलाब के जल से सौ-सौ बार भी धोया जाए तो भी यह नबी की 'नात' (प्रशंसा) के योग्य नही बनती। 'यदि मेरे सहस्र मुखों मे से प्रत्येक में लाखों करोड़ो जिह्वाए हो और फिर सौ वर्षो के परिश्रम-स्वरूप मै एक लाख

---

१. हीर दमोदर, सं० निहालसिंह रस, पृ० १७

२. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, भाषा विभाग, प्रमुख किस्साकार १८५०-१८८०, पृ० ७८-७९

३. जिद्धर फिकर सफाई कीजै साहिब दिस्से नाले।

—यूसफ जुलेखा, पृ० ३७

४. बिन खालिक मखलूक न कोई, जिस वल नज़र कजीवे।
हाथी भावें घोड़ा दिस्से, खालिक हासिल थीवे॥

—वही, पृ० ३७

पुस्तके लिखूं तो भी मेरे दिल-में वर्तमान नबी की स्तुति पूर्ण नहीं हो सकती।[1] इसमें कवि ने मेराज की घटना का सविस्तार उल्लेख किया है।[2] कवि ने इश्क की भी प्रशसा की है। उसका विचार है कि ससार के प्रत्येक प्राणी मे इश्क समाया हुआ है। किसी मे हकीकी और किसी मे मजाजी, मनुष्य रूपी वृक्ष के इश्क हकीकी एव इश्क मजाज़ी ये दो फल है। प्रत्येक सूरत मे उसी ईश्वर का जमाल है। जुलेखा ने यूसफ में, मजनू ने लैला मे और फरहाद ने शीरी मे उसी चित्रकार के दर्शन किए।[3] हाफिज ने कथा की अलौकिकता एव उसके पठन के फलादेश का भी वर्णन किया है।[4]

अहमदकृत 'हीर' किसी मुसलमान लेखक द्वारा हीर-कथा पर लिखी गई प्राचीनतम रचना है। इसमे केवल चार पक्तियों मे ही वंदना-प्रकरण समाप्त हो जाता है।[5] मुकबल ने भी 'हीर' मे सक्षेप से दो ही पद्यों में खुदा, हजरत मुहम्मद एव इश्क की प्रशसा की है।[6] वारिस की विस्तृत रचना में भी इस विषय पर केवल पांच ही पद्य मिलते है; जिनमे खुदा, रसूल, चार यार, पीर एव फरीद शकरगंज की स्तुति है।[7]

लुत्फअली की रचना 'मसनवी सैफुलमुलूक' में ईश्वर, मुहम्मद साहब, चार यार,

---

१. अव्वल सै सै वारी हाफज जीभ गुलाबों धोवां।
तां भी नाअ़त नबी दे लाइक कीते कता न होवां॥
× × ×
जे मै सहस मुहां दे होवण जीभां लख करोडी।
सौ वरहियां दी मेहनत करके लख रसाला जोडी॥
मदह नबी दी तम न होसी जिउ कर हुब्ब दिले दी।
—यूसफ जुलेखा, पृ० ३९

२. वही, पृ० ३९-४१

३. रुख आदम फल इश्क हकीकी एहो फल मजाज़ी।
अलफ बेआं पढ़ महिरम होए फाज़िल मुल्लां-काज़ी॥
× × ×
उह जलवा ज़ात सिफात जमाली, गाफल समझ कदाही।
—वही, पृ० ४२-४३

४. वही, पृ० ४३

५. अव्वल करो सिफत साहिब दी,
जो सगल जगत दे करन हारा।
हिन्दू मुसलमान जिन पैदा कीते,
आपो आपणा राह पकडिआ निआरा॥
—हीर अहमद, पृ० १८७

६. हीर रांझा, पृ० १

७. हीर वारिस, पृ० १-२

एवं गुरु परम्परा की प्रशंसा है ।[1] इस रचना में मुहम्मद साहब को प्रेमास्पद के रूप में स्वीकार कर उनके जमाल एव सौदर्य का नखशिख-पद्धति पर विस्तृत वर्णन है । कवि ने अपने आश्रयदाता नवाब बहावलखां की प्रशसा इस प्रारंभिक भाग के अतिरिक्त कथा के बीच-बीच में भी कई बार की है । ससार की नश्वरता का वर्णन कर कवि ने रचना का उद्देश्य स्पष्ट कर कथा आरंभ कर दी है ।

हाशम ने अपनी चारों प्रेमकथाओ (हीर रांझा, सोहणी महीवाल, सस्सी पुन्नू, शीरी फरहाद) में दो-दो, तीन-तीन पद्यों मे इस परम्परा का पालन भर किया है ।'शीरी फरहाद' मे इस विषय पर अपेक्षाकृत अधिक लिखा है, परन्तु उसमें भी ईश्वर एव उसके वैभव का ही उल्लेख है । हजरत मुहम्मद, चार यार या गुरु वंदना आदि का उल्लेखमात्र भी नहीं ।[2]

अहमदयार रचित 'अहसनुलकस्सिस' (यूसफ जुलेखा) उल्लेखनीय है । इस ग्रथ मे यह प्रसंग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है । इसमें खुदावद खालिक की हम्द, हजरत मुहम्मद की नात, उनकी दस्तार (ताज) की प्रशसा, मेराज की घटना का विस्तृत उल्लेख, चार यारों की स्तुति, पीर की स्तुति, तथा इश्क की प्रशसा के अनन्तर सूराए यूसफ के अवतरण की घटना है । यह सम्पूर्ण प्रसंग लगभग साढ़े चार सौ पक्तियो[3] में फैला हुआ है । इसके विपरीत अहमदयार की अन्य रचना 'कामरूप' मे सक्षेप में 'खलक' को उत्पन्न करने वाले खालिक, नबी एव उसके चार यारों की प्रशंसा के अनन्तर विस्तार से पीर अब्दुल कादिर जीलानी की प्रशंसा की गई है । तदनन्तर रचना-प्रयोजन एवं संक्षिप्त आत्मपरिचय देकर किस्सा आरंभ किया गया है ।[4] कवि ने 'सस्सी-पुन्नू' मे तो केवल इश्क एवं आशिक की प्रशंसा के अनन्तर ही कथा आरम्भ कर दी है[5] । कादरयार ने 'किस्सा सोहणी महीवाल' में इश्क उत्पन्न करने वाले रब्ब एवं इश्क के मार्ग पर चलने वालों के गुणगान के पश्चात् 'प्यार-वार्ता' का आरंभ किया है ।[6]

अमामबख्श ने 'किस्सा मलिकजादा शाहपरी' मे खुदा की हम्द, नबी मुहम्मद, चार यार और पीर अब्दुल कादिर जीलानी की स्तुतियो के अनन्तर कथा लिखने का कारण स्पष्ट किया है ।[7] इस कवि की अन्य रचना 'शाहबहराम हुसनबानों'

---

१. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ५१-६७
२. हाशम रचनावली, पृ० ३८, ५०, ८०, १०६-७
३. अहसनुलकस्सिस, पृ० १-१८
४. किस्सा कामरूप, पृ० १-४
५. सस्सी पुन्नू, सं० उजागर सिहपृ० ३७ ३८
६. कादरयार, पृ० ६६
७. किस्सा मलिकज़ादा शाहपुरी (हस्तलिखित) प्रथम चार पृष्ठ

मे ईश्वर की प्रशंसा के अनन्तर रचना का उद्देश्य बताकर कथा आरंभ कर दी गई है।[1] फजलशाह ने 'सोहणी महीवाल' मे खुदा, रसूल, चार यार और अब्दुल कादिर जीलानी के गुणानुवाद के अनन्तर यारो के आग्रह पर किस्सा लिखने का वर्णन किया है।[2] इस कवि की अन्य रचना 'हीर राझा' मे यह अंश किंचित विस्तार से है। आरम्भ मे खुदा द्वारा इश्क की उत्पत्ति एव उससे मुहम्मद साहिब की उत्पत्ति का वर्णन कर कवि ने इश्क की प्रशसा की है तथा इश्क की आग मे जलने वालो को सराहा है।[3] तत्पश्चात् मुहम्मद साहब की स्तुति, उनके मेराज का वर्णन, पीर-स्तुति एवं कथा लिखने का वही चिरपरिचित उद्देश्य बताकर[4] कथा आरभ की है।

मिया मुहम्मदबख्श ने 'सैफुलमुलूक' में खुदा, नबी, मेराज, गुरु-परम्पराएं और अपने पीर की विस्तृत प्रशसा करने के अनन्तर[5] कथा की प्राचीनता के विषय में एक भूमिका-कथा लिखी है।[6] तत्पश्चात् प्रस्तुत रचना के काव्य-गुणो का वर्णन कर काव्य मर्मज्ञों से नम्र निवेदन किया है और साथ ही काव्य-गुरु से सशोधन करने की प्रार्थना की है। कवि पाठको, लिपिकारों एव श्रोताओं से दोष छिपाने की प्रार्थना एव प्रेमियो के प्रेम का गुणगान करना भी नही भूला।[7] तदनन्तर चार मजिलो -- मजिले इस्त-गणा (अनीहा), मंजिले तौहीद (सायुज्य), मजिले हैरत (विस्मय) और मजिले गदा (सन्यास) का परिचय[8] देकर कथा आरभ की गई है। मुहम्मदबख्श की यह पूर्व-पीठिका उपलब्ध पजाबी प्रेमाख्यानों मे सर्वाधिक विस्तृत है।

पजाबी प्रेमाख्यानों के प्रारम्भिक अशो का विश्लेषण

विश्लेषण करने पर पजाबी प्रेमाख्यानो मे भी तीन ही प्रकार की स्तुति-परम्पराएं मिलती है। हाफिज बरखुरदार-कृत 'यूसफ जुलेखा', लुत्फअली-कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक', अहमदयार-कृत 'अहसनुलकस्सिस' एव मिया मुहम्मदबख्श-कृत 'सैफुलमुलूक' जैसी कुछ ही रचनाओ मे विस्तृत मगल लिखने की परम्परा का अनुगमन किया गया है। अधिकांश रचनाओ मे सक्षेप से ही इस परम्परा का निर्वाह मात्र करने की प्रवृत्ति है। वारिस की 'हीर', हाशम की 'शीरीं फरहाद', अहमदयार की 'कथा कामरूप', फजलशाह की 'सोहणी महीवाल' जैसी कुछ रचनाओं मे मध्यमार्ग का अनुगमन किया गया है परन्तु वहाँ भी इनका झुकाव सक्षेप-प्रियता की ओर ही है।

---

१. शाह बहराम हुसनबानो, पृ० १
२. सोहणीं महीवाल, पृ० १-२
३. हीर रांझा, पृ० १-३
४. वही, पृ० ३-६
५. सैफुलमुलूक, पृ० ४९-६०
६. वही, पृ० ६१-६५
७. वही, पृ० ६५-७२
८. वही, पृ० ७३-७५

विस्तार की रंचमात्र इच्छा भी इन कवियों मे दिखाई नही देती, इनमें सर्वाधिक विस्तार फजलशाह के 'सोहणी महीवाल' मे है ।

इन रचनाओ के प्रारंभिक खण्डों के अध्ययन के अनन्तर एक भी प्रसग ऐसा नही मिलता जो सभी मे समान रूप से स्वीकार किया गया हो । एक कवि की भिन्न-भिन्न रचनाओ में भी एक ही पद्धति का अनुकरण नही किया गया । अधिकाश रचनाओं मे अल्लाह-रब्ब या साहिब की स्तुति है परन्तु इसके भी अपवाद मिल जाते है । जैसे अहमदयार-कृत 'सस्सी पुन्नू' में केवल इश्क की ही महिमा का गान है । कई मुसलमान कवियों ने मुहम्मद साहब का भी स्मरण नही किया । हीर अहमद, हाशम की सभी रचनाएं, अमामबख्श की अनेक रचनाएं, अहमदयार की सस्सी, कादरयार की सोहणी आदि कई रचनाएं ऐसी मिल जाती है जिन के रचयिता मुसलमान है परन्तु उनमे मुहम्मद साहब का नाम स्मरण भी नही । अत: ये कवि किसी प्रकार की परम्परागत रूढ़ियो से स्वतंत्र ही प्रतीत होते है ।

तुलना

हिन्दी एवं पंजाबी प्रेमाख्यान-रचयिताओ की एक विशिष्ट सख्या अत्यन्त सक्षिप्त मगलाचरण मे विश्वास करती है । इन लोगो का दृष्टिकोण कथा को मनोरजक बनाने और जन-मन-रजन करने का था । किसी प्रकार के धार्मिक नियमों का प्रचार इन्हे अभीप्ट न था, परन्तु भारतीय मानस की धर्मभीरुता से ये नितान्त मुक्त भी नही हुए थे । अत. मगलाचरण की उपेक्षा करने के उदाहरण भी नही मिलते ।

'इश्क' मुसलमानों मे अत्यावश्यक एवं सम्मान्य तत्त्व माना गया है । अत: पजाबी के कई कवियो ने उसी की सस्तुति कर कथा आरंभ कर दी है । अपनी इसी मान्यता का उद्घोष उन्होने अनेक बार किया है ।[1] यह तथ्य पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है कि गणपति जैसे प्राचीन हिन्दू कवि ने सरस्वती, गणेश जैसे प्रथम वदनीय देवताओ से भी पहले 'रतिरमण-मयन' को एक दो नही चार पद्यो में 'ब्रह्मा-हरि-हर' के विजेता के रूप में प्रणाम किया है ।[1] अतः इश्क या प्रेम की वन्दना का अस्तित्व काम-वंदना के अन्तर्गत बीज रूप मे हिन्दी में भी उपलब्ध हो जाता है ।

---

१. क. इशक बरन है औलिआं अंबीआं दा ।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० १

ख. इशक सच्चा झूठा भावें जेहा होवे,
उत्थो शौक हजूर दा लभदा ई ।

—सस्सी पुन्नूं (अहमदयार),

ग. किस्सा आखणां आशकां कामलां दा ।
इह वी बंदगी है धुरो नाल आई ।

—हाशम रचनावली, पृ० ३८

२. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० १

पंजाबी के प्रेमाख्यानों मे कुछ एक अपवादों को छोड़कर अधिकांश रचनाओं मे इस परम्परा के प्रति कवियो की विशेष रुचि दिखाई नहीं देती । दो-तीन छदों मे निर्वाह मात्र के लिए ही यह मगल-प्रसग समाहित किया जाता है । इस प्रकार के सक्षिप्त मगल-अशो वाली रचनाए हिन्दी एव पंजाबी दोनों ही भाषाओं मे पर्याप्त है हिन्दी में यदि हिन्दू लेखकों ने इस परम्परा को स्वीकार किया है तो पजाबी में भी दमोदर एव अनेक मुसलमान लेखकों ने इसे अपनाया है । पजाबी का प्रेमाख्यान साहित्य धार्मिकता के प्रचार की प्रतिक्रियास्वरूप रचा गया था । अतः इसमे विशेष प्रकार के विस्तृत स्तुति-खण्डों की आशा व्यर्थ है । इन प्रेमाख्यानो की रचना से पूर्व प्रबन्ध-रचना की कोई लिखित परम्परा भी पजाबी साहित्य में उपलब्ध नही होती, संभवतः अशान्त वातावरण मे उसे कोई सरक्षक न मिला । अतः, पंजाबी प्रेमाख्यानों में यदि ये खण्ड विस्तार से नही लिखे गये तो कोई विस्मय नही । विस्मय तो यह है कि किसी परम्परा के अभाव एवं धार्मिकता की आधी के प्रतिकार मे विरचित इन रचनाओं में ये सक्षिप्त अंश भी क्यो आ गये । जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, इसका मूल कारण भारतीय जनमानस की धर्मभीरुता ही हो सकती है । 'मंगल' से ही रचना का प्रारम्भ करने का विश्वास जन-चेतना पर इतना गहरा प्रभाव डाल चुका था कि उसका त्याग असभव हो गया ।

हिन्दी के कवियों कापरम्परानुराग

पजाबी के विपरीत हिन्दी प्रेमाख्यानकारों के सम्मुख आख्यान- साहित्य की एक लम्बी परम्परा थी । प्राचीन सस्कृत-काव्यों की यह परम्परा जैन अपभ्रंश-काव्यों मे रूढ़ हो चुकी थी । सभी जैन अपभ्रंश-काव्यो का प्रारभ जिन-वन्दना से होता है । उनमे सरस्वती-वन्दनाएं भी उपलब्ध होती है । तदनन्तर उनमें समकालीन शासक तथा कवि का परिचय एवं आश्रयदाता की प्रशसा की जाती थी ।[१] इन प्रेमाख्यानों के रचना-काल में भी, इन्ही के क्षत्र मे, सस्कृत में उपलब्ध धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर अनेक रचनाए लिखी जा रही थी । इसमे सदेह नहीं कि इनके रचयिता हिन्दू कवि ही थे । परन्तु मुसलमान कवियों की रचनाओं में जिस प्रचुरता एवं स्वतंत्रता से इन रचनाओ के पात्रों का उल्लेख हुआ है उससे यह धारणा प्रबल होती है कि इन कवियों का उनसे परम्परानुगत सम्बन्ध था । धर्मपरिवर्तन की गति पर्याप्त त्वरित् थी । ऐसी अवस्था मे अनेक हिन्दू धर्मपरिवर्तन के साथ ही कवि-हृदय विहीन हो गये यह मानना तर्कसंगत नहीं । दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि तत्कालीन काव्य-रचनाओं के साथ इन कवियों का प्रगाढ़ सम्बन्ध था और उन्ही के माध्यम से हिन्दू कवियों में प्रचलित अनेक काव्य रूढ़ियां, उदाहरणार्थ ग्रंथारंभ में मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन-निन्दा तथा आश्रयदाता का वर्णन आदि से इनका परिचय हुआ । वस्तुतः ये वही काव्य-

---

१. पुष्पदन्त के महापुराण, स्वयंभू रचित पउमचरिउ, श्रीधर कृत पासनाहचरित आदि में यह क्रम अपनाया गया है ।

रूढ़ियां है जो संस्कृत-प्राकृत से अभ्रंश और वहां से भारतीय भाषाओं में गृहीत हुई। काव्य-विधान सम्बन्धी और रूढ़ियां, नखशिख-वर्णन, वाटिका में फूलों का वर्णन आदि भी ऐसी ही हैं।[1]

हिन्दी प्रेमाख्यान एवं फारसी मसनवियां

कुछ विद्वान् हिन्दी के मुसलमान कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानों को इन प्रारम्भिक अंशों के आधार पर फारसी मसनवी-पद्धति का अनुकरण सिद्ध करना चाहते हैं। उनके समक्ष संभवत. ये तथ्य नही रहे होंगे। मसनवी के विषय में 'इन्साइक्लोपीडिया आव् स्लाम' में स्पष्ट लिखा है कि "आरभ अल्ला की वन्दना से होता है। तदनन्तर रसूल की वन्दना और उनके मेराज का उल्लेख रहता है। तत्पश्चात् समसामयिक शासक अथवा किसी अन्य महान् व्यवित की स्तुति की जाती है और फिर पुस्तक के लिखने के कारण पर भी प्रकाश डाला जाता है। साधारणत: छंद में परिवर्तन नही होता।[2]" फारसी साहित्य के विद्वान् ई० जे० डब्यू० गिब्ब[3] तथा ब्राउन[4] ने भी इसी का समर्थन किया है। हिन्दी के कुछ विद्वानो ने फारसी के प्रसिद्ध कवि निजामी, जामी एवं खुसरों की रचनाओं के आधार पर इस तथ्य को प्रमाणित करने का यत्न भी किया है।[5] परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानों की स्थिति कुछ भिन्न है। कुछ सांयोगिक समानताओं के आधार पर ही कोई तथ्य सत्य नही बन जाता। तथ्य को सत्य की कोटि मे स्वीकार करने से पूर्व अनेक पक्षों से उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए और उन परीक्षणों के अनन्तर ही कुछ निर्णय करना चाहिए।

यह सर्वविदित है कि फारसी की प्रेमाख्यान-परक मसनवियो में हजरत मुहम्मद के मेराज का विषद वर्णन रहता है। निजामी, जामी, खुसरो की रचनाओं मे इसका विषद वर्णन है परन्तु हिन्दी के इन कवियों ने इस घटना का वर्णन कही नही किया।[6] केवल जान की एक दो रचनाओ मे इसका सकेतमात्र है या फिर दक्खिनी की रचनाओ मे इसका वर्णन। दक्खिनी की रचनाए भाषा, भाव, अलंकार एव अन्य दृष्टियों से भी इन कृतियो से कुछ भिन्न है। पुनः इस तथाकथित आरंभिक समानता

१. दंगवै तथा चक्रव्यूह कथा, सं० डॉ० शिवगोपाल मिश्र, पृ० १२
२. इन्साइक्लोपीडिया आव् इस्लाम, वा० ३. मसनवी पर लेख, पृ० ४१०-११
३. हिस्ट्री आव आटोमन पोइटरी, वा० १, पृ० ७७
४. लिट्रेरी हिस्ट्री आव् पर्शिया, भाग १, पृ० ४७३
५. (क) मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पांडेय, पृ० २५६-५८
(ख) मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, डॉ० शिवसहाय पाठक, पृ० ३३०-३५
६. सन् १६०० में रचित शेख रहीम के 'भाषा प्रेम रस' में इस घटना का वर्णन है, परन्तु वहां भी प्रारम्भिक भाग में न होकर उस समय है जबकि नायक स्त्री-वेश धारण कर नायिका से मिलने के लिए जाता है।

—भाषा प्रेमरस, सं० उदयशंकर शास्त्री, पृ० ४१

के आधार पर ही कुछ रचनाओ को मसनवी-पद्धति का अनुकरण कह देना दुराग्रह मात्र है :—

'मसनवी' के 'नामकरण' की सार्थकता 'छन्द' प्रयोग पर है। विषय-सामग्री पर नहीं। डा० श्याममनोहर पांडेय ने भी इस विषय के विस्तृत विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि फारसी मसनवियो मे जिन छदों का प्रयोग हुआ है उनका उपयोग हिन्दी के प्रेमाख्यानो में नही हुआ है।[१] हिन्दी प्रेमाख्यानो में प्रयुक्त धत्ता देने की प्रणाली शुद्ध रूप से भारतीय है। और इन सभी (उत्तरी भारत के) कवियों ने निरपवादरूप से इसे अपनाया है।[२]

खण्ड-विभाजन भी हिन्दी की अधिकाश रचनाओं में उपलब्ध नही होता। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'पदमावत' की अनेक हस्तलिखित प्रतियों की जांच के बाद यह निचिश्त किया है कि कवि ने खण्ड विभाजन या घटनाओं के अनुसार सुर्खियाँ देने की परम्परा नही अपनाई। फलतः उन्होंने अपनी सम्पादित 'जायसी ग्रंथावली' मे यह खंड-विभाजन स्वीकार नहीं किया। 'मृगावती' की उपलब्ध प्रतियों मे भी न तो किसी में कथा का विषयानुसार कोई विभाजन है और न कड़वको के शीर्षक ही उपलब्ध होते है।[3] 'चंदायन' में अवश्य प्रत्येक कड़वक के आरम्भ में फारसी मे शीर्षक हैं।[४] निश्चय ही यह उद्भावना कवि की अपनी है, फारसी मसनवियों से उधार ली हुई नही।

इनके अतिरिक्त इन कवियो द्वारा प्रयुक्त भारतीय विश्वासो, शकुन-मान्यताओं लोककथाओ तथा काव्यशास्त्र, नायक-नायिका-भेद एव ज्योतिष के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि इन पर अपने से पूर्व या अपने समय में रचित भारतीय काव्य-कृतियो का ही प्रभाव है। तथ्य यही है कि जिस प्रकार दोहा-चौपाइयों में चरित-काव्य लिखने की शैली को दाऊद, कुतबन, जायसी एवं मझन आदि ने सधार (१३५४ ई० मे वर्तमान), लखनसेनी (१४५९ ई० मे वर्तमान) विष्णुदास (१४३५ ई० मे वर्तमान), दामोदर (१५६० ई० मे वर्तमान), जाखूमणियार (१३६६ ई० मे वर्तमान), मनिक (१३९९ ई० मे वर्तमान), थेगनाथ (१५०० ई० में

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २५५

२. छंद-विधान के लिये विस्तार से देखें—अभिव्यक्ति-कौशल प्रकरण।

३. क मिरगावती, सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० १०३

ख. इस संबंध में डॉ० माताप्रसाद के विवेचन से तो यही झलकता है कि अधिकांश प्रतियों में खंड-विभाजन नही है, (चांदायन', भूमिका पृ० १३ 'मृगावती' भूमिका पृ० ५) फिर भी 'चाँदायन' एवं 'मृगावती' में उन्होंने खंड विभाजन कर दिया है।

४. चंदायन, सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त।

वर्तमान), भीम (१५०० ई० में वर्तमान), ईश्वरदास (१५०० ई० के आसपास वर्तमान)[१] आदि से ग्रहण किया उसी प्रकार ये 'मसनवी-शैली' कहे जाने वाले लक्षण भी उन कवियों की रचनाओं में पाये जाते है। यह तो एक संयोगमात्र है कि उनकी ओर ध्यान ही नही दिया गया और इनको फारसी मसनवियो से सम्बद्ध कर दिया। इनमें मसनवियों की अपेक्षा आचार्य रुद्रट द्वारा वर्णित 'महाकथा' के लक्षण की अनुकृति अधिक स्पष्ट है।

हिन्दी एवं फारसी सूफी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर डॉ० एस० एन० बत्रा ने कुछ तथ्य प्रस्तुत किए है। इस प्रसंग में उनको उद्धृत करना विशेष उपयोगी है—

क. उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी सूफी-काव्यों में मसनवी काव्यों की कुछ ही कथानक रूढियां मिलती है। परन्तु इनकी अनेक कथानक-रूढ़ियों का मूल स्रोत फारसी साहित्य में नही है। इनका मूल प्रायः भारतीय है।[२]

ख. हिन्दी सूफी कवियों के उपमान फारसी साहित्य के प्रभाव से अछूते है। शेखनिसार कृत 'यूसफ जुलेखा' तथा कवि नसीर विरचित 'प्रेमदर्पण' यद्यपि फारसी कवि मौलाना जामी-प्रणीत यूसफ-जुलेखा की कथा के आधार पर रचे गए है तथापि उनमे भारतीय जीवन एव साहित्य से परिचित उपमानो का विधान किया गया है।[3]

उनके 'अध्ययन' से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही साहित्यों के प्रेमाख्यानों का कथास्रोत काव्य-रूढ़ियां, कथानक-रूढ़ियां, छंद-विधान, उपमान-चयन, सभी कुछ अलग-अलग है।[४] इन प्रमाणो से डा० शंभूनाथ सिह के इस सुविचारित मतव्य का ही समर्थन होता है कि 'पदमावत' की रचना भी प्राकृत-अपभ्रंश के उपर्युक्त कथा-काव्यों की सर्गहीन पद्धति पर हुई है, फारसी की मसनवी-पद्धति पर नही।[५] इसमे फारसी मसनवियों की कुछ समानताएं आजाना संयोग मात्र है "क्योकि ये सभी बाह्य मात्र है और मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों की वाह्य रूपरेखा तो प्रायः सभी देशो मे कुछ न कुछ समान है।[६]"

---

१. इन कवियो के परिचय के लिये देखें—'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य', डॉ० शिवप्रसाद सिंह।

२. हिन्दी एवं फारसी सूफी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन (टंकित शोध-प्रबन्ध), पृ० ५०७

३. वही, पृ० ८५०

४. परन्तु आश्चर्य है कि फिर भी, सूफी काव्य (किसी जादुई चमत्कार के कारण ?) भारतीय एवं फारसी प्रभावो का गंगा जमुना संगम है—यह निष्कर्ष निकल आया।

—वही, पृ० ८५०

५. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४१८

६. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० १८६

पंजाबी कवियों के समक्ष परम्परा के अभाव की समस्या

पंजाबी क्षेत्र की दशा हिन्दी क्षेत्र से कुछ भिन्न थी। वहां पर प्रबन्ध-काव्य की परम्परा लुप्त-प्राय थी, प्रबध के नाम पर कुछ लम्बे-लम्बे लोकगीत ही उपलब्ध होते थे। दमोदर के सम्मुख कोई विशेष महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध-काव्य नही था। पुनः उसकी शिक्षा-दीक्षा भी अत्यन्त सामान्य स्तर की थी अतः उसके ग्रन्थ मे उच्च कोटि का काव्य-कौशल उपलब्ध नही होता। परन्तु हाफिज बरखुरदार और बाद के अनेक कवि 'हाफिज एवं मौलवी' थे, यह असदिग्ध है कि उनका संपर्क फारसी साहित्य से हो चुका था। प्रेमाख्यान की उपलब्ध रचनाओं के आदिकाल में ही पंजाबी में हाफिज बरखुदार ने फारसी मसनवियों से मिलती जुलती शैली में 'यूसफ-जुलेखा' की रचना की। हाफिज ने यद्यपि छंद दवैया ही अपनाया परन्तु वह फारसी मसनवियों में प्रयुक्त होने वाले छंदों के अनुकूल ही था। उसमें 'घत्ता' प्रणाली का प्रयोग नहीं। नखशिख-वर्णन मे भी उसका आदर्श फारसी मसनवियां ही थी।[1] उसने स्वयं जामी से प्रभावित होने की बात स्वीकार की है—

> **मुल्ला जामी दीओं तफसीरों आहसी नाकल ऐही।**
> **बे अदबी दा जन न करीओ मौला अजर दवेही।।[2]**

अतः, प्रारंभ में ही पंजाबी क्षेत्र में ऐसी रचना उपलब्ध हो गई जिस पर फारसी मसनवियों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। परन्तु इसका यह अर्थ नही समझ लेना चाहिए कि तभी से पंजाबी प्रेमाख्यान-काव्य मे फारसी काव्य के अनुकरण की प्रवृत्ति प्रचलित हो गई। इस प्रारभिक रचना का महत्त्व केवल परम्परा के अभाव की पूर्ति का ही था।

पंजाबी के प्रारभिक कवि पजाबी वातावरण से इतने अधिक अनुप्राणित थे कि फारसी से अधिक इन पर पंजाबीपन का प्रभाव दिखाई देता है। शब्दावली या छंद का आदर्श तो कुछेक ने फारसी से ग्रहण किया, परन्तु कथाए, उपमाएं एव वर्णन अधिकतर पजाब के ग्रामीण वातावरण से ही गृहीत हुए है। हाफिज की ही दूसरी रचना 'मिरजा साहिबां' मे साहिबां का सौदर्य वर्णन करने वाली ये पंक्तियां इसका प्रमाण है—

> **साहिबां रंग मजीठ दा जिओं जिओं धरत रंगन्न।**
> **ओहदी जुत्ती ते दो वालीआं दो वतखाँ चोग चुगन्न।**
> **उसदा कद सकीम तन विच त्रिकल वट्ट पवन्न।**
> **अते नक्क कुंडीदा पीपला जुलफां नाग पलमन्न।**

---

१. यूसफ-जुलेखा, भूमिका, पृ० ३१

२. अर्थ—यह मुल्ला जामी की रचना का अनुकरण है, इसमें अपमान का कलंक मत लगाना, ईश्वर तुम्हें (प्रति) फल देगा।
—वही, पृ० ४८

ओहदीआं सुरख लबां दंदद उजले, जिओं मोती लाल भखन्न ।
जां गल करेंदी हस्सके मुखहौं फुल्ल झड़न्न ।
साहिवां दे तिक्खे नैण कटारीआं दुस्सर घा करन्न ।
जिओं तेजी सूरज साम्हणे लाटां नैण मचन्न ।

× × ×

ओहदे पट्ट चन्दन दीआं गेलीआं चंगे मुशक छड़न्न ।
उसदी धुन्नी तुंग शराब दी आशक घुट्ट पीवन्न ।
उसदे सीने ते दो डब्बीआं आशक मसत करन्न ।
उप्पर भोछण काढवां विच तिलिअर चोग चुगन्न ।[1]

स्पष्ट है कि उपमान-चयन के लिए कवि विदेशी वातावरण की ओर नही गया । इसी प्रकार वारिस शाह ने भी पजाब के ग्रामीण वातावरण या मुसलमान धर्म के क्षेत्र से बाहर निकल कर उपमानों की खोज नहीं की—

होठ सुरख याकूत ज्यों लाल चमकण, ठोडी सेऊ विलायती सार विच्चों ।
नक अलफ हुसैनी दा पिप्पला ई, जुलफ नाग खज़ाने दी बार विच्चों ।
दंद चंबे दी लड़ी कि हंस मोती, दाणे निक्कले हुसन अनार विच्चों ।
लिखी चीन कशमीर तसवीर जट्टी, कद सरू बहिशत गुलज़ार विच्चों ।
गरदन कूंज दी, उगलीआं रवांह्फलीआं, हत्थ कूलड़े बरग चिनार विच्चों ।
बाहां बेलणे बेलीआं गुन्ह मक्खण, छाती संगमरमर गंगधार विच्चों ।
छाती ठाठदी उभरे पट्ट खेनूं, सेऊ बलख दे चुणे अंबार विच्चों ।
सुरखी होठां दी लोढ़ दंदासड़ेदी, खोजे खत्री कतल बजार विच्चों ।

---

१. अर्थ—साहिबां का वर्ण मजीठ के समान है, निरंतर धरती को अपने रंग में रंग रहा है । उसकी जूती पर बनी दो नोकें ऐसे लगती हैं मानो दो बत्तखें दाना चुग रही हों । उसका कद लम्बा एवं शरीर कोमल है, उसके उदर में त्रिवली पड़ती है, उसकी नाक खंजर की नोक के समान एवं अलकें नाग के समान लहराती हैं । उसके लाल-लाल होठों मे उजले दांत चमकते हुए मोतियों एवं लालों के समान प्रतीत होते हैं । जब वह हंसकर बोलती है तो मुख से फूल झडते हैं । उसके कटार जैसे तीखे नयन दुहरा घाव करते है । सामने आने पर तेज सूर्य के समान चमकते हैं । उसके जघन भाग चंदन की गोलियों के समान सुगन्ध का प्रसार करते हैं । उसकी नाभि मदिरा का सरोवर है जहां प्रेमी मदिरा के घूंट पीते है । उसके वक्षस्थल की दो डिब्बियां प्रेमियों को मस्त करती हैं । सिर पर कढ़ा हुआ सालू है जिसमें चुगते तिलिअरों के चित्र अंकित हैं ।

—मिरज़ा साहिबां, पृ० ४

अहमदयार, अमामबख्श, फजलशाह एवं मुहम्मदबख्श में इस परम्परा के प्रति आसक्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है।

यह सब कुछ होते हुए भी इन रचनाओं में मसनवी-पद्धति के स्तुति-प्रकरणों का अभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शाहेवक्त की प्रशंसा इन रचनाओं में नही, चाहे वे शाहों के सकेत पर लिखी गई हों (जैसे बरखुरदारकृत यूसफ जुलेखा, कादरयार कृत पूर्णभक्त) और चाहे (तथाकथित) राज्याश्रय प्राप्त कवियों द्वारा (जैसे हाशम की रचनाए। लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक' इसका अपवाद अवश्य है परन्तु वहाँ प्रारभ मे ही नही, मध्य में भी अनेक बार स्थाने-अस्थाने यह प्रशसा जोडी गई है।

यह तथ्य भी विशेष रूप से विचारणीय है कि पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य की अधिकांश रचनाओं में फारसी मसनवियों के समान वर्णन-विस्तार नही है। इससे यह तो स्पष्ट है कि इन रचनाओं में कवियो ने फारसी मसनवियो का अनुकरण नहीं किया और इन्हे फारसी मसनवी-परम्परा मे स्वीकार नही किया जा सकता परन्तु इनके अध्ययन से यह भी उतना ही स्पष्ट है कि आदर्श रूप में इन कवियों के समक्ष वही रचनाए थी। भाषा, छंद, उपमान-चयन और काव्य-रूढ़ियों के आधार पर भारतीय काव्य की अपेक्षा फारसी काव्य से इनका निकट का सम्बन्ध सिद्ध होता है। यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर प्रबल होता गया फज़लशाह ने अपनी रचना 'हीर' को 'यूसफ जुलेखा' के ढंग पर ढालने का सयत्न प्रयास किया। भाइयों की संख्या तो यूसफ के बराबर कर ही दी, स्वप्नों का क्रम भी उसी कथा के अनुसार है। यह प्रभाव इतना सबल था कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, इस क्षेत्र मे पदार्पण करने वाले हिन्दू-सिक्ख कवि भी अज्ञातभावेन इसे स्वीकार करते गए।

दोनों भाषाओं की रचनाओं में भिन्नता

मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा-प्राप्त कथा-काव्यों अथवा चरित-काव्यों की पद्धति पर ही विकसित हुआ है। फारसी मसनवियों के साथ कुछेक वाह्य समताएं संयोग मात्र है अन्यथा इस काव्य का शरीर एवं आत्मा पूर्णरूप से भारतीय है। विशेष सचेत खोज करने पर ही फारसी साहित्य के संस्कारो के संस्पर्शमात्र कुछ रचनाओ में यत्र-तत्र उपलब्ध होते है। इसके विपरीत पजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य के प्रारभिक काल मे कुछ रचनाओ के अतिरिक्त अन्य कृतियों की विषयवस्तु, प्रति-पादन शैली आदि फारसी मसनवियों के अधिक निकट बैठती है। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि इस साहित्य की रचना का कार्य हिन्दी के प्रेमाख्यानों के पर्याप्त पश्चात् आरभ हुआ। यह औरंगजेब के बाद का समय है। हिन्दी में भी इस काल में मुसलमान कवियों का दृष्टिकोण बदलने लगा था और दक्खिनी की रचनाएं दूसरे मार्ग पर निकल चुकी थी।

"नूर मुहम्मद के अनन्तर इस (हिन्दी प्रेमाख्यान) काव्य पर भी फारसी काव्य का प्रभाव बढ़ने लगा।"[1] पंजाबी में तो समस्या के दोनों पक्ष फारसी के ही अनुकूल बैठते थे। एक तो परम्परा का अभाव, दूसरा राज्य-नीति की अनुदारता, जिसके प्रभाव से हिन्दी प्रेमाख्यानो का भी रूप बदल गया, उसे फारसी की ओर ही मोड़ने पर तुले हुए दिखाई देते है। इस सम्बन्ध में यह शका अनायास की जा सकती है कि जो परम्परा हिन्दी क्षेत्र मे उपलब्ध थी वह पंजाबी के कवियों को भी तो प्राप्त हो सकती थी। इसका उत्तर केवल यही है कि राजनीतिक अशान्ति, अस्थिरता एवं अव्यवस्था के कारण पंजाब में साहित्यिक वातावरण समाप्तप्राय था। साहित्य के तीन आश्रय होते है—राज्य, लोक एव धर्म। इनमे से प्रथम दो तो स्वयं ही अनाश्रित एवं संत्रस्त थे। तीसरे आश्रय का संरक्षण सिक्ख गुरुओ एव सूफी संतो की मुक्तक रचनाओं को ही मिला। जनसाधारण का विद्या-व्यसन लगभग समाप्त हो चुका था। ऐसे असाहित्यिक वातावरण में लिखी गई इन रचनाओ के लेखक सभी परम्पराओं के प्रति अनुत्साहपूर्ण दृष्टिकोण अपना कर ही चल रहे थे। उनकी अभिव्यक्ति में लोकतत्त्वों की अधिकता का यही रहस्य है। फिर भी जब कभी आधार-ग्रहण की आवश्यकता पड़ती थी तो परिस्थितियों के कारण इनके सामने फारसी का काव्य ही आता था। आज पंजाबी भाषा का विद्वान् इन रचनाओ की फारसी-प्रधानता से चिन्तित है, देश की नई पीढ़ी में फारसी का ज्ञान उत्तरोत्तर लुप्त हो रहा है और ऐसी स्थिति में पंजाबी काव्य के एक बड़े भाग से अपने ही जानकारो के अपरिचित होने[2] की आशंका उसे व्यथित कर रही है।

निष्कर्ष

१. ग्रंथारम्भ में ईश्वर-स्मरण एवं वन्दना की परम्परा दोनों ही भाषाओं के प्रेमाख्यानो में मिलती है। हिन्दी में इसकी विस्तृत परम्परा एवं पंजाबी मे सक्षिप्त परम्परा अधिक प्रचलित रही।

२. हिन्दी के अधिकांश मुसलमान कवियों ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है जबकि पजाबी में कुछ अपवादों को छोड़कर कही भी इसका वर्णन नही है।

३. शाहेवक्त की प्रशंसा हिन्दी के अधिकांश प्रेमाख्यानों मे मिलती है। पजाबी कवियो ने इसकी भी उपेक्षा की है।

४. आत्मपरिचय एवं विनय-प्रदर्शन भी हिन्दी की ही कुछ रचनाओं में मिलता है पंजाबी मे इसका भी विशेष प्रचार नही हो पाया।

---

१. हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, रामपूजन तिवारी, पृ० २७३

२. साहित्त समाचार, किस्सा काव्य अंक, श्री गुरदित्त सिंह प्रेमी का लेख, पृ० ३१

५. कतिपय अपवादों को छोड़कर हिन्दी रचनाएं एक ही छन्द में नहीं लिखी गईं। कुछ अर्द्धालियों के अनन्तर धत्ता देने की कड़वकशैली हिन्दी में अधिक प्रचलित रही, कई रचनाओं में छन्द-वैविध्य भी उपलब्ध होता है परन्तु पंजाबी में सभी रचनाएं एक छन्दात्मक है।

६. हिन्दी की रचनाएं चिरपरिचित भारतीय परम्परा के अन्तर्गत ही विकसित होती रही, परन्तु पंजाबी की रचनाएं भारतीय परम्परा से छिन्न हो जाने के कारण फारसी की ओर मुड गईं। वहाँ भी प्रारम्भिक कवियों में पंजाबी वातावरण के संरक्षण की प्रवृत्ति बलवती रही परन्तु उत्तरकालीन कवि फारसी की ओर झुक कर भी वैसा विस्तार न अपना सके।

७. हिन्दी के प्रेमाख्यान-साहित्य के किसी भाग को फारसी मसनवी-पद्धति पर रचित मानना एक भ्रम है। यह साहित्य शुद्ध रूप से भारतीय परम्परा से अनुप्राणित है। इसका विश्वास पजाबी प्रेमाख्यान साहित्य पर फारसी के प्रभाव को देखकर सहज मे ही हो जाता है।

: ३ :

कथालोचन

प्रबन्धकाव्य मे कथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव मे 'बन्ध' की धुरी यह कथा ही होती है। मुख्यरूप से प्रेमाख्यानों मे किसी पुरुष का स्त्री के प्रति या स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षित होना एव उसे प्राप्त करने के प्रयत्नो का वर्णन रहता है परन्तु इस सर्वसामान्य सूत्र को कविगण अपने ग्रन्थन-कौशल एव नव-नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा के बल पर आकर्षण, वैविध्य एव नवीनता प्रदान करते है। वक्रोक्तिकार ने इन प्रसगों का 'प्रबन्धवक्रता' के अन्तर्गत विवेचन किया है। मुख्य कथा के साथ घटनाओं की सुसम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के निर्वाह के साथ हृदयस्पर्शी नाना भावों को अभिव्यक्त करने वाले प्रसंगों की योजना मे ही प्रबन्धकार का कौशल अभिव्यक्त होता है। इस दृष्टि से हिन्दी एवं पंजाबी के प्रेमाख्यानों का विवेचन करना आवश्यक है।

कथा-रूपविधि

दोनो भाषाओ की रचनाओं के कथासूत्र, उनमें व्यवहृत कथारूढ़ियों, काव्य-रूढ़ियों एवं घटनाओ की योजना आदि का विवेचन करने से पूर्व कथागठन मे प्रयुक्त भिन्न-भिन्न रूपविधियों का अध्ययन उपयोगी रहेगा। इससे इन कवियो के कथागठन संबन्धी कौशल एव प्रतिभा का सम्यक् परिचय मिल जाता है।

हिन्दी में प्रयुक्त विभिन्न रूपविधियां

इनमे से अनेक रचनाए वे है जिनमे नायक नायिका के प्रेमोदय, मिलन-प्रयत्न एवं सफलता-असफलता की इकहरी कथा होती है। 'बीसलदेवरासो', 'छिताई चरित', 'माधवानल कामकंदला', 'उषा अनिरुद्ध' एव 'कृष्ण रुक्मिणी' के कथा-वृत्तों पर आधारित अधिकांश कथाएं इसी प्रकार की है। इन रचनाओं में नायक एवं नायिका का रूप-वर्णन, सदेश-कथन, विरह-व्यथा-वर्णन के अन्तर्गत षड्ऋतुवर्णन अथवा बारहमासा तथा मिलन के अन्य यत्नों का वर्णन रहता है।

नायक एवं नायिका की मुख्य कथा के साथ इन प्रेमाख्यानों मे उपनायिका की गौणकथा आयोजित कर कथा को संश्लिष्ट करने की प्रवृत्ति हिन्दी में अधिक प्रिय है। 'ढोलामारू रा दूहा' में मालवणी, 'चंदायन' में मैना, 'लखमसेन पदमावती'

में चन्द्रावती, 'मृगावती' मे रुपमिनी, 'पदमावत' मे नागमती, 'रसरतन' मे कल्पलता, 'चित्रावली' में बेलावती, दुखहरण कृत 'पुहपावती' मे रूपवती एव रगीली, 'इन्द्रावती' मे सुन्दर सभी ऐसी उपनायिकाए है जिनकी कथा इन प्रेमाख्यानों में मुख्य कथा के साथ अनुस्यूत है। ये दोनों कथाए अगागिभाव से सबद्ध होती है, अंगी से अग को पृथक् करने मे कथा का रूप-विकृत हो जाता है। 'मधुमालती' में भी प्रेमा की गौण कथा अनुस्यूत है, परन्तु वह उपनायिका के रूप में नायक की विवाहिता नही बनती। मनोहर उसे राक्षस के बंधन से मुक्त कर अपने सहायक ताराचन्द से उसका विवाह सम्पन्न करवा देता है। मझन की यह सूझ 'सैफुलमुलूक' की किसी फारसी रचना की कथा से प्रभावित प्रतीत होती है। उसमे भी मलका खातूं का विवाह राजकुमार सैफुलमुलूक के मित्र साअद से कर दिया जाता है। गवासी के 'सैफुलमुलूक बदीउलजमाल' एव इस कथा पर आधारित पंजाबी की दोनो रचनाओं, कवि जान की रतनावती (जिसमे पात्रों के नाम हिन्दू है और इनके स्थानापन्न उत्तिम एवं पदिमनी है) मे यही घटना है। इन सबसे प्राचीन होते हुए भी मंझन ने इसे अत्यन्त कौशलपूर्वक एक गौण कथा के रूप मे विकसित किया है और इन दोनों पात्रों के चरित्र का स्वाभाविक विकास भी दिखाया है।। 'सैफुलमुलूक' की कोई फारसी रचना इन सब रचनाओ के मूल में थी, इसका प्रमाण गवासी, जान (हिन्दी) एवं लुत्फअली तथा मुहम्मदबख्श (पंजाबी) की रचनाओं के अनेक समान काव्यांशों एव वर्णनों से मिल जाता है।

कथा-वर्णन करने की ये दोनों रूपविधियां हिन्दी एवं पजाबी दोनों भाषाओं मे उपलब्ध होती हैं। पंजाबी में इकहरी एवं हिन्दी मे सश्लिष्ट या जटिल कथाएं लिखने की प्रवृत्ति अधिक रही है। इन जटिल कथाओं मे अनेक छोटे-छोटे विवरण तथा घटनाएं प्रकरियों एवं पताकाओं के रूप में मुख्य कथा में स्थान प्राप्त कर लेती है जैसे 'मधुमालती' में प्रेमा एवं राक्षस की कथा, राक्षस को मारने की कथा, मधु की माता की कथा, ताराचंद की कथा आदि और 'पदमावत' मे बनिजारों, हीरामन तोते, राजा गजपति, पार्वती-महेश, देवपाल-दूती, बादशाह-दूती, गोरा-बादल आदि की प्रासगिक कथाएं। हिन्दी में यह रुचि अधिक प्रचलित रही है। पंजाबी में कवियो ने कथा-गठन में इस प्रकार का कौशल नही दिखाया।

भूमिका-कथाएं—इन दो प्रमुख रूपविधियों में परिवर्तन-परिवर्द्धन करने के दो अन्य मुख्य प्रयास भी उल्लेखनीय हैं। हिन्दी में भूमिका-कथा देने की प्रवृत्ति विशेष प्रिय है। भूमिका-कथा में कई प्रकार के विषय देखे जा सकते है। कुछ रचनाओं में पूर्वजन्म की कथा जोड़ दी जाती है। मुख्य कथा के साथ सम्बद्ध होते हुए भी यह जोड अलग प्रतीत होता है। यदि चाहें तो मूलकथा पर कोई प्रभाव डाले बिना इसे पृथक् किया जा सकता है। 'सदयवच्छ सावलिंगा' में राजकुमार एवं राज-

कुमारी के पूर्वजन्म की कथा संलग्न है।[1] गणपति के 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध' में नायक एवं नायिका वास्तव मे कामदेव एवं रति हैं जो शुकदेव के अभिशाप से मर्त्यलोक में कुरंगदत्त एवं श्रीपतिशाह की पुत्री के रूप में जन्म लेते है।[2] कुशललाभ ने भी इसी कथा पर आधारित अपनी रचना 'माधवानल कामकंदला चउपई' में नायिका के पूर्वजन्म की कथा आरभ मे जोड़ दी है ।[3] कुशललाभ की यह प्रवृत्ति उसकी अन्य रचना 'ढोला मारू री चउपई' मे भी देखी जा सकती है, जहा मुख्य कथा के आरम्भ में नायिका मारवणी के माता-पिता के विवाह की घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है।[4] परन्तु दामोदर एवं आलम मे इस प्रकार की कोई योजना नही है। इस कथा को बोधा ने विशेष रूप से बदल कर सर्वथा नवीन बना दिया। बोधा कृत 'विरह-वारीश' मे माधव एव कामकदला के पूर्वजन्म की पृथक्-पृथक् कथाओं की योजना तो है ही, कथा के इकहरे रूप में लीलावती उपनायिका की कथा जोड़कर उसे सश्लिष्ट बना दिया गया। कथा के अन्तिम भाग मे जब काम-कंदला एवं माधव का संयोग हो जाता है तो माधव को लीलावती का स्मरण आता है। कंदला पूर्ण सद्भाव से अपने प्रिय के सुख के लिए लीलावती की प्राप्ति का यत्न करती है। अन्त मे माधव एवं लीलावती के पिता दोनों का विवाह कर देते है।[5] बोधा की योजना सर्वथा मौलिक है जिसमे चतुर्भुज की 'मधुमालती का प्रभाव दिखाई देता है। मूलकथा मे माधव के मित्र बरई (तमोली), तोते एवं विक्रम के हितैषी एक युवक ब्राह्मण की उपकथाएं[6] जोड़कर कवि बोधा ने अपनी कथा को अधिक स्फीत एवं मनोरंजक बनाया है। ये सब कथाएं मूल कथा मे अत्यन्त कौशलपूर्वक अनुस्यूत है।

'चित्रावली' में कवि उसमान ने पुत्राभाव के प्रकरण को भूमिका-कथा के रूप में पल्लवित किया है जिसमे राजा धरनीधर के पश्चात्ताप, दान-पुण्य, सन्यासी-सेवा, भवानी-महेश द्वारा परीक्षा एवं उसमें सफलता के उपरान्त पुत्र-प्राप्ति के वरदान की कथा है।[7] 'हंस जवाहर' में भी इसी प्रकार पुत्राभाव के प्रकरण को भूमिका-कथा के रूप में विकसित किया गया है।[8] 'इन्द्रावती' मे कवि नूरमुहम्मद ने कथावतरण के लिए एक स्वप्न की भूमिका-कथा के रूप में योजना की है, जिसमें एक फकीर ने स्वप्न में दर्शन देकर कथा लिखने की प्रेरणा दी है।[9]

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पांडेय, पृष्ठ १८४
२. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृष्ठ ११-१६
३. वही, पृष्ठ ३८२-८५
४. ढोला मारू रा दूहा, पृष्ठ २७८-८६
५. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा पृष्ठ ३३८
६. वही, पृष्ठ ३३३-३४
७. चित्रावली, पृष्ठ १५-२०
८ हंसजवाहर, पृष्ठ ८-११
९. इन्द्रावती, पृष्ठ ३-६

भूमिका-कथा के रूप में पूर्वजन्म की कथाएं देने की प्रवृत्ति अधिक प्रिय रही है। गुरु गोविन्दसिंह ने कई प्रेमाख्यानों मे इसका उपयोग किया है। हीर एव रांझा, मेनका एवं इन्द्र के अवतार बताए गए है। मेनका नाम की अप्सरा इन्द्र के नगर मे रहती थी। उसका रूप देखकर सभी मोहित हो जाते थे। एक बार कपिल मुनि इन्द्र की सभा मे आए, मेनका को देखकर अपने आपको सभाल न पाए अतः उन्होंने मेनका को शाप दिया कि तुम पृथ्वी पर जाओ। उसके अनुनय-विनय करने पर मुनि कुछ शान्त हुए और बोले—

इन्द जु मृतमंडल जब जैहै। रांझा अपनो नाम कहैहैं।
तो सो अधिक प्रीति उपजावै। अमरावती बहुरि तुहि ल्यावै॥[1]

गुरु गोबिन्दसिह ने 'सस्सी-पुन्नू' में भी इसी प्रकार की एक सक्षिप्त कथा भूमिका-कथा के रूप मे जोड़ दी है।[2]

'चंदायन' मे भी एक भूमिका-कथा का अभास होता है। चदा के विवाह एवं पितृगृह से मातृगृह मे प्रत्यावर्तन की कथा भूमिका-कथा ही प्रतीत होती है। परन्तु अन्य भूमिका-कथाओं की अपेक्षा इसकी योजना अधिक सश्लिष्ट है। रचना के मध्य मे जब लोरक एवं चंदा हरदीपाटन को भागते है तो चंदा का विवाहित पति वामन मार्ग में लोरक को ललकारता है, उससे युद्ध करता है।[3] अत. यह भूमिका-कथा मुख्य कथा के साथ अंगांगिभाव से सश्लिष्ट हो गई है। पुनः नायिका के इह जीवन से संबद्ध होने के कारण यह भूमिका-कथा प्रतिभासित भी नही होती।

'बीसलदेव रासो' में भी पूर्वजन्म की कथा है। इसी प्रकार चतुर्भुज कृत 'मधुमालती वार्ता' में मधु काम का अवतार है एवं मालती रति की। जैतमाल मधु से उसके पूर्व जन्म की कथा कहती है कि जब शकर ने कामदेव को भस्म कर दिया तो उसकी राख से मालती और मधु उत्पन्न हुए। पास खड़े एक सेवती के वृक्ष से जैतमाल का जन्म हुआ। परन्तु इन दोनो रचनाओं में ये कथाएं ग्रंथारंभ में न होकर कथा आरम्भ हो जाने के अनन्तर पात्रों के वार्तालाप के रूप में लिखी गई है।[4] अतः इनकी गणना भूमिका-कथा के अन्तर्गत नही की जा सकती।

साक्षी-कथाएं—भूमिका-कथाओं के अतिरिक्त साक्षी-कथाएं लिखकर अपने कथन को प्रमाणित करने की प्रवृत्ति भी हिन्दी रचनाओं मे मिलती है। पंचतंत्र-हितोपदेश की पद्धति पर वक्ता अपने कथन की पुष्टि मे कोई कथा सुनाता है। इस विधि

---

१. दशमग्रंथ, पृ० ९४३
२. दशमग्रंथ, पृ० ९५४-५५
३. चाँदायन, पृ० २७९-२९०
४. क. मधुमालती वार्ता, पृ० ४५
   ख. बीसलदेवरासो, पृ० ३४

की लोकप्रियता बुद्ध जातको, और शुक सप्तति आदि रचनाओं के प्रचार से प्रमाणित होती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की योजना से मूल कथा का प्रवाह अवरुद्ध होता है, मनोरंजन का भी यह कोई कलापूर्ण प्रयास नही मानी जा सकती। चतुर्भुज कृत 'मधुमालती वार्ता' मे इस प्रकार की कथाओ की भरमार है। इसमें प्रेमालाप आरम्भ करते हुए मधु नायिका मालती को राजवश एव साधारण व्यक्तियो के मध्य प्रेम की अस्थिरता समझाता है। तोता-मैना पद्धति के अनुकरण पर निबद्ध इस कथा मे मधुकर स्त्रियो के कपट-व्यवहार की शिकायत करता है परन्तु मालती इसी कथा को आगे बढ़ा कर पुरुषो को कपटी एव स्त्रियो को सच्ची तथा निष्कप्ट सिद्ध करती है। मृग-सिंहनी की इस साक्षी-कथा के अन्तर्गत घूहर एवं काग की दूसरी साक्षी-कथा है। इसी प्रकार इस रचना मे मालती ने कन्नौज के राजकुंवर कर्ण की एक अन्य कथा को साक्षी-रूप में उद्धृत किया है। साक्षी-कथाओं का यह क्रम इतने पर ही समाप्त नही होता। मुख्य कथा के मध्यभाग मे सरोवर के तट पर कुंज में इन दोनो को माली ने देख लिया और राजा से कह दिया। राजा ने दोनो को बन्दी बनाने के लिए जब सेना भेजी तो मालती ने अन्यत्र भाग चलने का आग्रह किया परन्तु मधुकर ने मलदसुत की साक्षी-कथा द्वारा अपने साहस पर विश्वास करने का उपदेश दिया।[1]

दक्खिनी के 'फूलबन' एव 'मैनासतवंती' मे भी इस विधि का उपयोग किया गया है। 'मैनासतवंती' मे छ: साक्षी कथाए है[2] जिनका उद्देश्य तोता-मैना परम्परा की कथाओ के अनुसार यौवन के उद्दाम उपभोग एवं सतीत्व के महत्व का वर्णन है। 'फूलबन' वक्ता—श्रोता पद्धति मे वर्णित भिन्न-भिन्न कथाओ का एक सग्रह है जिनमे से एक मे राजकुमारी समनबर एव राजकुमार हुमायू की प्रेमकथा भी है।[3] नूरमुहम्मद-कृत 'इन्द्रावती' के उत्तरार्द्ध मे भी अनेक साक्षी-कथाए है। तोते की कहानी, वल्लभ एवं प्रेमा की कहानी 'जिब कहानी' चन्द्रवदन एव राजहंस की कहानी प्रभृति सभी साक्षी-कथाएं है। तोते की कहानी रानी को सदेश भेजने की प्रेरणा देती है तथा वल्लभ एवं प्रेमा की कहानी से उसे धैर्य धारण करने की शिक्षा मिलती है। जिब कहानी का प्रयोग चातुर्य-प्रदर्शन के लिए हुआ है जिसमे केवल रूप पर मुग्ध न होकर प्रीति की उपासना का उपदेश है तथा दुर्जन शत्रु को परास्त करने के लिए बुद्धि, साहस, प्रयत्न आदि सद्गुणों को प्रेरित किया गया है। चन्द्रवदन एवं राजहस की कथा मात्र मनो-रजन के लिए है।[4]

भूपत कृत 'सूर रम्भावत' की साक्षी-कथा इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसमें एक विवाहित पुरुष एवं कुमारी कन्या के मध्य यौन सम्बन्ध स्थापित करवाने

१. मधुमालती वार्ता, पृष्ठ ८-११
२. मैनासतवंती, पृष्ठ ४५-५८
३. फूलबन, भूमिका, पृष्ठ १६
४. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ० सरला शुक्ल, पृष्ठ ४७२

का काम स्वयं पत्नी करती है। इस प्रेम का उद्देश्य विवाह नहीं केवल काम-पिपासा की शान्ति है। पुनः पुरुष साधारण जड़िया एव कन्या राजकुमारी है। मनोरंजन की दृष्टि से भी यह कथा मुख्य कथा से कम समर्थ नही। कहानी केवल यह स्पष्ट करने के लिए सुनाई गई थी कि उद्देश्य-प्राप्ति के लिए रोना-धोना छोड़ यत्न एवं धूर्त्तता का आश्रय लेना चाहिए।[1] अपने विषय एव उद्देश्य की दृष्टि से ऐसी साक्षी-कथाए अपवाद ही मानी जानी चाहिए।

मुख्य इकहरी या सश्लिष्ट कथा के साथ ये कथाएं कभी अकेले और कभी सयुक्त रूप में प्रयुक्त की गई है और हिन्दी में अनेक प्रकार की रचनाएं उपलब्ध हो जाती है। 'मैना सतवन्ती' की इकहरी कथा मे साक्षी-कथाओं की योजना की गई है तो 'विरह वारीश' की सश्लिष्ट कथा से पहले पूर्वजन्म की भूमिका-कथा जोड़ दी गई। 'इन्द्रावती' एवं गणपति कृत 'माधवानल कामकदला प्रबध' मे भूमिका-कथा और साक्षी-कथाओं की योजना है। इस प्रकार ये सभी कृतियां सात वर्गों में बांटी जा सकती हैं :—

१. नायक एवं नायिका के प्रेम पर आधारित इकहरी कथाएं जैसे—'बीसलदेव रासो', 'मैनासत', 'रूपमजरी'। 'उषा-अनिरूद्ध' एव 'कृष्ण-रुक्मिणी' चक्र की अनेक कथाएं भी ऐसी ही है।

२. नायक एवं नायिका के प्रेम की मुख्य कथा के साथ उपनायिका या अन्य कथाओं के योग से संगठित संश्लिष्ट कथा जो अंगागिभाव से सुसम्बद्ध है जैसे—'मृगावती', 'लखमसेन पद्मावती कथा', 'मधुमालती' (मझन), 'पदमावत,' 'ज्ञानदीप', 'कथा हीर राझनि की' (गुरदास गुणी)।

३. पूर्वजन्म अथवा अन्य किसी घटना पर आधारित भूमिका-कथायुक्त इकहरी कथा वाली रचनाएं। मुख्य कथा के साथ अगांगिभाव से सबद्ध न होने के कारण इन्हें सरलतापूर्वक पृथक् किया जा सकता है। जैसे-- गुरु गोविन्दसिह कृत 'हीर रांझा', 'सस्सी पुन्नू' रामचरण कृत 'उषा-अनिरुद्ध ब्याह', जीवनलाल नागर कृत 'उषाहरण'।[2]

४. साक्षी-कथायुक्त इकहरी कथाएं, जैसे चतुर्भुज कृत 'मधुमालतीवार्ता', गवासी कृत 'मैना सतवंती', रामदास कृत 'उषाचरित्र'।[3]

५ भूमिका-कथायुक्त जटिल कथा, जैसे कुशललाभ की रचनाएं एवं 'चित्रावली', 'रसरतन', 'विरह-वारीश' आदि।

६. साक्षी-कथायुक्त जटिल कथाएं, जैसे 'सूररंभावत'।

---

१. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, डॉ० हरिभजनसिह, पृष्ठ ३११

२. दोनों ही रचनाओं में उषा के जन्म से पूर्व बाणासुर के वैभव एवं गर्व आदि का विस्तृत वर्णन है।

३. इसमें मेघनाद द्वारा हनुमान को बाधने तथा दशावतार की साक्षी-कथा है।

७. भूमिका तथा साक्षी-कथायुक्त जटिल कथा, जैसे गणपति कृत 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध', 'इन्द्रावती'।

इस संदर्भ मे ध्यान देने की बात यह है कि एक ही कथा को हिन्दी के कवियो ने अनेक रूपविधियो मे प्रस्तुत कर कुछ न कुछ नवीनता लाने का प्रयत्न किया है।

पंजाबी में प्रयुक्त विभिन्न रूप-विधियाँ

पजाबी के प्रेमाख्यान सख्या एवं आकार दोनों ही दृष्टियो से हिन्दी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा कम एव छोटे हैं। बृहदाकार प्रेमाख्यानों की सख्या तो बहुत कम है।इनमें मुहम्मदबख्श का 'सैफुलमुलूक' दोनों ही भाषाओं मे बृहत्तम रचना है। रचना का आकार लगभग १८२६० पंक्तियों का है अर्थात् जायसी के 'पदमावत' के तिगुने से भी अधिक। उत्तरकालीन (अहमदयार, अमामबख्श, फजलशाह) कुछ कवियो की रचनाओं को छोडकर अधिकांश पंजाबी प्रेमाख्यानों का आकार विस्तृत नही है। कथाएं प्राय. इतनी सक्षिप्त हैं कि उनके अन्तर्गत किसी साक्षी या भूमिका-कथा की कल्पना नही की जा सकती।

पंजाबी की अधिकांश कथाएं इकहरी एवं एकान्वित है। उनमें नायक-नायिका परस्पर मिलन के लिए अथवा अपने प्रेम को सामाजिक स्वीकृति प्रदान करवाने के लिए कष्ट सहते है। पीलू एवं बरखुरदार कृत 'मिरजा साहिबा' तथा अनेक कवियों के 'सस्सी-पुन्नू', 'सोहणीं-महीवाल', 'शीरी-फरहाद' एव 'चन्दरबदन महियार' सभी इस कोटि की रचनाएं हैं। इनमे नायक-नायिका की विरह-व्यथा एव कष्टों का वर्णन करने में ही कवियों ने अपना कौशल दिखलाया है। कथा-गठन में कोई विशेषता लाने की अपेक्षा वर्णन एवं वार्तालाप को चटपटा बनाने मे ही इन कवियो ने अधिक प्रयास किया है। इस प्रकार ये सभी रचनाए प्रथम रूपविधि के अन्तर्गत आती है। इनमे न किसी ने अन्तर्कथा जोड़ने का यत्न किया और न भूमिका-कथा ही।

हीर-रांझा के कथा-चक्र पर आधारित रचनाएं भी इकहरी कथाएं ही है। इनमें कथा को स्फीत बनाने का यत्न किसी ने भी नही किया। न कोई गौण कथा ही विकसित की गई और न ही वर्णनो द्वारा कथा को समृद्ध करने का ही यत्न किया। इस कथा के अधिकांश लेखक वाद-विवाद मे लक्षणा-प्रयोग का कौशल दिखाने में ही व्यस्त रहे। कथा-संगठन के वैविध्य का इनमें भी नितान्त अभाव है। 'हीर-हामद' में रूपविधि सबंधी नवीनता अवश्य लक्षित होती है। कवि ने भूमिका-कथा के रूप में कथा के प्रति अपनी प्रारंभिक उपेक्षा और बाद में उसकी उत्तमता के विश्वास संबंधी एक घटना को काव्य-बद्ध किया है। 'राजबीबी नामदार' मे भी एक छोटी-सी भूमिका-कथा है।[1]

---

१. राजबीबी नामदार, पृष्ठ ३-४

'यूसफ जुलेखा' की रचनाओं में भी रूपविधि संबंधी विलक्षणता नहीं है। लुत्फअली एवं मुहम्मदबख्श कृत 'सैफुलमुलूक', अहमदयार कृत 'कामरूप', अमामबख्श के 'हातमनामा', 'किस्सा मलिकजादा शाहपरी', 'शाह बहराम हुसनबानो' आदि की कथाएं संश्लिष्ट हैं। यद्यपि इनमे उपनायिका की कथा की योजना हिन्दी प्रेमाख्यानों जैसी नही, परन्तु सभी रचनाओं में परियों एवं जिनों—राक्षसो के देश की अनेक कथाएं संबद्ध रहती है जिनके कारण कथा इकहरी नही रहती। अहमदयार के 'अहसनुलकस्सिस' में अनेक छोटी-छोटी साक्षी कथाएं है जिनके द्वारा कवि ने अपने मन्तव्य की पुष्टि की है। मुहम्मदबख्श के 'सैफुलमुलूक' में भी एक साक्षी-कथा की योजना हुई है[1] यद्यपि यह कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। इसके साथ-साथ इस रचना में कथा प्राप्त करने के लिए सुलतान महमूद के महामंत्री हसन मैमदी के कठोर प्रयत्नों एवं बुद्धिचातुर्य का वर्णन भूमिका-रूप में है। लुत्फअली ने इस प्रकार की भूमिका नही बांधी।

अहमदयार का 'हातमनामा' एक नवीन शैली की रचना है, जिसमे एक दृढ़-निश्चयी प्रेमी की सहायता के लिए हातम ने सात बार भिन्न-भिन्न देशो की यात्रा की और अन्त मे राजकुमारी हुसनबानो को उसके प्रेमी मीरशामी को सौप दिया।[2] सभी यात्राओं का वर्णन पृथक्-पृथक् है और सभी में अल्ला, मुहम्मद साहब आदि की प्रशंसा भी पृथक् पृथक्। सम्पूर्ण पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य में इस रूपविधि की दूसरी रचना उपलब्ध नही होती। सातों यात्राओं की घटनाओं में थोड़ा बहुत अन्तर है। कथा का संगठन देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकांता सन्तति' जैसा ही है। अहमदयार के साथ ही ऐसी कथाओं का ग्रहण बढ़ता गया। इनका आदर्श 'सैफुल-मुलूक'' एवं स्रोत फारसी का 'अलिफ लैला' प्रभृति कथा-साहित्य है। कौतुहल-वृत्ति को शान्त करने के लिए ये कवि अनेक अलौकिक प्रसंगों को बार बार लाकर कथा के आकार को बढ़ाने का ही यत्न करते है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में कथा-संगठन की निम्नलिखित रूपविधियां उपलब्ध होती है —

१. इकहरी या एकान्वित कथाएं, जैसे 'मिरजा साहिबां', 'सोहणीं महीवाल' 'सस्सी पुन्नू', 'हीर रांझा' कथा-चक्र पर आधारित रचनाए, 'चदरबदन महियार' 'गुलसनोबर' आदि।

२. जटिल या संश्लिष्ट कथाएं, जिनमें लुत्फअली कृत 'सैफुलमुलूक', अमाम-बख्श एव अहमदयार की अनेक रचनाएं जैसे 'शाहबहराम हुसनबानो', 'कथाकामरूप', 'किस्सा मलिकजादा-शाहपरी' आदि।

३. साक्षी-कथा-युक्त इकहरी कथा, जैसे अहमदयार कृत 'अहसनुलकरिसस'।

---

१. सैफुलमुलूक (भाषा-विभाग), पृष्ठ ६६३

२. हातमनामा, पृष्ठ २७६

४. भूमिका एवं साक्षी-कथायुक्त संश्लिष्ट कथा जैसे मुहम्मदबख्श कृत 'सैफुलमुलूक'।

५. वृत्तसंग्रह, जैसे अहमदयार कृत 'हातमनामा'।

६. भूमिका-कथायुक्त इकहरी कथा जैसे 'राजबीबी नामदार', 'हीर-हामद'।

तुलना

हिन्दी एवं पंजाबी रचनाओं के गठन में प्रयुक्त रूपविधियों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की अपेक्षा पजाबी कवियों ने कथाओं के सगठन में विशेष कौशल का परिचय नही दिया। पजाबी में यद्यपि किस्साकार प्राय: मुसलमान है परन्तु प्रारभिक कवियों ने धार्मिक अथवा काल्पनिक कथाओं की अपेक्षा लोकमानस में स्थित प्रख्यात कथाओं को ही ग्रहण किया। इन कथाओं को रचनाबद्ध करने के असकृत् प्रयासो में कुछ वर्णनात्मक नवीनता तो आती रही परन्तु रूपविधि संबंधी नवीनता लाने का प्रयत्न दिखाई नही देता। प्रकरणवक्रता के नाम पर इन कवियों ने इन प्रसिद्ध कथाओं में किसी भी विलक्षणता का समावेश नही किया। एक ही कथा के आधार पर अनेक रचनाएं हिन्दी में भी लिखी गई है। 'माधवानल कामकंदला' की कथा को लेकर गणपति, दामोदर, कुशललाभ, आलम एवं बोधा की रचनाओं में विलक्षणता का विवेचन पीछे किया जा चुका है। नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध भी ऐसे ही कथाचक्र है जिन्हें अनेक कवियों ने, रचनाओ मे अनेक प्रसंगों के समावेश से, यत्किंचित विलक्षण बनाने का यत्न किया है। परशुराम के 'उषा चरित्र' एवं कुंज मणि के 'उषा चरित्र' की कथा बिना किसी भूमिका के है तो रामचरण कृत 'उषा-अनिरुद्ध ब्याह' एवं जीवनलाल नागर कृत 'उषाहरण' में विस्तृत भूमिका-कथाएं समाविष्ट हो गई, जिनमे बाणासुर की वशावली एवं विजय-यात्रा के अनन्तर उषा की उत्पत्ति का प्रकरण आता है। रामदास कृत 'उषा चरित्र' मे साक्षी-कथाओं की योजना से परिवर्तन लाने का यत्न हुआ। ढोला मारू के 'दूहा-बध' से कुशललाभ के 'चउपई-बध' का रचना-विधान भिन्न है। हिन्दी में उन कथाओ मे भी अनायास ही भूमिका-कथा की योजना कर दी गई जिनको अनेकश. काव्याश्रय देने पर भी पंजाबी के कवियों ने रूपविधि सम्बन्धी कोई परिवर्तन प्रस्तुत नही किया। गुरु गोविन्दसिंह ने हीर एवं सस्सी की रचनाओं में पौराणिक ढग की पूर्वजन्म की कथाएं जोड़कर मौलिकता एवं समर्थ काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया।

पजाबी में जटिल या संश्लिष्ट कथाओं की संख्या बहुत थोडी है। फारसी मसनवियों के आधार पर लिखी गई उत्तरकालीन कुछ 'परी-कथाएं' ही इसका उदाहरण है परन्तु उनसे विवेच्य कवियों का महत्त्व स्पष्ट नहीं होता। इससे तो उनकी बौद्धिक शिथिलता एवं पलायनवादी रुचि का[1] ही संकेत मिलता है। कथा-योजना की

---

१. शाह बहराम सं० प्रीतमसिंह, भूमिका।

दृष्टि से हिन्दी प्रेमाख्यान इनसे अधिक कलापूर्ण एवं सुसंगठित है। 'हालमनामा' के समान विशृंखल रचना हिन्दी में नहीं मिलती। 'किस्सा कामरूप', 'सैफुलमुलूक', 'शाह बहराम हुसन बानो',' मलिकजादा-शाहपरी' जैसी कुछ ही रचनाएं ऐसी है जिन्हे हिन्दी के संश्लिष्ट-कथायुक्त प्रेमाख्यानो के समकक्ष रखा जा सकता है। परन्तु रूपविधि-सम्बन्धी विविध प्रयोग पंजाबी में नही किए गए। पंजाबी प्रेमाख्यानों मे भूमिका-कथाओं या साक्षी-कथाओ का अभाव-प्राय है। 'किस्सा कामरूप' (अहमदयार) अथवा सोहणी या सस्सी की कुछ रचनाओं में सन्तानहीनता का वर्णन अवश्य मिलता है परन्तु वहाँ इस अभाव को भूमिका-कथा के रूप में पल्लवित नही किया गया, सूचना मात्र से यह ज्ञान करवाया गया है।

कथासूत्र के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण

पंजाबी एव हिन्दी के प्रेमाख्यानों को कथा सूत्र के आधार पर स्पष्टतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—लघुतर कथासूत्र वाली रचनाएं, लघु कथा-सूत्र वाली रचनाएं एव बृहत् कथासूत्र वाली रचनाए।

लघुतर कथासूत्र

हिन्दी की रचनाएं - प्रथम कोटि में हिन्दी की ही दो रचनाएं 'बीसलदेव-रासो' एव 'मैनासत' की गणना की जा सकती है। इन दोनो ही रचनाओं में कथा का सूत्र नाममात्र को हैं। नायक किसी कारणवश अपनी विवाहिता को छोड़कर विदेश चला जाता है और नायिका उसकी अनुपस्थिति मे विरह मे झूरती एव अपने सतीत्व की रक्षा करती है। अपने पति के पास विरह-व्यथा के सन्देश भेजती है, अन्त मे पति आ जाता है। सुखान्त वातावरण मे कथा समाप्त हो जाती है। नायिका की भूमिका मुख्य होने के कारण ये रचनाएं नायिका-प्रधान है। दोनों ही रचनाओं में कुटनी की योजना द्वारा कथानक को किंचित् स्थूलता प्रदान करने का यत्न किया गया है।

'मैनासत' की दूती रतना एवं उसके प्रेषक राजकुमार सतन को यदि रूपक तत्त्व की दृष्टि से देखे[1] तो 'सतन'—असत्य द्वारा प्रेरित 'रतना'—रमणेच्छा, एवं सत्य-सतीत्व का द्वंद्व ही इस रचना में अंकित है। रतना प्रत्येक ऋतु में नायिका को अन्य प्रेमी से मिलने की प्रेरणा देती है। कई बार संकेत[2] द्वारा और कई बार

---

१. सन् १६०७ में हमीदी कवि रचित फारसी मसनवी 'असमतनामा' में इस प्रकार की रूपक योजना है।

—मैना सतवन्ती, पृष्ठ ८२

२. जोबन रतन भोगी करि कहा खोवै तिहिं लागि।
सरस सरद रित जात है देखौ कौन अभाग।।

—मैनासत, पृ० १८६

स्पष्टतः प्रेमी ला देने को कहती है।[1] कवि ने अपूर्व कौशल से नायिका की निष्ठा एव विरह-व्याकुलता को इस संक्षिप्त से कथानक में अभिव्यक्त किया है। परन्तु भावात्मकता एवं द्वंद्व की प्रधानता के कारण कथानक उपेक्षित ही प्रतीत होता है। 'बीसलदेव रासो' की कथा अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। परन्तु उसमें भी नायिका के विरह का वर्णन ही मुख्य है। नायक का विवाह एवं वार्तालाप के प्रसंग अत्यन्त साधाधरण हैं। विरह-वर्णन में ही कुटनी आ जाती है, जो नायिका के सतीत्व को नष्ट करने का असफल यत्न करती है।

इन दोनों ही रचनाओं में नायिका के विरह एवं निष्ठा को अभिव्यक्त करने के लिए कथा का आश्रय लिया गया है। कवि की दृष्टि में कथा की अपेक्षा इस विरह-वर्णन का अधिक महत्त्व है। इसीलिए घटनाओं का सम्बन्ध-निर्वाह सदोष हो गया है। कथाओं मे इतना संक्षेप है कि किसी प्रकार की सन्धि-व्यवस्था अथवा उतार-चढाव की चिन्ता नही की गई। किसी प्रकार के चरमोत्कर्ष का भी इनमे आभास नही होता। प्राप्त विवरण के आधार पर जल्ह-कृत 'बुद्धिरासौ' भी ऐसी ही रचना प्रतीत होती है।

जान कवि की 'कथा कुलवन्ती', 'कथा सीलवन्ती', 'कथा सतवन्ती' आदि रचनाएं एवं गवासी की 'मैना सतवती' यद्यपि मूल रूप में इसी प्रकार की रचनाएं है परन्तु इनमें अनेक दूतियों की योजना या अन्तर्कथाओ के कारण कथासूत्र को विस्तार प्रदान किया गया है। उपर्युक्त दोनों रचनाओं मे प्राप्त होने वाली भावप्रधानता भी इनमें नही मिलती। नायिका की विरहानुभूति, जो 'बीसलदेवरासो' एव 'मैनासत' का वैशिष्ट्य है, भी वैसा औदात्त्य प्राप्त नही कर सकी। दूतियों की असफलता को पुनः पुनः प्रकट कर नायिका की निष्ठा का ये कवि वैसा प्रभाव नही डाल सके जैसा कि उपर्युक्त दोनों रचनाओं में एक ही बार में डाला गया है। इनमे न तो कथा गत रोचकता ही आ पाई है न काव्यात्मकता।

पंजाबी मे इस कोटि की कोई रचना नही मिलती।

लघु कथा सूत्र—

हिन्दी की रचनाएं—इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली रचनाओं की सख्या दोनों ही भाषाओं मे पर्याप्त है। इनका मुख्य लक्ष्य नायक-नायिका के वियोग-सयोग को चित्रित करना होता है, परन्तु उस अवस्था तक पहुचने के लिए उनके जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन किया जाता है। यद्यपि इन रचनाओं में नायक एवं नायिका के प्रेमोदय से लेकर अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचने की घटना होती है परन्तु कथा का संगठन सीधा सरल एव इकहरा होता। प्रेम अंकुरित हो जाने के अनन्तर

---

१. जोबन जात न जानिए गए बार पछिताह।
आन भंवर तोहिं मेरवूं लहै जु जग को लाह॥

—मैनासत, पृष्ठ १८२

प्रयत्न आरंभ होते है। इन मिलन-प्रयत्नों मे सामाजिक, धार्मिक अथवा स्थानीय दूरी बाधारूप मे चित्रित की गई है। पजाबी मे प्राय. सामाजिक असमानता एवं हिन्दी में स्थानीय दूरी का विशेष चित्रण हुआ है परन्तु अन्य बाधाएं भी दोनो ही साहित्यों में प्रयुक्त हुई हैं। इस वर्ग की रचनाओ में भी मिलन की तीव्र लालसा नारी मे ही दिखाई गई है, अत ये भी, पहले वर्ग के समान, नारी-प्रधान रचनाएं है। नारी के वियोग एवं कष्टो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है। हिन्दी मे कृष्ण-रुक्मिणी, उषा-अनिरुद्ध, रूपमंजरी, चरित्रोपाख्यान के अन्तर्गत आए आख्यान एवं पंजाबी में सस्सी-पुन्नू, सोहणी-महीवाल, गिरजा-साहिबां, राजबीबी, चन्दरबदन-महियार, शीरी-फरहाद आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते है।

इन रचनाओं की कथा नायक एवं नायिका के प्रेमाकर्षण पर ही आधारित है। प्रेम का त्रिकोणात्मक संघर्ष हिन्दी रचनाओं मे भी पंजाबी के ही समान प्राय. परिवार से है। फलत. कथाओ में घटनाओं का बाहुल्य नही है। हिन्दी मे पारिवारिक विरोध के भय से गुप्त रीति से नायक के पास सदेश भिजवा कर नायिका उसकी प्रतीक्षा करती है; युद्ध होता है और नायक-नायिका का सयोग हो जाता है। कवि प्रायः भावात्मक प्रसगों मे ही उलझ जाते है और कथा के सम्बन्ध-निर्वाह की ओर विशेष ध्यान नही देते। उदाहरण के लिए पृथ्वीराज की 'वेलि' में प्रद्युम्न-जन्म तक की कथा है परन्तु इस दीर्घ कृति मे कथा-निर्वाह निर्दोष नही है। कवि का ध्यान कृष्ण-रुक्मिणी के सयोग पर ही केन्द्रित हो जाता है। कथा का दो तिहाई भाग कृष्ण-रुक्मिणी के संयोग-प्रसग से आवृत्त है। पूर्वार्द्ध की अनेक घटनाओं को अपेक्षाकृत कम महत्त्व मिला है। इसी प्रकार विष्णुदास के रुक्मिणी-मंगल मे भी अनावश्यक ऊब पैदा करने वाले वर्णनो की भरमार है। शिशुपाल के बारात लेकर आने पर रुक्मिणी को मूर्छा आ जाती है तो उसको चैतन्य करने के लिए ग्यारह सखियां क्रम-क्रम से कृष्ण-लीला सुनाती है। यह लीला-वर्णन पढ़ते-पढ़ते धैर्य छूट जाता है।[1] इसी प्रकार नददास के 'रुक्मिणी मंगल' के आरंभ मे जिस प्रकार की कलात्मकता दिखाई देती है अन्तिम अ श मे उसका सर्वथा अभाव है। कथा के प्रारम्भिक विस्तार को देखते हुए युद्ध के लिए केवल पांच छद अतीव अयुक्त लगते है।

इन सब रचनाओं मे आलम कृत 'श्याम-सनेही' की कथा का संगठन अधिक सुन्दर है। वर्णन, सवाद आदि के आधिक्य से कथा बोझिल नही होती। कवि उचित रफ्तार से लक्ष्य की ओर अग्रेसर होता है। कथा में आरम्भ, विरोध की स्थिति, सघर्ष, चरमसीमा और फलप्राप्ति का विधिवत् विधान हुआ है।[2]

रुक्मिणी-कृष्ण कथाचक्र की अधिकांश रचनाओ के समान उषा-अनिरुद्ध सम्बन्धी

---

१. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, पृ० २९७

२. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० ३४२

रचनाओं में भी कथा-संगठन में विशेष कौशल के दर्शन नही होते। कथा-संगठन की दृष्टि से इन रचनाओं में भी अनेक त्रुटियां है। कवि अधिकतर वर्णन के लोभ मे फंस जाते हैं। कथा के विन्यास में जिस सानुपातिक निर्वाह की आवश्यकता होती है, उसकी ये प्रायः उपेक्षा करते है। जीवनलाल नागर कृत 'उषा हरण' में उषा के शैशव की दो पंक्तियों मे सूचना देकर एकाएक उसे विरहिणी के रूप मे उपस्थित कर दिया जाता है। कुंजमणि ने भी 'उषा चरित्र' मे वर्णनात्मक प्रसंगों में रमकर कथा-प्रवाह को विस्मृत कर दिया। रामदास के 'उषा चरित्र' में साक्षी-कथाओं के सन्निवेश के कारण कथा-योजना का सौष्ठव म्लान हुआ है।[१] उषा-अनिरुद्ध एवं कृष्ण-रुक्मिणी की कथाओं में मुख्य घटनाए समान होते हुए भी छोटे-मोटे अन्तर इन कवियों ने अवश्य किए हैं। परन्तु समग्र रूप से इनकी कथा-योजना श्लाघनीय नहीं। इस दृष्टि से आलमकृत 'श्यामसनेही' के बाद नंददास कृत 'रूपमंजरी' की गणना की जा सकती है। रूपमंजरी का विवाह एक अयोग्य वर से होता है। परन्तु इन्दुमती सखी की प्रेरणा से रूपमंजरी कृष्ण की ओर उन्मुख होती है। उसका विरह पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। प्रत्येक ऋतु उसे कष्ट प्रदान करती है। एक दिन स्वप्न में उसे कृष्ण के दर्शन होते हैं। यहां आकर कवि भटक जाता है, कवि की अपेक्षा, लक्षणकार बन जाता है और भिन्न-भिन्न श्रंजक अलंकारों के लक्षण एवं नाम गिनाने लग पड़ता है।[२] 'रूपमजरी' की कथा में विशेष बात यह है कि इसमे घटनाओ की अपेक्षा वर्णनों के द्वारा ही कथा-योजना हुई है।

'चरित्रोपाख्यान' मे केवल आख्यान ही प्रधान है। वहां काव्यपक्ष सर्वथा उपेक्षित है।

पंजाबी की रचनाएं—पंजाबी मे मिरजा-साहिबां की दोनों रचनाएं कथा-गठन की दृष्टि से सदोष हैं। भिन्न-भिन्न प्रसगों मे संबध योजना का अभाव है। पीलू की रचना तो किसी मिरासी के मुख से सुनकर संग्रहीत की गई है। संभव है मूल रचना में सुसम्बद्ध कथानक हो। अन्य रचनाओं मे कथा-निर्वाह अधिक स्वाभाविक है। नायक एवं नायिका के प्रेमाकर्षण पर आधारित इन रचनाओं मे भी पारिवारिक विरोध ही बाधक के रूप मे उपस्थित किया गया है। इन रचनाओं का घटना-प्रवाह अत्यन्त सामान्य है। सस्सी एवं सोहणी की रचनाओं में तो केवल स्थान का ही भेद है, अन्यथा कथाएं लगभग समान हैं। परिवार के विरोध की उपेक्षा कर स्वेच्छा से वरण, सघर्ष, प्राण-त्याग और अन्त में नायकों की मृत्यु दोनों में समान रूप से दिखाई गई है। 'चन्दरबदन-महियार' एवं 'शीरी-फरहाद' की रचनाएं भी इसी कोटि की है। अन्तर केवल यह है कि पहली में केवल नायक ही व्याकुल होता है और दूसरी में दोनों नायक-नायिका विरह-वेदना में तड़पते है। समकोटिक प्रेम होने के कारण दोनों पक्षों द्वारा प्रयत्न होना चाहिए था, परन्तु इन रचनाओं में केवल नायक

---

१. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, पृ० ३६१-६२
२, नंददास ग्रंथावली, पृ० ११४-१५

ही प्रयत्नशील है, अपर पक्ष मौन द्रष्टा मात्र है। फलतः कथा-पट संकुचित हो गया है। कथासूत्र के संक्षेप एवं गौण कथाओं या प्रकरियों के अभाव के कारण इन रचनाओं में भारतीय पद्धति की पंचसंधियों या अर्थप्रकृतियों अथवा भिन्न-भिन्न कार्यावस्थाओं की योजना उपलब्ध नही होती। अरस्तू द्वारा प्रतिपादित आदि, मध्य, अवसान की योजना अवश्य अत्यन्त स्पष्ट है। हिन्दी की रचनाओं की अपेक्षा वर्णन-मोह इनमे कम है। कथा-प्रवाह में कही भी बाधा उपस्थित नही होती। कथा द्रुतगति से उद्देश्य की ओर बढ़ती है। पश्चिमी ढग की कार्यावस्थाएं आरंभ, प्रयत्न, चरमोत्कर्ष, निगति एवं अवसान की योजना इनमें अपेक्षाकृत अधिक कलापूर्ण प्रतिभासित होती है। फजलशाह कृत 'सोहणी' में नायिका का अन्तिम समय का विलाप अवश्य कुछ अधिक विस्तृत हो गया है, परन्तु भिन्न-भिन्न घटनाओं की स्मृति एवं उनके संदर्भ में नायिका का विलाप घटनाओं के अभाव में भी खटकता नहीं।

कथा-गठन की दृष्टि से दोनों ही भाषाओं की इस कोटि की रचनाएं ही यत्किंचित् सफल कही जा सकती हैं। हिन्दी की अपेक्षा पंजाबी की रचनाओ में कथानक अधिक सुगठित है।

बृहत्कथा-सूत्र

हिन्दी की रचनाएं—तृतीय कोटि की रचनाओं का कथानक अत्यन्त विस्तृत है। इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है। एक तो वे रचनाएं, जिनमे कथा नायक-नायिका के मिलन के पश्चात् समाप्त हो जाती है और दूसरी वे, जिनमें उसके बाद भी कथा आगे चलती है। प्रथम विभाग में 'चंदायन', 'ढोला मारू', 'मधुमालती', 'लखमसेन पदमावती कथा', 'माधवानल कामकंदला' एवं 'कथा कामरूप' प्रभृति रचनाएं है तो दूसरे मे 'मृगावती', 'पदमावत', 'रसरतन', 'नलदमन', 'हंस जवाहर' जैसी अनेक रचनाएं हैं। पंजाबी मे नायक-नायिका का मिलन प्रायः नहीं होता इसलिए इस कोटि की रचनाएं वहां बहुत थोड़ी हैं। नायक-नायिका के मिलन के पश्चात् 'पदमावत', 'रसरतन और 'हंस जवाहर' जैसी सम्पूर्ण जीवन को समावृत करने वाली रचनाए वहाँ उपलब्ध नही होती। मौ० लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक', मुहम्मदबख्श कृत 'सैफुलमुलूक', अमामबख्श कृत 'किस्सा मलिकजादा शाहपरी' एव 'शाह बहराम हुसनबानो' जैसी कुछ रचनाएं ही ऐसी हैं जिनमे नायक-नायिका को विवाह का गौरव प्राप्त होता है।

उद्देश्य की दृष्टि से इन कथाओं में भेद है परन्तु कथा-योजना की दृष्टि से हिन्दी की अधिकांश कथाएं एक ही प्रकार की है। इनमें अनेक अन्तर्कथाओं की योजना है, पताकाएं एवं प्रकरियां है, भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णन है। इन सबकी योजना के द्वारा कथावस्तु में स्थूलता आ जाती है। इन कथाओं में स्वाभाविक्ता की अपेक्षा अलौकिकता ही अधिक दिखाई देती है। नायकों के मार्ग की घटनाएं प्रायः सर्वत्र एक समान ही होती है। कठिन मार्गों में भूलते-भटकते वे अपने गंतव्य पर पहुंच ही जाते हैं। इनकी अपेक्षा पंजाबी की कथाओं में हीर कथा का गठन अत्यन्त सरल है, परन्तु

निर्दोष नही। एक भी रचना ऐसी नही जिससे कथा में कोई मनोहारी प्रकरण बढ़ाकर योजना को अधिक आर्कषक बनाने का यत्न किया गया हो।

पंजाबी की रचनाएँ— कथा संगठन की दृष्टि से हीर-कथा का विवेचन करे तो पता चलता है कि अनेक कवियो द्वारा काव्यबद्ध की जाने पर भी इसमे कोई नवीनता या ग्रथन-कौशल विन्यस्त नही हो पाया। दमोदर ने सर्वप्रथम जो रूप उपस्थित किया, उसमे भी बाद मे काट-छांट कर दी गई। दमोदर की अपेक्षा अहमद कृत हीर का कथा-सगठन अत्यन्त शिथिल है। कवि ने रचना मे नाटकीयता का समावेश कर अनेक सवादो की तो योजना करदी परन्तु प्रबन्ध के आवश्यक गुण सम्बन्ध-निर्वाह की पूर्णतया अवहेलना की। नायक एव नायिका के जन्म की सूचनाएं देकर राझे के गृह-त्याग की घटना कुछ ही पक्तियो में समाप्त कर दी। रचना एक सकेतात्मक कथा ही प्रतिभासित होती है। कुछ घटनाए तो ऐसी है, जो अपने स्थान पर तो अदृश्य है परन्तु पीछे वार्तालाप मे उनका सकेत किया गया है।[1]

मुकबल की कथा अवश्य सुनियोजित और सानुपातिक है। जबकि वारिस मे पुन: प्रबधकल्पना की उपेक्षा कर वार्तालाप को मुख्य बना दिया गया[2], बाद के कवि इसी लीक पर चल पड़ें। हीर-कथा के प्राय: सभी लेखक कथा मे प्रबधवक्रता की अपेक्षा वार्तालापो की योजना कर वाग्वैदग्ध्य के प्रदर्शन मे उलझ जाते हैं। फलत. इस कथाचक्र के आधार पर लिखी गई एक भी रचना में कथा वस्तु-सगठन का कौशल दिखाई नही देता। न तो उपनायिका की ही योजना कीं गई और न कोई गौण कथा ही सन्निविष्ट हो सकी। उपनायिका की योजना करने की प्रवृत्ति तो पजाबी की किसी रचना मे भी नही परन्तु यदि ये कवि किंचित् भी परिश्रम करते तो 'सहती' की कथा गौण कथा के रूप मे विकसित की जा सकती थी। सहती नायिका की सहायता करने वाली महत्त्वपूर्ण नारी है। उसका रामू अथवा मुराद के साथ प्रेम-सम्बन्ध है परन्तु किसी भी कवि ने उसे विकसित नही किया। दमोदर की रचना मे तो यह सकेत मात्र प्राप्त होता है कि सहती रामू ब्राह्मण से प्रेम करती है।[3] वह अपने इस प्रेमी के माध्यम से नायिका का सदेश नायक के पास भिजवाती है, उन दोनों के पलायन के अनन्तर वह घर में ही रहती है। अहमद ने भी इसका सक्षिप्त सकेत

१. हीर की विदाई के समय का वर्णन ही नही है परन्तु हीर एवं रांझा वार्तालाप में उस समय की लोकप्रसिद्ध घटनाओं का, जैसे भैसो का रुकना, रांझे का ढाल उठाकर जाना आदि का संकेत है।

—हीर अहमद, पृ० २०४-२५५

२. रांझा एवं मुल्ला, रांझा एवं लुड्डन, रांझा एवं योगी, रांझा एवं जाट, रांझा एवं सहती, हीर एवं माता, हीर एवं काजी आदि अनेक वार्तालाप हैं जो कथा के दो-तिहाई भाग मे समाविष्ट है।

३. 'जिउं तुध मै परीत विआयी, तिउं हीरे चाक विचारे।'

—हीर दमोदर, पृ० १४६

भर किया है ।[1] मुकबल की हीर में सहती मुराद (रामू ब्राह्मण का स्थानान्न) के साथ भाग जाती है ।[2] वारिस ने इस प्रसग का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन किया हैं । रांझे की अलौकिक शक्ति को देखकर उससे अपने प्रेमी को बुला देने की प्रार्थना की । वह प्रार्थना ईश्वर ने स्वीकार की, मुराद बलोच आया और अपनी डाची पर उसे बिठा कर वहाँ से निकल गया । मार्ग मे पीछा करने वाले खेड़ा योद्धाओं से उसकी मुठभेड हुई परन्तु मुराद के वीर योद्धा विजयी रहे । इस घटना को एक उपकथा के रूप मे उचित विस्तार से, वर्णन किया जा सकता था परन्तु, कवि ने कुछ ही पंक्तियों में इसे चलता कर दिया । वास्तव में हाशम तक पजाबी के कवियों में कथा को विविध घटनाओ या वर्णनो से स्फीत करने की प्रवृत्ति है ही नही । बाद की रचनाएं तो लगभग वैसी ही हैं जैसी कि हिन्दी की बृहत् कथा-सूत्र वाली रचनाएं । अन्तर केवल यह है कि कथावस्तु के सगठन मे पंजाबी कवियों में काव्यात्मक वर्णनो एवं मार्मिक स्थलो की पहचान की कमी है ।

कथानक-संगठन

कथानक एव घटना-वर्णन की दृष्टि से हिन्दी एव पंजाबी प्रेमाख्यानों में आपाततः कोई विशेष समानताएं लक्षित नही होती परन्तु सायास विश्लेषण करने पर कुछ प्रारभिक समताए मिल जाती है । अधिकाश हिन्दी एव पजाबी रचनाओं मे प्रेम की तीव्रता नायिका मे ही दिखाई गई है । हिन्दी कवियों के समान नायक एवं नायिका को वियुक्त कर विरह-वर्णन की परम्परा पंजाबी कवियो में अठारहवी शती के अन्तिम चरण मे ही प्रचलित हुई है । इससे पूर्व पंजाबी कवियो ने नायक-नायिका के मिलन को समाज द्वारा स्वीकृति प्रदान करवाने को ही मूल समस्या के रूप में ग्रहण किया है, जबकि हिन्दी कवियो के समक्ष मिलन की ही समस्या मुख्य रही । अत. दोनों ही भाषाओं मे कथा का मुख्य बिन्दु भिन्न है । एक मे यह उद्देश्य 'प्राप्ति' है तो दूसरे में 'समाज स्वीकृति' ।

रांझा एव हीर बारह वर्ष तक इकट्ठे रहे, मिरजा एव साहिबां इकट्ठे पढते थे, सोहणी के घर इज्ज़तबेग महीवाल का काम करता रहा और सस्सी भी पुन्नू को प्राप्त कर लेती है । राजबीबी भी नामदार के साथ मिल जाती है परन्तु इन नायकाओ की यह स्थिति समाज को स्वीकार नही । फलतः ये अपने प्रेमी के साथ मिलकर अथवा एकाकी संघर्ष करती हैं । इनको 'माधवानल कामकन्दला' कथाचक्र की समानधर्मा माना जा सकता है परन्तु इन्हें कोई 'विक्रम' जैसा सहायक उपलब्ध नहीं होता । बाधाओं को दूर करने के लिए इन नायकों को न तो कोई अलौकिक शक्ति

१. हीर अहमद, पृ० २७१

२. पहले सहती नूं मुराद लै टुरीआ ।
तथा एवं—मैनूं नाल मुराद बलोच देनी;
तुध वांग परेम दा काज हैनी।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ४८

प्राप्त है और न अद्वितीय वीरता ही। उभयपक्ष धैर्य, एकनिष्ठता एवं प्रेम पर विश्वास करते हुए कष्ट सहते रहते है। यह स्थिति पंजाबी में परी-कथाओं के प्रचलन से पूर्व की है। उसके बाद के साहित्य में तो पजाबी की रचनाओं के नायक हिन्दी की रचनाओं के नायको से कही अधिक साधन-सम्पन्न बन जाते है।

(क) प्रारम्भ के कतिपय समान कथांश

प्रबन्ध-काव्यों के कथानक का विश्लेषण करते समय कथानक-रूढ़ियों की चर्चा प्रायः की जाती है। पंजाबी प्रेमाख्यानों के संक्षिप्त कलेवर एवं अतिसंक्षिप्त कथानक में इनके उपयोग का अवकाश कम था। दोनों भाषाओं की अख्यानक रचनाओं में समान रूप से प्रयुक्त होने वाली कथानक-रूढ़ियों तो अतिविरल है। इन रचनाओं के प्रारम्भिक कथांशों में ही कुछ समानताए मिलती है। उनमें से कुछ एक निम्नलिखित है—

राजकुलों से सम्बन्ध—हिन्दी प्रेमाख्यानों की कथाओ का वातावरण राजदरबारों का है। ये कथाएं राजकुलों मे जन्म लेने वाले राजकुमारों एव राजकुमारियों से सम्बन्धित है। ढोला राजकुमार है, बीसलदेव अजमेर गढ़ का विचक्षण राजा एवं राजमती राजा भोज की बेटी है। 'चंदायन,' 'लखमसेन पदमावती कथा,' 'मधु-ममालती' 'नल दमयन्ती', 'चित्रावली', 'रसरतन', 'सैफुलमुलूक बदीउलजमाल', 'हुसजवाहर', 'इन्द्रावती' प्रभृति सभी रचनाओं के नायक-नयिकाएं राजकुमार एवं राजकुमारियां हैं तो अन्य नायक-नायिकाओ का सम्बन्ध ऐसे अलौकिक पात्रों से है, जिनको कृष्ण या उनके परिवार से सम्बद्ध किया गया है।

पंजाबी रचनाओं के एक मुख्य वर्ग में नायक-नायिकाएं यद्यपि राज्यपरिवारों से नही हैं तो भी उनकी असाधारण समृद्धि से मंडित करने की अभिलाषा स्पष्ट परिलक्षित होती है। रांझे का पिता मौजू चौधरी भाइयों का सरदार तथा वंशानुगत (पुश्तैनी) रईस था। वह भूमि एवं नदियों का स्वामी था।[१] वह नगर के सम्मान का स्वामी एवं बिरादरी का मुखिया था।[२] हीर का पिता भी अकबर के साथ समानता का दावा करता था, वह सियालों का स्वामी था।[३] मिरज़ा एवं साहिबां भी प्रसिद्ध सरदारों की वंश परम्परा में थे।[४] सोहणीं का पिता राजा या नवाब तो नही था परन्तु शासकों से सम्बन्धित था और शाही दरबार में उसका विशेष सम्मान था।[५]

---

१. हीर दमोदर, पृ० ३८

२. मौजू चौधरी पिंड दी पांड वाला, चंगा भाईआं दा सरदार आहा।

—हीर वारिस, पृ० ३

३. अकबर नाल करेंदा दावे, भुईं नईं दा साईं।

—हीर दमोदर, पृ० १९

४. बबीहा बोल, पृ० १४

५. हाशाम रचनावली, पृ० ५१

सोहणीं को बाल्यकाल में किसी राजकुमारी से कम सुविधाएं प्राप्त नहीं थी ।[1] इज्ज़त-बेग के पिता के महल बुखारे मे थे और वह मालामाल था ।[2] सस्सी तो भंबौर शहर के सिंहासनाधिपति आदम की पुत्री थी एव उसका प्रेमी पुन्नू केचम शहर के स्वामी अली होत का पुत्र था ।[3] 'सैफ़ुलमुलूक', 'शाह बहराम-हुसनबानों', 'कामरूप कामलता', 'मलिकजादा शाहपरी', 'हातमनामा' आदि रचनाओं मे तो ये राजकुलों से ही सम्बद्ध हैं।

इस प्रकार दोनों ही भाषाओं में प्रेमाख्यानों के नायक-नायिकाओं को राज-परिवारों की समृद्धि प्रदान करने का यत्न हुआ है परन्तु, पंजाबी की कथाओं की मूल पृष्ठभूमि जनजीवन है। उसे जनजीवन से विच्छिन्न कर राज्य-वैभव से सम्बद्ध करने का प्रयत्न विशेष सफल नही हुआ। यह यत्न भी इसलिए किया गया कि इन रचनाओं का स्रोत जनजीवन में प्रसिद्ध लोककथाएं है। लोककथाएं जनजीवन के अभावों की पूर्ति करती हैं परन्तु, पंजाबी किस्सा-काव्य में इस अभावमय जीवन की तृप्ति से भी अधिक समकालीन सामाजिक यथार्थ के समीप रहने का आग्रह है। फलतः राजकीय समृद्धि थोड़ी दूर चल कर ही खंडित हो जाती है। 'भुई नई के साईं' मौजू की पुत्री सभी रचनाओं में अपने चरवाहे के लिए स्वयं भत्ता (मध्याह्न का भोजन) लेकर जाती है। मुकबल एवं अहमद ने तो यह आवरण भी स्वीकार नहीं किया ।[4] मिरज़ा एवं साहिबां सरदारों की सन्तानें होते हुए भी गांव की मसजिद मे पढ़ने जाते हैं। सरदार मिरजे के तुरग (वाहन) की कृशता एवं उस पर साहिबां का व्यंग्य उसकी सरदारी का पोल खोल देता है—

माड़ी तेरी टीकरी मिरजिआ, लिआइआं किधरों टोर ।
मुक्का एहदा चोकटा कावां खाधे कमरोड़ ।
जो घर न आही तेरे बाप दे, मंग लै आंदा होर ।[5]

इस निर्धनता को छिपाने के लिए मिरजा कहता है कि "मेरी नीली की दुर्बलता मत देख, इसकी धूम लाहौर में फैली हुई है। इसके भय से मोर भूमि पर नहीं उतरते ।"[6]

---

१. सोहणीं महीवाल (फज़लशाह) सं० पृ० ५-९
२. वही, पृ० ९-१०
३. हाशम रचनावली, पृ० ८०, ८८
४. हीर रांझा (मुकबल), पृ० २
   हीर अहमद, पृ० १८७
५. अर्थ—अरे मिरज़ा, तेरी यह घोड़ी अति दुर्बल है। इसका अस्थिपंजर सूखा हुआ है और शरीर पर कौओं ने घाव किए हुए हैं। यदि तेरे पिता के घर कोई सुन्दर घोड़ा नहीं था तो किसी दूसरे से ही मांग लाता ।

   —बलीहा बोल, पृ० १०६
६. मिरज़ा साहिबां (हाफिज बरखुरदार) पृ०-१२

सोहणी लाख अमीर थी परन्तु अपने पिता के साथ दुकान पर काम करती थी।[१] सस्सी अपार वैभव की स्वामिनी होकर भी पुन्नू की खोज में अकेली ही तप्त मरुस्थल में झुलस मरी, न कोई बादी ही साथ गई न सहेली ही।

दोनों ही भाषाओं के प्रेमाख्यानों मे नायक गृह-त्याग करते है। हिन्दी मे वे ऐश्वर्य एव साधन-सम्पन्न जीवन का त्याग कर योग धारण करते हैं और घर से दूर प्रेमिका की खोज मे भटकते है, जबकि पजाबी मे वे कई बार नायिका के अस्तित्व के ज्ञान से भी पहले घर छोड़ते है। वास्तव में गृह-त्याग एक चिराचरित काव्य-रूढि है। राम, कृष्ण, बुद्ध सभी ने गृह-त्याग किया। परन्तु गृह-त्याग के समय हिन्दी के प्रेमाख्यानो में अनेक मित्र एवं विशाल सेना उनका अनुगमन करती है, जबकि पंजाबी प्रेमाख्यानों के नायक एकाकी, मित्रहीन है; कोई भी उनका हितैषी नही। वे अकेले ही सघर्ष करते-करते दम तोड़ते है। दोनो ओर गृह त्याग की घटना समान होने पर भी परिस्थितियां भिन्न है। हिन्दी मे तो योगी बनने पर अलौकिक सिद्धियों के द्वार भी खुल जाते हैं।

हिन्दी कथाओं के एक वर्ग में जन-सामान्य को भी नायक-नायिका बनाया गया है। 'चन्दर कुंवर री बात,' 'रमणशाह छबीली भटियारी' जैसी रचनाए ऐसी ही है, परन्तु इनका विशेष महत्त्व नही है

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पंजाबी प्रेमाख्यानो के महत्त्वपूर्ण वर्ग मे राज्य-वैभव आरोपित करने का यत्न तो किया गया परन्तु उसका सफलता-पूर्वक निर्वाह नही हो सका। इसका मुख्य कारण यही है कि ये रचनाएं वास्तव में जन-साधारण के मनोरंजन के लिए उन्ही में प्रसिद्ध लोक-कथाओं पर आधारित है। इनमें राज्यकुलों की नही, जनसाधारण की समस्याएं ही चित्रित की गई है। अभिजात वर्ग से, जिसका आदर्श राजपरिवार है, इनका सम्बन्ध बहुत बाद में जुड़ा। उस काल की पंजाबी जनता के समान ये नायक भी असहाय एवं निराश्रय हैं। इनका कोई मित्र नही, किसी ने दुख दर्द में इनको सान्त्वना प्रदान नही की। ये खाली हाथ घर से निकले या सब कुछ लुटा कर प्रेम-पंथ के पथिक बन गए। राज-वैभव किसे अकेला रहने देता है?

नायक-नायिका अभाव की सन्तानें—नायक तथा नायिका के पिता का सन्तानहीन होना तथा जप-तप, दान-पुण्य या किसी सिद्ध पुरुष के आशीर्वाद से संतान-प्राप्ति हिन्दी प्रेमाख्यानों की प्रिय कथा-रूढ़ि है। कुतबनकृत 'मृगावती' मे राजकुंवर का जन्म पिता की निरन्तरप्रार्थना के फलस्वरूप हुआ।[२] 'मधुमालती' का मनोहर

---

१. सोहणी महीवाल, (फज़लशाह) पृ० १९

२. मांगइ पूत दुवौं कर जोरे, बेगि देहि करतार। —मृगावती, पृ० १०

भी अनेक प्रकार के जपतप के अनन्तर तपस्वी के आशीर्वाद से हुआ ।[1] 'चित्रावली' का राजकुमार महेश के वरदान से उत्पन्न हुआ ।[2] गवासी के 'सैफुलमलूक' में नायक का जन्म यद्यपि किसी वरदानस्वरूप नहीं हुआ परन्तु जन्म का उपाय ज्योतिषियो ने बताया । जिसके अनुसार आसिम को यमन देश की राजकन्या से विवाह करना पड़ा ।[3] 'नलदमन' की नायिका दमयन्ती का जन्म दमन ऋषि के प्रताप से हुआ था ।[4] 'पुहपावती' के नायक राजकुमार का जन्म बारह वर्ष तक भवानी की तपस्या का फल था ।[5] 'हंस-जवाहर' के बुरहानशाह के रनिवास में अनेक रानियों के रहते हुए भी संतान नही थी । अन्त मे खाजा खिजर के आशीर्वाद से पुत्र हंस का जन्म हुआ ।[6] 'रसरतन' में तो कवि पुहकर ने नायक एवं नायिका दोनो के ही जन्म के लिए इस रूढ़ि का उपयोग किया है । सिद्ध की आज्ञानुसार काशी में शिव की उपासना करने से राजा सोमेश्वर के घर कुमार सूरसेन का जन्म हुआ और नायिका रभा चडी की सेवा से प्राप्त हुई ।[7]

पंजाबी मे भी कुछ कवियो ने इस रूढि का प्रयोग किया है । बरखुरदार की 'सस्सी पुन्नू' मे सस्सी की माता शय्या पर सोई-सोई नित्यप्रति अश्रु बहाया करती थी परन्तु न तो सीप मुख ही पसारती थी और न उसमे बूंद ही पड़ती थी । आदमजाम का आंगन कैसे आलोकित होता जिसके घर बालक नही खेलता उसमें नित्य अंधेरा ही रहता है ।[8] हाशम की रचना 'सस्सी पून्नू' में भी भंबौर शहर के स्वामी आदमजाम के नगर मे अद्भुत ऐश्वर्य का पारावार न था परन्तु सन्तान के लिए वह सदैव दानपुण्य में लगा रहता था । अन्ततः एक सिद्ध के आशीर्वाद से सस्सी का जन्म हुआ ।[9] हाशम की दूसरी रचना 'सोहणी महीवाल' मे भी सन्तानहीन होने के कारण तुला कुम्हार रात-दिन दुखी रहता है ।[10] अहमदयार कृत 'सस्सी पुन्नू' में भी आदमजाम सन्तान-

१. मधुमालती, पृ० ४०

२. सिव असीस विधि भयो मयारा । धरनीधर घर सुत औतारा ।।

—चित्रावली, पृ० २०

३. सैफुलमुलूक बदीउलजमाल, पृ० ३१
इस कथा पर आधारित सभी हिन्दी और पंजाबी रचनाओं में यह प्रसंग इसी प्रकार है ।

४. नलदमन, पृ० ४६

५. भारतीय प्रेमाख्यानकाव्य, डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव, पृ० ३५८

६. हंसजवाहर, पृ० १०

७. रसरतन, पृ० १८ एवं २५

८. ओह सुत्ती सुत्ती सेज ते हंजू रोवे नित्त ।
रब्बा सिप न मुख पसारिया बूंद न पईआ तित्त ।।

—कोइलकू, पृ० १०१

इस संदर्भ में सीप एवं बूंद के प्रतीक का उपयोग रसरतन में भी हुआ है ।
"सीप स्वाति जनु बुंद परि, नृप जोषिता विराज ।" —रसरतन, पृ० २६

९. हाशम रचनावली पृ० ८१

१०. वही, पृ० ५२

प्राप्ति के लिए नित्यप्रति प्रार्थना करता था। उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई और ईश्वर ने उसे चांद सी सुन्दर पुत्री प्रदान की।[1] फजलशाह कृत 'सोहणीं महीवाल' में बलख-बुखारे का सौदागर अली सन्तानहीन था। इस व्याकुलता को दूर करने के लिए वह एक कामिल फकीर की शरण मे गया। रो-रोकर प्रार्थना की। दयालु फकीर ने ईश्वर से प्रार्थना कर उसे पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया।[2]

संक्षेप में कह सकते हैं कि अभाव की सतान बताने एवं नायक-नायिका के जन्म को जप-तप, दान-पुण्य या किसी सिद्ध के आशीर्वाद से संबद्ध करने की रूढ़ि का उपयोग यद्यपि पंजाबी के कवियों ने भी किया परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानों के समान इन रचनाओं में इसका व्यापक प्रचार नही रहा।

इसमें सन्देह नही कि सन्तानैषणा मनुष्य-जीवन की एक महत्त्वपूर्ण साध है और सन्तानाभाव से दुखी व्यक्ति संसार के प्रत्येक खण्ड में मिल जाते है, परन्तु पंजाब में सन्तानाभाव की समस्या लोक-जीवन का मुख्य अंग नही बन सकी, इसीलिए साहित्य मे इसका व्यापक प्रचार नहीं हुआ। तथ्य तो यह है कि 'सस्सी-पुन्नूं' एवं 'सोहणीं-महीवाल' जिनके दो पात्रों (सस्सी एवं इज्जतबेग) के लिए इनका उपयोग हुआ, वे दोनों पंजाब के बाहर के निवासी है। साहित्य में वही समस्याएं स्थान प्राप्त करती है, जिनका समाज में व्यापक प्रचार हो। पंजाब में तो विपरीत दशा देखने को मिलती है। 'हीर रांझा' के लोकप्रिय आख्यान मे नायक एवं नायिका दोनों का ही परिवार विशाल है। रांझे की तो समस्या ही यह थी कि भूमि कम एवं भागीदार अधिक, बांट में उसे ऊसर भूमि देकर साधनहीन बना दिया गया। इसी कारण उसने गृह-त्याग किया। साहिबां एवं मिरजे के भी अनेक भाई-बहन है।

इस समस्या का दूसरा पक्ष भी है। सन्तानाभाव का जैसा प्रभाव धनी एवं शासक वर्ग पर पड़ता है, वैसा जन-सामान्य पर नहीं। एक ओर तो वंश-परम्परा के संरक्षण का ही मोह है, दूसरी ओर इसके साथ-साथ अपार सम्पति के नाश का भी भय। इसीलिए सम्पन्न वर्ग में यह अभाव अधिक व्यापक है। हिन्दी के प्रेमाख्यानों का परिवेश राज-परिवारों का है, अतः उनमें इस रूढ़ि का विशेष प्रयोग हुआ है। पंजाबी की रचनाओं में इसका प्रचार न पा सकना स्वाभाविक ही है।

नायक एवं नायिका की असाधारणता—कठिनाई से प्राप्त इन सन्तानों को हिन्दी के प्रेमाख्यानकारों ने कुशाग्रबुद्धि, साहसी, विद्वान एवं सुन्दर चित्रित किया है। उनमें सौंदर्य, शक्ति एवं शील का समन्वय करने में सभी कवि समान रूप से प्रयत्नशील रहे हैं। 'मृगावती' का राजकुंवर दस वर्ष की अवस्था में सब कुछ सीख गया।[3] चतुर्भुज की 'मधुमालती वार्ता' में भी नायक एवं नायिका असाधारण बुद्धि-

---

१. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० ३९

२. सोहणीं महीवाल, (फजलशाह) पृ० १०

३. दस रे बरिस महं अस भा पोथा बांच पुरान। —मृगावती, पृष्ठ १३

सम्पन्न तथा पढ़ने में अत्यन्त प्रवीण थे ।[1] 'माधवानल कामकंदला' का माधव अद्वितीय बुद्धिमान एवं अलौकिक रूप का स्वामी था ।[2] 'पदमावत' की नायिका में भी इन गुणों की प्रतिष्ठा की गई है ।[3] मंझन रचित 'मधुमालती' में मनोहर बारह वर्ष की अवस्था से पूर्व ही वेद, चित्रकला, अमरकोष, पिगंल, व्याकरण, ज्योतिष, गीता और गीत-गोविन्द पढ़ चुका था । बारहवें वर्ष में तो वह अस्त्र चलाने मे भी निपुण हो गया ।[4] 'चित्रावली' का राजकुमार सुजान थोड़े ही दिनों में अमरकोष, व्याकरण, योग, वैद्यक, पिंगल, संगीत, ज्योतिष, भूगोल पढ़कर मल्ल-विद्या में प्रवीणता प्राप्त करने लगा ।[5] 'रसरतन' में राजकुमार सोम अस्त्र, शस्त्र एवं शास्त्र सम्बन्धी सभी विद्याएं द्वादश वर्ष की अवस्था में ही सीख गया ।[6] 'पुहपावती' में राजकुमार अल्पवय मे ही चौदह विद्याओं में पारंगत हो गया और दिग्विजय की कामना करने लगा ।[7] इन सभी रचनाओं में इनको रूप का भी अलौकिक सौंदर्य प्रदान किया गया है ।[8]

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायक एवं नायिका के रूप एवं गुणों की प्रशंसा द्वारा उनमे असाधारणता का आरोप किया गया है । इन कवियों ने इस प्रसंग में सौंदर्य, विद्या, शौर्य सभी का यथास्थान वर्णन किया है ।

पंजाबी में भी इस प्रवृत्ति का आंशिक रूपेण पालन किया गया है । वहां भी इनको अलौकिक गुणों से अभिमडित करने की अभिलाषा तो है परन्तु अधिकतर कवि रूप के प्रभाव को ही प्रकट कर सन्तोष कर लेते हैं । यद्यपि दमोदर, मुकबल, वारिस आदि कवियों ने अपने नायक-नायिकाओं को गुणों मे अद्वितीय कहा है परन्तु बालकपन में अन्य गुणों की अपेक्षा सौंदर्य का ही वर्णन मिलता है । कुछ उत्तरकालीन कवियों ने ही वैदुष्य का उल्लेख किया है । मौ० लुत्फअली ने अपनी रचना में यह संकेत मात्र किया है कि उन्होंने शिक्षा प्राप्त कर ली और दोनों एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर थे ।[9] अहमदयार, अमामबख्श, मुहम्मदबख्श एवं फजलशाह जैसे उत्तरकालीन कवियों ने ही वैदुष्य का वर्णन किया है । फजलशाह ने 'सोहणी महीवाल' में इज्जतबेग को शस्त्र एवं शास्त्र कौशल में अद्वितीय बताया है । वह पांचवें वर्ष मसजिद मे जाकर

---

१. मधुमालती वार्ता, पृ० ७
२. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० २० (गणपति)
   वही, पृ० ३८७ (कुशललाभ)
३. पदमावत, पृ० ५३-५४
४. मधुमालती, पृ० ४७-४८
५. चित्रावली, पृ० २२-२३
६. रसरतन, पृ० २२
७. भारतीय प्रेमाख्यानकाव्य, पृ० ३५८
८. 'प्रेम—निरूपण' अध्याय के अन्तर्गत इस पर विस्तार से विचार किया है ।
९. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ११६

बैठा तो एक ही वर्ष मे सारा कुरान, फिका, हदीस; सातवें मे नज्म, नसर; आठवें में सर्फोनहव (व्याकरण) पढ़ता-पढ़ता चौदहवे वर्ष मे सभी विद्याओं में पारगत हो गया। वह जो कुछ कहता उसमे तर्क-वितर्क करने की शक्ति किसी मे नही थी। उसकी तीरदाजी पर सभी चकित रह जाते।[१] अपनी अन्य रचना 'हीर' मे तो फजलशाह ने इस प्रसंग को विस्तार देने के लिए सर्वथा नवीन ढग अपनाया है। औचित्य की चिन्ता किये बिना ही कवि नायिका हीर को फारसी वर्णमाला के एक-एक अक्षर पढ़ाते समय मुल्ला की व्याकुलता का वर्णन करता गया है –

बे पे ते टेयां पढ़े दरसी दरस करन अबरू तलवार प्यारे।

अथवा— **सबक वाओ सुनके वाओ मार गई[२]।**

हीर छठे वर्ष में कुरान, हदीस, शरह; सातवें में इलमें-फारसी पढकर कढाई एवं कसीदा सीखने लगी।[३] हीर के चरित्र के साथ शिक्षा का सम्बन्ध जोडने वाला यह पहला कवि है। अहमदयार ने भी सस्सी मे शील, सौदर्य एव विद्या की प्रतिष्ठा की है।[४] मुहम्मदबख्श का नायक तो दस वर्ष मे सभी भाषाए (लिपियां) पढ गया। उसका सुलेख देखकर फरिश्ते भी हैरान हो जाते थे। वह वेद-अक्षरी (सभवतः सस्कृत) गुरमुखी, हिन्दी, डोगरी, अंग्रेजी, उर्दू, बंगाली, दक्खिनी, अरबी, फारसी, ईरानी, तुरकी, यूनानी सभी भाषाएं जान गया। इससे पूर्व कवि ने विद्या-अध्ययन के लाभ पर भी कुछ पक्तियाँ लिखी है।[५] द्रष्टव्य यह है कि इन गुणो और विद्या-अध्ययन को व्यवहार मे कही नही लाया गया। सब कुछ पढ लिखकर भी इज्जतबेग एक कुम्हार की भैंसे चराता है, जो निश्चय ही वैदुष्य का उपहास है। इन चारो प्रसिद्ध कथाओ के नायकों के किसी भी कार्य मे वैदुष्य या वीरता आदि अभिजातोपलब्ध गुणो का अभाव है।

दोनों ही भाषाओ के प्रेमाख्यानों के इस अंश की तुलना करने पर इन वर्गो एवं भूमिखण्डों के लोगों का रहन-सहन एवं जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण सामने आ जाता है। पंजाबी प्रेमाख्यानों में केवल सौदर्य ही महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इन रचनाओं में हिन्दी प्रेमाख्यानों की पद्धति पर विस्तृत नखशिख-वर्णन नही हुआ परन्तु इन रचनाओं के संक्षिप्त कलेवर मे प्रेम के लिए केवल सौदर्य को ही महत्त्व दिया गया है। इसमें सन्देह नही कि हिन्दी प्रेमाख्यानों में भी अधिकतर रूपाकर्षणजन्य प्रेम ही चित्रित किया गया है परन्तु, उस समाज में रूप के अतिरिक्त अन्य गुणों को नितान्त उपेक्षणीय नही समझा गया। आलोच्य काल में पंजाब मे जन-सामान्य का दृष्टिकोण भोग-प्रधान हो चुका था। एक समय तो ऐसा आया कि 'खाधा पीता लाहे दा बाकी अहमदशाहे दा'

---

१ सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० १२-१३

२-३. हीर रांझा (फजलशाह), पृ० ८-९

४. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० ४५

५. सैफुलमुलूक, पृ० १०४-१०५

ही जीवन का मूल मन्त्र बन गया। इस पंक्ति में जीवन की अस्थिरता एवं अशान्ति की अभिव्यक्ति है। अनेकानेक विद्रोहों एवं राज्य-विप्लवों से पीड़ित जनता इधर-उधर सिर छिपाती फिरती थी। ऐसी अव्यवस्था मे गुणार्जन की चिन्ता किसे होती। वहां तो ईश्वरप्रदत्त सौदर्य ही सर्वेसर्वा था; 'रूप दित्ता करतार' में इसी की झलक है। अहमदयार एवं उसके पश्चात् अन्य कवियों ने इस साहित्य को आभिजात वर्ग से संवद्ध करने का यत्न करते हुए फारसी साहित्य की अनेक रचनाओं के भावानुवाद प्रस्तुत किए। उन्ही मे प्राय: विद्या आदि का वर्णन किया गया है। इन कवियों से पहले की रचनाएँ जनसाधारण के लिए ही प्रस्तुत की गई और उन्ही के गुणावगुणों को स्थान मिलने के कारण उनमें गुणार्जन की प्रवृत्ति विशेष रूप से उपेक्षित रही।

प्रेममय व्यक्तित्व—धन-सम्पत्ति, सौन्दर्य, यौवन एवं प्रभुत्व के कारण इन नायकों के वातावरण में सामन्तीय ऐश्वर्य और स्वभाव में स्वच्छन्दता आ जाती है। ऐसे वातावरण में रहकर नायक एवं नायिकाओं का प्रेम की ओर झुकना अत्यन्त स्वाभाविक है। 'रसरतन' में इसकी ओर बड़ा सुन्दर संकेत है—

बाढ़न लाग्यो रूप तरुनाई। लसी अंग मनमथ की झाँई॥
नैंन बैन सैनहि अनुरागे। रूप अनूप विलोकन लागे॥
श्रवनन लोभ रागु रस ताना। चरचा काव्य सुनत सुष माना॥[1]

उनके प्रेम को चारित्रिक दुर्बलता बनने से बचाने के लिए जन्म के समय ही हिन्दी प्रेमाख्यानों मे ज्योतिषियों द्वारा भविष्यवाणियाँ करवाई गई है।[2] इस प्रकार की भविष्यवाणियाँ पंजाबी मे अपवादस्वरूप ही मानी जाएगी। 'सस्सी पुन्नू' मे हाशम ने इसका प्रयोग किया है।[3] सैफुलमुलूक में लुत्फअली एवं मुहम्मदबख्श[4] ने भी भविष्यवाणियां करवाई है।

पजाबी प्रेमाख्यानों मे जो अपूर्व एकनिष्ठता एवं प्रेम की अनन्यता मिलती है, उसके रहते किसी प्रकार की भविष्यवाणियों की आवश्यकता ही नही रह जाती। वैसे भी ज्योतिष पर अधिक आस्था धनिक अथवा धार्मिक वर्ग मे ही देखी जाती है। परन्तु अधिकाश पंजाबी रचनाएँ इन दोनो वर्गों से भिन्न सामान्य जनसमुदाय से सम्बन्धित है जिनके जीवन में रोटी के बाद 'काम' की ही समस्या है।[5] भोजन एव काम की क्षुधा उनके सम्मुख अति विकराल रूप मे उपस्थित होती है। ज्योतिषियो के

१. रसरतन, पृ० २२
२. मृगावती, पृ० ७०; मधुमालती, पृ० ४३; रसरतन, नायक पृ० २०, नायिका पृ० २६; सैफुलमुलूक बदीउलजमाल, पृ० ४२; चित्रावली, पृ० २१
३. हाशम रचनावली, पृ० ८२
४. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ११६ एवं सैफुलमुलूक पृ० १०३
५. मेरी मिट्टी विच्च दो भुक्खा इक रोटी इक प्यार।

घर चक्कर काटने के लिए न तो उनके पास धन था और न समय । यही कारण है कि हिन्दी के मुसलमान कवियों ने भी ज्योतिष पर अपार विश्वास व्यक्त करते हुए भिन्न-भिन्न योगों का वर्णन किया है परन्तु पंजाबी के प्रेमाख्यानों में उसकी उपेक्षा हुई है । अपवादस्वरूप ही कुछेक संकेत उपलब्ध होते हैं, वे भी अधिकतर उत्तरकालीन रचनाओं मे ।

प्रेमोत्पत्ति—प्रेमोत्पत्ति के लिए हिन्दी में स्वप्न,[1] गुणश्रवण[2] अथवा साक्षात् दर्शन[3] का प्रयोग किया गया है । इनमें स्वप्न का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । सुप्तावस्था में स्वप्न-मिलन अनेक बार वास्तविक ही होते है परन्तु वियोग के कारण पुनः स्वप्न-कल्प ही बन जाते हैं । कई बार स्वप्न में देखे प्राणियों को चित्रों की सहायता से ढूंढ़ कर प्राप्त करने का यत्न किया जाता है । 'कुतबमुश्तरी', 'चित्रावली' और 'रसरतन' में चित्रों की सहायता से ही प्रेम को पुष्ट किया गया है । साक्षात् दर्शनजन्य प्रेम हिन्दी में 'मृगावती', 'पुहपावती' (दुखहरण), 'ज्ञानदीप' तथा 'माधवानल कामकन्दला' चक्र की रचनाओं में आया है परन्तु पंजाबी में बहुधा साक्षात् दर्शन का ही प्रयोग किया गया है । हामद ने 'हीर' में तथा अहमदयार ने 'कामरूप'[4] एवं 'हीर'[5] में स्वप्न; हाशम ने 'सस्सी' में और 'सैफुलमुलूक' संबन्धी रचनाओं में लुत्फअली एवं मुहम्मदबख्श ने चित्रदर्शन का कुछ परिवर्तित ढंग से उपयोग किया है । इनके अतिरिक्त दमोदर, अहमद, मुकबल, वारिस, हाशम, अहमदयार, कादरयार, अमामबख्श ने प्रायः साक्षात् दर्शन-जन्य प्रेम ही चित्रित किया है । फज़लशाह ने 'सोहणी' में तो साक्षात् दर्शन-जन्य प्रेम का वर्णन किया है परन्तु हीर की रचना में नायक एवं नायिका दोनों ही स्वप्न में एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है ।[6] फजलशाह ने इस कृति को स्पष्टतः यूसफ-जुलेखा के आदर्श पर ढालने का यत्न किया है । अहमदयार के ही 'अहसनुलकस्सिस' के समान इसमें भी कही-कहीं कुरान की आयतों के छोटे-छोटे उद्धरण काव्यानुबद्ध है । स्वप्न भी दो-दो बार आते है ।

प्रेमोदय की इस भिन्न पद्धति के कारण कथा-संगठन में परिवर्तत आना अनिवार्य है । हिन्दी मे मिलन से पूर्व प्रेमोदय के कारण नखशिख वर्णन एवं पूर्वराग के जो विस्तृत प्रसंग मिलते हैं, प्रत्यक्ष दर्शनजन्य प्रेम एवं निरन्तर सान्निध्य के कारण पंजाबी

---

१. मधुमालती रूपमंजरी, उषा अनिरुद्ध की कथाएं, रसरतन, जान कवि की अनेक रचनाएं, सूररभांवत इन्द्रावती आदि में ।

२. पदमावत वेलि एवं कृष्ण-रुक्मिणी कथा-चक्र पर आधारित अन्य रचनाएं, नलदमन प्रभृति में ।

३. मृगावती पुहपावती, चन्दरबदन महियार, माधवानल कामकंदला आदि में ।

४. किस्सा कामरूप, पृ० ७

५. गुलदस्ता हीर, पृ० १२-१४

६. हीर रांझा (फज़लशाह) पृ० १४-२२

प्रेमाख्यांनों में वैसी योजनाएँ नहीं आ पाईं। हिन्दी में ये वर्णन अनेक बार आते हैं और कई बार केवल रूढ़िपालन की दृष्टि से ही इनकी योजना हुई है। 'मृगावती' में राजकुमार धाय[1] को नायिका मृगावती के नखशिख का विस्तृत वर्णन सुनाता है। धाय की सन्तुष्टि के लिए इतना मात्र पर्याप्त था कि वह किसी सुन्दरी के प्रेमपाश में फँस गया है। यह तथ्य अवधारणीय है कि दक्खिनी में फायज़ की रचना 'रिजवांशाह और रूहे अफज़ा' तथा पंजाबी में अमामबख्शकृत 'किस्सा मलिकज़ादा और शाहपरी' में ये प्रारम्भिक घटना इसी प्रकार की है परन्तु कहीं भी नखशिख का वर्णन नहीं किया गया। इन रूढ़ियों के प्रति अगाध ममता के कारण ही सम्भवतः हिन्दी में प्रेमोदय के लिए स्वप्न का उपयोग किया गया है। जबकि पंजाबी में अधिकतर साक्षात् दर्शन को ही स्वीकार किया गया है।

इस रूढि की योजना से भी दोनों भूखण्डों के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट होता है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में जीवन की वास्तविकता की अपेक्षा कल्पना प्रधान है। उनमें जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कम है। इसके विपरीत पंजाबी के अधिकांश साहित्यकारों का दृष्टिकोण कल्पनारहित है। यहाँ कथानक-रूढ़ियों की अपेक्षा यथार्थ घटनाएँ अधिक प्रभावी रही हैं। स्वप्न में देखकर या किसी अन्य व्यक्ति के मुख से गुण या सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मूर्च्छित हो जाना नितान्त अस्वाभाविक लगता है। वास्तविक प्रेम तो प्रेमास्पद के दर्शन एवं सान्निध्य से ही संभव है। पंजाबी प्रेमाख्यानों में दर्शनजन्य प्रेम को निरन्तर सान्निध्य से पुष्ट किया गया है, इसीलिए उनमें स्वाभाविकता है।

हिन्दी एवं पंजाबी प्रेमाख्यानों के कथावस्तु के प्रारम्भिक अंशों में ये कुछ ही समानताएँ मिलती है। अधिकाँश में दोनों ही भाषाओं की रचनाओं का संगठन भिन्न-भिन्न है। कथाओं की पृष्ठभूमि भी भिन्न है। पंजाबी कथाओं का वातावरण निर्धनता से ग्रस्त है, उसे असाधारण समृद्धि से सुसज्जित करने के यत्न सफल नही हुए। ये प्रेमाख्यान दरिद्रता के पट पर अंकित चित्र हैं। इनके विपरीत हिन्दी प्रेमाख्यानों में समृद्धि का वातावरण आरम्भ से अन्त तक यथावत् बना रहता है, योगी बनने पर तो अलौकिक समृद्धि के द्वार भी खुल जाते हैं। लोकप्रिय पंजाबी प्रेमाख्यान गोप-समाज से सम्बन्धित हैं। ये रचनाएँ निराश्रित असहाय व्यक्तियों के मन में उठने वाले प्रेम की असफलता की गाथाएँ है। धर्म-परिवर्तन करने वाले निम्न वर्ग से सम्बन्धित इन रचनाओं में अभिजातवर्ग का स्वाभिमान कही भी दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः प्रेम को या अपने कार्य को समाज से छिपाने के लिए स्वप्न, चित्र आदि की सहायता की इनको आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इसीलिए हिन्दी प्रेमाख्यानों में उपलब्ध होने वाले असाधारण सौन्दर्य, पूर्वराग, गुण-गौरव इनमें दुर्लभ हैं। पंजाबी में इनका समावेश उन्नीसवीं शताब्दी में ही ज़ोर-शोर से किया गया है।

---

1. मृगावती, पृ० ३८-५७

(ख) उत्तर भाग—विकास

प्रेमोत्पत्ति के अनन्तर कथा का विकास आरम्भ होता है। प्रेमी प्रिया को प्राप्त करने के लिए सर्वस्व त्यागकर भिन्न-भिन्न प्रयत्न करते है। अधिकांश हिन्दी रचनाओं मे वे योगी बनते है। उत्तरी भारत के हिन्दू एवं मुसलमान प्रेख्यानों मे यह प्रवृत्ति समान रूप से पाई जाती है। 'चन्दायन', 'लखमसेन पद्मावती कथा' 'मृगावती', 'छिताई-चरित', 'पदमावत', 'मधुमालती' (मंझन), 'चित्रावली', 'रसरतन', 'पुहपावती' (हुसेनअली), 'हंसजवाहर' आदि प्रेमाख्यानों मे सर्वत्र नायक योगी भेष धारण करते है परन्तु, अन्य रचनाओं की भाँति दक्खिनी की रचनाओं में भी प्रेमी योगी नहीं बनते।

पंजाबी मे हीर-रांझा कथाचक्र की रचनाओं मे रांझा योगी बनता है और इसी रूप में हीर का हरण करता है। महीवाल भी फकीर बनता है। नदी के किनारे झोंपड़ी डालकर रहता है परन्तु योगी बनकर इनके जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नही आता। जीवन का घटनाचक्र वैसा ही रहता है। ये केवल जनता से अपना आप छिपाने के लिए योगी बनते है। रांझा योगी बनकर भी गाँव को इसलिए छोड़ना चाहता है कि वहाँ कन्याओं का रस-विलास नही है। "कैसा गाँव है कोई भी कन्या त्रिझणों (कन्याओ की टोलिया) में बैठकर गीत नही गाती, न कोई किलकिली डालती है न कोई एड़ी मार कर धरती ही कपा रही है। न कोई भंगी का स्वाग लगाती है। न गिद्धा नृत्य विशेष ही डालती है। फकीर का तो जी चाहता है कि इस नगर को छोड़ चले।"[1] बालनाथ के टिल्ले पर योगी उसे सयम एव तपत्याग की शिक्षा देता है तो रांझा योगी को डाट देता है। "पहले मर्यादा बांधते हो पीछे शिक्षा देते हो यह चालाकी तुम्हें किसने सिखाई ?[2] 'इसके विपरीत हिन्दी में 'योग' धारण सभी प्रकार के ऐश्वर्य-त्याग का प्रतीक माना जाता है, प्रेममार्ग मे स्वत्व-त्याग की आवश्यकता का निर्देश है।[3]

हिन्दी प्रेमाख्यानों में अधिकतर नायक ही योगी बनते है परन्तु 'ज्ञानदीप' एवं

---

१. आरा वडे हां उज्जडे पिंड अन्दर कोई कुडी न त्रिंझणी गाउंदी है।
काई किलकिली पाइके घत्त सम्भी अड्डी मार न धरत कंबाउंदी है।
काई चूहड़े दे साग नही लावे, राहि बिच न गिधड़ा पाउंदी है।
वारिसशाह छड्ड चल्लीए एहु नगरी, ऐसा तवा फकीर दी चाहुँदी है।

—हीर वारिस, पृ० १०७

२. पहिले लीक लावहु पिच्छों मत देवहु,
इह हुनर तैनूं किस दस्सिआ सा।

—हीर अहमद, पृ० २१६

३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृष्ठ २३५

'फूलबन' में नायिकाएँ भी योगिनें[1] बनती देखी जा सकती हैं। इस रूढ़ि का अधिक प्रचार नहीं हुआ। संभवतः इसका कारण यही है कि भारतीय विचारधारा में स्त्रियों के लिए योग-विद्या का निषेध माना गया है।

योगी बनने से लेकर प्रिया-प्राप्ति तक इस वर्ग के हिन्दी के प्रेमाख्यानों में नाना प्रकार के कष्टों, यात्राओं, दैवी एवं मानवी बाधाओं तथा युद्धों का वर्णन रहता है। इनमें सर्वत्र भाग्य एवं ऐश्वर्य के कारण नायक सफल होते हैं। इस प्रकार का घटना-समूह संस्कृत के 'कथासरित् सागर' के बेला लम्बक, 'दशकुमार चरित' या फारसी के 'सिन्दबाद जहाजी' की जलस्थल यात्राओं मे घटित होते है। इन बाधाओं से संघर्ष करते हुए नायकों का परिचय किसी राक्षस के बन्धन में पड़ी अन्य नारी से होता है। नायक उसका उद्धार करता है और प्रायः उसके साथ विवाह कर लेता है। मंझन की 'मधुमालती' अथवा 'सैफुलमुलूक बदीउलजमाल' इसका अपवाद हैं जहाँ पर उन सुन्दरियों का विवाह अपने मित्र से कर दिया जाता है।

सामान कथा पर आधारित रचनाएँ—पंजाबी प्रेमाख्यानों में इस प्रकार की घटना योजना 'सैफुलमुलूक', 'कामरूप कामलता' या किस्सा 'मलिकज़ादा शाहपरी' प्रभृति रचनाओं में ही है। प्रथम दो रचनाएँ तो अपने इसी रूप में हिन्दी में मिलती है। 'सैफुलमुलूक' (गवासी कृत) 'कथा रतनावती' (जान कृत) अथवा पंजाबी में लुत्फअली या मुहम्मदबख्श कृत 'सैफुलमुलूक' की कथा ही नहीं, छोटी छोटी घटनाएँ भी आपस में बहुत मिलती हैं। हिन्दी की 'कथा कामरूप' की (समाचंद सोंधी) एवं पंजाबी मे अहमदयार कृत 'किस्सा कामरूप' की घटनाएं भी समान हैं। अन्तर केवल इतना है कि पंजाबी में सभी मित्रों का विवाह भी कर दिया जाता है।[2] 'मलिकजादा शाहपरी' की कथा 'रिज़वांशाह रूहअफजा' (कवि फायजकृत) एवं कुतबन की 'मृगावती' से बहुत कुछ मिलती है। श्री प्रीतमसिंह के अनुसार 'मलिकज़ादा शाहपरी' (अमामबख्श) की कथा का स्रोत फायज कृत किस्सा 'रिज़वांशाह रूहअफजा' है।[3] परन्तु फायज़ की यह रचना कुतबन कृत 'मृगावती' एवं अमामबख्श कृत 'मलिकजादा शाहपरी' से नितान्त भिन्न है। फायज़ की रचना में कथा-विस्तार बहुत

---

१. (क) तब सुरज्ञानी बसन उतारी। फारी मेषला गिउ भई डारी॥
ससि मुष मांझ विभूति लगाई। सुछम जानु बदरिया छाई॥

⊠ × ⊠

सीस नाई देव जानी के आगे। चली सो जोग जुगति गुन जागे॥

—ज्ञानदीप (हस्तलिखित)

(ख) भिबूति ले अपस मूं को लगाई, पुनम का चांद बादल में छुपाई।

—फूलबन, पृ० ६६

२, किस्सा कामरूप (अहमदयार) पृ० १०९

३. शाहबहराम, सं० प्रीतमसिंह, भूमिका, पृ० ११

अधिक है। प्रारंभ में हरिणी को देखकर मुग्ध होना तो तीनों में समान है परन्तु इस एक घटना के अतिरिक्त फायजे की रचना की अन्य घटनाएं नितान्त भिन्न है। अमामबख्श की रचना बहुत दूर तक कुतबन की रचना पर आधारित प्रतीत होती है। फायज की रचना मे राजकुमार गद्दी पर बैठने के पश्चात् हरिणी पर मुग्ध होता है और राजकुमार से भी अधिक वह परी (रूहअफजा) प्रेम-सन्तप्त होती है। राजकुमार की धाय से यह भेद वह स्पष्टतः प्रकट करती है—

अगर सच कहूँ अबबी बेसुद हूं मैं, वले कन यों कहती हूं बेमद हूं मैं।
मिरी नैन को नींद हुई है हराम, बगैर शाह की याद नई मुज को काम।
न किस को यो गुफतार कहे सकूं, न यो दुख अपन दिल में सहने सकूं।

× × ×

उबाल आई तो दिल को यहां आऊं मैं, ढूढूं शह के तईं अछ को इस ठार मैं।[1]

दाई से सारा भेद पूछकर यह भी जानना चाहती है कि क्या शाह भी उस पर मुग्ध है। उसे यह भय है कि कही उसे धोखा न दिया जाए—

सुनी हूं कि इनसान में नई वफा, पडूं पे मै इस बात के क्या नफा।
बहुत लोग खाते हैं पिरत में दगा, अछे इशक का लाजमा दगदगा।[2]

राजकुमार की विह्वलता का ज्ञान होने पर, धाय के आमंत्रण पर वह राजकुमार से मिलती है और उसी के साथ रहने भी लग जाती है। खूब आमोद-प्रमोद होता है—

मिले मद की मस्ती में दोनों जने, हुए बेहजाबी ओ दोनों मने।
लतीफा बड़ा जोरे होने लगया, हसी पर हसी शोर होने लगया।

× × ×

परी रूह अफजा नें देख जौक सों, बजा गा को नाच्यां ओफ शौक सों।

इसके अनन्तर पिता की मृत्यु की सूचना प्राप्त कर 'रूहअफजा' को अपने नगर मे लौटना पड़ता है परन्तु वह अपनी निष्ठा-आश्वासन के साथ-साथ कुछ दिनों के पश्चात् राजकुमार को साथ ले जाने का भी वचन देती है—

बरहाल मुझ को तूं अपनी पछान, अगर दूर अछूं तो भी नजदीक जान।

× × ×

मेरा दिल गुरु है तेरे हात में, अता क्यों न चल सों तेरी बात में।

× × ×

मुलक होर तखत आवेगा जब मुझे, अपे आऊंगी या बुलाने तुझे।[3]

---

१. मसनवी रिज्वांशाह व रूहअफज़ा, सं० सैयद मुहम्मद, पृ० ३५

२-३. मसनवी रिज्वांशाह व रूहअफज़ा, सं० सैयद मुहम्मद, पृ० ४०, ४१, ५७

अपने पिता के नगर में जाकर राज्य-गद्दी के लिए उसका मनोछर नामी एक व्यक्ति से संघर्ष आरंभ होता है। मनोछर की प्रेयसी मैमूना राजकुमारी की सहेली है। मनोछर राजकुमारी से विवाह कर राज्य-गद्दी हथियाना चाहता है। मैमूना से राजकुमारी और रिजवांशाह के सम्बन्धो का पता चलने पर वह बहुत क्षुब्ध होता है और राज्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। रूहअफज़ा उसे कैद कर लेती है। इस समय मैमूना उसकी मुंह बोली मां साहिरा की सहायता से रूहअफज़ा को कैद करवा कर मनोछर को गद्दी पर बैठाने में सफल हो जाती है। इसी प्रकार अन्त तक इस रचना में मनोछर एवं रूअहफज़ा का राज्य-संघर्ष प्रधान हो जाता है, जिसमें फरख, रुखपरी, याकूब मगरबी और साहिरा की अलौकिक शक्तियों का संघर्ष है। कही अलौकिक 'रस' की शक्ति से जल एवं नभ में चलने की शक्ति मिल जाती है और कहीं 'जादूई डिब्बी' एवं 'इस्मे आजम' का चमत्कार। परन्तु कुतबन की 'मृगावती' एवं अमामबख्श की 'मलिकज़ादा शाहपरी' में इस प्रकार का संघर्ष कहीं नही है। दोनों रचनाओं की कथा पूर्वार्द्ध में समान है। मृगावती के ही समान शाहपरी भी मलिकजादे को इसीलिए छोड़कर जाती है कि सायास प्राप्ति के बिना वस्तु का महत्व समझ नही आता। मृगावती कहती है—

वस्तु जो पावइ सौंधे मोला। ताकर मरम न जानई भोला ॥[1]

यही बात शाहपरी कहकर जाती है—

'ससते चीज मिले हत्थ जिस नूं, कीमत केदर न जाने'[2]।

वास्तव में वह अभी सच्चा आशिक नही बना। यदि उसे सचमुच प्रेम होता तो वह माता-पिता से मिलने क्यों जाता ?

जै कर आशिक कामल होंदा छोड़ परी कद जांदा।
शौक घरां दा दिलों गवांदा ऐथे दिल परचांदा।
जेकर होग ओस तलब असाडी दिल विच पगड़ दिलेरी।
आवे अन्दर शहर असाडे करके खाहिश मेरी।"[3]

इसी प्रकार निरायास मिलन के अनन्तर जब नायक शारीरिक भोग की कामना

---

१. मृगावती, पृ० ७७

२, अर्थ—जिसे कोई वस्तु सस्ते दामों मिल जाए, वह उसका महत्त्व नही जानता।

—मलिकज़ादा शाहपरी (हस्तलिखित), पृ० २३

३. अर्थ—यदि वह सच्चा प्रेमी होता तो माता-पिता से मिलने न जाता। घर का आकर्षण छोड़ कर यही मन बहलाता। यदि उसे मुझसे मिलने की इच्छा होगी तो साहस कर मेरे नगर में आएगा।

—मलिकज़ादा शाहपरी (हस्तलिखित), पृ० २३

करता है तो दोनों रचनाओं की नायिकाएं विवाह से पूर्व उस कृत्य का स्पष्ट निषेध करती है।[1]

पंजाबी की रचना में उपनायिका रुपमिनी की स्थानापन्न 'शहज़ादी' भी उपस्थित है। उसकी रक्षा करने के अनन्तर नायक जब उसे पिता के पास पहुंचा देता है तो विवाह का प्रलोभन दिया जाता है। परन्तु नायक मलिकजादा स्पष्ट इन्कार करता है। 'मुझे तब तक कुछ भी अच्छा नहीं लगता जब तक मुझे मेरी प्रेमिका नहीं मिल जाती। उस मार्ग से मुझे हटाने वाला मेरा शत्रु है।'[2] प्रेमिका मिलने के अनन्तर उसे स्वीकार करना मान जाता है, यद्यपि ऐसा करता नही। इस प्रधान अन्तर के अतिरिक्त पंजाबी कथा में प्रेमिका-प्राप्ति के अनन्तर नायक माता-पिता की सेवा करने की इच्छा से अपने नगर पहुंचता है तो वहाँ एक मत्री ने राज्य पर अधिकार कर लिया। वह नायक की प्रेमिका को भी हथियाना चाहता है, परन्तु नायिका अपने चातुर्य से शील की रक्षा करने में सफल हो जाती है। अन्त में उस मंत्री को विश्वासघात का दण्ड दे दोनों सुखपूर्वक रहते है और उनके घर पुत्र उत्पन्न होता है। कथा का यह अन्त कवि की अन्य रचना 'शाह बहराम हुसनबानों' से मिलता है।

इन तीनों रचनाओं के कथा-संगठन पर यदि विचार करें तो कुतबन की रचना का घटना-चक्र तीनों में सबसे कम है। कुतबन ने घटना-समूह का जमघट तैयार करने का यत्न नहीं किया। इसके विपरीत दक्खिनी की रचना मात्र घटनाओं का समूह है, जिसमें न तो नायक का व्यक्तित्व ही उभर पाता है और न नायिका का। वह कवि केवल भाग्य का आश्रय लेकर आगे बढ़ता है।[3] कुतबन की अपेक्षा अमामबख्श ने अधिक घटनाओं का सकलन किया है। अन्तिम भाग की घटनाएं कथा में कोई विशेष परिवर्तन नही लाती। अतः ऐसा लगता है कि उनकी योजना कथा का कलेवर बढ़ाने के लिए ही की गई। नखशिख का विस्तृत वर्णन, बारहमासा, रुपमिनी से विवाह,

---

१. मृगावती, पृ० ६७

तथा—सखत गुनाह जनाह दोंहांनूं रवा कैनूं नाही।

—मलिकज़ादा शाहपरी, (हस्तलिखित) पृ० १९

२. मेरे दिल नूं कुझ न भावै जब तक नजर न आवै।

दुश्मन मेरा जेहडा मैंनूं ओस राहों अटकावै।

—वही, पृ० ४७

३. बंदे को अछे जब खुदा की अता, तो पैदा करे उसका यक वास्ता।

कि दुख सुख को उसका ओं होवे रफीक, करे काम उस यार का हर तरीक॥

—मसनवी रिजवांशाह व रूहअफज़ा, पृ० १२८

एवं—अनायत जिसे हक ते जे काम अछे— — —

तो ओ काम होने को कुछ वार नईं, मुशक्कत उसे कुच भी दरकार नईं।

—वही, पृ० १३४

आखेट के कारण मृत्यु और दोनों नारियों का सती होना सब कुछ कुतबन की उद्भावना है। कुतबन ने अपनी रचना को भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार ढाला है। इन तीनों रचनाओं में कुतबन की रचना अधिक प्राचीन है। जबकि पजाबी एवं दक्खिनी की रचना का स्रोत कोई फारसी रचना है—

यो मै बदा फायज़ हवसधर को तब, यो किस्से को दक्खिनी किया नज़म सब।
दस्या फारसी मुखतसर बात कों, दिया शाखो बरग इस हकायत कों।[1]

वहा कुतबन ने यह स्पष्ट किया है कि यह कथा पहले भारत में प्रसिद्ध थी। फिर किसी ने इसे फारसी में कहा और अब मैंने सम्पूर्ण अर्थ को स्पष्टतया योग, शृंगार एवं वीर रसों से युक्त कर कहा है —

पहिले हिंदुई कथ्था अही। फुनि रे काहूँ तुरकी ले कही॥
फुनि हम खोलि अरथ सब कहा। जोग सिंगार बीर रस अहा॥[2]

रचना में हिन्दू-परम्परा के नामकरण, भारतीय संस्कृतिमय वातावरण, भारतीय काव्य-रूढियां सब कुछ हिन्दी के उत्तर भारतीय मुसलमान कवियों के चिन्तन की अन्य मुसलमान कवियों से भिन्न दिशा का संकेत करते है।

कथावस्तु में यथार्थ एवं अलौकिकता

पंजाबी में इस प्रकार की कथाओं का प्रचार पहले नहीं था। लंबे किस्से-कहा-त्तियाँ पढने-सुनने का समय किसके पास था। परन्तु अठारहवी शती के उत्तरार्द्ध में कुछ कवियों ने इस धारा के प्रवाह को बदलने का प्रयास किया और पंजाबी प्रेमाख्यानों के कथासंगठन मे यह दिशा परिवर्तन देखने को मिला। प्रारम्भिक रचनाओं में यथार्थ एवं सामाजिकता का आग्रह अधिक है, अलौकिकता का कम। इन प्रारंभिक रचनाओं का कथा संगठन कुछ-कुछ 'चन्दायन' तथा आलम और दामोदर की 'माधवानल कामकन्दला' से मिलता जुलता है। अतः कथासंगठन एवं घटनाओं की योजना के आधार पर इनकी तुलना करना उपयुक्त रहेगा।

चंदायन एवं हीर रांझा —'चंदायन' में विवाहित चंदा अपने पति की उपेक्षा के कारण मायके चली आती है। अपने रूप-लोभी राजा रूपनारायण से पिता की रक्षा करने वाले लोरक पर मुग्ध होकर उसे प्राप्त करने का यत्न करती है। इस प्रकार कथा के प्रारभिक भाग में नायिका प्रधान है। परन्तु हीर-कथा के प्रारम्भिक भाग में दमोदर की रचना के अतिरिक्त सर्वत्र रांझा छाया हुआ है। दमोदर ने नायक एवं नायिका की कथा को पृथक्-पृथक् विकसित किया है। 'चंदायन' में नायिका का विवाह संबंधी सम्पूर्ण घटना-विवरण मुख्यकथा की दृष्टि से विशेष उपयोगी प्रतीत

१. मसनवी, रिजवाँशाह व रूहअफजा पृ० १०
२. मृगावती, पृ० ३६८

नहीं होता, परन्तु लोरक भी विवाहित ही है। इस प्रकार 'चंदायन' में विवाहित नर-नारी का असामाजिक प्रेम है तो 'हीर-राझा' में दोनों अविवाहित है और उनमें प्रेम पनपता है। लोरक की पत्नी मैना कथा में महत्त्वपूर्ण पात्र है। लोरक एवं चदा का प्रेम प्रारम्भ मे मैना के भय से गुप्त रीति से चलता है। मन्दिर मे मैना एव चंदा के विवाद से यह गुप्त सम्बन्ध प्रचारित हो जाता है।[१] विवाहिता पुत्री के प्रेम-सम्बन्ध के प्रचार से भी उसके माता-पिता मे विशेष हलचल नही होती और वे सरलता से भाग जाते हैं। इस कार्य में न तो नायक के सम्बन्धी ही विशेष बाधा डालते हैं और न नायिका का पितृकुल ही टस से मस होता है। अविवाहित हीर एवं रांझा का प्रेम समाज के भय से गुप्त रीति से चलता है। परन्तु 'इश्क-मुश्क' (प्रेम एवं सुगन्ध) छिपाए नही छिपते। सम्पूर्ण ग्राम मे हलचल मच जाती है। हीर के माता-पिता एवं अन्य सम्बन्धी पुत्री के इस कार्य से लज्जित होते है। सारा गाँव आलोचना करता है —

देंदे मेहणे लोक शरीक सानूं
शरमेंदगी कींवे मिटाईए जी।[२]

पिता अपने भाई को अपवाद की सत्यता की जाँच करने भेजता है। अपने प्रेम-प्रसंग में बाधा डालने वाले चाचा कैदो के प्रति हीर का व्यवहार अत्यन्त विकट परन्तु स्वाभाविक है। वह अपनी सखियों की सहायता से उसकी कुटिया जलाकर राख कर देती है।[३] अत्यन्त निर्दयता से उसकी पिटाई करती है।[४] माता बेटी को लोक-निन्दा का भय दिखाती है। केवल माता ही नही, अन्य पारिवारिक परिजन भी इस अपवाद से लज्जित है—

माउं हीर दी ते लोक करन चुगली,
महरी मलकीए धीउ खराब है नीं।
असीं मासीआं फुफ्फीआं लज्जमुईआं।
साडा अंदरों जीउ कबाब है नीं।[५]

---

१. चांदायन, पृ० २५६

२. अर्थ—हमें लोग एवं शरीक उलाहने देते हैं, लज्जा को कैसे दूर करें।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० १६

३. जल बल कोला कीती झुग्गी, कैदों कही सुणाइआ।

—हीर दमोदर, पृ० ८२

४. हीर वारिस, पृ० ३०,४६

५. अर्थ—लोग हीर की माता से कहते हैं कि ऐ महरी मलकी, तेरी बेटी का चरित्र दूपित है। हम मासियाँ, फूफियां लज्जा से मरी जा रही हैं। भीतर ही भीतर सन्ताप से हमारा दिल कबाब हो रहा है।

—हीर वारिस, पृ० ३१

विवश होकर उसके विवाह के यत्नों में हलचल आती है। विधि-निषेध के विवाद के मध्य उसे बलपूर्वक ससुराल भेज दिया जाता है। हीर ही नहीं, साहिबां एवं सोहणी के विषय में भी जब इस प्रकार के प्रवाद फैलते हैं तो उनका विवाह करने का निश्चय होता है। समाज मे आज भी नित्य प्रति यही हो रहा है। 'चंदायन' मे लोकापवाद का न तो विशेष वर्णन ही है और न किसी को उसकी चिन्ता ही। माता के हृदय में कुछ देर के लिए हलचल होती है परन्तु शीघ्र ही शान्त हो जाती है।[1] चदा एव लोरक के ही समान हीर एवं रांझा भी गुप्त रीति से भागते हैं, परन्तु एक ओर तो वे रात को निकल जाते है कोई नही पूछता। दूसरी ओर इस कार्य के लिए विस्तृत कपट-क्रिया की योजना करनी पड़ती है। एक ओर केवल नपुंसक पति का नाम मात्र का विरोध है,[2] दूसरी ओर सम्पूर्ण श्वसुर-कुल गतिमान होता है और प्रेमी-युगल को मार्ग मे ही पकड़ लिया-जाता है।[3] एक वर्ष पश्चात् मैना का सदेश मिलते ही चदा के विरोध की चिन्ता न करते हुए लोरक चन्दा सहित घर लौटता है। तो भी उसका कोई विरोध नही होता। किसी के मन मे उस असामाजिक कृत्य के कारण कोई मालिन्य नही।[4] इसके विपरीत काजी एवं अदली राजा के निर्णय के अनुसार जब हीर एवं रांझे के प्रेमाधिकार को वैधानिक स्वीकृति मिल जाती है तो वे झंग (नायिका का पितृगृह) लौटते है, कोई उनका स्वागत नही करता प्रत्युत् छल-कपट से हीर को मार दिया जाता है।[5] तत्कालीन समाज में यही वास्तविकता थी वह नही। इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रायः सामाजिक यथार्थ की उपेक्षा दिखाई देती है, परन्तु पंजाबी के प्रेमाख्यानों में उसकी सम्यक्रूपेण रक्षा की गई है।

पंजाबी में यथार्थ और हिन्दी में अलौकिकता—पंजाबी प्रेमाख्यानों की घटना-योजना का मुख्याधार यथार्थ है। इन मे अलौकिक घटनाओ को उसी सीमा तक मान्यता मिली है जिस तक कि मुख्य कथा अप्रभावित रहे। मुख्य कथा की धारा को बदल देने वाली अलौकिकता का समावेश लगभग अहमदयार के साथ ही हुआ। हिन्दी प्रेमाख्यानों के कथानकों पर अलौकिकता छाई हुई है, पंजाबी मे स्थिति इससे भिन्न है। रांझा हीर को लेकर भागता है। खेड़ा परिवार के योद्धा उसे घेर लेते है। परन्तु रांझा इतना वीर नही कि अकेला सम्पूर्ण कटक को हरा दे। इस प्रकार की अलौकिक एव अप्राकृतिक वीरता का आरोप लोकप्रिय पंजाबी प्रेमाख्यानोंमे कदाचित् ही देखने को मिलता है।

'मिरजा-साहिबां' एवं 'वेलि क्रिसन रुकमणीं री' (कृष्ण-रुक्मिणी सम्बन्धी सभी

---

१. चांदायन, पृ० २६५
२. वही, पृ० २८९-९०
३. हीर वारिस, पृ० १९६-९७
४. चांदायन, पृ० ३८९
५. (क) हीर अहमद, पृ० २८३
(ख) हीर वारिस, पृ० २०६

कामकदला' मे अगिया बैताल पाताल से अमृत ले आता है और मृत नायक-नायिका को पुनर्जीवित कर राजा विक्रम को पाप से बचाता है।[1] 'पदमावत' मे हीरामन, नागमती का सदेशवाहक पक्षी, राक्षस, शिवपार्वती एवं लक्ष्मी है। 'मधुमालती' में भी अप्सराएं, राक्षस, देहपरिवर्तन के द्वारा नायिका को पक्षी बनाना, पुनः नारी रूप में लाना जैसी अनेक अलौकिक घटनाएं है। 'चित्रावली', 'हंसजवाहर', 'प्रेमपयोनिधि' 'रसरतन', 'नलदमन' सभी मे इस प्रकार के अलौकिक तत्त्व विशेष प्रभावकारी हैं। कही ये सहायक बनते है कही बाधक।

पजाबी मे इनका चत्मकार इतना प्रभावकारी नही हो पाया। इनकी योजना भी बहुत कम हुई है। हीर की कथा मे ही पंजपीर एक प्रभावकारी अलौकिक शक्ति के रूप में प्रतिभासित होते हैं। परन्तु उनके प्रभाव से मुख्य-कथा मे कोई असम्भव परिवर्तन नहीं होता। वे नायक एवं नायिका को केवल नैतिक समर्थन ही प्रदान करते है। उनके आर्शीवाद से रांझा नगर की भैंसों को ही वश में कर सकता है, न तो हीर के विवाह को रोका जा सकता है और न सहती से पिटते समय ही वे उसकी सहायता करते है। उस आपत्काल में रांझा पुनः पुनः पीरों को स्मरण करता है, परन्तु कोई लाभ नही। निराश्रित एवं निराश प्रेमी दूर-दूर की बातें करता है। उसकी ये सब आकांक्षाएं उसकी घुटन का ही फल है—

करामात लगाइ के सिहर फूकां जड़ा खेड़ियां दीआं मुढों पट्ट सट्टां।
नाल फौज नाहीं दिआं फूक अग्गां, कर मुलक नूं चौड़ चपट्ट सट्टां।
अलम तर कैफ बहूह' कहार पढ़के, नईं वहिंदीआं पलक विच्च अट्ट सट्टां।
सहिती हत्थ आवे पकड़ जूड़िआं तों, वांगू टाट दे पट्टड़े छट्ट सट्टां।
पंज पीर जे बहुड़न अज्ज मैंनूं दुख दरद कजीअड़े कट्ट सट्टां।

× × ×

पार होवे समुंदरों हीर बैठी, बुक्कां नाल समुन्दर नूं छट्ट सट्टां।
होवे तिब्बत दे मुलक दे विच्च भावें, सणे कोह हिमाले नू कट्ट सट्टां।[2]

भूखा एवं थका-मांदा रांझा पिट-पिटाकर, हीर के द्वार से उठकर काले बाग मे जा बैठा। सम्पूर्ण हिन्दी प्रेमाख्यान-साहित्य के नायकों में इस प्रकार की घुटन के

---

१. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ३०, ४३६, ५०५

२ अर्थ—दैवी शक्ति से मैं नगर को जलाकर खेड़ा परिवार को समूल नष्ट कर दूंगा। मेरे पास सेना तो है नही, परन्तु अग्नि से जलाकर सम्पूर्ण देश (ग्राम को) नष्ट-भ्रष्ट कर दूंगा। कलमा पढकर बहती नदियों के प्रवाह को रोक दूंगा। यदि सहती मेरे हाथ आ जाए तो उसे बालो से पकड़ कर टाट के समान लकड़ी के पटल पर छिटक दूँ। यदि आज पंजपीर आ जाएं तो मेरा सम्पूर्ण दुख-दर्द समाप्त हो जाए। हीर यदि समुद्र से पार हो तो अंजलियों से समुद्र को ही सुखा दूं और यदि वह तिब्बत पहुँच गई हो तो हिमालय पर्वत को भी काट दूं।

—हीर वारिस, पृ० १५९

दर्शन नही होते । वहां शिव-पार्वती, खाजा खिज़्र, अगिया बैताल, योगी या और कोई समान धर्मा, समान कर्मा सदा उपस्थित होकर कष्ट-निवारण कर देते है, जबकि पंजाबी में ये सब प्रभावहीन है । 'कोट कबूले' के शासक के आदेश को भी प्रथम बार राझा प्रभावित नही करता । उसके अनन्तर आह से नगर को आग लगना सम्भावित अथवा कवि-कल्पित कारण माना जा सकता है । जिसके मूल में एक प्रेमी-युगल के प्रति नगर वासियों की सहानुभूति देखी जा सकती है । परन्तु यह घटना भी मूल कथा में कोई विशेष अन्तर नही लाती । हीर राझे को मिलती है, यह तो छलना मात्र है । जिस समाज से उसका संघर्ष है उसने पुन. उसे छीन लिया, तथा उसका पार्थिव शरीर सदा के लिए मिटा दिया । समाज का अधिकार पार्थिव शरीर पर है, अध्यात्म और आत्मा की बातें धर्म का क्षेत्र है या कवियों का । अत. कवियों ने अधिक से अधिक मृत्यु के बाद उन्हें मक्के में इकट्ठा कर दिया ।

इसमें सन्देह नही कि अलौकिकता एव आदिभौतिकता सम्पूर्ण मध्यकालीन साहित्य का प्रमुख अंग है, अतः पंजाबी के इन पूर्व-विवेचित प्रेमाख्यानो में भी इसका यत्कंचित उपयोग हुआ है । सोहणी की प्रार्थना स्वीकार होती है और उसका पति उसे स्पर्श नही कर सकता ।[1] प्रेमियो के मृत शरीर बोलते एव विलाप करते है ।[2] मिरजे को एक साधारण लुहार एक ही रात में एक हजार लोहे की कीलें दे देता है ।[3] ये सब अलौकिक अंश कथा के मुख्य प्रवाह में कोई प्रभावकारी परिवर्तन नहीं ला पाते । इनका योगदान श्रोता-समुदाय को चकित करने तक ही सीमित है या फिर पात्रों में अलौकिकता का आभास देकर प्रभाव तीव्र करने तक । इनकी सहायता से कही भी यथार्थ अयथार्थ में परिवर्तित नही हुआ ।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाबी प्रेमाख्यानों में यथार्थ की प्रधानता है एवं हिन्दी प्रेमाख्यानों की कथाएं कल्पना एवं अलौकिकता की ओर झुकी हुई है । उनमें चमत्कार-प्रियता का आग्रह इतना अधिक है कि ये कवि आश्चर्य तत्त्वों

---

१. (क) दोवे हत्थ उठाइ के दुआ मंगी, महींवाल दी रख अमान मीआं ।
हुकम नाल नामरद हो गिआ ओवें, उसदीआं कुदरतां तो कुरबान मीआं ।
—सोहणीं महीवाल (फज़लशाह), पृ० ३१

(ख) सोहणी साबत सौहरे रख लई रब्ब आप, चूरी खाणी न मिली बंदे चढिआ ताप ।
—कादरयार, पृ० ७७

२. (क) सस्सी एवं पुन्नू—हाशम रचनावली, पृ० ७७
सस्सी पुन्नू (अहमदयार) पृ० १२०

(ख) सोहणीं महीवाल (फज़लशाह), पृ० ४६-४७
कादरयार, पृ० ८६

(ग) शीरी-फरहाद—हाशम रचनावली, पृ०१५७

३. मिरज़ा साहिबां (पीलू) बबीहा बोल, पृ० १०६

को एक बार ही प्रयोग कर सन्तुष्ट नहीं होते। कई बार समान घटनाओं की पुनः पुन आवृत्ति कर कथाओं को अतीव निर्जीव बना दिया गया। जान की रचना 'ग्रंथ बुद्धि सागर' इसका मुखर उदाहरण है। विलायत के राजा ने मालती नामक सुन्दरी को सहस्र मुद्राओं में क्रय कर लिया। बादशाह से वह मंत्री के पास पहुंच गई। वहा से तुर्किस्तान के छत्रपति के हाथ बिक गई। वहां छत्रपति का जामाता उस पर मोहित हो गया। परन्तु मालती अपने हठ पर दृढ रही। इसके बाद भी वह कई स्थानों पर बिकी। मधुकर सर्वत्र उसके साथ-साथ रहा। संयोगवश ही समझिए मालती उसे मिल गई। उसे लेकर वह स्वदेश लौटा। मार्ग मे नाव फट गई और पहले की घटनाओं की आवृत्ति करने का द्वार पुन. खुल गया। अनेक बार समान परिस्थितियो में पड़कर वे बिछुड़ते एव मिलते है।[1] ऐसी रचनाओं में कथागठन का कौशल खोजना व्यर्थ है।

कथानक-रूढ़ियां एवं काव्य-रूढ़ियाँ

सक्षिप्त कथावस्तु एवं आकारगत लघुता के कारण, भारतीय साहित्य में उपलब्ध होने वाली अनेक कथानक-रूढ़ियों का पंजाबी साहित्य में उपयोग नही हो पाया। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'रासो' का वस्तु-विवेचन करते समय जिन इक्कीस कथानक-रूढ़ियो[2] का विवेचन किया है, उनमे से अधिकाश का प्रयोग हिन्दी प्रेमाख्यानों मे हुआ है। परन्तु पजाबी मे उनमें से एक ही प्रयुक्त हुई है। स्वप्न में प्रिय का दर्शन, चित्र देखकर किसी पर मोहित होना, भिक्षुकों या बंदियों के मुख से कीर्ति-वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना आदि। इस पर विचार किया जा चुका है और यह स्पष्ट किया गया है कि यह भी अधिकांश पजाबी कवियो में प्रसिद्धि प्राप्त नही कर सकी। एक दो बार आकाशवाणी का उल्लेख भी हुआ है,[3] परन्तु कथा को उससे कोई मोड़ प्राप्त नही हुआ। अत: यह स्पष्ट है कि ये कवि अपनी कल्पना के आधार पर कथा को स्फीत बनाने मे असमर्थ थे।

श्री रामपूजन तिवारी ने 'भारतीय आख्यान-साहित्य की कथानक-रूढ़ियों' पर विचार करते समय लगभग बारह रूढ़ियों का वर्णन किया है। वे निम्नलिखित है—

१. राजाओं का सिहल की राजकुमारी से विवाह, समुद्र यात्रा तथा जहाज का डूबना।
२. पशु-पक्षियों का उपयोग।
३. चित्र-स्वप्न आदि में देखकर मोहित होना।

---

१. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० ३९५-३९६
२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ०७४-७५
३. इक गैब थी आण आवाज़ होई, खातर जमाकर रांझणा झूर नाही।
तेरी किसमत दे विच्च है हीर लिखी, एह गल्ल है सच्चदी कूड नाहीं।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ३९

४. शिव और पार्वती, काली, कुलदेवी आदि की पूजा और उनके आशीर्वाद से नायक-नायिकाओं के मिलन की बाधाएं दूर होना।
५. अलौकिक शक्तियों— विद्याधर-विद्याधरी आदि का समावेश।
६. कुटनी का प्रयोग।
७. ऋतुवर्णन, षड्ऋतु-बारहमासा।
८. अकारादि क्रम से काव्य की रचना-शैली।
९. वृक्षों, फूलों आदि के नाम गिनाने की प्रवृत्ति।
१०. नगरों आदि का वर्णन।
११. सयोग-वियोग का चित्रण।
१२. नखशिख-वर्णन।[१]

इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध कथानक के संगठन से न होकर वर्णन पद्धति से है, कुछेक तो वही है जिनका आचार्य द्विवेदी ने उल्लेख किया है। इनमें से वर्णन सम्बन्धी कुछ रूढ़ियो का प्रयोग पंजाबी साहित्य मे भी किया गया है। कहने की आवश्यकता नही कि हिन्दी रचनाओं के आधार पर तो यह सूची बनाई ही गई है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में जिस सावधानी एवं निष्ठापूर्वक इनकी योजना की जाती है, पंजाबी में वह दिखाई नही देती।[२] हिन्दी की तुलना मे पंजाबी मे इनका प्रयोग अत्यन्त सामान्य कोटि का ही कहा जाएगा। वहां न सिहल की राजकुमारियाँ है न लम्बी-लम्बी समुद्री यात्राएं। न पशु-पक्षी ही सहायता करते है और न अलौकिक शक्तियां ही। कुटनी का प्रयोग भी यहां नहीं हुआ। वर्णन सम्बन्धी कुछ रूढिया, अवश्य सामान्य-रूपेण प्रयुक्त हो गई है। इनमें से 'परिगणन शैली' का उपयोग मुख्य है। यह सबसे पहले लुत्फ़अली ने किया है। उसकी 'मनसवी सैफुलमुलूक' मे एक बाग में अनेक फूलों का उल्लेख हुआ है[३]। वारिस ने हीर के विवाह के समय विविध भोज्यपदार्थ, चावल, आभरण, दान-दहेज, वस्त्र,बर्तन, भिन्न-भिन्न जाति की स्त्रियों, भैंसों तथा अन्यत्र कुछ पुस्तकों का उल्लेख किया[४] परन्तु, किसी हिन्दी कवि की रचना मे उपलब्ध सूचियो से ये पर्याप्त लघु हैं। अहमदयार ने 'सस्सी पुन्नू' में सस्सी के बाग में अनेक वृक्षों के नाम गिनाए है।[५] फज़लशाह की 'सोहणी महीवाल' में भी व्यापार के लिए तैयार होते इज्जतबेग की व्यापारिक वस्तुओं की एक सूची है।[६] परन्तु ये सूचियां सर्वत्र

---

१. हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, रामपूजन तिवारी, पृ० ५५-७१। इसका पंजाबी अनुवाद साहित्त-समाचार के किस्सा काव्य अंक पृ० २९८ से ३१४ पर उपलब्ध है।

२. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियों—देखें परिशिष्ट, में डॉ ब्रजविलास श्री वास्तव ने ४० कथानक रूढ़ियों की सूची दी है पृ० १११-११२ पंजाबी प्रेमाख्यानों के संदर्भ में कुछ अपवादों को छोड़ कर उनका उपयोग दिखाई नहीं देता।

३. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० २७४

४. हीर वारिस, पृ० ५६-६१ ९, १०, ४४ आदि।

५. सस्सी पुन्नू (अहमदयार), पृ० ५८-६०

६. सोहणी महीवाल, (फज़लशाह) पृ० १४

पर्याप्त छोटी हैं। हिन्दी में तो इस प्रकार की सूचियां अकारादि क्रम से भी उपलब्ध हो जाती हैं।[1] पंजाबी में मुहम्मदबख्श ने भी अनेक बार इस परिगणन-शैली का प्रयोग किया है।[2] इन कुछेक अपवादों को छोडकर पंजाबी में परिगणन के प्रति विशेष मोह नही है। उनमें वर्णनों अथवा चारित्रिक विशेषताओं का संकेतमात्र किया गया है, जबकि हिन्दी प्रेमाख्यान, चाहे उनकी कथा सरल हो चाहे जटिल, नखशिख-वर्णन षड्ऋतु-वर्णन, बारहमासा-वर्णन, नगर-वर्णन, पनघट-वर्णन, शकुन-वर्णन, सेना-वर्णन आदि प्रसंगों के लिए स्थान खोजते प्रतीत होते हैं। काव्य एवं कथा सम्बन्धी कुछेक ऐसी रूढ़ियां, सभी हिन्दी प्रेमाख्यानों में यत्किंचित अन्तर के साथ प्राप्त हो जाती है।

नायिका के अंग-प्रत्यंग के सौंदर्य का सविस्तार वर्णन करने का मोह कोई भी हिन्दी प्रेमाख्यानक कवि नही छोड़ सका। अधिकांश रचनाओं मे यह अनेक बार आया है, कभी नायिका एवं कभी उपनायिका के लिए।[3] इन वर्णनों में प्रायः अत्यल्प नवीनता मिलती है। दमोदर (पंजाबी का कवि) के आधार पर लिखी गई गुरदासगुणी की रचना में नायिका का नखशिख लगभग अस्सी अर्द्धालियों एवं चार सोरठों मे वर्णित है[4], जबकि दमोदर में यह चार-पांच पंक्तियों में ही है। 'चंदायन' एवं 'मृगावती' में तो यह स्पष्ट रूढ़िपालन झलकता है।

इस प्रकार का दूसरा प्रकरण है प्रथम दर्शन (जो प्रायः स्वप्न में ही होते है)' के अनन्तर विरह-दशा की असह्यता। सभी रचनाओं में ऐसे स्थानों पर अनेक शिक्षाएं दी जाती है। वैद्य एवं ओझा बुलाए जाते है। 'चंदायन', 'मधुमालती', 'रसरतन', 'हंसजवाहर', 'नलदमन' सभी में यह प्रसग लगभग मिलता जुलता ही है।[5] नगर, दुर्ग, मानसरोवर, पनघट आदि सभी रचनाओं में आते हैं और सब का प्रायः समान रूप है। स्त्रियों के भेद,रागरागिनियां, औषधियां, छंदों की नामावलियां, प्रथम-मिलन के समय समस्यापूर्ति आदि ऐसे प्रसंग हैं, जो भिन्न-भिन्न कवि अवसर एवं स्थान खोजकर अपनी रुचि के अनुसार जोड़ देते हैं।

---

१. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, वृक्षनामानि पृ० २४३-२४९ तथा शाकनामानि पृ० २५०-२५५

२. सैफुलमुलूक, फलों के नाम पृ० १९७, मिठाइयों के नाम पृ० २०९, पक्षियों के नाम पृ० २१२

३. पदमावत में नायिका का ही नखशिख दो बार आया है। पदमावत, पृ० ९६-११५, ४८४-५०४ 'मधुमालती' में मधु का नखशिख, पृ० ६४-८१ तथा प्रेमा का पृ० ४२३-४२९

४. कथा हीर रांझनि की, पृ० ४०-४३

५. चांदायन, पृ० १५१-१५९; मधुमालती पृ० १२६-१४२, ४२१; रसरतन, पृ० ३३-३९, ६३-७१; हंसजवाहर, पृ० ५७; नलदमन, पृ० ५६-६८ एवं चित्रावली, पृ० ३७-३९

पंजाबी के कवियों ने इनमें से अनेक वर्णनो को तो छुआ भी नहीं। नखशिख वर्णन की परम्परा वहा अवश्य है, परन्तु जैसा सविस्तार वर्णन हिन्दी प्रेमाख्यानों मे मिलता है, वैसा पजाबी मे नही। हाफिज बरखुरदार ने अ ग-प्रत्यग के लिए उपमानों की योजना की, परन्तु आठ पक्तियों के सक्षिप्त वर्णन के अनन्तर कवि कहता है—

जो दिल अदब न होवे जरा शरह लिख विखावाँ।[1]

यहा तो अदब के कारण जुलेखा का विस्तृत वर्णन नही किया परन्तु वारिस ने भी हीर के नखशिख के विस्तार की बेअदबी नही की। मात्र उन्नीस पंक्तियों के एक वैत में हीर के होठ, ठोडी, नाक, अलक, दात (केवल तीन पंक्तियां), ग्रीवा, अगुलियां, भुजाएं, वक्ष, जिह्वा आदि का वर्णन कर अन्त में सम्पूर्ण शरीर-यष्टि के घातक प्रभाव का वर्णन किया है।[2] हाशम की अन्य रचनाओं मे तो संकेत मात्र से नायिका के यौवन एवं सौंदर्य का वर्णन है। केवल 'शीरी-फरहाद' में कुछ विस्तार है परन्तु वहां भी घातक प्रभाव एवं कोमलता का सामूहिक वर्णन ही है।[3]

हिन्दी के विद्वानों को संभवतः यह तथ्य विस्मित करेगा कि दमोदर, मुकबल अथवा अहमद किसी ने भी अपनी हीर सम्बन्धी रचनाओ मे नायिका के सौन्दर्य का विशेष वर्णन नही किया। पंजाबी मे इस परम्परा का सूत्रपात हाफिज बरखुरदार ने ही कर दिया था, परन्तु यह प्रवृत्ति अधिक लोकप्रिय नहीं हुई। उत्तर काल मे मुहम्मदबख्श एवं फजलशाह में ही इसका कुछ विस्तार मिलता है[4]।

पंजाबी कवियों की यह संक्षेप-प्रियता सर्वत्र देखी जा सकती है। दुर्ग या नगर- वर्णन, पनघट या पूर्वरागवर्णन के अवसरों पर ये कुछ शब्दों का ही उपयोग कर आगे की कथा कहने लगते है।

भारतीय साहित्य में ऋतु-वर्णन की एक विशेष परम्परा रही है। वियोग-वर्णन के लिए बारहमासा एवं सयोग-वर्णन के लिए षड्ऋतु-वर्णन प्रायः सभी रचनाओ में आता है।[5] नायक एव नायिका के भिन्न-भिन्न हावों-भावो को प्रकट करने के

---

१. यूसुफजुलेखा, पृ० ४७

२. हीर वारिस, पृ० १६-१७

३. हाशम रचनावली, पृ० ११३

४. (क) सैफुलमुलूक, पृ० २१६, ३३०, ३७४
   (ख) सोहणी महीवाल, पृ० ७-९

५. 'गणपति' ने माधवानल कामकंदला प्रबन्ध (सं० मजूमदर) में संयोग एवं वियोग दोनों में बारहमासा लिखा है, पृ० २०३-२२१, ३१२-३२६। नायिका ही नही नायक का भी विरह-बारहमासा है, पृ० २६२-२६७।
   रूपमंजरी (नददास) में विरह के लिए षड्ऋतु वर्णन नंददासग्रंथावली पृ० १३२-१३६
   उसमान ने विरह में षड्ऋतु एवं बारहमासा दोनों दिए हैं, चित्रावली, पृ० ९४-९७, (विरह-वर्णन के लिए षड्ऋतु-वर्णन) १६९-१७३

लिए प्रकृति को उपकारक या विरोधी रूप में रखकर सुन्दर व्यंजनाएं की जाती हैं, परन्तु पंजाबी की रचनाओ में षड्ऋतु-वर्णन अथवा बारहमासा-वर्णन नही मिलते। पंजाबी प्रेमाख्यानों मे यह प्रवृत्ति उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध मे ही प्रचलित हुई। फजलशाह ने 'सोहणी महीवाल' मे कोई बारहमासा नही लिखा, परन्तु उसकी 'हीर' (रचना काल १८६७ ई०) में हिन्दी रचनाओं के ढग पर बारहमासा लिखा गया है।[1] फजलशाह की शेष रचना की तुलना मे इसकी भाषा भी सरल है। इसके बाद भगवानसिह, किशनसिह आरिफ, कालिदास आदि कवियों ने अपनी रचनाओ में बारहमासे सम्मिलत किये। यद्यपि पंजाबी में स्वतन्त्र रूप से बारहमासा लिखने की परम्परा कम से कम नानक कालीन है[2] बाद में तो अठवारे भी प्रचलित हुए, बुल्लेहशाह का अठवारा उपलब्ध होता है। परन्तु प्रेमाख्यानों में इनका समावेश नहीं हुआ। कुछ प्रकाशकों ने वारिसशाह की हीर में बारहमासा मिला दिया था, जिसे डॉ० जीतसिह सीतल ने प्रक्षिप्त सिद्ध किया है।[3]

पंजाबी में इनकी अपेक्षा भिन्न प्रकार की दो काव्य-रूढ़ियां अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। इनमें पहली तो पत्र लिखने की और दूसरी वार्तालाप शैली। इनमे से वार्तालाप शैली का श्रीगणेश तो दमोदर से ही समझना चाहिए, परन्तु पत्र-व्यवहार का आरम्भ अहमद ने किया।[4] वास्तव में यह भी दूर बैठे प्रेमी-प्रेमिका के मध्य एक प्रकार का वार्तालाप ही है। अहमद के बाद मुकबल, हामद, वारिस आदि सभी ने पत्र-शैली का प्रयोग किया है। वारिस में तो इन दोनों का पूर्ण उत्कर्ष है। उसकी सम्पूर्ण रचना का तीन चौथाई भाग वार्तालाप-शैली में है और राझे की भौजाइया एवं हीर,-भौजाइयां एवं रांझा, रांझा एवं हीर सभी के मध्य पत्र-व्यवहार भी है। सभी हीर कथाओं के अतिरिक्त सस्सी पुन्नू की रचनाओं में भी इसका प्रयोग हुआ है। वार्तालाप की शैली तो सभी रचनाओं में विशेष रूप से अपनाई गई है।

इस प्रकार कथासूत्र, कथावस्तु-संगठन कथानक रूढ़ियों एवं काव्य-रूढियों की दृष्टि से पंजाबी एवं हिन्दी के प्रेमाख्यानों में पर्याप्त अन्तर है।

सुखान्त एवं दुःखान्त

हिन्दी मे प्रेमाख्यानो की अधिक संख्या सुखान्त है। मुसलमान कवियों की कुछ रचनाए दु खान्त है, परन्तु उनका दुःखान्त प्रायः उद्वेलित नहीं करता। नायक सम्पूर्ण जीवन भोग कर; अपने प्रेमास्पद को प्राप्त कर एवं उसके साथ सुखपूर्वक जीवन-यापन कर यदि किसी दुर्घटना या युद्ध में मर जाता है तो यह दु.खान्त अधिक प्रभावकारी

१. हीर राझा, पृ० ७५-८०

२. देखिए श्री गुरुग्रंथ साहिब पृ० ११०८-११०९ पर नानक रचित बारहमासा (रचनाकाल अनुमानतः १५३९ ई०)।

३. हीर वारिस भूमिका, पृ० १०२

४. हीर अहमद, पृ० १०५-१०७ पर हीर एवं रांझे में छोटे-छोटे पांच पत्रों का आदान-प्रदान है।

नहीं बन पाता। दुःखान्त पूर्व चित्रित द्वन्द्व के कारण अधिक प्रभावशाली बनता है। हिन्दी प्रेमाख्यानों के अन्तिम भागों में इस प्रकार के द्वन्द्व का अभाव है। जायसी के 'पदमावत' के दुःखान्त में एक अपूर्व शान्ति एवं सुख की आभा दिखाई देती है। इसी प्रकार 'मृगावती', 'हंसजवाहर' एवं 'इन्द्रावती' के दुःखान्त भी शान्त रस के वातावरण से आप्लावित हैं। मंझन एवं उसमान ने स्पष्टतः रचनाओं के दुःखपूर्ण अन्त का विरोध किया है।[1] इन्ही के चरण-चिह्नों पर चलते हुए जान एवं शेखनबी ने भी अपनी रचनाओं को सुखान्त बनाया। हिन्दू कवियों की रचनाएं तो सुखान्त है ही।

यह सुखान्त अथवा शान्त रसाप्लावित दुःखान्त पंजाबी में नहीं मिलता। दमोदर एवं मुकबल की रचनाएं ही सुखान्त हैं परन्तु वहाँ भी सुख के आनन्द का वर्णन नही हुआ। इसे आध्यात्मिक सुख ही माना जा सकता है। मिलन के उपरान्त वह प्रेमी-युगल कहाँ चला गया, इस विषय में दोनों कवि विशेष जानकारी नहीं देते। अन्य कवियों की रचनाएं दुःखान्त हैं। हीर की मृत्यु के अनन्तर राँझे की मृत्यु की स्पष्ट सूचना है। इसी प्रकार से सस्सी, सोहणी, मिरजा साहिबां, राज बीबी-नामदार चंदरबदन महियार आदि सभी रचनाएं दुखान्त ही हैं। इन रचनाओं का दुःखान्त हिन्दी प्रेमाख्यानों के 'सन्तुष्ट दुःखान्त' से नितान्त भिन्न है। इनमें पिपासा है, क्षोभ है, द्वन्द्व की पीड़ा है, संघर्ष में असफलता है, द्वन्द्वरत पात्रों का बलिदान है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायक की मृत्यु प्रेम के मार्ग पर चलते-चलते नही होती। नायिकाएं अवश्य नायकों की मृत्यु के अनन्तर सती होती है, परन्तु पजाबी में ये लोग प्रेम के संघर्ष में निरन्तर जूझते-जूझते दम तोड़ देते हैं। प्रेमी पुन्नूं की खोज मे तप्त मरुस्थल के रेत में झुलसती कोमल सस्सी का चित्र लाख यत्न करने पर भी आंखों से ओझल नहीं होता—

नाजुक पैर गुलाब सस्सी दे मंहिंदी नाल शिंगारे।
आशक वेख बहे इक बारी जीउ तिनहां पर वारे।
बालू रेत तपे विच थल दे भुन्नण जौं भटियारे।
हाशम वेख यकीन सस्सी दा फेर नहीं दिल हारे।[2]

सस्सी ने यकीन (निष्ठा) तो न हारा, परन्तु शरीर हार गया और वह प्रेमी के पदचिह्नों को पकड़कर अमर हो गई—

---

१. (क) उतपति जगत जेति चलि आई। पुर्ख मारी ब्रज सती कराई ।।
मैं छोहन्ह येहि मारि न पारेउ। मरिहहिं महि जो कलि औतारेउ ।।
—मधुमालती, सं० शिवगोपाल मिश्र, पृ० १६४

(ख) कबितन्ह मग्न कथा कै गाई। मोहिं मरत हिय लागु छोहाई ।।
—चित्रावली, पृ० २३६

२. अर्थ—सस्सी के गुलाब जैसे पैर मंहिंदी से सजाए हुए थे। उन्हें एक बार देखकर ही आशिक अपना मन लुटा देता था। मरुस्थल की रेत इतनी गरम थी कि उसमें जौ भूने जा सकते थे। हाशम कवि कहता है कि इतने पर भी उस सस्सी ने निष्ठा का त्याग नहीं किया।
—हाशम रचनावली, पृ० ९९

सिर धर खोज उते गश आईआ, मौत सस्सी दी आई।
खुश रहु यार असां तुध कारण, थल विच जान गवाई।
डिगदी सार गए दम इकसे, तन थों जान सिधाई।
हाशम कर लख लख शुकराने, इशक वलों रहि आई।[1]

सस्सी ने तप्त मरुस्थल में प्राण दिए और सोहणीं उत्ताल तरंगा चन्द्रभागा मे कूद पड़ी। प्रेम की तीक्ष्ण धारा पर चलने का वह चित्र प्रेम-वेदना को और भी अधिक प्रभावशाली ढग से उपस्थित करता है। फजलशाह रचित 'सोहणीं महीवाल' मे तो, ऐसा प्रतीत होता है, कि कवि का उद्देश्य इसी वियोग को चित्रित करना है। मरते समय सोहणीं ने एक-एक व्यक्ति से विनय-विह्वल होकर प्रार्थना की है। सोहणीं की मृत्यु के अनन्तर उसके शरीर एवं आत्मा का सम्वाद, मृत शरीर का महीवाल की ओर सन्देश, जलजन्तुओं से प्रार्थना एवं प्रेमी के लिए तड़पना—सब कुछ अत्यन्त प्रभावशाली है। अन्त में सम्पूर्ण जड़चेतन, मर्त्यामर्त्य प्रेमियों की मृत्यु पर शोक मनाते है। ऐसा ही हृदयबेधी वर्णन कादरयार ने किया है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों के इस दुःखान्त में एक अन्य विशेषता भी उपलब्ध होती है। हिन्दी में सर्वत्र पुरुष की मृत्यु के अनन्तर नारी सती होती है। ऐसी रचना कोई नहीं जहां नायिका की मृत्यु पर पुरुष ने प्राण त्यागे हों। वहाँ यह संभव भी नहीं। उन रचनाओ में पुरुषों का आचरण सामंतवादी विचारधारा के ही अनुकूल है। प्रेमिका के लिए नायक चाहे अनेक प्रयत्न करे, परन्तु उसकी दृष्टि में भोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह नहीं छिपता। मार्ग में आने वाली सुन्दरियों से वे विवाह करते हैं परन्तु पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायिकाएं पहले मरती है और तत्पश्चात् उनका वियोग सह सकने में असमर्थ नायक भी प्राण त्याग देते हैं। हीर-राँझा, सोहणी-महीवाल, सस्सी-पुन्नू की अनेक रचनाओं मे ये घटनाएं समान रूपेण वेदनापूर्ण हैं। अतः इनका दु.खान्त दूर गहराई तक चोट करता है। उसमें शान्ति नही उद्विग्नता है, अपूर्व आक्रोश, गम्भीर घाव करने की शक्ति !

निष्कर्ष

हिन्दी एवं पजाबी प्रेमाख्यानों के कथानक-संगठन एवं घटना-चयन के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के प्रेमाख्यानों का सम्पूर्ण संगठन प्राय: समान घटनाओं, वर्णनों, वस्तु-चित्रों तथा कथानक-रूढ़ियो से निर्मित है। इनके नायक

---

१. अर्थ—जैसे ही उसने उस चरण-चिह्न के ऊपर सिर टिकाया, सस्सी की मृत्यु आ गई। मेरे प्रियतम, तुम प्रसन्न रहो, मैंने तुम्हारे लिए इस मरुस्थल में अपनी जान दी है। गिरते ही उसके प्राण शरीर से अलग हो गए। हाशम कहता है कि ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद, क्योंकि इश्क की मर्यादा रह गई।

—हाशम रचनावली, पृ० १०१

अधिकतर राजकुमार एवं नायिकाएं राजकुमारियां हैं, जिनके जीवन में यथार्थ की अपेक्षा अलौकिकता का बोलबाला है। भाग्यवाद प्रमुख तत्त्व है। इसी कारण इन रचनाओं मे बौद्धिकता अथवा क्रमिक विकास की अपेक्षा कौतुहल-वृत्ति का ही प्राधान्य है। जिन स्थानों पर पहुंचने के लिए नायक प्राणों की बाजी लगा देते हैं, अनेक बार जीवन-मरण के झूले में झूलते है, उन स्थानों पर नायिकाओं अथवा नायकों के माता-पिता के दूत सदैव सकुशल कैसे पहुंचते हैं, यह तर्क का विषय है भावना का नही !

कथा-संगठन की अपेक्षा हिन्दी में वर्णनों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। इनमें प्रयुक्त रूढ़ियों की संख्या प्रचुर है। 'इनके कारण कथा मन्दगति से आगे बढ़ती है। इन कवियों के कथानकों में वर्णनों का कभी-कभी इतना विस्तार हो जाता है कि कथा का सहज प्रवाह ही शिथिल पड़ जाता है।'[1] नायक एवं नायिका के जन्म-स्थान का वर्णन दोनों के सौंदर्य का विस्तृत वर्णन, यात्राओं के समय शकुन-विचार, विरह की प्रखरता के लिए लम्बे-लम्बे बारहमासे, संयोग के विस्तृत वर्णन, प्रथम मिलन के समय द्यूत क्रीड़ा, समस्यापूर्ति, सुरत एव सुरतान्त के चित्र आदि कुछ ऐसे प्रसंग है जिनके कारण कथागति निरन्तर बाधाग्रस्त होती है। कई बार तो यह अनुभव होता है कि ये ग्रंथ रीतिकालीन परम्परा के पूर्वाभास हैं एव जिनकी रचना रीतिकाल मे हुई, वे तो स्पष्टतः उस मार्ग के अनुवर्ती है। ये रीति-ग्रंथों में बताए गए प्रबन्ध-नियमो का सयत्न पालन करते हैं। 'चंदायन', 'मृगावती', 'पदमावत', 'मधुमालती', 'माधवानल कामकंदला प्रबध', 'रसरतन', 'नलदमन' जैसी प्रतिनिधि रचनाए इस का प्रमाण है। रीतिकालीन भावना इनको इतना प्रभावित किए हुए है कि 'ढोला मारू रा दूहा' जैसी लोक-रचना में समाहृत नखशिख अथवा अष्टयाम-वर्णन किसी भी रीतिकालीन कवि के वर्णनों के समक्ष रखे जा सकते है। रसरतन मे स्पष्टतः 'दसदशा वर्णन'[2] का प्रसंग है।

अनेक बार ये कवि कथा के छोर छोड़कर शास्त्रीय अथवा कामशास्त्रीय चर्चाएं आरंभ कर देते हैं। इनकी रचनाओं में 'क्यो' का उत्तर नहीं मिलता। 'क्या' और 'कहाँ' से ही ये पाठक को सन्तुष्ट करते हैं। इनमें औचित्य के स्थान पर अलौकिकता का ही आग्रह है। स्थूल कौतुहल की शान्ति के लिए एक के पश्चात् एक अलौकिक घटना आती है। 'इन अलौकिक तत्त्वों के समावेश से घटित अस्वाभाविक घटनाओं को केवल कल्पना की सहायता से ही सत्य समझकर, कथा-कौतुहल को जागृत रखा जा सकता है।''[3]

पंजाबी प्रेमाख्यानों में भी कथा-संगठन सम्बन्धी अनेक दोष मिलते हैं, परन्तु

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १७५
२. रसरतन पृ०, ४४-५१
३. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० २८१

इनके सक्षिप्त आकार के कारण घटनाएं बहुत थोड़ी हैं। रूढ़ियों की दरिद्रता के कारण इन रचनाओं के कथा-संगठन में चुस्ती एवं प्रवाह लाया जा सकता था, परन्तु कवियों में उत्कृष्ट प्रतिभा के अभाव के कारण यह दोष गुण न बन सका। लम्बे लम्बे वार्तालाप तत्कालीन समाज के विषय में तो कुछ जानकारी देते हैं परन्तु कथा-संगठन सम्बन्धी शिथिलता के वाहक भी बनते हैं। अलौकिकता एवं भाग्यवाद इन रचनाओं में भी समाविष्ट हुआ है, किन्तु उनके कारण कथा में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया। घटनाए अधिकतर तर्कसंगत एवं यथार्थ पर आधारित ही हैं। सोहणीं एवं महीवाल अलौकिक शक्तियों की सहायता से नदी पार नहीं करते। एक पुरुष होने के कारण अपने बाहुबल से नदी पार करता है तो दूसरी अबला घड़े की सहायता लेती है, यहाँ कोई भी अलोकिक शक्ति दुर्दिन में उस कच्चे घड़े को नदी के जल में विलीन होने से नहीं बचाती।

कथा-संगठन में बाधक लम्बे लम्बे नखशिख एवं वियोग-वर्णन या नाम परिगणन की प्रवृत्ति इनमें नहीं है। समस्यापूर्ति या कामशास्त्रीय प्रसंग भी इनमें नहीं हैं। फिर भी प्राय: सभी में संगठन-दौर्बल्य देखा जा सकता है। वारिस की रचना भी इस दोष से मुक्त नहीं। कथा-संगठन की दृष्टि से मुकबल एवं हाशम की रचनाएं ही सफल हैं। हीर-दमोदर भी अन्य हीर रचनाओं से अधिक सुगठित एवं सफल रचना है। उसमें सम्बन्ध-निर्वाह भी उत्तम है, परन्तु काव्य-प्रतिभा की कमी के कारण काव्यात्मक सौन्दर्य का अभाव उसमें निरन्तर खटकता है।

हिन्दी में रूपविधि के अनेक प्रयोग हुए हैं। संख्या एवं आकार की दृष्टि से भी हिन्दी का प्रेमाख्यान-साहित्य महत्त्वपूर्ण है, परन्तु उन कथाओं में समान काव्य-रूढ़ियों एवं कथानक-रूढ़ियों की आवृत्ति के कारण नीरसता आ गई, जबकि पंजाबी में अनेक कथाओं को बिना किसी नवीनता के अनेक बार वर्णन करने से न तो कथा की दृष्टि से और न रूपविधि की दृष्टि से ही उनमें कोई नवीनता आ पाई। केवल वार्तालाप के ब्योरों में ही कुछ अन्तर है।

: ४ :

चरित्रानुशीलन

प्रबंध-काव्यों में कथानक एवं चरित्र दोनों ही अन्योन्याश्रित होते है । किसी भी घटना का कर्ता अथवा उपभोक्ता कोई पात्र ही होगा । यदि पात्र है तो वह कुछ न कुछ अवश्य करेगा । स्थूल रूप से प्रबंधकाव्य मे कथावस्तु आधारभूत सामग्री है और पात्र कथावस्तु के आभ्यन्तरिक अंग है । इन पात्रों मे से कुछ-एक तो ऐसे होते है जो कथा को गति नहीं देते, उनका होना न होना समान है परन्तु दूसरी ओर कुछ पात्र ऐसे होते है जो कथा का निर्माण करते हैं । ऐसे पात्रों के कार्य-कलाप एव चरित्रगत विशेषताओं के कारण ही कथावस्तु में उच्चावच स्थलो का निर्माण होता है । अत: इनको पात्र की अपेक्षा चरित्र कहना अधिक उचित है ।

इस सम्बन्ध में हिन्दी एवं संस्कृत काव्य-शास्त्र मे नायक एवं नायिका के विषय में ही विशेष रूप से विचार किया गया है । इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भारतीय साहित्य का जो स्वरूप है, उसमें इन्हीं दो पात्रों का योगदान मुख्य रहा है । परन्तु आधुनिक काल में विशेषकर आगल काव्य-शास्त्रीय मान्यताओं के प्रभाव स्वरूप 'चरित्रों' पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है और चरित्र-चित्रण की प्रथम विशेषता सजीव पात्रों की सृष्टि मानी जाती है ।

इस सजीव सृष्टि की मुख्य विशेषता यह है कि ये पात्र जनसामान्य से अभिन्न होते हुए भी भिन्न हों । उनमे व्यक्तिगत विशेषताओं के अतिरिक्त जन-सामान्य में सुलभ साधारण गुण भी हों, जिनसे वे अपरिचित लोक के प्राणी प्रतिभासित न हों । हिन्दी एवं पंजाबी प्रेमाख्यानों के चरित्रों में इन विशेषताओं को खोजें तो पंजाबी के प्रेमाख्यानों के चरित्र दैनिक जीवन के अधिक समीप है और हिन्दी प्रेमाख्यानों के चरित्रों में अभिन्नता कम और भिन्नता अधिक दिखाई देती है ।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में चरित्रगत वैविध्य दृष्टिगोचर नही होता, उनके लघु आकार में व्यक्ति विशेष के अनेक गुणों को समाहित कर पाना असंभव ही है । मिरजा अपने चरित्र की कुछ विशेषताओं के कारण पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट चरित्र है । उसके चरित्र में प्रेम, वीरता एवं साहस के साथ-साथ उपेक्षा एवं अहं का मिश्रण है । इसमें सन्देह नहीं कि उसमे अनेकांगिता का अभाव है

परन्तु व्यक्तित्व की प्राणवत्ता में वह अद्वितीय है। अहमद एवं मुकबल की रचनाओं में हीर,रांझा, कैदों आदि के चरित्रों का समुचित विकास भी इसीलिए नहीं हो पाया। हाशम की 'सस्सी', 'सोहणीं', 'शीरी-फरयाद' अथवा 'हीर राँझे दी बीरती' की भी यही स्थिति है। सस्सी के चरित्र-चित्रण की अपूर्णता एवं एकांगिता को सविस्तार स्पष्ट करते हुए श्री स० स० अमोल ने लिखा है कि उसके केवल तीन पक्ष ही हमारे सम्मुख आते हैं। पुन्नू के चरित्र की तो सर्वथा उपेक्षा ही की गई है।[1] कुछ विस्तृत रचनाओं में चरित्र-चित्रण को आवश्यक महत्व देते हुए भी जीवन के अनेक पक्ष उद्घाटित नही किए जा सके।

पजाबी की अपेक्षा अधिक विस्तृत होने के कारण हिंदी प्रेमाख्यानों में नायक-नायिका के अपेक्षाकृत अधिक गुणों का परिचय मिल जाता है। फिर भी जीवन के अनेक पक्ष वहाँ भी अनावृत ही रह जाते हैं, क्योंकि वहाँ कवियों का मुख्य उद्देश्य केवल प्रेम का महत्त्व दिखाना ही था।

नायकों का चरित्रानुशीलन

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायक

हिन्दी के प्रेमाख्यानों में राजकुलों से सम्बन्धित नायकों की संख्या अधिक है। ये नायक सौन्दर्य, यौवन एवं धनसंपन्न है। इनके जन्म के समय ही ज्योतिषी भविष्यवाणी करते है कि आयु के अमुक वर्ष में ये किसी के वियोग में घर छोड़कर निकल जायेंगे और विवाह कर घर लौटेंगे। इस प्रकार जन्म से ही इनके जीवन को प्रेमावृत्त दिखाने की परम्परा है। ये भाग्य में प्रेम के लेख लिखा कर ही इस संसार में आते है। अत. इनका प्रेम अर्जित नहीं ईश्वर-प्रदत्त है और इसी प्रेम-मार्ग में इनके स्वभाव के अन्य गुण उद्घाटित होते है। ये लोग वीर हैं, धैर्यवान् हैं, दृढ़ निश्चयी और त्यागी हैं परन्तु ये समस्त गुण प्रेम-मार्ग में आने वाली स्वाभाविक, अस्वाभाविक, भौतिक अथवा दैविक बाधाओं को दूर करने के लिए प्रयुक्त होते है। 'चंदायन' का लोरक, 'मृगावती' का राजकुवंर, 'पदमावत' का रतनसेन, 'मधुमालती' का मनोहर, 'चित्रावली' का सुजान, 'रसरतन' का सोम, 'सैफुलमुलूक-बदी-उल जमाल' का सैफुल-मुलूक, 'पुहपावती' का राजकुमार प्रभृति सभी प्रेम-पंथ के पथिक है और अपने प्रिय से मिलने के मार्ग में आने वाली किसी भी बाधा को दूर करने में समर्थ। समय-असमय दैवी शक्तियां इनको कष्टों में डालती हैं, इनके धैर्य को परखती हैं, इनकी सहायता करती है। थोड़े बहुत अन्तर के साथ इन सबके चरित्र एक ही टाइप (वर्ग) के है।

यद्यपि ये नायक राजकुलों से संबद्ध है, वीर भी हैं परन्तु प्रेम के मार्ग में इनमें से अधिकांश का दृष्टिकोण चारण-काल के राजपुरुषों से नितान्त भिन्न है। चारण-काव्य

---

१. हाशम शाह ते किस्सा सस्सी पुन्नू, पृ० ६६

का नायक किसी भी स्त्री के रूप-सौन्दर्य का श्रवण कर सेना की सहायता से उसे प्राप्त करना अपना अधिकार समझता है, परन्तु ये नायक इस प्रकार के अपहरण में रुचि नहीं लेते। इनका प्रेम-मार्ग अहिंसा की साधना से पूर्ण है। इनको अपने प्रेम पर पूर्ण विश्वास है और वही इनका अस्त्र भी है। प्रेम ही इनका गन्तव्य है और प्रेम ही पथ है। अहिंसा का यह आश्रय केवल नायिका या प्रेमिका के कुल तक ही सीमित है अन्यथा मार्ग में इन्हें सर्वत्र शत्रु-सेनाओं से युद्ध करना पड़ता है, कहीं-कहीं अजगर, राक्षस अथवा कपटी प्रतिनायक भी अवरोध उपस्थित करते हैं और ये लोग उनसे भयानक युद्ध करते हैं। नायिका-प्राप्ति के लिए चारण-काव्यों के समान युद्ध 'वेलि क्रसन रुकमणी री'[1] में है परन्तु वहाँ पर यह युद्ध नायिका के ही निमन्त्रण पर है।[2] इसी प्रकार चतुर्भुजकृत 'मधुमालती वार्ता' में भी नायक मधु अपने श्वसुर की सेनाओं के साथ युद्ध करता है परन्तु इसमें नायिका की पूरी अनुमति है। ऐसी रचनाएं अपवाद ही है अन्यथा नायक अहिंसा मार्ग में विश्वास रखते है।

उषा-अनिरुद्ध की रचनाओं में भी नायक एवं नायिका के पितृकुल के मध्य युद्ध हैं, परन्तु नायक उससे असम्पृक्त है। लैला मजनूं (जान) में मजनूं के हितैषी नौफल ने नायिका के पिता पर आक्रमण कर दिया तो मजनूं नायिका के पिता की जय की ही कामना प्रकट करता था। अंत में जब नौफल के सैनिकों ने उसकी शिकायत की तो कितना भोला उत्तर दिया—

उनकी जय हमारी हार। तूं मांगत यह कौन विचार ॥
मजनूं कह्यो सुनहु सति बात। लैलै पर जारो जिय गात ॥
कहा करौं हौं जीय तिहारो। लैलै जियरा आहि हमारो ॥

× × ×

लैलै सौं लरिहौं मो काज। हौ मरिहौं आवत मो लाज ॥[3]

'हंसजवाहर' में तो स्पष्टतः हिंसा को प्रेम-मार्ग में नितान्त त्याज्य बताया गया है। जब साथी जोगी ने वैरी राक्षस से युद्ध कर उसे मारने की मंत्रणा दी तो हंस उसे अस्वीकृत करते हुए कहता है—

यह कर मन्त्र एक है साँचा। सुमिरौं ताहि चहे जिउ बाँचा ॥
सत्य ते नाँउ जवाहिर लीयो। सुख ते चलो पंथ पग दीयो ॥
अहै सो आस पास चहुं ओरा। का करि सके सो राकस मोरा ॥[4]

---

१. रुक्मिणी-कृष्ण के कथाचक्र पर आधारित सभी रचनाओं का प्रतिनिधित्व करती है।
२. बेलि क्रिसन रुकमणी री, पृ० १४८
३. ग्रंथ लैलै मजनूं (हस्तलिखित)।
४. हंस जवाहर, पृ० १५४

ये नायक सौन्दर्य में अद्वितीय हैं और सौन्दर्य के ही उपासक हैं। अनेक स्त्रियां इनके सौन्दर्य से आकर्षित होती हैं। 'चंदायन', 'लखमसेन पदमावती कथा', 'मृगावती' 'पदमावत', 'चित्रावली', 'ज्ञानदीप', 'रसरतन', 'पुहपावती', 'हंस जवाहर' इन सबमें दो-दो नायिकाएं है परन्तु इन नायकों का प्रेम सर्वत्र कुमारियों से है। विवाहिताओं के प्रति इन्होंने प्रेम प्रदर्शित नही किया। इनकी तो अपनी विवाहिताएं भी प्रिय-मिलन के लिए प्रार्थनाएं करती रहीं। गार्हस्थ जीवन में इनकी रुचि है ही नहीं। इनके चरित्र में प्रेम की एकनिष्ठता की चर्चा[1] व्यर्थ है। इन नायको का दृष्टिकोण सामन्त-कालीन नायकों के समान नारी को सामने देख कर प्रेमपूर्ण हो जाता है। लौकिक दृष्टि से यह शुद्ध लोभ ही माना जा सकता है। उनकी एकनिष्ठता को सैद्धान्तिक तर्कों से सिद्ध किया जाए तो अलग बात है अन्यथा चंदा को देखकर लोरक मैंना को भूल गया एवं चंदा की प्राप्ति के अनन्तर मैंना के संदेश मात्र से लौट आया। 'मृगावती', 'मधुमालती' एवं 'ज्ञानदीप' में नायिकाओं के प्रथम मिलन के समय इन नायकों के प्रणय-प्रस्ताव[2] इनके चरित्र के इस छिद्र को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। नायिकाएं शपथपूर्वक इन्हें अपने से पृथक् रखती हैं फिर भी चुम्बन परिरम्भण से तो सन्तुष्ट हो ही जाते हैं।[3] 'चंदायन' में तो सब अकार्य-कार्य पहले ही महल में गुप्त रीति से हो गया।[4]

नायकों का एक वर्ग कला-मर्मज्ञ भी है। परन्तु इनकी कला का उपयोग अभीष्ट-सिद्धि-नायिका-प्राप्ति के लिए है। ये लोग कला के असाधारण नैपुण्य के द्वारा

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १९९

२. (क) बइठि सिंघासन ऊपर दोऊ जन सारा संग साथ।
मिरगावती के हार महि, कुंअर मेलि उर हाथ॥

—मृगावती, पृ० ६६

(ख) काम बान बेधा न संभारेसि। बर कामिनि उर हाथ पसारेसि॥

—मधुमालती, पृ० १०४

(ग) एइ कर आनि कुचन पर लावै। वोइ छोड़ाइ हिय साल गड़ावै॥

—ज्ञानदीप (हस्तलिखित)

३. (क) अबर भाव सब मानहु, मोसेउं एक सुरत नही होइ।
आवइ देहु सहेलिन्हु, जो जिउ मनाउं करहु सोइ॥

—मृगावती, पृ० ६९

(ख) कुंवर अधर पर परगट, परी जों काजर लीक।
और सोभित कारी महं, दोसी नैन सोहागिनि पीक॥

—मधुमालती, पृ० ११४

(ग) तब सुरज्ञानी बोली नांहां। ज्ञान समेत गहहु तिय बांहा॥
जब गुरु बेद जाप कछु कीजै, तब लहि नैनन सों रस लीजै॥

—ज्ञानदीप (हस्तलिखित)

४. चांदायन, पृ० २०९-२१२

अपनी प्रेमिका तक पहुंचने में सफल होते हैं। माधवानल कामकदला चक्र की कथाओं का नायक माधवानल, 'छिताई चरित' का सौरसी एव 'रसरतन' का सूरसेन, गुरदास गुणीकृत 'कथा हीर राझनि की' का राझा कला-निपुण है। माधवानल में केवल संगीत कुशलता ही है। सूर में कला-प्रतिभा के साथ-साथ शौर्य का भी समावेश है जबकि सौरसी पत्नी-हरण के अवसर पर शूरवीरता भूलकर कला के आश्रय से ही वियोगाम्बुधि के पार पहुचने का यत्न करता है। माधव के सारे कष्टों का कारण उसका अद्भुत कला-ज्ञान ही है। एक ओर तो यह कला ज्ञान उसके एवं कामकदला के मध्य प्रेम का जनक कारण है दूसरी ओर यही एक मात्र बाधक कारण भी है, जिससे रुष्ट होकर राजा उसे देश निकाला दे देता है। सौरसी एवं सूरसेन इसके सहारे अपनी प्रेमिकाओ तक पहुंचते है। नायक एव नायिका मे प्रेम उत्पन्न करने के लिए मुख्य आधार के रूप मे कला का आश्रय माधवानल कामकंदला चक्र की ही कथाओ मे लिया गया है। माधव अन्य नायकों से इसलिए भी भिन्न है कि वह न तो राजकुमार है और न ही उसमें हिन्दी के अन्य प्रेमाख्यानों के नायकों की भांति निर्भयता एवं वीरता है। वह न चाहता हुआ भी राजभय से अपनी प्रेमिका को छोड़कर विदेश मे चला जाता है। माधव का व्यक्तित्व हिन्दी के सम्पूर्ण प्रेमाख्यान-साहित्य मे निराला है। उसका अलौकिक सौन्दर्य एवं अद्वितीय कला-नैपुण्य उसके मार्ग में पदे-पदे बाधाओं के शूल बिखेरते हैं। अपनी प्रेमिका से उसे भाग्य ही मिलाता है और वह ही अलग करता है अन्यथा न तो वह उसे खोजने गया था और न उसे प्राप्त करने के लिए उसने कोई संघर्ष ही किया।

गुरदास गुणी रचित 'कथा हीर राझनि की' का नायक रांझा भी मुरली के सम्मोहन से जलचरो एवं स्थलचरो को वश[1] मे कर सकता है। उसकी मुरली का सम्मोहन अद्भुत है परन्तु उसके कारण उसके चरित्र को सम्मोहकता के अतिरिक्त और कोई विशेष योगदान प्राप्त नहीं होता।

संक्षेप में हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायक सुन्दर, गुणवान्, दृढ प्रतिज्ञ, वीर एवं साहसी है, कुछेक कला-मर्मज्ञ भी है। नारी के प्रति उनमे से अधिकाश के मन मे सामन्तीय पद्धति का आकर्षण है। कुछ अपवादों को छोड़कर इन नायकों का सम्बन्ध राजकुलों से है। प्रेम ही इनके जीवन का एकमात्र प्राप्तव्य है। इनका सम्पूणं जीवन नारीमय है। इनके स्वभाव के अधिकांश गुण इन्हें सामान्य जन-समाज से पृथक् करते है। इन्हें जीवन-निर्वाह की कोई चिन्ता नही। इनमें कभी-कभी ही मानवीय दुर्बलताएं आती है, जिनमें लोभ ही प्रमुख है। रतनसेन लोभ के कारण ही कई कष्टों में फँसा।[2] अन्यथा इनका चरित्र प्रेमाच्छन्न ही है। इन कवियों ने सभवतः

१. कथा हीर राझनि की, पृ० ६३-६४

२. पदमावत, पृ० ३१४

जायसी के साथ सब जगह घूम कर देख लिया था कि इस संसार में प्रेम के अरिरिक्त कुछ नही—

तीनि लोक चौदह खंड सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छांडि किछु और न लोना जौं देखौं मन बूझि ॥[1]

नायकों की प्रतीकात्मकता – हिन्दी के मुस्लिम प्रेमाख्यानों के नायको को ईश्वरीय प्रेम का साधक माना जाता है। इनका चरित्र वासना-कवलित है या नही,[2] यह एक विवादास्पद विषय बन चुका है। इन रचनाओं में संभोग के चित्र प्रायः मिलते हैं। नायक एवं नायिका के रमण का वर्णन करने का मोह उन कवियों ने भी नहीं छोड़ा जिनके विषय में सूफी साधना-पद्धति के विश्लेषण की बात कही जाती है, परन्तु फिर भी माना जाता है कि "ऐसे पर्याप्त कारण है जिनसे यह बात प्रकट हो जाती है कि नायक साधना के पथ से विचलित नही है। नायक अपनी प्रेयसी में ही ईश्वरीय सौन्दर्य के दर्शन करता है। उसकी प्रेयसी साधारण नही है। जब तक मन रूप की स्थूल सीमा में अटका रहता है, तब तक वासना रहती है; पर जब मन, हृदय और प्राण इस रूप में विराट सत्ता का दर्शन करने लगता है, तब वासना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। इस स्थिति में शरीर अपना कर्म करता है, पर मन उसमे आसक्त नही होता। यह साधना की उच्च स्थिति है। ईश्वरीय दृष्टि विकसित हो जाने के अनन्तर शरीर के कर्म सम्भोग, रमण आदि आसाक्तिपूर्ण नही कहे जा सकते। जब आसक्ति नही है तो वासनाओं और विकृतियों का प्रश्न कहां उठता है। इतना ही नही, प्रेमपात्र के लिए जीवनोत्सर्ग की उत्कण्ठा वासना को सर्वथा भस्मीभूत कर देती है और प्रेम का खरा सोना ही शेष रह जाता है।"[3] इस तर्क का कोई उत्तर नही हो सकता! कालिदास-विद्योत्तमा के प्रथम मौन-संवाद में कालिदास के मौन-संकेतों के दार्शनिकतापूर्ण विश्लेषण लिए गए थे। किसी भी बात की दार्शनिक व्याख्या तो बुद्धि का गौरव है। यहा पर इनके औचित्य अथवा अनौचित्य पर विवाद प्रासंगिक नहीं। परन्तु इस आधार पर यदि देखा जाए तो पंजाबी काव्यों के नायकों का प्रेम सर्वथा वासना रहित है, वे प्रेमास्पद के लिए जीवनोत्सर्ग की उत्कण्ठा ही नहीं करते, जीवनोत्सर्ग कर भी देते है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायक

विवेच्य पजाबी प्रेमाख्यानों की रचना भी उसी काल मे हुई, जिसे सामतवाद से प्रभावित कहा जाता है, परन्तु नायकों के विषय में दोनों ही साहित्यों के कवियों के दृष्टिकोण मे स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। हिन्दी के प्रेमाख्यानों के नायक अनेक सुन्दरियो के रहते हुए भी नवीनता के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं, परन्तु यहां एक के

---

१. पदमावत पृ० ९३
२. प्रेमनिरूपण शीर्षक अध्याय में 'नायकों की प्रेम निष्ठा' पर विस्तार से विचार किया गया है।
३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २००

साथ भी स्वतन्त्र विहार निन्दा का विषय बन जाता है। यहां नायकों को प्रेम-स्वातन्त्रय के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यद्यपि इन कथाओं के नायकों को भी राजोचित समृद्धि से मण्डित करने का यत्न है परन्तु पीछे यह स्पष्ट किया जा चुका है[1] कि यह यत्न सफल नहीं हुआ। इस समृद्धि के आरोप का कारण जन-सामान्य का अभावग्रस्त एवं अतृप्त जीवन ही है। ये यत्न शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाते है। पंजाबी प्रेमाख्यानों के नायकों में एक मात्र सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की ओर ही कवियों ने ध्यान दिया है। विद्या, बल या बुद्धि की विशेष आवश्यकता संभवतः इन नायकों को कभी प्रतीत ही नहीं होती।

पंजाबी के अधिकांश प्रेमाख्यानों मे प्राचीन मर्यादाओं का विरोध करते हुए प्रेमस्वातन्त्रय का आग्रह किया गया है। हमारे समाज में बंधन नर की अपेक्षा नारी को ही अधिक बलपूर्वक जकड़े हुए हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानकार इन बंधनों को स्वीकार कर आगे बढते हैं, अत. उनके नायक ही अधिक सक्रिय एवं गतिशील हैं। जिन प्रेमाख्यानों में पीड़ा एवं वेदना नारी पात्रो अर्थात् नायिकाओ मे अधिक है (जैसे नल-दमयन्ती एवं उषा-अनिरुद्ध सम्बन्धी रचनाएं, वेलि क्रिसन रुकमणी री आदि) उनमें भी ये नायिकाएं पुरुषों की भाँति कठोर यथार्थों और व्यवहार के उन्मुक्त ससार में नही उतरती। 'अधिक से अधिक वे नायकों के पास संदेश भिजवा देती है या सखियो के साथ मन्दिरों में आकर प्रेमी के दर्शन कर जाती है।"[2] पंजाबी क्षेत्र में लिखे गये हिन्दी के दो प्रेमाख्यान 'कथा हीर रांझनि की', 'सूर रंभावत' तथा 'ज्ञानदीप' इसके अपवाद है। 'सूर रभावत' में नायिका रंभा अपनी सखी के साथ नायक की खोज में निकलती है[3] और हीर तो सम्पूर्ण घटना-चक्र की संचालिका है ही। पजाबी प्रेमाख्यानों में इन मर्यादाओं के विरोध एवं तिरस्कार की भावना है, अतः नारी पात्र अधिक गतिशील एवं सक्रिय है। नायक यहाँ मूक है। फलतः हिन्दी प्रेमाख्यानो के नायकों में प्राप्त होने वाली शूरता एवं अलौकिकता इनमें नहीं मिलती।

यह मूकता एवं भीरुता इन नायकों में आरोपित या कल्पित नहीं, स्वाभाविक है। इन कथाओं का सम्बन्ध ऐसे परिवारों से है जो मुस्लिम धर्म में सद्यः-दीक्षित थे। यह धर्म-परिवर्तन स्वैच्छिक अथवा मनन-चिंतन का परिणाम भी नहीं था। शासकों के प्रभाव एवं दबाव अथवा अभिजात हिन्दू-वर्ग के अन्याय के उत्पीड़न से छुटकारा प्राप्त करने के लिए था। ऐसी दशा में ये लोग अपनी वीरता की डींग कैसे मार सकते थे। जिस स्वातन्त्रय-भावना की तृप्ति के लिए धर्म-परिवर्तन किया गया, वह पुरुषों तक ही सीमित रही। स्त्रियां तो कुएँ से निकली खाई में गिर गईं। उनका जीवन उभयत्र बंधनों से जकड़ा हुआ था। अतः उनमें ही हलचल दिखलाई देती है। नायक तो जनसामान्य से किसी भी प्रकार अभिन्न नहीं हुए।

१. कथालोचन के अध्याय में।

२. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २२४

३. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ३१७

इनमें सौन्दर्य की अलौकिकता तो सुलभ है, परन्तु अन्य गुणों की आवश्यकता पर कवियों ने ध्यान नही दिया। सौन्दर्य के लिए भी रांझा ही विशेष रूप से विख्यात कहा जा सकता है। उत्तरोत्तर कवियों ने उसके सौंदर्य की महिमा का अधिकाधिक वर्णन किया है। दमोदर के रांझे को देखकर एक धीवर कन्या, उसकी माता, मार्ग में एक वृद्धा, लुड्डन, उसकी पत्नियां, हीर की सहेलियां एवं हीर सभी मोहित हो जाते है। वारिस में यह सम्मोहन परम्परागत धार्मिक एवं सामाजिक आचार की भी अवहेलना करता है और उसकी भौजाइयों मे भी परिलक्षित होता है।[1] परन्तु इसके अतिरिक्त रांझे में अन्य कोई भी असाधारणता आरोपित नहीं की गई। मानव-स्वभाव की कई दुर्बलताएं ही उसमें हैं। वारिस ने तो उसके व्यक्तित्व में अश्लीलता, उद्दण्डता एवं हठधर्मिता का मिश्रण कर दिया है। अन्य पात्र तो एक ओर, हीर के प्रति भी उसमें आवश्यक नम्रता एवं आदर का अभाव है। वह उसे अनेक बार तिरस्कारसूचक विशेषणों से सम्बोधित करता है।[2] उसका स्वभाव शंकायुक्त है। वह समझता है कि हीर भी ईमान छोड़ चली है,[3] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह हीर को छोड़ किसी अन्य नारी के प्रति आकर्षित हो गया। उसे अनेक अवसर मिलते है, वह उस ओर उत्साह नही दिखाता। वह तो उस मसूर का साथी है जो सूली पर झूल जाता है, परन्तु अपने मार्ग से विचलित नही होता—

भाबी खिज़ा दी रुत जां आर्ण पुन्नी भौर आसरे ते पए जालदे नीं।
सेउन बुलबुलां बूटिआं सुक्किआँ नूं, फेर फुल्ल लग्गन नाल डालदे नीं।
आसां जद कद उन्हां दे पास जाणा, जिहड़े महिरम असाडड़े हालदे नीं।

---

१. भरजाईआं अखिआ, 'रांझणां वे, असी थाऊं तेरे हल जोनी आंहां।
नाऊं लैना है जदों तूं जावणेदा, भर हंजूआं रत्त दिआं रोनीआं हां।
जान माल कुरबान है तुध उत्तों, अते आप भी चौखने होनीआं हां।
सानूं सबर करार ना आंवदा है, जिसे वेले दीआं तैथों विछुन्नियां हां।

—हीर वारिस, पृ० ८

२. जो कुझ विच रजाए दे हैई लिखिआ, मुहों वस्स न आखीए भैडिए्नी
सुंआ सक्खणां चाकनूं रखिओई मत्थे भौरीए—चंदरीए—बहरीए नी।

—वही, पृ० ७२

पृष्ठ ७६ एवं १६२ पर भी इसी प्रकार के अपशब्द है।

३. रांझे आखिआ सिआल गल गए सारे, अते हीर भी छड्ड ईमान चल्ली।

—वही, पृ० ७२

जिन्हा सूलीआं ते चढ़ लए झूटे, मनसूर होरीं सांझे नालदे नीं।
वारिस शाह जो गए सो नहीं मुड़दे, लोक असा थों आवणा भालदे नीं।'[1]

अहमद ने राझे को अत्यन्त साधारण प्राणी के रूप में चित्रित किया है। उसके स्वभाव मे गुण कम एवं दोष अधिक है। वह तो भाइयो का उपदेश भी नहीं सुनता उन्हें डाट देता है, उन्हें मगरूर तक कहता है—

तुसा वांग न कोई मगरूर होसी।[2]

उसके आचरण को सभी सदेह की दृष्टि से देखते है। भाई, बालनाथ योगी, खेड़ावासी, सहती सभी उसे दुश्चरित्र समझते है—जो स्त्रियों को घूरता है।[3] वह छली कपटी भी है। योगी बालनाथ से वह छलपूर्वक योग की दीक्षा लेता है। परन्तु दीक्षा के अनन्तर जब बालनाथ उसे सदाचरण की शिक्षा देता है तो रांझा एकदम बदल जाता है और उसे डांटने लगता है—

मै ता वासते हीर दे जोग लइआ होर कम्म ना सा कोई नाल तेरे।

× × ×

भट्ठ जोग बिभूत ले आपणीं वे, फेर कन्न दुरुस्त कर देअ मेरे।[4]

---

१. अर्थ—ऐ भावी, अब पतझड़ की ऋतु आ गई है, भ्रमर एक आशा से जल रहा है। बुलबुलें पुनः फूल लगने की आशा से सूखे पौधों पर बैठी रहती हैं। जब भी समय मिला, मैं उसी के पास जाऊँगा, जिसे मेरी इस दशा का ज्ञान है। सूली पर चढकर झूलने वाला मंसूर मेरा ही साथी है। वारिसशाह कहता है कि लोग तो मेरे आने की प्रतीक्षा करते हैं परन्तु जाने वाले लौट कर नही आते।

—हीर वारिस, पृ० ७६

२. हीर अहमद, पृ० १८६

३. भाई—तू तां त्रिम्मतां वल्ल निगाह करें।

—वही पृ० १८८

बालनाथ योगी—देख सोहणीआं त्रिम्मतां गांवदा है।

—हीर अहमद, पृ० २०६

खेडावासी—कोई आखदा झातिआं पांवदा है। —वही, पृ० २२१

× × ×

फिरे अत्तणी पांवदा झातिआं नी। —वही, पृ० २२२

सहती—घरी वडे दे झतियां पावना ऐं। —वही, पृ० २२६

× × ×

चोली पाक दामन नापाक जेहा। —वही, पृ० २२६

४. अर्थ—मैने तो हीर के लिए ही योग धारण किया। मुझे तेरे साथ और कोई काम न था। ऐ नाथ, यह व्यर्थ का योग एवं बिभूत (राख) लौटा ले और मेरे कान ठीक कर दे।

—वही, पृ० २१७

अयाली एवं हीर के पति के प्रति भी उसका व्यवहार अभद्रतापूर्ण है। उसके मन में इतनी खीज है कि वह सैदे को मार-पीट कर ही सन्तुष्ट होता है। दुखी सैदा कह ही देता है—

जोगी नहीं एह धाड़ खुदाइ दी है,
मसाँ मसाँ मैं आपणाँ जीउ छुडाया ।[1]

वह सत्य कहने का दावा करता हुआ भी कपट से काम लेता है।

रांझे के चरित्र में उस समय के जनसाधारण का चरित्र प्रतिबिम्बित होता है। उसमें भिन्नता लाने के लिए कुछ परम्परागत अलौकिक शक्तियों का आरोप किया गया है। दमोदर में पशु-पक्षी एवं भैंसे उसके पीछे-पीछे चलती है[2] और प्रार्थना से आग बुझ जाती है।[3] अहमद ने उसकी आह से आग लगाने की कल्पना भी कर ली।[4] उसमें चमत्कार करने की छोटी-मोटी शक्ति भी जोड़ दी। सहती थाल मे खांड, मलाई एवं पांच रुपये लेकर गई, रांझे ने उसे खांड, चावल एवं पाँच पैसो में बदल दिया। इन अलौकिक शक्तियों के कारण नायक कथा को कोई विशेष मोड़ देने मे समर्थ नही होता। रांझे की कोई भी अलौकिक शक्ति उसे हीर के साथ स्वतन्त्रता-पूर्वक विहार करने के योग्य नही बनाती। हीर को लेकर वह नगर से निकल गया, थका मांदा सो गया परन्तु जब हीर का पति अपने साथियों को लेकर सामने आया तो राझे की विवशता ही प्रधान है, अलौकिकता तो पता नही कहाँ जा छिपती है—

हीर कूकीआ राँझे नूं खबर होई हत्थौ सक्खणां उठिआ अभड़वाइआ।
मन भाँवदे घोड़े हथिआर नहीं पइआ मामलादेस सभो पराइआ।[5]

रांझे की यह विवशता उसे ले बैठी। इसी विवशता मे हमारी दूसरी कथा का नायक मिरजा भी मारा गया था। इससे शंकित होने की आवश्यकता नही कि भाग्य-हीन रांझे के पास कोई शस्त्र नही था, इसलिए पकड़ा गया। उसे तो पकड़ा जाना ही था, चाहे शस्त्र ही क्यों न होते। अलौकिक शक्ति कोई छोटा शस्त्र नही परन्तु, उसके

---

१. अर्थ—यह तो ईश्वर का कोप है, योगी नहीं। मैंने बड़ी कठिनाई से जान बचाई है।

—वही, पृ० २६६

२. आख दमोदर कीकण धारन गोपीआं करिशन बुलाईआं।

—हीर दमोदर, पृ० ६६

३. अग बुझी तद उते वेले रांझे सब लोक निवाए।

—वही, पृ० २१३

४. हीर अहमद, पृ० २७६

५. अर्थ—हीर चिल्लाई, रांझा को पता चला, परन्तु वह खाली हाथ था; घबराकर उठा। उसके पास मनभाते हथियार नही थे। यह एक अद्भुत समस्या थी। देश भी अपरिचित एवं बेगाना था।

—हीर अहमद, पृ० २७३

द्वारा स्वाभाविक चरित्र को बदला नहीं गया। चरित्र में कोई अतिप्राकृतता नही आ पाई। इस प्रकार का परिवर्तन पंजाबी रुचि के विरुद्ध है।

रांझे के ही समान महीवाल, पुन्नूं एवं मिरजा भी एक प्रेमी से अधिक कुछ नहीं। वे मानव है, उनमें किसी प्रकार की अतिमानवता के दर्शन करना व्यर्थ है। भिन्न भिन्न कवियों ने इनके जीवन के एक ही पक्ष को प्रस्तुत किया है। वे सच्चे प्रेमी है, एकनिष्ठ। उनके सामने एक ही समस्या है, नायिका के साथ प्रेम करने का अधिकार प्राप्त करना। वे संसार में और किसी सम्बन्ध की चिंता नहीं करते, परन्तु प्रेम के अधिकार को छोड़ना अपमान समझते है। इसके लिए वे बड़े से बड़ा जोखिम उठाते है। वे जानते है कि इस जोखिम का अर्थ केवल आत्मदाह या आत्महत्या है परन्तु प्रेमी प्रेमिका के बिना रह कैसे सकता है? हीर की मृत्यु का संदेश-पत्र देखकर रांझे के प्राण निकल गए।[1] सोहणीं की पुकार सुनकर महीवाल तूफानी नदी में कूद पड़ा—

दोवें हत्थ पसार पुकार कीती, मिल जाह मैनूं मेरे हान बेली।
अचन चेत आहा दूरों नज़र पिआ, जिन्हाँ बेलीआँदा निगाहबान बेली।
महीवाल मारे छाल विच नंदे, मूहों आखदा मैं कुरबान बेली।
गले लग्ग मिले बुझी अग्ग दिल दी, महीवाल दित्ती ओवें जान बेली।[2]

पुन्नूं के भाई सस्सी के घर तो उसे मूर्च्छित अवस्था में ले गए परन्तु जब उसे होश आया तो वह भागा। भाइयों ने रोका, मां-बाप की दुर्दशा का स्मरण कराया परन्तु व्यर्थ—

हिजरी अग्ग पुन्नूं तन भड़की, तोड़ जवाब सुणावे।
कैंदी माओं पिता पुत कंदे, नाल मुइआँ मर जावे।
जेही नाल असाडे कीती, पेश तुसाडे आवे।
हाशम बाझ सस्सी नहीं दूजा, जे रब्ब फेर मिलावे।[3]

---

१. (क) हीर अहमद पृ० २८४
(ख) हीर वारिस, पृ० २०७

२. अर्थ—महीवाल ने दोनों हाथ उठाकर पुकार की, ऐ मित्र, मुझे मिल जा। वह जिस मित्र की प्रतीक्षा में था वह दूर से ही मूर्च्छित दिखाई दिया। मुंह से 'मैं कुरबान' बोलते हुए उसने नदी में छलांग लगा दी। दोनों गले मिले हृदय की आग शान्त हुई। इस प्रकार महीवाल ने बलिदान दिया।
—सोहणीं महीवाल (फज़लशाह) पृ० ४६

२. अर्थ—पुन्नूं के शरीर में विरह की अग्नि प्रज्वलित हो गई, वह मुँहतोड़ उत्तर देने लगा। कौन किसी का माँ-बाप या पिता-पुत्र है? मरने के साथ सब कुछ समाप्त हो जाता है। तुम लोगों ने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है, तुम्हारे साथ भी वैसा ही हो। हाशम कवि कहता है कि यदि ईश्वर फिर मिला दे तो सस्सी के बिना मेरा कोई नहीं।
—हाशम रचनावली, पृ० १०३

और वह सस्सी की खोज में निकल पड़ा। सच है—

हाशम कौण फड़े जिदबाज़ा (जिन्हाँ) जान इशक विच हारी।[1]

और पून्नू सस्सी की कबर पर गिर उसी मे समा गया—

सुण के होत जिमीं पुर डिगिआ खाइ कलेजे कीना।
खुल्ह गई गोर पिआ विच्च कबरे फेर मिले दिल जानी।[2]

प्रेम की बलिवेदी पर स्त्री एवं पुरुष समान रूप से बलिदान होते है। यह काम न केवल स्त्रियों का है और न केवल पुरुषों का, परन्तु इन रचनाओं मे नायको ने इसमे अधिक भाग लिया है।

लुत्फअली एवं मियां मुहम्मद बख्श के 'सैफुलमुलूक' के नायक का चरित्र तो हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायकों के समानान्तर ही है। उसमे विद्वत्ता, सौन्दर्य, वीरता, या साहस, किसी भी वस्तु की कमी नहीं। अपनी विद्वत्ता मे तो वह हिन्दी प्रेमाख्यानो के नायकों से भी बढ़ गया। उसके ज्ञान की विशालता देखिए—

बेद-अखरी गुरमुखी हिन्दी हरफ शिणास सभनाँ दा।
डोगरी अखर खतफरोगी अंगरेजी होर दूजे।
उर्दू खत बंगाली दखणी सारे लिखें पूजे।
सुरिआनी ईरानी तुरकी यूनानी और ईराकी।
सिक्खे खत जबानाँ सभे कुझ न रक्खे बाकी।[3]

वह भी भाग्य में ही प्रेम लिखा कर लाया था। ज्योतिषी उसी प्रकार की भविष्यवाणी इसके विषय में भी करते हैं—

पर हिक रास ते पहिली उमरे गरदिश देह सितारा।
चटक इशक दी नाल इस देसों सफर करेसी भारा।[4]

उन्हीं के समान यह धैर्य एवं उत्साह को हाथ से जाने नही देता। पहाड़ियों से संघर्ष करता है, जगलियों से जूझता है, देव-राक्षसों को मारता है। दैवी आपत्तियों को सहता है। कही पर शौर्य और कही पर भाग्य सहायता करता है। नायिका को प्राप्त करने के लिये ही उसके सम्पूर्ण बल-वैभव का उपयोग था।

'यूसफ जुलेखा' का नायक यूसफ भी उसी रूप में चित्रित किया गया है, जिस रूप मे समाननामा हिन्दी के प्रेमाख्यान मे। यूसफ का व्यक्तित्व इन सबसें पृथक् है। उसके जीवन मे प्रेम का स्थान तो है ही नही।

---

१. हाशम रचनावली, पृ० १०३

२. (चरवाहे की बातें सुनकर हृदय में, तीर लगने) से होत पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह कबर फट गई और उसी में गिर कर प्रेमिका से मिल गया।

—वही, पृ० १०४

३. सैफुलमुलूक, पृ० १०४-१०५

४. सैफुलमुलूक, पृ० १०३

मसनवी सैफुलमुलूक में भी (पृष्ठ११६) ज्योतिषी ऐसी ही भविष्यवाणी करता है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों के नायकों का यह संकल्प एवं रूप अठाहरवी शताब्दी के अन्त मे आकर बदल जाता है। इस काल में अधिकांश रचनाएं फारसी से अनूदित होकर पंजाबी में आने लगी। इनमें नायक हिन्दी के प्रेमाख्यानों के समान लम्बी-लम्बी यात्राएं करते है, परन्तु धैर्य नही हारते। उसी प्रकार नायक की सहायता के लिए जिन, परियां, जादुई अंगूठी आदि पहुंच जाते है। इनका पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य में विशेष महत्त्व नहीं। कथालोचन के प्रकरण में इस विषय पर विचार किया जा चुका है।

तुलना

हिन्दी एवं पंजाबी प्रेमाख्यानों के नायकों में केवल एक ही समानता है, वह है व्यक्तित्व की प्रेममयता। दोनों ही ओर एक मात्र प्रेम मे ही उनकी रुचि है, परन्तु जैसे कि पीछे स्पष्ट किया जा चुका है, प्रेम के विशाल क्षेत्र में दोनों की दिशाएं भिन्न हैं। एक ओर बहुपत्नीत्व है, दूसरी ओर एक नारी को भी पत्नी बनाना समस्या है। दूसरी नारी के विषय में तो पंजाबी नायक सोचते भी नहीं। विवाह नाम के किसी संस्कार का सौभाग्य उन्हें मिलता ही नहीं। यदि वह हो जाता है, जैसे कि सस्सी एवं पुन्नू के विषय में हुआ, तो उसे किसी ने निभने नही दिया। कई बार तो पंजाबी प्रेमाख्यानों के नायक क्षणिक प्राप्ति से ही पूर्ण संतोष लाभ कर लेते है। मिरज़ा साहिबां को प्राप्त कर निश्चिन्त हो जाता है, यही दशा रांझे की भी है। वे नायिका के बार-बार जगाने पर भी जागते नहीं। उन्हें पता है कि उनकी यह प्राप्ति क्षण-भंगुर है। समाज इसमें अवश्य बाधक बनेगा। अतः वे अपने प्राप्य के भोग से संतुष्ट एवं आश्वस्त होकर सो जाते हैं।[1] अहमद ने तो राझे के मन में छिपे इन उद्गारों को अत्यन्त स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया है —

मेरी अक्खिआँ नींद चरोकणीं है, कदम ज़रा न चलदा मगज़ भारी।
मन्हें करदी तो जाई दराज़ होइआ, नीवीं घत्त के पास बैठी विचारी।[2]

दोनों ही भाषाओं के प्रेमाख्यानों के नायकों मे येह अद्भुत वैषम्य उनके क्षेत्रीय एवं सामाजिक जीवन का वैषम्य है। एक ओर राजाओं के विलास का चित्र है, दूसरी ओर जनसाधारण में व्याप्त काम-पिपासा का प्रतिबिम्ब। पंजाबी नायक जनसाधारण के प्रतिनिधि हैं, एवं हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायक राजन्य वर्ग के। उन कवियों के श्रोता जनसाधारण थे, इनके अध्येता सम्भ्रान्त जन। उनमें उद्दण्डता है, इनमें विनय। भाग्य उनका विरोधी है, जबकि इनकी मुट्ठी में।

---

१. (क) सिर हीर दे पट्टां ते रख सुत्ता। —हीर वारिस, पृ० १६६
(ख) जंड दे हेठां जट्टा सौं रिहा—लाल दुशाला ताण।
—वर्वाहा बोल, (मिरज़ा साहिबां-पीलू) पृ० १०८

२. अर्थ—मेरी आखें चिरकाल से निद्रा से भरी हुई हैं। मेरा मस्तिष्क भारी है एवं पैर उठते नही। हीर मना करती रही परन्तु रांझा लेट गया। बेचारी हीर सिर झुकाए पास बैठी रही।
—हीर अहमद, पृ० २७३

हिंदी के प्रेमाख्यानों में एक भी ऐसा सत्यनिष्ठ प्रेमी नही, जो प्रेमिका की मृत्यु के बाद मर गया हो। 'छिताईचरित' एवं 'माधवानल कामकंदला' की कथा मे प्रेम की परीक्षा में इस प्रकार की योजना अवश्य है परन्तु वास्तव में मरता कोई भी नहीं। वहाँ तो मृत व्यक्तियों को जिलाने के लिए कोई तांत्रिक[1] या अमृत सुलभ है—

ततखिणी अमृत अणियु राउ पडिउ जिहाँ शोकि ॥
माधव मुखि मुंकी करी बइठउ कीधउ बंभ ॥[2]

इसी प्रकार की योजना आलम ने भी की है—

सुधा पियत माधौनल जागा ।
आये प्रान सुन्न सब भागा ॥[3]

रांझा, महीवाल एवं पुन्नू अपनी प्रेयसियों के वियोग में ही प्राण-त्याग करते हैं। सीस उतार कर प्रेमगृह में निवास के लिए चले जाते है। यही कारण है कि लोक-मानस में जितनी गहरी पैठ रांझा-हीर, सोहणीं-महीवाल एवं सस्सी-पुन्नू की हो सकती है। उतनी रतनसेन-पद्मावती, राजकुंवर-मृगावती, मनोहर-मधुमालती या हंस-जवाहर की नहीं। हिन्दी प्रेमाख्यानों मे वियोग में मरने का कार्य नारियों का है, वे ही सती होती है परन्तु पंजाबी में नारी मरती है और तत्पश्चात् असह्य वेदना के कारण पुरुष प्राण त्याग देता है ।

इनमें से किसी-किसी को ही संयोग का निर्बाध अवसर मिला । समाज एवं भाग्य की बाधाएं सहते हुए भी ये निष्ठा का त्याग नही करते। न तो अप्सराओ के सौदर्य पर मुग्ध होते है और न इन्द्राणियों से प्रभावित । इनके सामने केवल एक ही प्रतिमा रहती है। वही इनका बल है, उसी के लिए ये जीते एवं मरते है। अत: यह कहना उचित ही है कि पंजाबी प्रेमाख्यानों के नायक यथार्थ जीवन एवं जन सामान्य के अधिक समीप है। वे सच्चे प्रेमी है। प्रेम ही उनका सर्वस्व है, उन्हे और कोई चिन्ता नहीं। उनमें कई अवगुण हैं परन्तु प्रेम का गुण सब को ढांप लेता है। इसके विपरीत हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायकों का जीवन काल्पनिक एवं अतिमानवीय है, उनका व्यक्तित्व दैवी है। एक ओर अलौकिकता है दूसरी ओर यथार्थ । सम्भवत: इसीलिए पंजाबी के कवि मोहनसिंह ने अपनी एक कविता में दोनों की तुलना करते हुए कहा है:

गंग बनाये देवते ते जमन देवियाँ,
आशिक बनाएं सिरफ पाणीं चनाब दा ॥

दोनों ही भाषाओं में यूसफ, सैफुलमुलूक, चंदरबदन कामरूप जैसे कुछ अन्य नायक भी मिलते है। इनको सीधे फारसी साहित्य से ग्रहण किया गया है और इनके चरित्रो मे अलौकिकता के अतिरिक्त कुछ भी उल्लेखनीय नहीं। दोनों ही भाषाओं में इनमें कोई अन्तर भी प्रतीत नही होता। अत: इन पर विचार नही किया गया।

---

१. छिताईचरित में राघवचेतन तन्त्र-बल से सौरसी को जीवित करता है।
२. माधवनल कामकंदला प्रबन्ध (गणपति), पृ० ३०७
३. माधवानल कामकंदला (आलम), हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह, पृ० २२१

नायिकाओं का चरित्रानुशीलन

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायिका

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायकों के समान नायिकाएं भी राजकुल की युवती कुमारिकाएं ही हैं। चंदा, मृगावती, छिताई, पद्मावती, मधुमालती, रूपमंजरी, दमयन्ती रुक्मिणी, रंभा (रसरतन), चित्रावली, इन्द्रावती सभी का जन्म राजा महाराजाओं के घर हुआ और उनका पालन-पोषण अत्यन्त समृद्ध वातावरण में हुआ । प्रायः स्वप्न कदाचित् साक्षात् दर्शन या गुण-श्रवण के द्वारा इनके मन में किसी राजकुमार के प्रति प्रेम का उदय होता है और चित्र-दर्शन के द्वारा अनेकशः उसमें तीव्रता आती है । वह राजकुमार भी इनके सौंदर्य पर मुग्ध होकर इनकी खोज में घर से निकल पड़ता है। इनमें सौंदर्य का आभास प्रायः गर्भावस्था से ही आरम्भ हो जाता है ।[1] युवावस्था में नखशिख-वर्णन की काव्य-रूढ़ि के द्वारा इनके अलौकिक सौंदर्य एवं उसके मोहक प्रभाव का सविस्तार वर्णन सभी रचनाओं में उपलब्ध हो जाता है । इस अद्वितीय सौन्दर्य को सुनकर स्वप्न, चित्र अथवा प्रत्यक्ष में देखने वाला प्रायः मूर्च्छित हो जाता है ।[2] पुरुष ही नहीं नारियां भी इनके सौन्दर्य पर मोहित हो जाती हैं । छिताई के रूप को चित्र में देखकर रानी हयवती उसासें लेने लगी--

तखिन चित्र दिखाए तासू । देखि रूप सो लेइ उसासू ।।
हयवती हरमु हहइ करि भाउ । जीयति छिताई मोहि दिखाउ ।।[3]

सौंदर्य के ही अनुरूप इनका शील भी प्रशंसनीय है। ये अपनी सखियों के साथ मृदुल व्यवहार करती है । मायके में स्वच्छन्दतापूर्वक घूमती है। मृगावती एवं पद्मावती रंभा आदि सखियों के संग मानसरोवर में स्नान करने जाती हैं और वहीं जल-क्रीड़ा करती है तो मधुमालती भी अपनी माता के साथ जाकर सखी प्रेमा के साहचर्य में स्वतत्रतापूर्वक घूमती थी । छिताई, दमयन्ती, उषा एवं रूपमंजरी सभी निश्शंक विहार करती हैं । अपनी सखियों के साथ इनका व्यवहार अत्यन्त मधुर एवं सौख्यपूर्ण

---

१. (क) छिताई वार्ता, पृ० ६
(ख) पदमावत, पृ० ५०
(ग) रसरतन, पृ० २६
(घ) नलदमन, पृ० ५२
२. (क) चांदायन, बाजिर पृ० ५२, लोरक पृ० १४६
(ख) छिताई चरित, चित्रकार पृ० १८, अलाउद्दीन पृ० ३०
(ग) मृगावती, पृ० ३४
(घ) पदमावत, रतनसेन पृष्ठ ११५, राघव चेतन पृ० ४६५, अलाउद्दीन पृ० ५०५
(ङ) मधुमालती, पृ० ६३
३. छिताई चरित, पृ० ३०

है। प्रेमोदय के अनन्तर यह स्वच्छन्दता एवं हास-परिहास अत्यन्त शोचनीय अवस्था में बदल जाते है और इनकी सखियां इन्हें धैर्य-धारण का परामर्श देती है।

अपने प्रेमियों की ही भांति ये भी कुशाग्र-बुद्धि होती हैं एवं पठन-पाठन में विशेष रुचि लेती है। पदमावती अपने प्रिय शुक हीरामन के साथ, बैठ वेदशास्त्र पढती थी [1] लि' की वे,रुक्मिणी ने भी व्याकरण, पुराण, स्मृति, शास्त्र, वेद-वेदांगों का विचारपूर्वक अध्ययन किया तभी तो उसे पता चला कि इस संसार में भगवान् ही श्रेष्ठ एवं प्राप्तव्य है।

व्याकरण पुराण समृति सासत्र विधि वेदच्यारि खट अंग विचार।
जाणि चतुरदस चौसठि जाणी अनंत-अनंत तसु मधि अधिकार।[2]

'जान' की रूपमंजरी तो पिगल, अमरकोश, महाभारत आदि में प्रवीण थी।[3]

'नलदमन' की दमयन्ती को सुदिन विचार कर पांच वर्ष की अवस्था में पढ़ने बैठाया गया। पडित ने कुछ ही दिन पढ़ाया फिर तो वह बिना पढ़े ही सब अर्थ जानने लगी और इतनी विदुषी हो गई कि—

पुनि पंडित जिन्ह अरथ न पावै। खोज ज्ञान सो ताहि बतावै।।[4]

प्रेमी के प्रति कई नायिकाओं के स्वभाव में प्रारम्भिक कठोरता दिखाई देती है। 'मृगावती', इसका विशेष उदाहरण है। मृगावती पर्याप्त समय तक राजकुंवर के साथ रहकर उसे छोड़कर चली गई।[5] पदमावती भी कुछ कठोर है।[6] चंदा ने भी लोरक के रस्से को कई बार नीचे फैंक कर उसे हतोत्साहित किया[7] और बाद में भी उसे खूब जांचा। उनकी यह कठोरता बड़ी अस्वाभाविक लगती है क्योंकि ये

१. रहहि एक सँग दोऊ, पढहि सास्तर वेद।
ब्रह्मा सीस डोलावही, सुनत लाग तस भेद।।

—पदमावत, पृ० ५४

२ वेलि क्रिसन रुकमणी री, सं० डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित पृ० १४४

३. पिंगल अमर व्याकरन भरथु, सब ग्रंथन के भाषै अरथु।

—हिन्दी सूफी कवि और काव्य पृ० १८६ से उद्धृत

४. नलदमन, पृ० ५४

५. वस्तु जो पावइ सौंधे मोला। ता कर मरम न जानइ भोला।।
येहि कारन हौ जाउं उड़ाई। कहिहु कुंवर सेउं आवइ धाई।।

—मृगावती, पृ० ७७

६. तभी मूर्च्छित रतनसेन को छोड़ कर चली जाती है।

—पदमावत पृ० १८७

७. चांदायन, पृ० १८५-१८६

स्वय ही उन प्रेमियों को मिलने के लिए उत्सुक रहती है ।[1] अतः कठोरता इनके स्वभाव की मुख्य विशेषता नही है । ये हृदय से प्रेम-परायणा है । मधुमालती (मंझन) की नायिका अत्यन्त स्नेहशीला है । कामकंदला, रुक्मिणी, रंभा, चित्रावली सभी पूर्वराग के उपरान्त विरह-वेदना की असह्यता से आक्रान्त हो जाती है परन्तु इन नायिकाओं का चरित्र नायकों की ही भाँति एकांगी है । इनके चरित्र में एक ही 'टाइप' के गुण हैं, वैविध्य नही । प्रेमी को प्राप्त करने के लिए ये कोई विशेष यत्न नहीं करती । केवल विलाप द्वारा विरह-निवेदन से ही इनके कर्त्तव्य की इतिश्री हो जाती है । जिन रचनाओ में नायिकाओं के चरित्र प्रधान हैं वहां भी वे, अधिक से अधिक दूत भेजकर नायक के सम्मुख अपनी विवशता का संदेश भिजवाती हैं । 'बीसलदेवरासो' की राजमती, 'मैनासत' की मैना, 'वेलि' की रुक्मिणी—सभी इसी प्रकार की नायिकाएं है । गुरदास गणी की हीर, 'सूर रंभावत' की रंभा एवं 'ज्ञानदीप' की सुरज्ञानी अवश्य अपवाद है ।

इनका स्वभाव यद्यपि कोमल है परन्तु कभी कभी सपत्नियों से इनका झगड़ा हो जाता है । 'चंदायन', 'ढोलामारु रा दूहा', 'पदमावत' आदि कुछ रचनाओं मे सपत्नियों की कलह का वर्णन है । डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पदमावत' की भूमिका में इसके अध्यात्मपरक महत्त्व का संकेत किया है । उन्होंने लिखा है कि "हठयोगियों की साधना का उद्देश्य होता है चंद्र-सूर्य, इड़ा-पिगला, वाम-दक्षिण नाड़ियों को वश में करके सिद्धि प्राप्त करना अपने प्रतीकवाद का और संवर्द्धन करते हुए इस जोड़ी को ही कवि ने पदमावती-नागमती माना है । इस पृष्ठ-भूमि में यह समझा जा सकता है कि जायसी ने इन दोहों में पदमावती नागमती के सौतिया डाह का लम्बा वर्णन क्यो कियों है। एक ओर तो शृंगार पक्ष में यह सौतिया डाह का पल्लवित वर्णन है दूसरी ओर इसमें चन्द्र-सूर्य, इड़ा-पिंगला के प्रतीकवाद का भी पूरा समर्थन है ।"[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने एक को जागतिक जीवन का एवं दूसरी को पारमार्थिक जीवन का प्रतीक मानते हुए कहा है कि "प्रत्येक साधक के जीवन में इन दोनों के बीच द्वन्द्व उपस्थित होता रहता है, जिस सपत्नी-ईर्ष्या तथा कलह का बड़ी रुचि के साथ दो विवाहों वाली रचनाओं चंदायन, मृगावती तथा पदमावती में वर्णन किया गया है, वह इसी द्वन्द्व का सांकेतिक रूप है ।"[3] परन्तु सिद्धों

१. (क) दइय बिधाता बिनवउं सीसु नाइ कर जोरि, परा फांद पुनि मोरें जाइ बरहु जिनि तोरि ।
—चांदायन, पृ० १८५

(ख) किछु उपकार करइ जो पारहु, प्रान पयान करत रे संभारहु ।
—मृगावती, पृ० १६२

(ग) दसईं अवस्था असि मोहि भारी ।
—पदमावत, पृ० २४३

२. पदमावत, प्राक्कथन, पृ० ४०-४१

३. मृगावती भूमिका, २६

की जीवन-विधि से प्राप्त यह प्रतीक इतना दुरूह था कि इसका अधिक प्रचार न हो सका और यह साहित्यिक रूढ़ि मात्र भी न रह सका। मृगावती, चित्रावली, ज्ञानदीप, रसरतन, पुहपावती सर्वत्र ये नायिकाएं एवं उपनायिकाए आपस मे मिलजुलकर रहती है। जिनमें यह कलह वर्णित है वहाँ भी ये प्रसंग आरोपित लगते है और सास अथवा नायक की मध्यस्थता से शान्त हो जाते है।

इस सन्दर्भ में मृगावतीकार की ये पंक्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिनमे किसी प्रतीक की अपेक्षा पारिवारिक वातावरण ही प्रधान है—

मुंह तौ हंसी मिलीं बिनु साऊ । सवति साल उर जाइ न काऊ ।
खिन एक बैठि रहीं एक ठाईं, फुनि उठि घर घर जाहिं ।
राजकुंअर रस मान रलि, अहनिसि भोग कराहिं ॥[1]

अपने नायको के प्रति इन नारियों की इतनी अगाध श्रद्धा एवं विश्वास है कि उनके सम्पर्क से विष को भी अमृत मानती है—

जिह रातौ मेरो पीव हौं दासी तिहि नारि की ।
करौ निछावर जीव जब निरखौ संजोग सुण ॥[2]

जिसके संग से प्रियतम को सुख मिलता है, वह तो मेरे कंचन रूपी मन में जड़ित नग के समान शोभित है—

जिंहि रस रंग पीउ अनुरागा । मोचित मन कंचनु नग लागा ॥[3]

ये नायिकाएं प्रेम में अडिग है, अपने नायकों से मिलन के लिए उत्कंठित। उस मार्ग में कोई बाधा प्रतीत होने पर प्राण त्याग करने के लिए उत्सुक हो जाती है। दामो रचित 'लखमसेन पदमावती कथा' मे पदमावती सिद्ध योगी से स्पष्ट कहती है—

लखमसेन दरसण देखालि, नहि तर मरू हुतासन झालि ।[4]

रतरसेन की सूली की घोषणा सुनकर पदमावती भी उसके साथ मरने की बात सोचती है।[5] अपने प्रेमी ज्ञानदीप के वियोग में निराश होकर देवयानी एव सुरज्ञानी चिता मे भस्म होने के लिए बैठ जाती है। सौभाग्य ही समझिए कि अग्नि उन्हे

---

१. मृगावती, पृ० ३४८
२. रसरन, पृ० २१४
३. वही पृ० २२०
४. लखमसेन पदमावती कथा, सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० ४५
५. अब जौ जोगि मरै मोहि नेहा। ओहि मोहि साथ धरति गॅगनेहा ॥
रहै तौ करौ जरम भरि सेवा। चलै तौ यह जिउ साथ परेवा ॥

—पदमावत, पृ० २४५

भस्म न कर सकी।[1] अपना विवाह दूसरे के साथ निश्चित होते देख पुहपावती (दुखहरनदास) आत्महत्या के लिए तैयार हो जाती है।

इनका सतीत्व अखण्डित है। पति की मृत्यु पर ये आग में आत्मदाह कर लेती हैं। फिर भी इनके सतीत्व की बारम्बार परीक्षा की जाती है। दूतियों द्वारा इनकी सत्यनिष्ठा को डिगाने के असफल प्रयत्नों की सहायता से इनके सतीत्व को भास्वर किया गया है। 'बीसलदेव रासो' में राजमती कुटनी को डांटती है। अपने जेठ को बुलाने का भय दिखाती है। जिह्वा एव ओष्ठ कटवाने को कहती है।[2] 'पदमावत' में भी कुटनी की दुर्दशा होती है।[3] 'छिताई चरित' में दूती के समझाने का जब छिताई पर कोई प्रभाव नही पड़ता तो वह स्वीकार करती है कि तूने सन्तों को भी नीचा दिखा दिया है।[4] 'मैनासत' में तो दूती को सिर मुंडा, काले पीले टीके कर, गधे पर चढ़ा सारे नगर में घुमाया एव गगा पार निकाल दिया।[5] कुछ विद्वानों का विचार है कि 'मुसलमान आक्रमणकारियों के दुर्दम शिकजे में भी सत्, लज्जा और पवित्रता की रक्षा के लिए हिन्दुओं को शक्ति-सम्पन्न करने के लिए इन कथाओं में सत् को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।'[6] "ईसवी तेरहवी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक सत् संज्ञक रचनाओं की जो बाढ़ आई थी, उसके मूल में भी राष्ट्र की यह प्रतिरोध भावना थी। प्राण देकर भी सतीत्व की रक्षा का पाठ उन विषम परिस्थितियों के कारण ही पढ़ाया जा रहा था।[7] हिन्दू-मुसलमान प्रतिरोध की यह परिणति उचित प्रतीत नही होती। अनेक मुसलमान एवं हिन्दू प्रेमाख्यानों मे समान रूप से इस घटना की योजना देखकर यह कहना ही उचित है कि उस युग में नारी को पतिपरक बनाने के लिए, पति-प्रतिष्ठा को महत्त्व प्रदान करने के लिए इस प्रकार के प्रसंगों की योजना की जाती रही है।

---

१. दुअइ हंसहि भीतर होइ बाला। जरे जियत अब पावक पाला॥
जो पहले जिव आछत जरई। अगिनि जरै नहीं जलमंह परई॥

× × ×

बहु अचरज यह जरै न हुतासन। बैठी दुअइ गहे थिर आसन॥

—ज्ञानदीप (हस्तलिखित)

२. बीसलदेव रासो, पृ० ६६

३. पदमावत, पृ० ६५१

४. छिताई चरित, पृ० ८८

५. धरि झोटा कुटनी लतराई।
मूंड मुंडाई केस दुरि कीने। कारे पीरे टीके दीने॥
गदह पलानि कै आनि चढ़ाई। हाट-हाट सब नगर फिराई॥
कुटनी देश निकारी कीन्ही गंगा पार।

—मैनासत, सं० हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० २०६

६. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १६२

७. मैनासत, भूमिका, पृ० ६३

संभवतः उस समय के मुसलमान शासकों की नारी-लोलुपता एवं तदर्थ युद्धों की सफलता-असफलता पर भी मनोरथ-सिद्धि न होने का संकेत कर ये लोग इन शासकों को प्रेम-मार्ग मे अहिंसा-वृत्ति अपनाने की शिक्षा देने के लिए इस प्रकार की रचनाएं करते रहे है। बाद में तो यह एक काव्य-रूढ़ि ही बन गई थी।

सतीत्व नारी का महत्त्वपूर्ण गुण है और प्रेम के प्रसंग में इसका सर्वोच्च स्थान है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में अधिकांश नायिकाएं सत्यनिष्ठ ही चित्रित की गई है। 'चंदायन' की चंदा यद्यपि विवाहिता है परन्तु वह अक्षत योनि है। उसकी तो समस्या ही यह है कि उसका पति उसकी सेज पर नही आता।[१] कामकंदला वेश्या होती हुई भी सती है और राजा विक्रम को अपने सतीत्व का प्रमाण देती है, वह कहती है—

कइ माधव रस माणसिइ, कइ प्रलयानल पूजि।[२]

'सदयवत्स सावलिंगा' में यद्यपि नायिका एक असामाजिक सी प्रतिज्ञा करती है जिसके अनुसार अन्य व्यक्ति से विवाह होने पर भी सदयवत्स से ही प्रथम रमण का संकल्प लेती है परन्तु अन्य पुरुष से उसके रमण का समय नही आता तथा अद्भुत कौशल से उसके सतीत्व की रक्षा हो जाती है।[3] जान के 'ग्रन्थ बुद्धिसागर' में नायिका कई हाथों मे बिकने पर भी अपने सतीत्व से नहीं गिरती।[४] ये शरीर-सुख की अपेक्षा सतीत्व को महत्वपूर्ण मानती हैं।[५] अपने प्रेमियो को भी विवाह से पूर्व ये प्रायः सुरत-क्रिया की अनुमति नही देतीं और शपथपूर्वक इस भाव का निषेध कर देती है।[६] कुछ रचनाओं मे विवाह से पूर्व भी प्रेमी के साथ सर्वभावेन अनुरक्ति को उचित

१. बरिसु दिवस भा चाँद वियाहें। सूरु न देखी आछिइ छाहें॥

× × ×

एकउ साधि न हिएं बुझानी। मुइउं पियास नाक लहि पानी॥

—चांदायन, पृ० ४२।

२. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध पृ० ३०३

३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ६४-६५

४. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, २६५-२६६

५. (क) एक तिल सुख के कारन, सरबस कौन नसाउ।
तिरिया थोरे अकरम जग अपकीरति पाउ॥

—मधुमालती, पृ० १०४

(ख) सुख तिल एक जनम कौ पापू। तिहि लगि कौन बिटारै आपू॥

—मैनासत, पृ० १८६

६. (क) रस कै बात बर सेउं नहिं होई। रस जो अहि रस सेउ भलि सोई॥

—मृगावती, पृ० ६७

(ख) मधुमालती, पृ० १०६

(ग) चित्रावली, पृ० १५५

मानकर भोग-विलास किया जाता है। परन्तु सतीत्व इन नायिकाओं का विशिष्ट गुण है और ये उसकी रक्षा सयत्न करती है।

इन विशेष गुणों के अतिरिक्त हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं मे कुछ अन्य गुणों के संकेत भी यत्र तत्र उपलब्ध हो जाते है। जैसे पदमावती की संग्रहशीलता एव बुद्धिमत्ता; मृगावती की शासन-निपुणता, दमयन्ती की चतुरता आदि।

'ज्ञानदीप' की देवयानी, 'सूररंभावत' की रंभा 'कथा हीर रांझनि की' की हीर अन्य नायिकाओं से भिन्न है। ये अपने प्रेमियों को प्राप्त करने के लिए सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। 'फूलबन' की समनबर भी इन्ही की कोटि में गिनी जा सकती है।

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानो की नायिकाएं राजपरिवारों से संबधित सुन्दरी युवतियाँ है जो अपने प्रेमी से एकनिष्ठ प्रेम करती हैं। उनका स्वभाव मृदु एवं कोमल है। वे पारिवारिक लज्जा का निर्वाह करती हुई भी अपने साथ अन्याय विचार से चिंतित हो जाती है। यद्यपि उनमें नारी के कुछ अन्य गुणों की चर्चा भी यत्र तत्र मिल जाती है परन्तु अधिकांश में उनका चरित्र एक पक्षीय ही है।

नायिकाओं की प्रतीकात्मकता—मुसलमान कवियों की रचनाओं के लिए 'सूफी प्रेमाख्यान' शब्द का प्रयोग अति प्रसिद्ध है और विद्वानों के मस्तिष्क में यह धारणा दृढ़ हो चुकी है कि इन रचनाओं में नायिका ईश्वर का प्रतीक है। इसे प्रमाणित करने के लिए कवियों द्वारा वर्णित विस्तृत एवं अतिशयोक्तिपूर्ण नखशिख प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।[१] नायिकाओं के अलौकिक सौंदर्य का विश्लेषण करते समय यह स्पष्ट किया गया है कि यह केवल मुसलमान कवियों का ही वैशिष्ट्य नहीं है, हिन्दू कवियों ने भी उनके नखशिख में अतिशयोक्तिपूर्ण अलौकिकता लाने का यत्न किया है। आगे यह भी देखने को मिलेगा कि नायिकाए ही नही नायक भी अलौकिक सौन्दर्याविष्टित है।

इन नायिकाओं को ईश्वर का प्रतीक मान लेने पर अनेक समस्याएं उभर कर सामने आती है। उदाहरण स्वरूप नायकों से मिलने के लिए इन की आतुरता को लें। चित्रावली सुजान को जो पाती भेजती है, उसमें बारह मास की व्यथा का अति मार्मिक वर्णन है।[२] अपने प्रेमी को देखकर वह बेसुध हो कर गिर पड़ती है।

देखत मुख सुधि बुधि सब हरी, होय अचेत पुहुमी खखि परि ॥[३]

अकेली चित्रावली ही नही, इन्द्रावती की भी यही दशा होती है।

---

१. सूफी काव्य विमर्श, डॉ० श्याममनोहर पांडेय, पृ० २४-२६, ७६

२ चित्रावली, पृ० १६५-१७७

३. वही १६५

प्यारे दूर न जानेहु मोंहीं । पावत हौं घट भीतर तोंहीं ।।
मूंदे नैन तुहीं मोहीं सूझा । देइ मूल मे तुम कहाँ बूझा ।।
तुमहीं देह धरे सब ठाऊं । रवि ससि नीरज कुमुदनि नाऊं ।।[1]

अथवा—**हौं अजान औ निर्गुनी, ज्ञानरूप वह पीउ ।**
हाथ छूछ गुन ज्ञान सों, सखी सोच महं जीउ ।
मोंहि गुन बुद्ध सखी है नाहीं । यहु नित सोचत हौं मनमाहीं ।।[2]

'सूफी साधना का कोश' कहे जाने वाले 'पदमावत' में भी ऐसी त्रुटियाँ मिलती है। अन्यत्र[3] नागमती, पदमावती एवं रत्नसेन के प्रेम की प्रतीकात्मकता पर विचारकर उसकी असंगतियाँ स्पष्ट की गई है । उसके अतिरिक्त यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि साध्य ईश्वर-स्वरूपा पदमावती रत्नसेन को बरात के समय आते हुए देखकर आनन्दातिरेक से मूर्च्छित हो जाती है—

अंग अंग सब हुलसे तेउ कतहूँ न समाइ ।
ठाँवहिं ठाँव बिमोहा गर मुरूछा गति आइ ।।
सखि सँभारि पियावहिं पानी । राजकुँवरि काहे कुँमिलानी ।।
हम तो तोहि देखावा पीऊ, तूँ मुरझानि कैस भा जीऊ ।।[4]

उस समय समग्रसृष्टि रत्नसेन के रूप से दमक रही थी—

वह उजियार जगत उपराहीं, जग उजियार से तेहि परछाहीं ।।[5]

इससे आगे बढ़ें तो प्रथम समागम के समय पदमावती का यह रूप एवं उक्ति प्रतीकवादियों के लिए पुनः समस्या प्रस्तुत कर देती है—

कै सिंगार ता पहँ कहँ जाऊं । ओहि देखौं ठाँवहिं ठाऊँ ।।
जौं जिउ महँ तौ उहै पियारा । तन महँ सोइ न होइ निरारा ।।
नैनन्ह माँह तो उहै समाना । देखऊँ जहाँ न देखऊँ आना ।।[6]

'पदमावत' की ये पंक्तिया रहस्य के उस आवरण को समाप्त करने का आग्रह करती है और स्पष्टतः यह सिद्ध कर देती है कि पदमावती में किसी प्रकार की प्रतीकात्मकता अनुचित है। वह आदर्श पत्नी ही है, प्राचीन परम्परा पोषित हिन्दू गृहिणी।

---

१. इन्द्रावती, पृ० ७६
२. वही, पृ० १६६
३. 'प्रेम निरूपण' में नायकों की प्रेमनिष्ठा प्रसंगान्तर्गत देखें ।
४. पदमावत पृ० २६६
५. वही, पृ० २६५
६. वही, पृ० ३२३

पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायिका

पंजाबी प्रेमाख्यानों की नायिकाएं सौन्दर्य उपासिकाए है। अपने प्रेमी के सामाजिक व्यक्तित्व के प्रति नितान्त उपेक्षा की भावना रखती है। इनके प्रेमी चरवाहे का काम करें या धोबी का इन्हें इसकी कोई चिन्ता नही, वे सदैव इनके पास रहने चाहिए। प्रेम के सम्मुख इन्हें न तो अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की चिन्ता है और न अपने प्रेमी की प्रतिष्ठा की। ये नायक मे अन्य गुणों की अपेक्षा नही करतीं। उनमें वीरता या साहस के अभाव का उलाहना नहीं देती। इन्हें सुन्दर एवं मोहक पुरुष की आवश्यकता है। उस पुरुष का चुनाव अपना अधिकार समझती है और इस अधिकार के लिए ये किसी से भी लोहा लेने को तैयार है। परिवार, धर्म, राजदण्ड इन्हें किसी का भय नहीं। अपने नायक को अधिक कष्ट देना भी नही चाहतीं। सोहणी को जब पता चला है कि महीवाल अपनी ही जघा का माँस भून कर लाया है और अब नदी पार करने से उसे अधिक कष्ट होगा तो वह उसे भविष्य में नदी पार करने का निषेध कर देती है और स्वय नदी की लहरों से जूझ कर प्रेमी को मिलने के लिए जाने का साहस करती है—

बस्स सज्जणां ओ तैथों हद होई, जाह बैठ हुण नाल करार जानी।
जिल कित मिलसां नित पार तैनूं, तुसां आवणां नहीं उरार जानी॥[1]

इसे प्रेम चाहिए, सौदर्य चाहिए। विद्या, बुद्धि या वीरता की आवश्यकता नहीं।

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, प्रेम के अधिकार को प्राप्त करने के लिए ये विशेष रूप से जागरूक है। इस अधिकार के मार्ग में परिवार, समाज एवं धर्म बाधक है। अत: तीनों के प्रति इनका दृष्टिकोण निन्दात्मक है। अतः ये सभी को फटकारती है, सभी की पोल खोलती है। अहमद की रचनाओं में हीर अपने माता-पिता को कहती है कि तुम लोगो ने मेरे साथ बहुत बुरा किया जो मेरा वाग्दान मुझ से बिना पूछे किया है। मैंने तो अपना जीवन रांझे को पेश कर दिया है। खेड़ा तो मेरा चर्म ही ले सकता है।[2] मुकबल की हीर मिन्नतें एवं प्रार्थनाएँ करते हुए काजी को स्पष्ट कहती है कि 'ऐ काजी, मैं तुम्हारी आज्ञाकारिणी हूं। तुम मेरे चर्म की जूतियां पहनो, मुझे कोई इनकार नहीं, परन्तु यह असंभव है कि रांझे को छोड़कर खेड़े को

---

१. अर्थ—ऐ सज्जन, बहुत हुआ। अब तू शान्तिपूर्वक बैठ। जैसे भी होगा मैं नदी पार कर तुम्हें मिला करूंगी। अब तुम इस पार न आना।

—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० ३८

२. तुसां मापिआं मै नाल बुरा कीता।
मैनूं पुछ कै कीतौ न कम्म माए।
असां जान रंझोटे दे पेश कीती।
साडा खेड़िआं नूं देह चम्म माए॥

—हीर अहमद, पृ० १६८

स्वीकार करूं। मैं तो रांझे के साथ वचनबद्ध हूं। तुम जैसे निर्दयी लोगों से संतप्त हूं।'[1] वह पिता, माता, काजी, भाई सभी को बुरा भला कहती है 'ऐ, काजी, तुम्हें रसूल एवं कुरान नष्ट कर दें, मुझे विवाह नहीं करना, मेंहदी नही लगानी।[2]

उसका विद्रोही रूप वारिस में अधिक तेजस्वी है। उससे पहले भी विवाह तो उसे बांध कर ही किया गया परन्तु परिवार, समाज, अथवा धार्मिक दम्भ द्वारा थोपे गये इस पति को उसने कभी स्वीकार नहीं किया। अन्त मे जब उसे राजतंत्र से स्वीकृति मिल गई तो एक बार पुनः वह समाज से इसे प्रमाणित कराने का असफल यत्न करती है—

मैंनू पेवके घरीं पहुँचा राँझा, तूं वज हजारे तैनूं मिलण भाई।
जंज जोड़ के चढ़के लिआवे, वाह-वाह जदों आखसी सभ लुकाई।[3]

परन्तु जनसमुदाय या समाज ने वाह वाह न कही और उसकी बली ले ली।[4] साहिबां अपने विवाह की सूचना अपने प्रेमी को भिजवा कर उसे अपने पास बुलाती है और प्रेमी के साथ घर से निकल जाती है। सोहणीं माता को स्पष्ट कह देती है--

महीवाल तो मुड़न मुहाल होइआ, गल्लां दस्स मेरा जीउ खस्स नाहीं।
जिद्धर देखनीआं महीवाल दिस्से, असीं कमलिआं नूं माए हस्स नाहीं॥[5]

परन्तु कोई मानता नही, बलात् उसका विवाह कर घर से निकाल दिया जाता है।

प्रारंभिक कठोरता केवल सोहणी में ही परिलक्षित होती है जो वास्तव में बाल्यावस्थावश है। कठोरता नहीं, अज्ञात-यौवन नायिका का भोलापन है। उसमें प्रेमभाव का अपरिचय है, उपेक्षा नही।

---

१. हीर आखदी काजीआ घोल घत्ती, तेरा हुकम मन्ना सरदार थीवां।
मेरे चम्म दीआं जुत्तीआं पहिन मीआं जे मैं उजर करां गुनहगार थीवां।
पर एह न होसीआ हीर कोलों, रांझा छड्ड के खेड़ें दी नार थीवां।
मुकबल यार दे नाल करार मेरा, गैर महिरमां थी बेजार थीवां।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ३२

२. हीर वारिस, पृ० ७०

३. अर्थ—रांझा, मुझे मायके पहुँचा कर तू हजारे में अपने गाँव चला जा। जब तू बारात जोडकर घोड़ी पर चढ़ कर आएगा तो सब लोग वाह-वाह कहेंगे।
—हीर अहमद, पृ० २८३

४. हीर वारिस, पृ० २०६; हीर अहमद, पृ० २८३; हीर-रांझा (फजलशाह), पृ०१२३

५. अर्थ—माता, मै महीवाल से अलग नही हो सकती। ऐसी बातें करके मेरा जी न जला। मै जिधर भी देखती हूँ, महीवाल दिखाई देता है। ऐ माता, हम जैसे मूर्खों पर हंसो मत।
—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० २६

सतीत्व या निष्ठा की भावना इन नायिकाओं मे भी है। परन्तु वह सतीत्व धार्मिक न होकर व्यक्तिगत है। ये नायिकाएं किसी धार्मिक आदेश या सामाजिक बंधन के कारण सत्-निष्ठा नही। अपने प्रेम की अनन्यता के कारण सत्-निष्ठा है। समाज एव धर्म के नियमों के अनुसार जिनके प्रति इन्हें निष्ठा निभानी चाहिए, उनके लिए तो इनके मन में अपार घृणा है। साहिबां तो मिरज़े के साथ विवाह से पूर्व ही घर से निकल जाती है, और सस्सी तथा उसके प्रेमी पून्नू के मध्य कोई दूसरा व्यक्ति समाज या धर्म नही लाता। केवल हीर एवं सोहणी को ही धार्मिक अनुष्ठान के द्वारा किसी अन्य पुरुष से जोड़ दिया जाता है। परन्तु ये नारियाँ न तो उस धार्मिक कृत्य को वैध मानती हैं और न ही उस पुरुष को स्वीकार करती है। मुकबल की हीर अपनी चालाकी से अपने सत् की रक्षा करती है। पहले तो नमाज का बहाना बनाती है और पुनः ईश्वर से प्रार्थना करती है—

रब्बा रखीं तूं शरम हिआ मेरा, इन्हाँ वैरीआं तों मैं तां पई डरदी।
रब्बा लईं छुड़ा तूं मुकबले नूं, नहीं वेलड़ा किसे मैं अज्ज मरदी।।[१]

संभवतः उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई और किसी अज्ञात व्यक्ति ने सैदे को पीट दिया। वह तो उस समय को पछताता है जिस समय उसने हीर को हाथ लगाया था।[२] वारिस ने इस घटना का वर्णन योगी एव हीर के पति के वार्तालाप के समय किया है। हीर का व्यवहार अतीत उद्दण्ड था। सैदा कहता है—

जे मैं हत्थ लाँवा सिरो लाह पगड़ी चाइ धत्तदी चीक चिहारडी ओइ।
मैंनू मार के आप नित रहे रोंदी, ऐस डोल ते रही कुआरडी ओइ।[३]

सोहणी के सौभाग्य से उसका पति पुंसत्वहीन निकला। ईश्वर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।[४] नायिका के सत् की रक्षा यहाँ भी हो गई।

इस प्रकार पंजाबी प्रेमाख्यानों की नायिकाएं भी प्रेम के रंग मे रंगी हुई है और उनके चरित्र का सही रूप हमारे समक्ष आता है। इनके भी सौदर्य का वर्णन किया गया है परन्तु उसमे ये कवि अधिक देर नही लगाते। अग-अंग को अनेक

१. अर्थ—हे ईश्वर मेरी लज्जा की रक्षा करना; मै इन शत्रुओं से डरती हूँ। हे ईश्वर तू मुझे बचा लेना, नही तो मै आज मर जाऊँगी।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ४५

२. हीर रांझा (मुकबल), पृ० ४६

३. अर्थ—यदि मैं हाथ लगाता तो मेरी पगड़ी उतार कर चीखना चिल्लाना आरम्भ कर देती। मुझे मार कर आप रोती रहती। इस भांति वह कुंआरी ही रही है।

—हीर वारिस, पृ०१८६

४. ढोवें हत्थ उठाइ दुआं मंगी महीवाल दा रख ईमान मीआं।
हुकम नाल नामरद हो गिआ ओवें, उसदीआं कुदरतां तो कुरबान मीआं।।

सोहणी महीवाल (फज़लशाह), पृ० ३१

उपमाओं, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं एवं व्यतिरेकों द्वारा व्यक्त करने की परम्परा यहां नही। उनके स्वरूपगत सौंदर्य की उपेक्षा अवश्य नहीं की जाती। वे स्वयं सुन्दर है और सुन्दरता से उनको प्रेम है। नायक उनके सौन्दर्य पर मोहित होते हैं, और वे नायकों के सौंदर्य से आकर्षित होती है। उनमें अपार धैर्य है, उत्साह है और साहसिक पग उठाने की शक्ति है। वह कच्चे घड़े के सहारे तूफानी नदी में कूद सकती है। प्रेमी के साथ लोक-लाज की अवहेलना कर, घर से निकल सकती है और प्रेमी की खोज में तप्त मरुस्थल में भटकने का साहस कर सकती है।[1]

पंजाबी के अधिकाँश प्रेमाख्यानों मे नायिकाओं का यही स्वरूप उपलब्ध होता है परन्तु कामलता, हुस्नबानो, बदी-उल-जमाल, शाहपरी एवं जुलेखा का चरित्र इनसे भिन्न है। कामलता, हुस्नबानो, शाहपरी एवं बदी-उल-जमाल हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं के समान ही दैवी संताने है, अत्यन्त सुन्दर, गुणवती एवं प्रेममयी हैं। हुस्नबानों एवं शाहपरी अवश्य कठोर है। नायकों को छोड़कर अपने पिता के घर चली जाती है—

मैनूं आन होई अज दिल विच गालब हुब्ब वतन दी।
शौक पिआ मां बाप मिलन दा एह है खाहश मन दी।

× × ×

सदा शौक मुहब्बत मेरी जे कर है कुझ तैनूं।
जित कित हीले शहिर सबज़ विच आण मिलीं तूं मैनूं।
जे आ मिलिओं मैनू मुड़के होइओं ताँ मरदाना।
नहीं तां रंन्ना नालों तेरा बेवफा पराना।[2]

'मलिकज़ादा शाहपरी' में तो नायिका सर्वथा कुतबन की मृगावती की ही भाषा में बोलती है, यहाँ अपने नगर का परिचय भी दे जाती है और उससे अधिक स्पष्ट शब्दो में कहती है—

ससते चीज लगे हत्थ जिसनूं, कीमत कदर न जाने।
दूर करे जो खोट इनसानी हासल करे सफाई।
ताबह परी होए उस ताईं जेकर खुदी गवाई।
जेकर आशक कामल होंदा, छोड़ परी कद जांदा।

---

१ सोहणी, साहिबा तथा हीर, सस्सी

२. अर्थ—मेरे मन में आज देश प्यार की तीव्र भावना जाग उठी है। मेरे मन की यह इच्छा है कि मैं पिता से मिलूं। यदि तुम्हारे मन में मेरे प्रति कुछ प्रेम है, तो जिस किसी प्रकार 'सब्जशहिर' में पहुंच कर मुझे मिलो। तुम तभी सच्चे मरद हो जो मुझे पुनः आ मिलो, नहीं तो स्त्रियों की ओर से तुम अविश्वास के पात्र माने जाओगे।
शाह बहराम हुसनबानो (अमामबख्श), पृ० २७

दोनों ही भाषाओं के प्रेमाख्यानों की नायिकाओं के सम्बन्ध में एक अन्य अन्तर भी ध्यान देने योग्य है। हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं पर नायकों को कभी संदेह नहीं हुआ। अन्य पात्र ही इनके सतीत्व की परीक्षा लेने या सत नाश करने के लिए प्रयत्नशील देखे जाते है। ये नारियाँ सर्वत्र सफलतापूर्वक उनका सामना करती हैं। पंजाबी प्रेमाख्यानों मे नायिकाओं के प्रति इस प्रकार की शकाओं का स्थान ही नही था। उनका व्यक्तिगत सदाचार समाज की दृष्टि में दुराचार है। हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं के समक्ष यह स्थिति आई ही नही।

हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाएं निरीह एवं असहाय प्राणी है। 'उन जैसी विवशता पजाबी की नायिकाओं में कही भी दिखाई नही देती। हिन्दी प्रेमाख्यानो की नायिका पुरुष के हाथों का खिलौना है। पुरुष चाहे तो उसके साथ रहे और चाहे तो दूसरी के प्रति आकर्षित हो जाए। नायिका को उसकी इच्छा शिरोधार्य है। बीसलदेव से राजमती बार-बार क्षमा मांगती है, "पग की पणहीसं किसउ रोस" परन्तु राजा इस "जल बिहुणीय मच्छली"[1] को छोड़कर चला जाता है, चंदा के न चाहने पर भी मैना का संदेश सुनकर लोरक स्वदेश लौट आता है। वास्तव में उसका उत्तर अत्यन्त धृष्टतापूर्ण है—

कुजा नातर मोरें संग आवसि। जियहि लाई धनि अपने रावसि ॥[2]

"तुमने मेरा साथ अपने सुख के लिए दिया है। मेरे ऊपर कौन-सा उपकार किया है?" 'पदमावत' में पदमावती नारी 'बिनौ' करती रही परन्तु—

केत नारि समुझावे भँवर न काँटे बेध।
कहै मरौं पै चितउर करौं जग्गि असुमेध।[3]

भँवरा चल पड़ा, बिचारी केतकी विवश थी, साथ हो ली। साधन की मैना जब पति को रोक नहीं पाती तो काजर डोरा एवं श्रृंगार छोड़ उदास हो 'लालन' की प्रतीक्षा में बैठ जाती है। 'रसरतन' में भी रंभा क्या करती जब पति का चित्त अनेकों में मग्न है तो उसके लिए उन्हें स्वीकार करना आवश्यक है, फिर भी वह कह ही देती है—

तुम चित भेद कपट करि राष्यो। बरसहि बस रसना नहि भाष्यो ॥
हौं न होंहु औरन सी नारी। दासी सदा जु अग्यांकारी ॥[4]

---

१. बीसलदेव रासो, पृ० ३३
२. चांदायन, पृ० ३७६
३. पदमावत, पृ० ३७१
४. रसरतन, पृ० २२०

'आज्ञाकारिणी दासी' अथवा 'पगपनही' जैसी निरीह स्थिति पंजाबी प्रेमाख्यानों में उपलब्ध नही होती। वहां नारी प्रेमिका है, दासी एवं सदा की आज्ञाकारिणी नहीं। प्रेमी मे यह साहस कहां कि उसका तिरस्कार कर सके । तेजस्विता मे ये अपने नायकों एव हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओ से बढ़ चढ़कर है।

पंजाबी में अधिकांश नायिकाओं का यही स्वरूप उपलब्ध होता है । परन्तु बदीउलजमाल, हुस्नबानो, कामलता या शाहपरी तथा जुलेखा के चरित्र इनसे सर्वथा भिन्न हैं। ये समानान्तर हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं से ही मिलते है ।

प्रतिनायकों का चरित्र-चित्रण

हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रतिनायक

अधिकांश हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रतिनायक नहीं हैं। 'बीसलदेव रासो', 'मृगावती', 'माधवानल कामकंदला', 'मधुमालती', (मंझन), 'रूपमंजरी,' 'रसरतन' आदि में प्रतिनायकों की विशेष भूमिका नही है। प्रतिनायकों की विशेष भूमिका की दृष्टि से 'पदमावत', 'छिताई चरित', 'नल-दमयन्ती', 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', 'कथा छीता' आदि उल्लेखनीय है। दशरूपक में प्रतिनायक का निम्नलिखित लक्षण दिया गया है—

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपुः।[1]

इन प्रतिनायकों में ये सभी विशेषताएं वर्तमान है। 'पदमावत', 'छिताई चरित' एवं 'कथा छीता' में अलाउद्दीन; नलदमयन्ती की कथाओं मे कलियुग तथा कृष्ण रुक्मिणी में शिशुपाल प्रतिनायक के रूप मे उपस्थित होते है। लेखक इनका चित्रण बड़ी सावधानी से करता है। ताकि पाठकों के मन मे इनके प्रति घृणा उत्पन्न हो जाए। छल-कपट एवं लोभ इनके चरित्र की मुख्य विशेषताएं है । 'पदमावत' का अलाउद्दीन 'दशरूपक' के लक्षण का मूर्तरूप है। वह राघव चेतन के मुख से पदमावती के सौन्दर्य को सुनते ही सेना लेकर उसे प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है । युद्ध में शौर्य से सफलता न देखकर वह छल-कपट की सहायता लेता है और वचन-भंग का दोषी बनता है। राजा को छल से ही बंदी बनाता है। 'छिताई चरित' एवं 'कथा छीता' में भी अलाउद्दीन की प्रारम्भिक भूमिका 'पदमावत' के अलाउद्दीन से भिन्न नहीं। छिताई के न मिलने से उसे विशेष चिता होती है। वह स्पष्ट कहता है कि मुझे

१. दशरूपक २/९

देवगिरि नहीं छिताई चाहिए।[1] अन्त में उसका हृदय परिवर्तन दिखाया है जोकि प्रतिनायकों के चित्रण में परम्परा के विरुद्ध अपनाई गई पद्धति है । सम्भवतः प्रेम के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए इन कवियों ने ऐसा परिवर्तन किया हो । 'कृष्ण'-रुक्मिणी' मे शिशुपाल एव 'नल-दमयन्ती' सम्बन्धी कथाओं में कलियुग अनेक प्रयत्नों द्वारा नायक की फल प्राप्ति मे बाधा डालकर उसके जीवन को कष्टपूर्ण बनाता है ।

ये प्रतिनायक कई बार अपनी दूतियां भेजकर नायिका को फुसलाना चाहते है । 'पदमावत' में अलाउद्दीन ने पदमावती के पास दूती भेजी है, 'चंदायन' में भी दूती को असफलता मिली, 'छिताई चरित' एवं 'कथा छीता' में भी दूतियाँ हार गईं । इस प्रकार ये प्रतिनायक अपनी दुरभिसन्धियों में कहीं भी सफल नहीं होते ।

अलाउद्दीन एवं कलियुग छलपूर्ण व्यवहार में निपुण हैं परन्तु 'वेलि' का शिशुपाल छल कपट के स्थान पर केवल वीरता का ही प्रदर्शन करता है । वह नायक का शत्रु है । 'वेलि' में प्रतिनायक के चरित्र का उचित विकास नहीं हो पाया । वास्तव मे वहाँ तो प्रतिनायक की अपेक्षा उसके सहायक नायिका के भाई रुक्मी का ही चरित्र अधिक प्रधान हो गया है ।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में प्रतिनायक

पंजाबी प्रेमाख्यानों में प्रतिनायक की योजना सर्वथा पृथक् ढंग की है । इनमें प्रतिनायक के नाम पर उन पात्रों को गिना जा सकता है जिनका विवाह नायिकाओं से हो गया । नायिकाओं पर इनका वैध अधिकार है परन्तु ये नायिकाएं उस अधिकार को स्वीकार नही करतीं । 'हीर रांझा' में सैदा, 'मिरजा साहिबां' में खेड़ा और अन्यत्र सोहणी का पति—ये तीनों इस कोटि में आते है । इनमें सोहणी के पति का तो नाम भी हमें पता नहीं चलता केवल इतना ही उल्लेख है कि सोहणी का विवाह किसी कुम्हार युवक से कर दिया गया ।[2] 'मिरजा साहिबां' में भी दोनो प्राप्त रचनाओं में प्रतिनायक की चरित्रगत विशेषता की ओर ध्यान दिया ही नहीं गया ।

---

१. रनथंभौर देवल लगि गयो । मेरो काज न एकौं भयो ।।
 इउं बोलइ ढीली कउ धनी । भइ चीतौर सुनी पदुमिनी ।।
 बंध्यौ रतनसेन मइं जाई । लइगौ बादिल ताहि छुडाई ।।
 जो अब के न छिताई लेउं । तो यहु सीसु देवगिरि देउं ।।
 × × ×
 हम नाही दिवगिरि सिउं काजा । देहु छिताई मुंजहु राजा ।।

—छिताई चरित, पृ० ५०

२. (क) हाशम रचनावली, पृ० ६६
 (ख) कादरयार, पृ० ७७
 (ग) सोहणी महीवाल (फज़लशाह), पृ० ३१

साहिबां के पति का भी कोई नाम हमारे समक्ष नहीं आता, केवल जाति ही पता चलती है।

हीर के पति सैदे से हमारा कुछ परिचय होता है। वह सुन्दर युवक है। विवाह में सालियों के साथ वार्तालाप के समय उसकी मुखरता एवं चंचलता परिलक्षित होती है परन्तु उसकी निराशा का चित्रण विशेष रूप से नही किया गया। अपनी पत्नी के दुर्व्यहार एवं व्यभिचार के प्रति उसकी प्रतिक्रिया की नितान्त उपेक्षा की गई है। केवल सर्पदंश के कपट-व्यापार के उपरान्त वह कुछ देर के लिए योगी बने रांझे के समक्ष वास्तविकता को प्रकट करता है। तभी उसकी ग्लानि का किंचित् परिचय मिलता है। अन्यथा हीर के भागने, खेड़ा वर्ग से युद्ध, काज़ी के फैसले, 'अदली राजे' के निर्णय पर उसकी कुछ भी प्रतिक्रिया नही बताई गई। अतः यह कहना ही उचित है कि ये 'पौरुषहीन चरित्र' अविकसित ही रहे।

तुलना

हिन्दी में इनसे मिलता जुलता चरित्र चंदायन के 'बावन' का है। परन्तु दोनों में वस्तुस्थिति नितान्त भिन्न है। बावन की उपेक्षा के ही कारण चंदा लोरक की ओर आकृष्ट होती है जबकि इन पतियों को नायिका की स्वैरिता एवं स्वच्छंदता को छिपाने के लिए उन पर थोपा जाता है। इनकी तुलना कुछ अंशों में हिन्दी प्रेमाख्यानों की उपनायिकाओं से की जा सकती है परन्तु इस तुलना में भी ये ही अधिक कष्ट सहते प्रतीत होते हैं। उन उपनायिकाओं को अपने पतियों के साहचर्य एव प्रेम का एक अंश तो मिलता ही है और वे अपने साथ की जाने वाली प्रवंचना को व्यक्त भी कर सकती हैं, परन्तु इन दैव-हतकों को तो 'पत्नी' का मुख देखना भी सुलभ न हुआ और ये अपने दुख को प्रकट भी नहीं कर सकते। पंजाबी कवियो ने इनकी व्यथा का विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया। इनके मन में अपने प्रति हीनता की भावना है। इनके समानान्तर हिन्दी साहित्य में कोई भी चरित्र नहीं। ये अत्यन्त साधु एवं धर्मात्मा है, इनका तो अपराध ही यह है कि खल नही बन पाए, परन्तु ये लोग इतने उदार भी नही कि अपनी 'पत्नियों' को अपने नाम मात्र के बंधन से मुक्त कर दें। 'चंदायन' मे चन्दा का पति तो थोड़े संघर्ष के बाद ही स्वीकार कर लेता है कि चंदा लोरक की हो जाए।[1] जबकि हीर का पति सैदा एवं साहिबां का दूल्हा चंधड़ भी अन्य लोगों के साथ युद्ध करने जाते हैं तथा अन्त तक संघर्ष करते हैं। सोहणीं का पति तो उपेक्षित ही रहा।

स्पष्ट है कि प्रतिनायकों का संकल्प दोनों ही भाषाओं के साहित्य में सर्वथा भिन्न है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में वह शास्त्र-सम्मत लक्षणों के समीप है तो पंजाबी में

---

१. बावन कहा बाच यह मोरी। तू रे पुरुख वह तिरिया तोरी॥
लोक कुटुम्ब हउं आखउं जाई। मइं तोहि दीन्हीं गांग अन्हाई॥

—चांदायन, पृ० २८९

उसका रूप सर्वथा नवीन है। हिन्दी में उनका विकास ठीक ढंग से किया गया है पंजाबी में वे उपेक्षित रहे। वहां वे चरित्र की अपेक्षा पात्र ही है।

उपनायिकाओं का चरित्र-चित्रण

हिन्दी प्रेमाख्यानों में उपनायिका

हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रायः सर्वत्र उपनायिकाओं का समावेश किया गया है। ये उपनायिकाएं दो प्रकार की है। एक तो वे जो विवाहिताएं होती है परन्तु नायक किसी अन्य युवती पर मुग्ध होकर घर से निकल जाता है और ये वियोग-व्यथा को सहती है। दूसरी वे जो प्रेमिका की खोज मे निकले नायक को मार्ग में मिलती है। ये किसी दैत्य या अन्य बलवान जीव द्वारा बंदी बनाई गई होती है। नायक इनका उद्धार कर इन्हें अपना लेता है। प्रथम कोटि में 'चंदायन' की मैना, 'ढोला मारु' की मालवणी, 'पदमावत' की नागमती, 'पुहपावती' की रूपवती तथा 'इन्द्रावती' की सुन्दर एवं दूसरी कोटि मे 'मृगावती' की रुपमिनी, 'रसरतन' की कल्पलता, 'चित्रावली' की कौलावती, 'प्रेमप्रगास' की ज्ञानमती, 'पुहपावती' (दुखहरनदास) की रंगीली आती हैं।

ये सभी नारियां समान रूप से उपेक्षिता रहती हैं और इनमें एक पत्नी के मर्माहत हृदय के करुण-रोदन के दर्शन होते हैं। पहली कोटि में आरंभ में इन्हें अपने रूप एवं यौवन पर अभिमान[1] होता है। वे मान भी करना जानती है। मैना चंदा की ओर आकर्षित अपने पति से मान करती है--

रग बिनु पान खवावसि मोही । सो रंग अबहुं न देखऊं तोही ॥
रग बिनु बातन्ह भाउ बनावा । तुम लोरिक रंग, अनतइं लावा ॥[2]

सपत्नी से ईर्ष्या एवं कलह करती है[3] परन्तु पति की निंदा भी नही सुन सकती, चाहे वह पति की उसे प्रेमिका के द्वारा ही क्यों न की गई हो, जो उसकी आंखों में धूल झोंककर उस के साथ रंगरेलियां मनाती हो -

मोर पुरुख खांडइं जगु जानई । गन गंध्रप सम रूप बखानई ॥
पंडितु पढ़ा खरा सहदेऊ । चार वेद जीति जाइ न कोऊ ॥

× × ×

मोर पिउ सरग क अछरहिं रावइ । तोहि जइसी पहि पाउ न धुवावइ ॥[4]

---

१. क. पदमावत, पृ० ८१
   ख. ढोला मारू रा दूहा, पृ० ४६
२. चांदायन, पृ० २३३
३. वही पृ० २४४-२५५
४. चांदायन, पृ० २५०

परन्तु इनके सभी गुणों एवं सत्-निष्ठा की सदैव उपेक्षा हुई है । सम्पूर्ण अभिमान एवं गर्व उस समय समाप्त हो जाता है जब पति इन्हें छोड़कर चला जाता है । तब इन्हें श्रृंगार भी अच्छा नहीं लगता ।[1] वे निराशा एवं विवशता में झूरती है[2] काग उड़ाती एवं पंथ निहारती है, संदेसे भिजवाती हैं,[3] कभी पंथी और कभी पक्षी के हाथ, कभी ब्राह्मण या पवन के हाथ । परन्तु पति के लिए उनके मन में अपार श्रद्धा है । उसी से नहीं, उसकी चरण रज से भी उन्हें प्रेम है ।[4] प्रिय का संयोग उनकी एक मात्र सम्पत्ति है और वियोग विषम विपत्ति ।[5] कभी वह वियोगाग्नि में झुलसती

---

१. (क) ढोलउ चाल्यउ हे सखी, बज्या दमांमा ढोल ।
मालवणी तीने तज्या, काजल, तिलक तंबोल ।।

—ढोला मारू रा दूहा, पृ० ८२

(ख) जा दिन तैं पति गवनु किय, ता दिन तैं सुष कौन ।
मलिन बसन कृस अंग अति, भावतु भोग न भौन ।।

—रसरतन, पृ० २०५

२. (क) गएउ अनंद हरख चित, रह जो चाउ रहसं औ कोड़ ।
रहेउ संताप सेज दुख, भारी बिरह बियोग न छोड़ ।।

—मृगावती, पृ० २६३

(ख) सखि हिय हेरि हार मैन मारी । हहरी परान तजै अब नारी ।
खिन एक आव पेट महँ स्वांसा । खिनहि जाइ सब होइ निरासा ।।

—पदमावत पृ० ३४२

(ग) पुहकर मित्र विदेसिया, लै जु गयौ चित चोरि ।
पाइन लीक ललाट की, काढि लगाऊं षोरि ।।

—रसरतन, पृ० १३६

३. अह निसि पंथ निहारइ बारी । मकुहुं चाह कोइ कहै उन्हारी ।।
कर पल्लव दिन असुइ काढ़ै । बिरह संताप कया तन डाढ़ै ।।
काग उड़ावइ पंथ जोवाई । पंथी कहं संदेस लइ जाई ।।

—मृगावती, पृ० २६०

४. सालइ चलंतइ परठिया, आंगणा वीखड़ियाँह ।
सो मइं हियइ लगाड़ियाँ, भरि भरि मूठड़ियाँह ।।

—ढोला मारू रा दूहा, पृ० ८५

५. सखिह संपति पिय मिलन, बिपति बिचाल बियोग ।
संपति बिपति जो हम कही, और कहौ किछु लोग ।।

—मृगावती, पृ० २६७

है तो कभी वियोगाम्बुधि में डूबती है।[1] उसकी सहनशक्ति अपार है[2] परन्तु उस अग्नि को बुझाने की शक्ति भी प्रियतम में है[3] और उस वियोग-सागर से भी वही पार उतार सकता है।[4]

इस दुरवस्था में वह सौत को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है।[5] यद्यपि कुछ उपनायिकाए अपनी सौतों के प्रति असहिष्णु है और उनसे विवाद भी करती हैं तथापि अन्त में नायक की इच्छा को शिरोधार्य कर मिल-जुल कर रहने लगती है। इनके वियोग-वर्णन में भी कवियों ने विशेष रुचि ली है। यह विरह-वर्णन अधिकतर बारह-मासे के रूप में वर्णित है। नागमती का विरह-वर्णन अभिलाषा के औदात्य एवं परिस्थितियों के करुणापूर्ण वर्णन के लिए विशेष प्रसिद्ध है। यदि इन बारहमासा-प्रसंगों को एक साथ पढ़ा जाए तो भावनाओं एवं विचारो मे बहुत कुछ मिलते जुलते है। सभवत. इनका मूल लोक-साहित्य में प्रसिद्ध बारहमासे थे।

इन उपनायिकाओं के चरित्र का वियोग पक्ष ही सामने आता है। ये अपने नायकों पर सर्वभावेन अनुरक्त है। इनके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से विकास नही हो पाया। 'इन्द्रावती' की उपनायिका 'सुन्दर' अवश्य अपवाद है। वह नायक के पीछे से कुशलतापूर्वक राज्य शासन सम्भालती है, पुत्र का पालन करती है, कामसेन के आक्रमण का वीरतापूर्वक सामना करती है।[6]

---

१. (क) यह दुख दगध न जाने कंतू, जोबन जरम करै भसमंतू।
पिय सौं कहेहु संदसरा ऐ भंवरा ऐ काग।
सो धनि विरहैं जरि गई, तेहिक धुआँ हम लाग॥

—पदमावत, पृ० ३४६

(ख) जल थल भरे अपूरि सब, गॅगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन ओगाह महँ, दे बूड़त पिय टेक॥

—वही, पृ० ३४६

२. परवत समुँद मेघ ससि, दिनअर सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिऐ, जरै जो अस पिय लागि॥

—वही, पृ० ३५४

३. नागमती कहँ अगम जनावा। गै सौ तपनि बरखा रितु आवा॥

—वही, पृ० ४२७

४. पुहकर सागर विरह को जद्दिप दुसह अपार।
मन बच प्रेम जिहाज करि नाथ निबाहन हार॥

—रसरतन, पृ० २१३

५. जो प्यारी पिय के मन प्यारी। सो स्वामिनी सौबेर हमारी।
ताके चरण भवां ले भाऊं। अन्हवाऊं अरु तेल लगाऊं॥

—विरह-वारीश (कवि बोधा-कृत)

६. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० ४५८

पंजाबी प्रेमाख्यानों में उपनायिका का अभाव

पंजाबी प्रेमाख्यानों में उपनायिकाओ की भूमिका उपलब्ध नहीं होती। विदेशी स्रोतों से गृहीत 'शाह बहराम हुसनबानों' मे नायक की विवाहिता अनेक पत्नियों मे से केवल एक ही सतीत्व की रक्षा कर, प्रियतम की प्रतीक्षा करती है। कवि ने उसके चरित्र की सर्वथा उपेक्षा की है।

तुलना

दोनों ही साहित्यों में यह अन्तर महत्त्वपूर्ण है। यह तो कहना अनुचित होगा कि उस समय पंजाब मे बहुपत्नी-प्रथा नहीं थी, परन्तु यह अत्यन्त स्पष्ट है कि जिस वर्ग के साथ इन कवियों का सम्बन्ध था, जिनमें इनकी रचनाए लोकप्रिय थीं उसके लिए यह बात आकाश-कुसम ही थी। अतः दोनों साहित्यों का यह अन्तर दोनों की पृष्ठभूमि के अन्तर के फलस्वरूप है। यह वर्गगत अन्तर है। तत्कालीन सम्पूर्ण समाज का चित्र इनमे से किसी एक साहित्य मे भी समग्रता से अंकित नही हो पाया। दोनो मिलकर ही वास्तविकता का प्रतिपादन करते है।

अन्य पात्र

हिन्दी प्रेमाख्यानों में अन्य पात्र

अन्य पात्रों को दो मुख्य भागों में बांट सकते हैं—लौकिक पात्र एवं अलौकिक पात्र।

(क) **लौकिक पात्र**—लौकिक पात्र भी दो प्रकार के है—पशु-पक्षी एवं मानव। हिन्दी प्रेमाख्यानों मे पशु-पक्षियों से विशेष रूप से सहायता ली गई है। 'पदमावत' का हीरामन, 'इन्द्रावती' का सूआ, 'नल दमयन्ती' का हस, 'चित्रावली' का पंक्षी एवं परेवा, 'प्रेम प्रगास' की मैना दूत का कार्य करते हुए, नायक एव नायिका को आपस में मिलाते है। इसके विपरीत 'सर्प' कभी-कभी बाधक पात्र बनकर भी हमारे सामने आता है।[1] सूरदास कृत 'नलदमन' मे भी सर्प दमयन्ती को निगलने के लिए आगे बढ़ता है परन्तु एक व्याध ने उसे मार दिया। इसी रचना मे सर्प उपकारी जीव के रूप मे भी आया है। आग में जलते हुए एक अजगर को नल ने बचाया परन्तु अजगर ने उसे डस लिया, साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह दंश तुम्हारे लाभ के लिए है। जब तुम्हारे दुर्दिन समाप्त हो जाएगे तब इस विष के प्रभाव को खीच लिया जाएगा।[2]

'ढोला मारु' में सर्प, शुक एवं करहा भी पात्र रूप में आए हैं। शुक उपनायिका का संदेश लेकर जाता है और ऊंट उपनायिका एवं नायक से वार्तालाप कर जीवंत पात्र

---

१. मृगावती, ढोला मारू, मधुमालती, नलदमन आदि रचनाओं में।

२. नलदमन, पृ० १५२

के रूप में सामने आता है। ये दोनों पात्र एक प्रकार से सहायक ही हैं। सर्प नायिका को दो बार डस लेता है और नायक के लिए विपत्ति का कारण बनता है। 'चन्दायन' में भी सर्प बाधक रूप मे आता है।

मानव-पात्रों में शत्रु एवं मित्र दोनों ही प्रकार के पात्र हैं। शत्रु-पात्र खलनायक की सहायता कर नायक के मार्ग में बाधा पहुंचाते हैं। 'चदायन' में बाजिर, 'मृगावती' मे गडरिया एवं दानव, 'छिताई चरित' में राघवचेतन, चित्रकार, 'ढोला मारू' में ऊमर सूमरा, 'पदमावत' में राघव चेतन एवं देवपाल, 'चित्रावली' में कुटीचर आदि पात्र इसी कोटि के हैं। इनकी योजना प्रायः सभी प्रेमाख्यानों में मिल जाती है।

इन खल पात्रों का जीवन लोभ,ईर्ष्या, मत्सर, प्रतिशोध आदि की भावनाओं का पुंज है। ये अधिकांश मे बिना किसी कारण अथवा लोभवश नायक-नायिका के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करते हैं। अधिकाश स्थानो पर इनका अन्त बुरा ही होता है। ये नायक अथवा उसके किसी सहायक के हाथों मारे जाते हैं परन्तु यह आवश्यक नही। 'पदमावत' मे राघवचेचन की मृत्यु नहीं दिखाई गई और न ही 'छिताई चरित' में चित्रकार की।

दूतियों की गणना भी इसी प्रसंग में की जा सकती है, ये अपने कार्य में सर्वत्र असफल रही है। इनकी दुर्दशा ही दिखाई गई है। 'बीसलदेव रासो', 'छिताई-चरित', 'चंदायन', 'पदमावत', 'मैनासत' आदि सभी रचनाओं में इनकी योजना है। ये अनेक भाषाएं जानती है[1] और प्रायः सन्यासियों का भेस बना कर ही जाती है।[2] त्रिया-चरित्र एवं मक्कारी में बेजोड़ है। इन्हें अपने चातुर्य पर पूर्ण विश्वास है।[3]

सहायक मानव-पात्रों मे नायक-नायिका के दूत, मित्र एव सखियां है। दूतकार्य के लिए प्रायः ब्राह्मण को उपयोगी समझा गया है। 'चंदायन' में व्यापारी ब्राह्मण दूत बनता है। 'मृगावती', 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', 'नलदमन' आदि रचनाओ मे दूतकार्य के लिए ब्राह्मण को ही उपयुक्त समझा गया है। परन्तु 'ढोला मारू रा दूहा' मे सोच समझकर उसके स्थान पर ढाढ़ियों को नियुक्त किया गया है।

पाछइ प्रोहित राखियउ, तेड़्या माँगण हार।
जे भेदक गीताँ तणा, बात करइ सुविचार॥[4]

---

१. बोलहिं देश-देश की भाषा

—छिताई चरित, पृ० ५३

२. पाहन की पुतरी मठ होई। कही बातइ पलुहावऊं सोई॥

३. (क) बारनि कीए भगवे कपुरा। कीन्ही मसवासी की करा॥

(ख) आइ चढि चितउर गढ़, होइ जोगिन के भेस।

४. ढोला मारू रा दूहा, पृ० २४

ब्राह्मण के स्थान पर संगीत के तत्त्व को जानने वाले, मांगने वाले ढाढ़ियों को नियुक्त कर नायिका अपने विरह को मार्मिक रूप में, बिना किसी मानमर्यादा के प्रियतम के सम्मुख प्रकट करवाना चाहती है। संभवतः 'ज्ञान एवं जाति-गरिमा' के कारण उसे ब्राह्मण से ऐसी आशा नही थी।

कई बार तटस्थ पात्र भी सहायक बन जाते हैं। ये दो प्रकार के है — एक तो झलक मात्र देकर चले जाते है, दूसरे कथानक पर देर तक छाये रहते है। 'माधवानल कामकंदला' में राजा विक्रम को सहायक पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। 'मधुमालती' में प्रेमा ऐसी युवती है जो मनोहर को मधुमालती से मिलाने में सहायक होती है। इसी प्रकार ताराचंद भी नायक-नायिका की सहायता करता है। 'रूपमंजरी' में उसकी सखी इन्दुमती एवं 'उषा अनिरुद्ध' कथा-चक्र मे चित्ररेखा ऐसी ही नारी है। 'वेलि' मे सखियां नायिका को श्रीकृष्ण से मिलाने के लिए सहायता पहुंचाती है। 'इन्द्रावती' मे भी रानी सुन्दर को ढाढ़स बंधाने का कार्य सखियां ही करती है, अन्यथा कामसेन उसके राज्य एवं शील का नाश कर देता। 'सैफुलमुलूक' एवं कथा 'रत्नावली' मे सरांदीप की राजकुमारी अथवा पद्मिनी नायक की सहायता करती है।

इन सहायक पात्रों में 'पदमावत' के गोरा-बादल का स्थान सर्वथा पृथक् है। कथा के उस भाग में इनके गुण किसी भी कथा के नायक से कम नहीं है। नायक एवं नायिका दोनो के ही परवश हो जाने के समय भी इन्होंने धैर्य नही छोड़ा। अद्भुत साहस, अपूर्व बुद्धिमता तथा शूरवीरता के परिचय के कारण सहायक मानव पात्रों में इनका स्थान सर्वोच्च है।

मानव पात्रों में नायक एवं नायिका के माता-पिता की भूमिका भी उल्लेखनीय है। ये लोग कही पर तो सहायक बनते है जैसे 'मृगावती', 'मधुमालती', 'नलदमयन्ती', 'रसरतन' आदि में और कही पर इनकी ओर से प्रबल विरोध का प्रदर्शन होता है। नायक के परिवार के सदस्य तो प्रायः तटस्थ ही रहते है। प्रायः कथा के आदि एवं अन्त मे इनका सक्षिप्त उल्लेख कर कथा को पारिवारिक वातावरण प्रदान किया जाता है, सम्पूर्ण कथा में तो ये अनुपस्थित रहते ही है। नायिका के माता-पिता इस प्रेम-मार्ग का कभी-कभी तीव्र विरोध करते है। 'पदमावत' में नायिका के माता-पिता आरंभ में अत्यन्त कठोर व्यवहार करते है। 'मधुमालती' में नायिका की माता क्रोध से पुत्री को पक्षी तक बना देती है।[१] 'चित्रावली' में नायिका का

१. तब चिरुवा भर लैंके पढ़ि, छिरकेसि मुख पानि।
लागत खिन मधुमालती पंछी होइ उड़ानि ॥

—मधुमालती, पृ० ३०५

पिता सुजान को बंदी कर उसकी हत्या करना चाहता है।[1] 'वेलि' में माता-पिता सहायक होते हुए भी असहाय हैं। वहां भाई को प्रमुख विरोधी वताया गया है जबकि ढोला-मारू में माता-पिता कई दूत भेजकर पुत्री की सहायता करते है।[2]

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानों में लौकिक पात्रों की भूमिका उभयमुखी है, वे मित्र भी है और शत्रु भी। उनके चरित्र के विकास की ओर कवियों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। केवल उनके वही गुणावगुण हमारे सम्मुख आते है जिनके द्वारा वे सहायता या बाधा पहुंचाते है। इनमे विविधता है। ये जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित है। ये राजनीतिज्ञ, चित्रकार विद्वान, योद्धा एवं साधारण नागरिक सभी प्रकार के है। 'इन चरित्रों के कारण नायकों का प्रेम तथा नायिकाओ की एकनिष्ठता प्रखर होकर सामने आती है।[3]

(ख) अलौकिक पात्र—इन पात्रों के तीन उपवर्ग बनाए जा सकते है—

१. धार्मिक देवता—विष्णु, शिव, पार्वती, खा़जा खिज़् आदि।

२. समादृत पात्र —रति, काम, अप्सराएं, परियां।

३. घृणित पात्र—राक्षस, देव।

पहले वर्ग में 'पदमावत', 'चित्रावली', 'इन्द्रावी' एवं 'पुहपावती' के शिव-पार्वती, 'नलदमन' के इन्द्र-वरुण, 'पुहपावती' के नारायण, 'हंसजवाहर' के खाजा खिज्र आदि आते है।

इन पात्रों द्वारा तीन काम विशेष रूप से संपन्न कराए गए हैं —(१) वरदान द्वारा संतान, (२) नायक-नायिका के प्रेम की परीक्षा (३) नायक-नायिका की सहायता।

ये अलौकिक पात्र इन आख्यानों मे संतानों का वरदान देते हैं। 'रसरतन' के सूर एवं रम्भा, 'चित्रावली' का नायक सुजान, 'पुहपावती' का राजकुंवर, 'हसजवाहर' का हंस एवं 'इन्द्रावती' की नायिका इन्द्रावती इन्ही के वरदान से उत्पन्न हुए है।

कभी-कभी ये कौतुकवश नायक अथवा नायिका की परीक्षा भी लेते है। 'पदमावत' में रतनसेन के सिहल पहुंचने पर भवानी ने उसके प्रेम की परीक्षा लेने के लिए एक सुन्दर अप्सरा का रूप धारण किया परन्तु रतनसेन उस भुलावे मे न आया—

भलेहि रंग लोहि अछरि राता। मोहि दोसरे सौं भाव न बाता॥[4]

---

१. काहू केर पठावन होई। जियत न जइ काहु अब सोई॥

—चित्रावली, पृ० १११

२. ढोला मारू रा दूहा, पृ० १९-२०

३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २२६

४. पदमावत, पृ० २००

कहकर उसे छोड़ दिया। लक्ष्मी भी रतनसेन की परीक्षा लेती है परन्तु रतनसेन अपने मार्ग पर दृढ़ रहता है।[1]

'पुहपावती' का राजकुंवर पुहपावती को लेकर धर्मपूर्वक साधुओं का सम्मान करते हुए राज्य करने लगा तो नारायण उसकी परीक्षा लेने आए। उन्होंने साधु का वेश धारण कर राजकुंवर से पुहपावती को मांगा। अपने धर्म पर अडिग रहकर राजकुंवर ने यह दान दे दिया।

इन अलौकिक पात्रों का तीसरा कार्य नायक-नायिका की सहायता करना है। 'पदमावत' में शिव ने निराश रतनसेन को 'सिद्धि गुटिका' देकर सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बताया। उसको शूली दिए जाने के समय भी शिव ने सहायता कर उसे बचाया। 'पुहपावती' में भी शंकर एवं पार्वती रंगीली की सहायता कर प्रियतम से मिलने के लिए चर्तुभुज की उपासना का उपदेश देते है और निराश कुमार जब अपना शीश चढ़ाने को तैयार हो गया तो चर्तुभुज ने उपस्थित होकर रंगीली का पता बताया। चर्तुभुज कृत 'मधुमालती वार्ता' में मालती की स्तुति सुन विष्णु गरुड़ एवं सुदर्शन चक्र को उसकी सहायता के लिए भेजते है। 'उषा-अनिरुद्ध' संबधी रचनाओं में पार्वती उषा की प्रमुख सहायिका के रूप मे हमारे सामने आती है। रामचरण कृत 'उषा अनिरुद्ध' एवं जीवनलाल नागर कृत 'उषा हरण' में शिव नायक के विरोध में नायिका के पिता बाणासुर की सहायता करते है परन्तु सफल नही होते।[2]

इन धार्मिक देवी देवताओं के अतिरिक्त अप्सराएं, परियां, काम एवं रति, तथा गंधर्व आदि कुछ अन्य समादृत पात्र भी हैं जो नायक एवं नायिका के सहायक होने के कारण हमारी सहानुभूति अर्जित करते हैं। ये प्राय. आरभ मे ही कौतुहलवश नायक-नायिका को मिलाते है। 'मधुमालती', 'रसरतन', 'हंसजवाहर', 'सूर रंभावत' में कथा का आरभ इन्ही के कौतूहल से होता है। कथा के मध्य में भी ये कई बार सहायता करते है, जैसे 'माधवानल कामकंदला' कथाचक्र में अगिया वैताल पाताल से अमृत लाकर माधव एवं कामा को पुनरुज्जीवित करने में विक्रम की सहायता करता है।

तीसरा वर्ग उन पात्रों का है जो लोक-कल्पना में मानव-विरोधी होने के कारण घृणित दृष्टि से देखे जाते है, राक्षस, भूत, प्रेत इसी कोटि के हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानों में इस वर्ग के पात्रों का प्रयोग साधक एवं बाधक दोनों ही रूपों में किया गया है। 'मृगावती' के बंदी राक्षस को जब राजकुंवर मुक्त कर देता है तो उसे उसके साथ भी युद्ध करना पड़ता है। दोनों ही बार राजकुंवर को विजय प्राप्त हुई। 'पदमावत' में समुद्र में स्वच्छन्द विहार करने वाले विशालकाय राक्षस ने सिंहल से लौटते समय

१. पदमावत, पृ० ४२०-४२२

२. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० २५०-२५२

रतनसेन को अनेक कष्ट दिए। 'मधुमालती' में भी प्रेमा को बंदी बनाने वाले राक्षस का उल्लेख है जिसे मनोहर ने मार दिया। ये राक्षस सर्वत्र शत्रु या बाधक रूप में ही चित्रित नही हुए। कई बार ये अत्यन्त सहृदय एवं मित्र बनकर भी इन प्रेमाख्यानो में आए है। 'चित्रावली' में सुजान की रक्षा करने वाला राक्षस अत्यन्त दयालु है। वह सुजान को असुरक्षित छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता। 'पुहुपावती' में भी राक्षस की भूमिका इसी प्रकार से मित्रतापूर्ण हैं। वह रंगीली के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे मारता नही, प्रत्युत् उसके लिए अनुरूप वर की खोज की प्रतिज्ञा करता है। वह कुमार को खोज कर उठा लाया तथा रंगीली से उसका विवाह कर दिया।

अतः, कहा जा सकता है कि अलौकिक पात्रो का उल्लेख इनमे लोक-प्रचलित कथाओं एवं विश्वासों के अनुरूप ही हुआ है। इनकी सहायता से नायक की दृढ़ता एवं वीरता को व्यक्त किया गया है और कई बार उसके मार्ग मे आने वाली कठिनाइयों को दूर कर उसकी सहायता की गई है। दोनों ही रूपों में इनका योग कथा को चमत्कारपूर्ण बनाने मे ही है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में अन्य पात्र

(क) **लौकिक पात्र**—लौकिक पात्रों के रूप में पशु-पक्षी पंजाबी कथा-साहित्य मे स्थान प्राप्त नही कर सके। वहां न तो हीरामन सुआ है और न मैना या हंस। कथा को मोड़ देने के लिये वहां इनका प्रयोग नही किया गया। अहमदयार कृत 'अहसनुलकस्सिस' में यूसफ की मृत्यु के प्रवाद में अपने आपको निर्दोष बताने के लिए 'बघियाड़' (भेड़िया) अवश्य आता है और याकूब की सभा में वास्तविक घटना बता कर चला जाता है।[1] इस घटना का वर्णन शेखनिसार ने भी किया है।[2] कथा भाग मे कोई परिवर्तन आदि किसी पशु-पक्षी पात्र के द्वारा नहीं हुआ।[3]

मानव पात्र दो प्रकार के है—शत्रु एवं मित्र। पंजाबी प्रेमाख्यानों में माता-पिता अधिकांश में बाधक रूप मे ही आए है। नायक के माता-पिता का तो यहां उल्लेख मात्र ही है परन्तु नायिका के माता-पिता प्रेम के मार्ग मे मुख्य बाधक है। 'हीर रांझा' में माता हीर को रांझे से प्रेम को छोड़ने के लिए साम, दाम, दण्ड भेद से काम लेती है। पिता हीर के प्रेमी रांझे को घर से निकाल भी देता है।[4] क्रोध करता

---

१. अहसनुलकस्सिस पृ० ७५

२. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० ३५०

३ रूप बसंत में पक्षियों के नायक को सहायक के रूप में लिया है। परन्तु वह हमारे आलोच्य आख्यानो में नही है।

४. चूचक आइ के आखदा चाक ताईं, ऐथें नही तुसाडड़ी जा मीआं।
असी मझीआं नूं चरवा लैसां, जिधर जाउनाई तिधर जाइ मीआं॥
—हीर रांझा (मुकबल), पृ०२४

है, जब क्रोध से भी कार्य नहीं चलता तो मिन्नतें करता है ।[1] मारने तक को तैयार होता है ।[2] सोहणी की माता उसके साथ अत्यन्त कटु व्यवहार करती है ।[3] सोहणीं का पिता महीवाल को भी उसी प्रकार नौकरी से निकाल देता है जैसे कि रांझे को चूचक ने निकाला था ।[4]

हीर का चाचा 'कैदो' तो शैतान या बाधक का प्रतीक ही बन चुका है । माता-पिता के अतिरिक्त भाई भी हीर की कथा में किंचित् विरोध प्रकट करते हैं ।[5] सस्सी की कथा में भी मुख्य बाधा भाइयों ने ही डाली और छल-कपट से शराब पिलाकर रात को पुन्नू को ले भागे ।

हीर की कथा में 'मुल्ला' भी एक प्रबल विरोधी पात्र है जोकि धर्म का प्रतीक है परन्तु स्वयं अधार्मिक है । मुल्ला का चित्रण सभी हीर-लेखकों ने लोभी एवं धर्म का नाम लेकर अन्याय करने वाले पात्र के रूप में किया है । हीर अनेक बार उस पर

---

१. चूचक भखिआ मलकी दी गल्ल सुण के, गुस्सा खाइ के हीर दे पास आइआ ।
कहिंदा आइके नढीए निज जम्मे, सानूं जमके तुध कलंक लाइआ ।

× × ×

चूचक रोई के आखदा हीर ताईं, तैनूं पवेगी रब्ब दी मार हीरे ॥

—वही, पृ० २३

२. चूचक आखदा, रख तूं जमा खातर, तेरे सोटिआं नाल मैं लिग भन्ना ।

—हीर वारिस, पृ० ५४

नही टलदी चाक दे जाउणे तों, मार सट्टीगा थां जो रब्ब भाइआ ।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० २३

३. शाला मरें तू डारीए कवारीए नीं, हो जा दूर न पइ खपा धीआ ।

—सोहणीं महीवाल, (फजलशाह), पृ० २५

४. बस बस मीआं महीं चार नही ऐवें खाके निमक हराम कीतो ।

× × ×

भली नीत दे नाल टुर जा इत्थों, मैनूं जगदे विच बदनाम कीतो ।
फजलशाह ऐ पर ऐथे रहीं नाही, जाहर आपणा चा अंजाम कीतो ॥

—वही, पृ० ३०

५. सुलतान भाई आहा हीर संदा, आखे माऊं नूं पीऊ नूं ताड़ अम्मां ।
असां फेर जे बाहरा इह डिट्ठी, सट्टां ऐस नूं जान थीं मार अम्मां ॥
तेरे आखिआं सतर जे बहे नाहीं, फेरां ऐसदी धौण तलवार अम्मां ।
चाक बड़े नाही साडे विच्च वेहड़े, नही डमकरे करांगा चार अम्मां ॥

—हीर वारिस, पृ० ३९

रिश्वत लेने और धर्म-विरुद्ध कार्य करने का दोष लगाती है।[1]

नारी के लिए सास एवं श्वसुर भी विरोधी पात्र के रूप में ही माने जाते हैं परन्तु पंजाबी प्रेमाख्यानों मे सास एवं श्वसुर की भूमिका इससे विलक्षण है। अपनी बहुओ के प्रति इन्हे जितना कटु एवं रूक्ष होना चाहिए, ये नहीं है। हीर की सास उसके व्यवहार से अप्रसन्न तो है परन्तु उसके मन बहलावें के प्रस्ताव आने पर एकदम स्वीकृति देती है—

नूहां नाल हुंदी घरां विच वसती।
असां आंदी सी एह विआह कुड़ीए॥
पीड़्हा धत्त न बैठी आ विच वेहड़े।
कदी बैठी न चरखड़ा डाह कुड़ीए॥
कुड़ीआं नाल न खेड़दी कदे गिद्धा।
सईआं नाल न चली आ राह कुड़ीए।

× × ×

तेरे नाल ना जांदी नूं हटकदी हां।
जीओ हैईस तां खेत नूं ले जाहि कुड़ीए।[2]

और **तेरे नाल ना जांदी नू बर्जदी हां, ले जाह जे मुकबला जाउन्दी है।**[3]

सर्पदंश की छल-क्रिया के कारण सारे परिवार में जो शोक-सन्ताप छा जाता है, उसका चित्र यह स्पष्ट करता है कि इन 'बहुओं' के प्रति परिवार मे स्नेह एवं उत्तरदायित्व की भावना है। इस सन्दर्भ में सास-ससुर आदि को व्यक्तिगत रूप में नहीं उभारा गया। सोहणी की कथा में भी उनकी उपेक्षा ही की गई है। फजलशाह

१. (क) खाण वड्ढीआं नित ईमान वेचण पे हो वाग है काजीआं सारीआं नूं।
वारिसशाह मीआं वणी बहुत औखी, नहीं जाण दीसों इन्हों कारीआं नूं॥
—हीर वारिस, पृ० ६७

(ख) काजी दौज़खी वढ़ीआं रिशवतों लै, पढ़िआ धिंगी घोड़े वेख जोड़े।
—हीर अहमद, गुलदस्ता हीर, सं० अमरसिंह, पृ० ५८

२. अर्थ—बहुएं घरों की शोभा होती हैं। हम इसे ब्याह कर लाए थे। यह कभी भी आँगन में आसन बिछा कर नही बैठी। न कभी इसने वहाँ बैठकर चर्खा ही चलाया। न तो यह कभी कुमारिकाओं के साथ खेलती है, न कभी इसने गिद्धा ही डाला। सखियों के साथ कभी मार्ग में भी नही चली। तेरे साथ जाने से मैंने कब रोका है, यदि उसका मन चाहे तो ले जा।
—हीर अहमद, पृ० २६०

३. अर्थ—तेरे साथ जाने से मैं नही रोकती, यदि जाती है तो ले जा।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ६२

ने केवल संकेत मात्र किया है कि पुत्री की योजना से मां को प्रसन्नता हुई—

घरी आइ पहुंची खूनण आशकां दी देवे मां नूं बात सुणा बेली ।
उसदी माओं भी मारना लोड़दी सी दित्ती आस खुदा पुजा बेली ।[1]

कहने का अभिप्राय यही है कि पंजाबी प्रेमाख्यानों को विस्तृत पारिवारिक पृष्ठभूमि में विकसित करने का यत्न नहीं हुआ । सोहणी के अभिसार को भांपने और उसे मारने के लिए कपट-प्रबन्ध करने का कार्य लोक-गाथा में उसकी ननद का है । कादरयार एवं फजलशाह ने इस सम्बन्ध में उसी का उल्लेख किया है, परन्तु हाशम में व्यक्ति-विशेष की अपेक्षा समाज के सिर पर अपराध मढ़ना अधिक उचित समझा है—

रलि घुमिआर पए ततबीरीं इसनूं मार गवावो ।
मुईआं बाझ नहीं इह हटदी सो दुख सूल सहावो ।
जुम्मे खून लहो नहीं आपणे आपणा आप बचावो ।
हाशम हिकमत नाल सोहणीं नूं रोढ़ नदी सुख पावो ।[2]

सम्पूर्ण समाज का विरोध होने के कारण इन नायक एवं नायिकाओं को मानव पात्रों से सहायता नहीं मिल पाई, वे प्रायः विरोध में ही रहे । 'सहती', हीर की ननद, अवश्य अपवाद है । परन्तु वहां कारण भिन्न है । वहां स्वार्थ-भावना है । सहती भी उसी मार्ग की अनुगामिनी है जिसकी हीर । रांझे की योग साधना पर उसे विश्वास हो जाता है और वह अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए ही सहायता करती है; रांझे से स्पष्ट कहती है—

लै के सोहणीं मोहणीं हंस राणी, म्रिग नैणीं नूं जाइ के घल्लनी हां ।
तेरीआं वेख के अज़मता पीर मीआं बांदी होई के घरां नूं चल्लनी हां ।
मैनूं बखश मुराद बलोच साईआं, तेरीआं जुत्तीआं सिरे ते झल्लनी हां ।
वारिसशाह कर तरक बुराईआं दी, दरबार अल्लाह दा मल्लनी हां ।।[3]

---

१. अर्थ—वह आशिकों की हत्यारी, घर लौट आई । उसने मा । को सारी बात बता दी । उसकी माता (बहू को) मारना चाहती थी, ईश्वर ने इच्छा पूर्ति कर दी ।

—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० ३९

२. अर्थ—सभी कुम्हारों ने मिल कर मंत्रणा की कि इसे मार डालना चाहिए । यह मरे बिना नहीं मानेगी, इससे वह शूल सह लो । अपने जिम्मे हत्या मत लो, अपना आप बचाओ । हाशम कहते हैं कि किसी चालाकी से उसे नदी में बहा दो ।

—हाशम रचनावली, पृ० ७२

३. अर्थ—मैं जाकर उस छैल छबीली, हंसिनी मृगनयनी को भेजती हूं । तेरी अलौकिक शक्ति को देखकर, मैं तेरी किंकरी होकर घर को जा रही हूं । हे साईं, मुझे मुराद बलोच बख्श दे; मैं तेरी जूतियां सिर पर सहने को तैयार हूं । वारिसशाह कहते हैं कि मैं बुराइयां छोड़ कर ईश्वर के दरबार में बैठती हूं ।

—हीर वारिस, पृ० १७३ ।

और जब रांझा हीर को लेकर भागने लगता है, एकदम अपना देय मांगती है—

'निक्कल कोठिओं तुरत तिआर होइआ, सहिती आणि हज़ूर सलाम कीता ।
बेड़ा लाईं बन्ने असां आजजां दा, असां कम्म तेरा सरंजाम कीता ।
भाबी हत्थ फड़ाइ के टोर दित्ती कम्म खेड़िआँदा सभौ खाम कीता ।'[1]

मिरजे की मासी बीबो, हीर की सहेली हस्सी एवं मिट्ठी नाइन तथा लुड्डन मल्लाह आदि अवश्य सहायकों मे गिने जा सकते हैं परन्तु इनकी सहायता का कथा भाग मे विशेष योगदान नही बनता। ये सभी व्यक्ति चरित्र की अपेक्षा पात्र की सीमा में ही अधिक है। लुड्डन[2] कुछ लेकर तथा बाध्य होकर सहायता करता है और मिट्ठी नाइन[3] को भी कुछ दिया जाता है तभी सहायता करती है।

'मिरजा साहिबां' में कम्मू ब्राह्मण का चरित्र अत्यन्त वास्तविक है। वह स्वयं बहती गंगा में हाथ धोना चाहता है परन्तु साहिबां की फटकार उसके होश ठिकाने लगा देती है—

अगो साहिबाँ बोलदी तेरे मुंह सुआह ।
मारां चपेड़ तेरे गजब दी देवां अकल गवाह ।
खबर हो जाए मेरे बाप नूं तेनूं शहिरों देण उजाड़ ।
खबर हो जाए वीर शमीर नूं तैनूं करसन मार ।।
जे खबर हो जाए पिंड वे मुंडिआं करदे ढीमा दी मार।
भलके सिराध, दादा आउणगे, निउंदा खान ते जा।
लगनीआं मैं तेरी पोतरी, बहि गिआं रन्न बना ।
लगू कचहिरी खीवे बाप दी, तैनूं बन्ह के लऊ मंगवा ।[4]

एक फटकार से ही अकल ठिकाने आ गई और कह दिया कि मेरा अपराध क्षमा कर—

इह गुनाह मेरा बखश लै साहिबां जित्थे घल्ले उत्थे जां,
डोडा लगा हफीम साडी अकल ठिकाणे नां ।

---

१. अर्थ—जैसे ही उस मकान से निकल कर रांझा तैयार हुआ, सहती ने आकर सलाम किया। (और कहा) मुझ विनयशीला का भी बेडा पार लगा, मैंने तेरा काम पूरा किया है। अपनी सगी भाबी का हाथ तुम्हारे हाथ में पकड़ा दिया है और अपने मायके को खराब किया है।

—हीर वारिस, पृ० १९५

२. हीर रांझा (मुकबल), पृ० ९; हीर अहमद, पृ० ९४
दामोदर की हीर (पृ० ५५) में लुड्डन उसके सौंदर्य एवं गायन पर मोहित होता है।

३. हीर रांझा (मुकबल) पृ० २८, हीर वारिस, पृ० ४२

४. बबीहा बोला, पृ० १०१

मैं ता भोला गरीब हाँ मेरी रख धौलियां दी लाज ।
वड़ी रातों उठके तुरपवां खरलां दी राह ।[1]

पंजाबी प्रेमाख्यानों मे दमोदर एवं मुकबल ने रामू ब्राह्मण को दूत बनाया है एवं वारिस ने एक नारी को, परन्तु ये सब मात्र दूत ही है । अति संक्षिप्त संदेश देकर ही इनके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है । 'मिरजा साहिबा' में भी पीलू ने कम्मू ब्राह्मण को ही दौत्य कार्य सौपा है, परन्तु वह दूत बनने की अपेक्षा पति बनना अधिक श्रेष्ठ समझता है । जिस कारण उसे साहिबां की फटकार भी सुननी पड़ती है, परन्तु वह शीघ्र ही संभलकर क्षमा-याचना करता है ।

दमोदर एवं वारिस की रचना में अनेक पात्र ऐसे हैं जो मुख्य कथा की गति में कुछ भी योगदान नही देते परन्तु नायक अथवा नायिका के चरित्र के गुणावगुणों को उद्घाटित करने के लिए वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । दमोदर मे नूरा सबल एवं लुड्डन नायिका की वीरता एवं साहस को स्पष्ट करते हैं तो झीवरी, जाट आदि नायक के सौंदर्य एवं डरपोक प्रकृति को अनावृत करते हैं । वारिस एवं हीर सम्बन्धी अन्यरचनाओं में 'अयाली' केवल नायक के चरित्र के असन्तुलन को ही स्पष्ट कर पाता है । मुख्य कथा भाग में ये सब पात्र कोई भी योगदान नही देते ।

'सस्सी पुन्नू' का अयाली एक दयालु परन्तु डरपोक व्यक्ति है । सस्सी के विलाप एवं चीत्कार को सुनकर वह डरता है ।[2] सस्सी की मूर्च्छितावस्था में उसकी सहायता करता है, परन्तु उसकी सहायता से इन प्रेमियों को कोई लाभ नहीं पहुंचता ।

संक्षेप में पंजाबी में मानव पात्रों की भूमिका मुख्यतः विरोधात्मक ही है । सहायक पात्र कथा भाग में कोई विशेष योगदान नही देते । विरोधी पात्रों में अधिकांश पारिवारिक सदस्य ही है । नायक-नायिका के परिवार के बाहर से पंजाबी प्रेमाख्यानों में बहुत ही कम पात्रों को स्थान मिला है । जनजीवन के अन्य पक्षों से इस साहित्य में बहुत कम पात्र लिये गए है । उनका सम्बन्ध कृषक-वर्ग से ही है । पशु-पक्षी पात्र रूप में यहाँ प्रयुक्त नही हुए ।

(ख) **अलौकिक पात्र**—पंजाबी प्रेमाख्यानों में अलौकिक पात्रों का योगदान नगण्य है । इनमें दो-तीन नाम ही यत्र-तत्र आए हैं । धार्मिक देवताओं तथा समादृत पात्रों में पंजपीर एवं खाजा खिजर है और घृणित पात्रों के रूप में देव (जिन) या राक्षस आदि । मुख्य कथाओं में केवल हीर कथाचक्र में ही 'पंज पीर' अलौकिक शक्ति के रूप में आते हैं जो नायक-नायिका के हितैषी हैं और उनको प्रोत्साहित करते रहते

१.ववीहा बोला पृ० १०१
२. जिउं जिउं सुणे अवाज सस्सी दी लुक छिप जान बचाए ।

—हाशम रचनावली, पृ० १००

है। सभी रचनाओं में उनकी अलौकिक शक्ति का वर्णन है परन्तु नायक के कष्टों को उन्होंने किसी समय घटा बढ़ाकर कथा में दिशा परिवर्तन नहीं किया। रांझे को उन्होंने भयंकर एवं दुर्गम मार्ग में दर्शन दिये और अलौकिक सिद्धियां प्रदान कीं।[1] संभवतः उन्ही सिद्धियों के बल से वह चूचक की भैसों को अपने वश मे कर सका एवं चमत्कार के द्वारा सहती को प्रभावित कर सका, अदली राजा की नगरी में अग्नि को बुझा सका, परन्तु इन पीरों का कथा भाग में सीधा योगदान कवियों ने अंकित नही किया।

सस्सी की कबर बनाने एवं जनाजा तैयार करने में अनेक फरिश्ते आए तथा सोहणी की जल-समाधि के समय खाजा खिजर एव अन्य देवता उपस्थित हुए परन्तु इससे पूर्व ये लोग अनुपस्थित ही रहे। वहां भी मृतकों का सत्कार मात्र कर इनके कर्तव्य की इतिश्री है। 'कामरूप कामलता', 'सैफुलमुलूक', 'शाह बहराम हुस्नबानो' आदि भारतीय अथवा विदेशी कहानियों में तो इन अलौकिक पात्रों की भरमार है। 'कामरूप कामलता' मे शाहपरी, एक टांग वालों का राजा, तोते, भिन्न-भिन्न नाम एवं शक्ति वाले देव-दैत्य, उनके प्राणों के प्रतीक पक्षी, नाशक नाग, अमृत पिलाने वाले केकाईल, खूनी बहराम, भयानक मगरमच्छ, सभी कुछ है। इनके विषय में भिन्न-भिन्न सदर्भो मे स्पष्ट किया ही जा चुका है कि ये कथा को चमत्कृति मात्र प्रदान करते है।

तुलना

हिन्दी एवं पजाबी के प्रेमाख्यानकारों ने अधिक रुचि मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में ली है, गौण पात्रों की ओर उनकी अपेक्षा बहुत ही कम ध्यान दिया है। पंजाबी प्रेमाख्यानों में अलौकिक पात्र नाम मात्र को ही आए है। उत्तरकाल में ही इनकी भरमार हो जाती है। पशु-पक्षी न तो यहां दौत्य कार्य करते है, न नायक नायिका के सुख-दुख में भाग लेते है। मारवणी तो ढोला के 'करहे' से वार्तालाप कर सकती है, करहा भी उत्तर दे सकता है परन्तु मिरजा अपनी बकी या नीली की प्रशंसा मात्र कर सन्तुष्ट हो जाता, बकी मूक असहाय पशु से अधिक कुछ नही।

इन पात्रों में प्रतीकात्मकता के दर्शन दुराग्रह मात्र हैं। इस प्रकार की प्रतीकात्मकता कुछ देर में ही छिन्न-भिन्न हो जाती है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में मानव-पात्र विविध रूपों में हमारे समक्ष आते हैं। उनका संग्रह जीवन के सभी पक्षों से किया गया है—राजा, रंक, संन्यासी, मालिन, मंत्री, विद्वान्, योद्धा, व्यापारी, बनजारा आदि। इनके द्वारा उस समाज के अनेक

---

१ क हीर दमोदर, पृ० ५२
ख. हीर वारिस, पृ० २४

सदस्यों के चरित्रगत गुणों का उद्‌घाटन होता है। नायक एवं नायिका तो ऐसे वर्ग से सम्बद्ध हैं जो जनसाधारण से कटा हुआ है। पृष्ठभूमि में इन सभी पात्रों के आ जाने से ये रचनाएं समाज से सहज में ही सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। इन सबके अभाव में ये कथाएं किसी अन्य लोक की ही प्रतिभासित होती। पंजाबी मे गौण मानव-पत्र प्रायः विरोधमूलक भूमिकाओं मे ही काम करते है, सहायक रूप मे तो ये बहुत ही कम स्थानों पर प्रयुक्त हुए है। पजाबी में सहायता करने वाले अनेक बार किसी प्रलोभनवश ही सहायता-कार्य करने को उद्यत होते है। नायक एवं नायिका का सम्बन्ध यहां जन-सामान्य से है। इस प्रकार जो काम हिन्दी में गौण पात्रों ने किया है पंजाबी में वही कार्य प्रधान पात्रों द्वारा हुआ है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों का पात्र-चयन पारिवारिक परिधि से बाहर कभी-कभी ही हुआ है—भाई, चाचा, ननद, सास-श्वसुर या सहेलियों के वृत्त मे अधिकांश कथाए घूमती रही है। जबकि हिन्दी प्रेमाख्यानों में पारिवारिक बन्धनों की चिन्ता आरम्भ या अन्त में ही है।

अलौकिक पात्रो के विषय में भी यही कहा जा सकता है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में अलौकिक पात्र महत्त्वपूर्ण सभावनाओं का सूत्रपात्र करते है, नायक-नायिका के जन्म से लेकर लक्ष्य-सिद्धि तक अनेक कार्य करते हैं। अनेक बार दोनों के मध्य प्रेम का सूत्रपात करने वाले भी यही होते है और इन्हीं के कारण प्रेमी और प्रेमिका अलग होते है। नायक-नायिका की परीक्षा लेते हैं परन्तु पंजाबी में इन तत्त्वों की योजना नगण्य सी होने के कारण इस प्रकार के पात्र भी दिखाई नही देते।

निष्कर्ष

हिन्दी प्रेमाख्यानों में चरित्रगत-वैविध्य है जबकि पंजाबी प्रेमाख्यानों के अधिकांश चरित्र अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र से लिये गए है, परन्तु दोनों ही ओर उनके चरित्र के विविध पक्षों का उद्‌घाटन करने में विशेष रुचि नही दिखाई गई। अधिकांशतः ये एकांगी ही है। हिन्दी प्रेमाख्यानो के नायक आदर्शोन्मुख है तो पंजाबी प्रेमाख्यानों मे उनका चरित्र यथार्थ के अधिक समीप है। हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाएं अबलाए हैं परन्तु पजाबी प्रेमाख्यानों में वे साहसी बालाएं हैं। दोनों में प्रधान पात्रों के इस प्रकृति-भेद के अतिरिक्त सहायक एवं विरोधी पात्रों की योजना में भी कवियों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। हिन्दी में अलौकिक तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण योगदान है तो पंजाबी में अतिसामान्य।

: ५ :

प्रेम-निरूपण

महत्व

प्रेमाख्यानों का वर्ण्य प्रेम है, अतः इनमें अभिव्यक्त प्रेम के स्वरूप एवं पद्धति के विषय मे विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। हिन्दी एवं पंजाबी के कवियों ने एक स्वर से प्रेम के महत्त्व का वर्णन किया है। कवि गणपति ने ग्रंथ के आरंभ में सर्व-प्रथम 'रति रमण' की स्तुति करते हुए लिखा है कि ब्रह्मा, हरि, हर सभी को 'कुसुमशर' ने जीत रखा है, यह सृष्टि-विस्तार को संभाले हुए है। विश्व की अभिवृद्धि का कारण देव प्रथम वदनीय है।[1] लगभग इसी प्रकार के भाव 'रसरतन' के कवि पुहकर ने प्रकट किए हैं। 'ईश्वर ब्रह्म-रूप धारण कर सृष्टि करता है; विष्णु-रूप धारण कर उसका प्रतिपालन करता है और कामरूप धारण कर क्रीड़ा करता है। भोले मन वाला, पुहकर कवि 'कामरूप' में उसकी क्रीड़ा की अनेक कथाओं में से केवल एक का ही वर्णन करता है। वाणी रूपी बत्ती में स्नेह (प्रेम) का स्नेह देकर, मदनाग्नि के उद्दीप्त करने के लिए गुणग्राहकों के समीप कवि पुहकर ने यह दीपक जलाया है'।[2] "जिस तन में प्रेम प्रकट हो जाता है वह अजर अमर हो जाता है। इस मार्ग का अन्त पाना कठिन है। अनेक

---

१. सुर\नर पन्नग पखि वली, लच्च चउरासी लोय।
ब्रह्मा हरि हर, कुसुम-शर जिणि जीत्या सवि कोय ॥

× × ×

संभलज्यो सवि सृष्टिनु अे-विण आवइ छेह।
कारण विश्व बधारवा आदि ऊपायु अेह ॥

—माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० १

२. ब्रह्म रूप सिरजै जगत, विष्णु रूप प्रतिपाल। काम रूप क्रीड़ा करी, रुद्र रूप महाकाल ॥
काम रूप क्रीड़ा करै ते कलि कथा अनेक। मन भोरो थोरी सुमति, पौहकर वरनत एक ॥

× × ×

वानी बात सनेह दै गुन गाहकन समीप। मदन अग्नि उद्दीप करि किय कवि पुहकर दीप ॥

—रसरतन, पृ० ८,९

लोगों ने अनेक प्रकार से इसका गुणगान किया है।"[1] प्रेम का महत्त्व इतना अधिक है कि संसार में सर्वत्र एक मात्र सुन्दर एवं सग्राह्य प्रेम ही है—

तीनि लोक चौदह खंड, सबै परै मोहि सूझि ।
प्रेम छांडि किछू और न लोना जो देखौं मन बूझि ।।[2]

मनुष्य विना प्रेम के एक मुट्ठी भर धूल से अधिक कुछ नहीं।[3] यह सृष्टि प्रेम का ही प्रकट रूप है, यह बताते हुए कवि मंझन ने कहा है—प्रेम सृष्टि का अमूल्य रत्न है। उसी का जीवन धन्य है जिसके मन में प्रेम निवास करता है।[4] प्रेम की ज्योति से ही सृष्टि में प्रकाश होता है। प्रेम के समान सुन्दर वस्तु इस संसार मे कोई नहीं।[5] जिसके हृदय में प्रेम का दिया जल जाता है उसका सम्पूर्ण जीवन उज्ज्वल हो जाता है।[6]

'रूपमंजरी' के आरंभ में भक्तकवि नंददास ने भी परम ज्योतिस्वरूप ईश्वर को प्रेममय कहकर नमस्कार किया है।[7] और अन्त में अगम अगोचर प्रभु को अति निकट लाने का मूल मंत्र भी इसी प्रेम को बताया है।

जदपि अगम तें अगम अति निगम कहत हैं जाहि ।
तदपि रंगीले प्रेम तें निपट निकट प्रभु आहि ।।[8]

---

१. जिहि तन प्रेम प्रगट तन कीनौ। सोतनु अजर अमर कर दीनौ।।

× × ×

कठिन पंथु जिहि अंतु न पायौ। बहु विधि विविध बहुत बिधि गायौ।।

—रसरतन, पृ० ३९

२. पदमावत, पृ० ९३

३. मानुस पेमु भएउ बैकुंठी। नाहि त काह छार एक मूंठी।।

—वही, पृ० १५९

४. उतपति सिस्टि प्रेम सों आई। सिस्टि रूप भर पेम सवाई।।
जगत जनमि जीवन फल ताही। पेम पीर उपजी जिअ जाही।।

—मधुमालती, पृ० २३

५. पेम जोति सभ सिस्टि अंजोरा। दोसर न पाव पेम कर जोरा।।

—वही, पृष्ठ २४

६. पेम दिया जाकें घट बारा। तेहिं सम आदि अंत उजिआरा।।

—वही, पृ० २५

७. प्रथमहि प्रनऊं प्रेममय, परम जोति जो आहि।

—नंददास ग्रंथावली, पृ० ११५

८. नंददास ग्रंथावली, पृ० ४३

आलम ने लिखा है कि जिस व्यक्ति के हृदय मे प्रेम नहीं वह मूर्ख एवं मतिहीन है। मनुष्य और पशु के मध्य प्रेम ही तो एकमात्र भेदक रेखा है। प्रेम के तेज द्वारा ब्रह्मज्ञान की भी प्राप्ति की जा सकती है। मनुष्य का शरीर तो अंधकूप के समान है। 'नेह' का दीपक जलने पर ही उसके रूप और गुणों का ज्ञान होता है।[1] पूर्ण ब्रह्म भी प्रेममय है, अतः प्रेम को ही सर्वोच्च मानना पड़ता है।[2]

प्रेम या 'इश्क' के बिना इस संसार मे रुचि नही हो सकती। जिसमे 'इश्क' नहीं वह कुछ भी नही। यही कारण है कि मुल्ला वजही ने 'इश्क' का दर्जा सर्वोच्च मानते हुए सर्वत्र उसका अस्तित्व स्वीकार किया है—

बड़ा इश्क का सब ते दर्जां अहै। के यरु जानहीं इश्क हरजा अहै ॥
जहां दो हैं वां इश्क बिन रुच नहीं। नहीं इश्क कुच जिसमें वो कुच नहीं ॥[3]

उसमान ने प्रेम के अमरत्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रेम-रस का पान करने वाला युग-युगान्तर तक जीवित रहता है।[4] क्योकि यह ज्योति सर्वप्रथम ईश्वर के हृदय मे ही उत्पन्न हुई थी।[5] प्रेम के ही कारण उसने सृष्टि की रचना की।[6] कवि सूरदास लखनवी ने भी प्रेम को अमर बताया है।[7] कवि कासिमशाह का विचार है कि इस भवसागर को पार करने का एकमात्र उपाय गले मे प्रेम की फासी लगाना

---

१. सो मतिहीन वज्र तनु होई। संग्रह नेहु न जावै कोई॥

× × ×

मानुस पसु अंतरु यह अहई। माधव सोई नेहु जो बहई।
ब्रह्मग्यान पावैं पुनि सोई। जिहि तन तेज नेह कौ होई॥
अंधकूप मैं देहु गुप्त प्रगट कोई नहिं लखहि॥
जानै दीपक नेहु, तब सब देखै रूप गुन॥

—हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य संग्रह, पृ० २१३

२. पूरन ब्रह्म प्रेम मय जानहु। सब ऊपर प्रेमहि पहिचानहु॥

—आलमकृत श्यामसनेही, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ११६ पर उद्धृत।

३. कुतबमुश्तरी, पृ० २५

४. औ जो प्रेम अमीरस पीया। मरै न मारै जुग-जुग जीया॥

—चित्रावली, पृ० २३६

५. पहले उठा प्रेम बिधि हीये। उपजी जोति प्रेम के दीये॥

—वही, पृ० ५

६. आदि प्रेम विधिनै उपराजा। प्रेम हि लागि जगत सब साजा।

—वही, पृ० १३

७. प्रेम अमर यह मरै न मारा। बुझै न प्रेम अगिनि चिनगारा॥

—नलदमन, पृ० १६३

है ।[1] इससे भी आगे बढ़कर कवि नूरमुहम्मद ने तो उस व्यक्ति को दोनों लोकों का स्वामी माना है जिसने अपने मन में प्रेम-रस को जमा लिया है। प्रेम मार्ग में जीवन का बलिदान करने वाले व्यक्ति धन्य है ।[2] हृदय में प्रेम बढ़ने पर ही ईश्वर व्यक्ति को अपने निकट स्थान देता है ।[3] शेख निसार तो यह मानते हैं कि मनुष्य का जन्म ही प्रेमाग्नि को सम्भालने के लिए हुआ और ईश्वर ने मनुष्य को यह थाती वैसे ही सौंप रखी है जैसे कि दीपक को बत्ती । ईश्वर उसी बत्ती में आकर छिप जाता है और देह को जला कर पुनः प्रच्छन्न हो जाता है—

प्रेम अगिन तेहि काहुँ सँभारा । रचा मनुष बहु विधिबिस्तारा ।।
तेहि सौंपा वह प्रेमक थाती । दीपक माँह धरा जस बाती ।।
तेहि बाती महँ आय छिपाए । होय परछिन पुनि देह जराए ।।[4]

वास्तव मे ये कवि किसी मतवाद के फेर में पड़ने के बजाए प्रेम के महत्त्व को प्रतिष्ठापित कर मानव के भीतर छिपी दानवता को मिटाने के लिए प्रयत्नशील थे ।

कवि सूरदास लखनवी ने लिखा है कि 'वेद एव पुराण उसी का यशोगान करते हैं जिसका हृदय प्रेम की उलझन मे उलझा हो, अन्यथा वाणी भ्रम मे पड़ जाती है। प्रेम के अतिरिक्त उसके पास कुछ भी तो गाने को नही है—

वेइ बेद पुरानह गाई । जिन मन पेम उरझ उरझाई ।।
नाहित ऐसे गये हिरानी । पेम बिना काछू न बखानी ।[5]

प्रेम के इसी महत्त्व को महाकवि जायसी ने पश्चात्ताप करते हुए राघवचेतन के मुख से भी कहलवाया है ।

कवि सो पेम तंत कबिराजा । झूँठ साँच जेहि कहत न साजा ।[6]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'कीन्हे प्राकृत जनगुनगाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना' के समानान्तर ये कवि 'प्रेम-तत्व' के गान को ही महत्त्वपूर्ण मानते

---

१. फांसी प्रेम प्रीति की डारै । भव सागर से पार उतारो ।।

—हंस जवाहर, पृ० ४

२. अलष प्रेम कारन जग कीन्हा । धन जो सीस प्रेम महं दीन्हा ।
जाना जेहिक प्रेम महं हीया । मरै न कबहूं सो मर जीया ।

× × ×

जा मन जामा प्रेम रस, भा दोउ जग को राय ।

—इन्द्रावती, पृ० ६

३. प्रेम बढ़ावत प्रेमी हियरे । पुनि आनत तेहि अपने नियरे ।।

—वही, पृ० १०

४. हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य संग्रह, पृ० ३२८

५. नलदमन, पृ० १६३

६. पदमावत, पृ० ४६३

थे। इनकी दृष्टि मे मानव-कल्याण के लिए प्रेम का वही स्थान था जो भक्त कवियों की दृष्टि में भगवान् का। उसमान ने 'चित्रावली' के अन्तिम दोहे में प्रेम-मार्ग को सर्वोत्तम घोषित करते हुए लिखा है—

ज्ञान ध्यान मद्धिम सबै, जप तप संजम नेम।
मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपारै प्रेम॥

अतः हिन्दू एव मुसलमान कवि समान रूप से प्रेम के महत्त्व को स्वीकार करते हैं इसमे किसी प्रकार की शंका का अवकाश नही है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में प्रेम का महत्त्व—प्रेम के महत्त्व को पंजाबी कवियों ने भी उतनी ही गम्भीरता से स्वीकार किया है। हाफिज बरखुरदार ने ईश्वर को 'आशिक' एवं मुहम्मद साहब को उसका 'माशूक' बताते हुए कहा है कि इस संसार का कोई भी प्राणी 'इश्क' से रहित नही है। उस ईश्वर की लीला अनोखी है, किसी में तो 'इश्क मजाजी' समाया हुआ है और किसी मे 'इश्क हकीकी'। आदम रूपी वृक्ष के 'इश्क हकीकी' और 'इश्क मजाजी' दो फल है। संसार मे इश्क ही यथार्थ ज्ञान है। मुल्ला एवं काजी तो 'अलिफ-बे' पढ़ पढ़ कर सेंतमेंत में ही विद्वान् हो गये।[1] वारिसशाह ने स्पष्ट लिखा है कि पहले ईश्वर ने ही स्वयं इश्क किया। उसका प्रेमास्पद नबी रसूल था। इश्क करना तो पीरों फकीरों का स्वत्व है। जो इश्क करते है उनकी आत्मा का बाग खिल जाता है।[2] हाशमशाह सर्वशक्तिमान की प्रेममयता से चकित है। इश्क के ही कारण उसे शून्यता से अस्तित्व की प्राप्ति हुई है, अतः यह ससार इश्क का ही प्रसार है।[3] ईश्वरीय लीला में इश्क की प्राथमिकता को व्यक्त

१. रब्ब आशिक ते माशूक मुहम्मद इश्को खलकत होई।
आदम मलक हैवान परिंदे इशकों बाझ न कोई।
जो मखलूक उपाइआ खालिक हरहर इशक रमाया।
किसी हकीकी किसे मजाजी वेख खिआल रखाया।
रुख आदम फल इशक हकीकी एही फल मजाजी।
अलिफ बेआं पढ़ महिरम होए फाजिल मुल्लां काजी।

—यूसफ जुलेखा, पृ० ४२-४३

२. अव्वल हमद खुदाइदा विरद कीचै, इशक कीता सू जग दा मूल मीआं।
पहिले आप ही रब्ब ने इशक कीता, माशूक है नबी रसूल मीआं।
इश्क पीर फकीर दा मरतबा है, मरद इशक दा भला रंजूल मीआं।
खिले तिन्हां दे बाग कबूल अन्दर, जिन्हां कीता है इशक कबूल मीआं॥

—हीर वारिस, पृ० १

३ पर तूं समझ हिजारूं आकल इह गल्ल समझण वाली।
ओह भी वेख न इशकों खाली जो हर शै दा वाली।
हाशम बूद कीता नाबूदो हिकमत इशक सिखाती।
जद एह सारी मुराद इशक दी मैं कर खियाल पछाती॥

—हाशम रचनावली, पृ० ५०

करते हुए अहमदयार लिखते है कि सृष्टि-रचना से भी पूर्व इश्क प्रकट हो चुका था। सृष्टि की रचना के अनन्तर इसका प्रकाश चौदह भुवनो मे फैल गया और सर्वत्र इसका बोल-बाला हो गया।[1] इश्क को ईश्वर से मिलने का एक मात्र मार्ग मानने वाले 'कादरयार' की दृष्टि मे वे लोग बोझा उठाने वाले गधे है जिन्होंने इश्क नहीं किया—

जिसनूं लाग न इशक दी सो खर भार तले।
पर साहिब मिलदा कादरा अन्दर इशक चले।।[2]

फजलशाह भी ऐसे मनुष्यो को सज्जन न समझने का आग्रह करते है।[3] शाहमुहम्मद बख्श की दृष्टि मे भी बिना इश्क के ईमान का कुछ भी अर्थ नही,[4] इश्क से शून्य व्यक्ति तो कुत्ते से भी निकृष्ट है। कुत्ते सन्तोषपूर्वक अपने स्वामी के घर की रक्षा तो करते हैं—

जिस दिल अन्दर इशक न रचिआ कुत्ते उस थीं चगे।
खाविंद दे घर राखी करदे साबिर भुखें नगे।।[5]

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी एवं पंजाबी के प्रेमाख्यानकारो ने समान रूप से प्रेम के महत्त्व को स्वीकार किया है। परन्तु इस विषय पर पजाबी की अपेक्षा हिन्दी मे अधिक कहा गया है। वास्तव में मुसलमान कवियों के निकट तो प्रेम इसलिए भी वन्दनीय है कि सर्वप्रथम ईश्वर ने मुहम्मद साहिब के प्रति प्रेम के कारण ही सृष्टि की रचना की। हिन्दी के मुसलमान कवियो ने भी इस सम्बन्ध मे अपनी आस्था को स्पष्टतः अभिव्यक्त किया है।[6] हिन्दू कवियों ने भी परम्परा से सृष्टि के मूल कारण-स्वरूप प्रेम के महत्त्व को अस्वीकार नही किया।

---

१. अजे कुन फयकुन न सद होइआ।
ऐन शीन ते काफ जहूर कीता।।
जदों इशक दी नार अनवार सुट्टी।
ओस नूर थीं नबी दा नूर कीता।।
चौदां तबकां ते इशक निशान झुल्ले।
अरश फरश तमाम मामूर कीता।।

—सस्सी पुन्नूं, पृ० ३७

२. कादरयार, पृ० ६०

३. अच्छा जान नाहीं, जिन्हां इशक नाही, तिन्हां मूल न दीन अमान बेली।

—सोहणीं महीवाल, पृ० ५२

४. इशकों बाझ ईमान कवेहा, कहिआ ईमान मलामत।

—सैफुलमुलूक, पृ० ८०

५. वही, पृ० ८०

६. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १२२

प्रेमोत्पत्ति एवं भाग्य या ईश्वर-कृपा

हिन्दी—इतनी महत्त्वपूर्ण वस्तु बिना भाग्य की कृपा के नहीं मिलती। संभवतः इसी लिए हिन्दी के अधिकांश प्रेमाख्यान-काव्यो में नायकों एवं नायिकाओं के जन्म के ही समय ज्योतिषी इनके प्रेम एवं वियोग के सम्बन्ध मे भविष्यवाणियां कर देते है। 'मृगावती' का राजकुंवर, 'मधुमालती' का मनोहर, 'चित्रावली' का सुजान, 'ज्ञानदीप' का ज्ञानदीप, 'रसरतन' का सूर, 'सैफुलमुलूक बदीउलजमाल' का सैफुलमुलूक तथा 'पुहपावती' का राजकुंवर सभी के विषय मे ऐसी भविष्यवाणियां की गई हैं। मंझन ने स्पष्ट रूप से प्रेम को पूर्व-पुण्यों का फल घोषित किया है।[1] उनका विचार है कि कोई विरला सौभाग्यशाली ही इसे प्राप्त करता है।[2] इस सिद्धि की प्राप्ति ईश्वर की दया-दृष्टि से ही होती है किसी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा से नहीं—

कौनों पाठ पढ़े नहि पाइअ, बिरह बुद्धि औ सिद्धि।
जा कहं देइ दयाल दया करि, सो पावै यह निद्धि॥[3]

मझन के ही समान आलम[4] एवं उसमान[5] भी इसे पूर्वजन्मों का प्रसाद मानते है। मुसलमानों मे पुनर्जन्म के प्रति विश्वास न होने के कारण इन कवियो की ये टिप्पणिया विशेष रूप से आकर्षित करती है। कासिमशाह का भी यही विश्वास है कि ईश्वर दयापूर्वक ही मित्र प्रदान करता है।[6]

पंजाबी—मौलवी लुत्फअली ने प्रेम को ईश्वरीय कृपा बताया है। बदीउलबानो प्रेमी सैफुलमुलूक को स्पष्ट कहती है कि ईश्वर ने मुझे स्वर्गीय सौंदर्य प्रदान किया और मुझ पर अपार कृपा कर तुम जैसा व्यक्ति प्रदान किया। नायक सैफल भी अपने प्रेम

---

१. सिस्टि मूल बिरहा जग आवा। पै बिनु पुब्ब पुन्नि को पावा॥

—मधुमालती, पृ० २५

२. बिरला कोई जाके सिर भागू। सो पावै यह पेम सोहागू॥

—वही, पृ० २४

३. वही, पृ० २५

४. पूरब जन्म कोटि जो करई। तब सो नेकु पंथ पगु धरई॥

—हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य संग्रह, पृ० २१३

५. कै वहि जनम पुन्य कछु कीन्हा। तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा॥
कै बेनी सिर करवट सारा। कै कासी तन तप महँ जारा॥
कै मथुरा वसि हरि जस गावा। ताहि पुन्य यह दरसन पावा॥

—चित्रावली, पृ० ३३

६. प्रेम न तजै वही दुख होई। दया ते मीत बिधाता होई॥

—हंसजवाहर, पृ० २६

को आदिकालीन ही बताता है।[1] हाशम ने 'हीर' में संकेत द्वारा इश्क को भाग्य की ही कृपा माना है।[2] उन्होंने सोहणी मे भी ऐसा ही संकेत किया है।[3] फजलशाह ने इश्क को आशिकों के प्रति ईश्वर का मुख्य वरदान बताया है।[4] मियां मुहम्मदबख्श ने कहा है कि यदि ईश्वर प्रेम का रोग लगा दे तो किसी औषध की आवश्दकता नही।[5]

स्पष्ट है कि दोनों ही भाषाओ के कवियो मे इस विषय पर मतैक्य है कि प्रेम श्रेष्ठ वस्तु है एवं भाग्य अथवा ईश्वर की कृपा के बिना इसका वरदान प्राप्त नहीं होता।

प्रेमोदय एवं रूप-सौंदर्य

भाग्य या पूर्व पुण्य तो अदृश्य कारण है। आलम ने एक अन्य अदृश्य कारण 'रीझ' का भी वर्णन किया है—"जिस पर मन आ जाए उसके बिना सम्पूर्ण ससार शून्य दिखाई देता है।"[6] प्रेम एवं रूप का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रायः रूपाकर्षण से ही प्रभावित होकर व्यक्ति मोहित होता है।[7] उसमान के अनुसार जहां-जहा भी रूप की झलक मिलती है वहां प्रेम पहुंच जाता है। रूप ने जहा वाणिज्य का प्रसार किया कि प्रेम ने सौदा आरंभ कर दिया। जिस विधाता ने रूप को उत्पन्न किया उसी ने प्रेम का चकोर भी गढ़ लिया। उज्ज्वल रूप दीपक-ज्योति के समान हैं उस पर प्रेम-पतगे आकर जलते है, रूप केतकी एवं केवड़े की वास है जबकि प्रेम उस पर जान न्योछावर

---

१. मनसबदार मुनासब मैंकूं मौला मरद मिलाया।
थिया नसीब नकारी कूं वाह बाग बहिश्ती साया।
× × ×
रोज़ मीसाक दे जैं डिन्ह खावंद कुल बनाया।
मैं मसकी ओहे डिन्ह ढैडा सही गुलाम सडाया।
—मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ३०२

२. हाशमशाह रंम्फोटे दे भाग जागे, पिछों हीर आई मौले ढंग लाइआ।
—हाशम रचनावली, पृ० ४०

३. पिछले लेख लिखे जिस किस नूं, बाहीं पकड़ मिलाइआ।
—वही, पृ० ५८

४. होइआ फज़ल खुदाइ दा, आशकां ते जदों इशक ने आन मकान कीता।
—सोहणी महीवाल, पृ० १

५. जो रब्ब रोग इशक दा लावे लोड़ नहीं कोई दारू।
—सैफुलमुलूक पृ० ८०

६ जो जिहि राता सो तिहि भावहि, तेहि विनु सून द्रिस्टि जगु आवहि।
—हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य संग्रह, पृ० २१२

७ रूप पदारथ देखि के प्यारी रही लोभाय।
—इन्द्रावती, पृ० ७१

करने वाला भ्रमर कहा जा सकता है।[१] संसार में सर्वत्र सुन्दर रूप ईश्वरीय रूप का ही प्रकाश है। यही रूप फूलों में सुगन्ध बनकर व्याप्त है और यही रूप भ्रमरों मे विलास का रस है। यही रूप चांद एवं सूर्य है। यही रूप जगत में परिपूरित होकर उसे पूर्ण बना रहा है। यह सृष्टि में आदि से अन्त तक रहेगा, सृष्टि के न रहने पर भी रूप रहेगा।। इसे ही हृदय मे धारण कर वास्तविक ध्यान लगाया जा सकता है। यही रूप जल, स्थल और महीतल में अनेक भाव दिखाता है।[२] रूप के इसी महत्व को स्वीकार करते हुए जायसी ने पदमावती के रूप का प्रसार समस्त वस्तुओं मे बताते हुए सम्पूर्ण संसार को उस पर मोहित होते दिखाया है।

पाए रूप रूप जस चहे। ससि मुख सब दरपन होइ रहे॥
नैन जो देखे कवंल भए, निरमर नीर सरीर।
हँसत जो देखे हंस भए, दसन जोति नग हीर॥[३]

पदमावती ही-नही नायिका दमयन्ती का रूप भी सर्वत्र व्याप्त था। उसे देख कर जगत अपनी सुध बुध भूल गया। ससार में वही एक सजीव थी अन्य सब निर्जीव[४] इन्द्रावती को देख कर तो राजकुमार ने इस संसार को उसके रूप का झरोखा समझा।[५]

---

१. प्रेम किरन ससि रूप जेउँ, पानि प्रेम जिमि हेम।
एहि बिधि जहँ तहँ जानियहु जहाँ रूप तहाँ प्रेम॥
जहां रूप जग बनिज पसारा। आइ प्रेम तहां कीय ब्योहारा॥
जो बिधि रूप मयाकरि दीन्ही। प्रेम चकोर नैन तिन्ह कीन्ही॥
दीपक जोति रूप उजियारा। प्रेम पतंग आनि तहँ जारा॥
रूह वास भा केतकि केवा। प्रेम भौर जिव परछेवा॥

—चित्रावली, पृ० १३

२. इहै रूप त्रिभुवन जग बेरसै महि पयाल आगास।
सोई रूप परगट मैं देखा तुव माथे परगास॥

× × ×

इहै रूप सम फूलन्ह बासा। इहै रूप रस भंवर बेरासा॥
इहै रूप ससिहर औ सूरा। इहै रूप जग पूरि अपूरा॥
इहै रूप अंत आदि निदानां। इहै रूप धरिधर सौं धियाना॥
इहै रूप जल थल और महिअर भाउ अनेग देखाउ॥

—मधुमालती, पृ० ९९-१००

३. पदमावत, पृ० ६५
४. तिहि का रूप कितनहं घट व्यापा। भूला जगत देख सुन आपा॥
जग में जीउ न जानौ कोई। जग बिन जीउ जीउ एक सोई॥

—नलदमन, पृ० ५६

५. आज बदन देखा मैं जाको। है यह जगत झरोखा ताको॥

—इन्द्रावती, पृ० ८१

रूप एवं प्रेम के इस शाश्वत सम्बन्ध को स्वीकृति प्रदान करते हुए कादरयार ने लिखा है कि अद्वितीय सौदर्य के कारण केवल ईश्वर ही प्रेम का पालन कर सकता है।[1] मियां मुहम्मदबख्श ने भी जमाल के दर्शन के फलस्वरूप प्रेम की उत्पत्ति स्वीकार की है। जब प्रिय अपना जमाल दिखाएगा तब सम्पूर्ण संसार के जंजाल को छोड़कर एक मात्र उसी के दर्शन किए जाएगे।[2]

इस प्रकार प्रेम के महत्त्व एवं प्रेमोत्पत्ति के कारणों के विषय में हिन्दी-पंजाबी प्रेमाख्यानकारों के मत में समानता परिलक्षित होती है। प्रेम के इसी महत्त्व के कारण प्रेम-कथा वर्णन को ये पुण्य-कार्य समझते रहे और अपनी रचना के माध्यम से अमरता और पुण्यार्जिन की कामना करते थे।[3]

अलौकिक रूप-सौंदर्य

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायिका का अलौकिक सौंदर्य व्यवहार में इन कवियों ने सौदर्य के ही द्वारा प्रेम की उत्पत्ति दिखाई है। प्रेमरूपी ईश्वरीय देन सौदर्य के माध्यम से ही मानव-शरीर में प्रवेश करती है। हिन्दी प्रेमाख्यानों मे यद्यपि नायक-नायिकाओं में अनेक गुणो की प्रतिष्ठा की गई है तथापि प्रेमपाश में उलझाने का काम सौदर्य ने ही किया है। नायको एव नायिकाओं मे अलौकिक सौदर्य की प्रतिष्ठा का यही मूल कारण है। इन नायिकाओं के नखशिख-वर्णन करते समय हिन्दी के सभी विवेच्य कवियों ने विविध अलंकारों की योजना द्वारा इनको अलौकिक बताते हुए अनेक बार यह भी सिद्ध करने का यत्न किया है कि सम्पूर्ण संसार का सौदर्य उनके रूप की ही प्रतिछाया है। मृगावती के अनुपम नखशिख का वर्णन सुन धाय ने राजकुमार को समझाया कि वह तो सृष्टि का कारणभूत तत्त्व है। मैं तुम्हें उसे ग्रहण करने की युक्ति बताती हूं—वह तो भाव है।[4] छिताई के सौदर्य को देखकर नारियाँ पछताती थी कि हम पुरुष न हुई।[5] चतुर्भुज कृत 'मधुमालती वार्ता' की नायिका के रूप

---

१. सानी ओहदे हुसन दा ऐसा हीर न कोई।
इशक अजेहा पालना लाइक उसे होइ।

—कादरयार, पृ० ६६

२. जदों जमाल होइगा सानूं सोहणा लाल पिआरा।
वेखण लाल हलाल होवैगा छोड़ जंजाल पसारा।

सैफुलमुलूक, पृ० ८०

३. द्वितीय अध्याय में प्रयोजन के अन्तर्गत (पृ० ६९-७५) इस पर प्रकाश डाला जा चुका है।

४. धाय कहा इहि कारन भूता। समुझा कुंवर सुनु राजा पूता ॥
× × ×
मृगावति रानी है भावा। करइ एकादसी निरजल आवा ॥

—मृगावती, पृ० ५७

५. सबहं तनौ जे चित विउहारा। हम किन पुरुष करी करतारा ॥

—छिताईचरित, पृ० ८६

को देखकर महेश का चित्त चलायमान हो जाता था ; शेष नाग धरणी को नीचे डाल देता; सूर्य और चन्द्र मार्ग भूल जाते[१] और पुरुष ही नही, स्त्रियां भी कामांध हो जातीं ।[२] रूपमंजरी के रूप की उज्जवलता के कारण सायंकाल को राजप्रसाद में दीपक नहीं जलाये जाते थे । बिना ही दीपक के घर जगमगाते थे—

ता भूपन कै भवन कोऊ, दीप न बारत साँझ ।
बिन ही दीपहि दीप जिमि, दिपय कुँवरि घर मांझ ।।[3]

चित्रावली के रूप का प्रसार इतना अधिक था कि कोई स्थान उससे शून्य नहीं था ।[४] तीनों लोक उसकी वंदना करते । स्वर्ग में सभी उसका ध्यान करते है । नाग-लोक एवं मृत्युलोक मे घर-घर उसी की बातें होतीं हैं । पक्षी उसके लिए उदास और जल-जन्तु उसी के नाम के प्यासे रहते है । 'परबत' मौन धारण कर उसका नाम जपते ।[५] रसरतन की रंभा को देखकर मुनि, सुर, नर, नाग, नरेन्द्र के अंग-अंग में काम उत्पन्न हो जाता है । उसकी उपमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? देव-ताओं एवं अप्सराओ ने भी उसी से सौदर्य प्राप्त किया है ।[६] दमयंती की शोभा के आकर्षण से कमल उसके पुर मे पहुंच गए एवं संसार उसी की आशा मे भवर बनकर

---

१. जो देषे चित्त चले महेसा । देखत धरणी डारे सेसा ।।
सूर भूले शिव धरे अंदेसा । ससि भूले डोले महि देसा ।।

—मधुमालती वार्ता, पृ० २

२. देखत त्रिया होई काम अंध । —वही, पृ० ३

३. नंददास ग्रंथावली, पृ० १२०

४. कौन सो ठाउं जहां तुम नाहीं । हम चषु जोति न देखहि काही ।।

—चित्रावली, पृ० ४८

५. वह चित्रावलि आहै सोई । तीन लोक बदे सब कोई ।।
सुर पुर सबै ध्यान ओहि धरही । अहिपुर सबै सेव तेहि करहीं ।।
मृतुमंडल जो देखा हेरी । घर घर चले बात तेहि केरी ।।
पंछी वोही लगि फिरहि उदासा । जल के सुत ओहि नाऊँ पियासा ।।
परबत जपहिं मौन होइ नाऊं । आसन मारि बैठि इकठाऊं ।।

वही, पृ० ७८

६. नषसिष सोभा निरषि थकित भये मुनि नैन ।
सुर नर नाग नरिंद मुनि अंग-अंग उपज्यो मैन ।।

× × ×

पुहकर कहै और उपमा कहां लौ कहौ,
जाकी छवि देवै अपछरी छबि पाई है ।

—रसरतन, पृ० १७७

घूमता रहा।[१] उसका रूप अनेक व्यक्तियों में व्याप्त था।[२] 'जवाहर' जिस स्थान पर चरण रखती थी उस स्थान पर पृथ्वी उल्लासपूर्वक उछलती थी।[३] उसके चारों ओर किरणे छिटकतीं थीं एवं उसकी तुलना की कोई स्त्री तीनों लोकों में नहीं सुनी गई।[४] संसार उसके रूप का बखान तो करता था परन्तु उसके भेद को कोई न समझ सका।[५]

इसी प्रकार इन्द्रावती के चन्द्रमुख को देखकर संसार भर के नयनों में आभा छा जाती थी। आकाश सहस्र नयनों से उसके शृंगार को देखता था।[६] उसके हिलने से सम्पूर्ण पृथ्वी हिलती थी, ठहर जाने पर ठहर जाती थी और उसकी छाया भी दिखाई नही देती थी।[७]

पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायिका सौंदर्य—पंजाबी प्रेमाख्यानों मे भी नायिका अपने रूप मे अद्वितीय चित्रित की गई है परन्तु संभवतः इन्हें वहां इतनी अलौकिकता प्रदान नही की गई। अपनी सीमित काव्य-प्रतिभा के कारण दमोदर लम्बा चौड़ा विधान तो नहीं बना सका परन्तु हीर के सौदर्य के अद्भुत प्रभाव को प्रकट करने मे उसने कमी नही की। 'सलेटी' जब बड़ी हुई तो भूमि पर पैर न रखती थी। जो भी देखता उसके कदम रुक जाते। आठ वर्ष की अवस्था में उसके सौदर्य का बखान घर-घर में होने लगा और दस वर्ष की अवस्था में तो सम्पूर्ण पृथ्वी उसके

---

१. पहुँचे कंवल तिहूं पुर वासा। जगभा भौर भवैं तिहि आसा॥

—नलदमन, पृ० २४

२. तिहि का रूप कितनहं घट व्यापा।

—वही, पृ० ५६

३. हुलसि उठी धरती तेहि ठाऊं। जिन्ह सो धरै कंवल वह पाऊं॥

—हंसजवाहर, पृ० ५६

४. जबते जनमी बार वह, किरन छिटक चहुं पास।
   मनहुँ चन्द्रमा गगनते, उतरा मधि कैलास॥

× × ×

   वरणि न सकै कोऊ वह जोती। तीन लोक नहि दूसर ओति।

—वही, पृ० ३३

५. सुनि सुनि रूप से जक्त बखानै। पै वह भेद कोऊ नहि जानै।

—वही, पृ० ५७

६. है तेहि चन्द्र बदन लखि, जगत नयन उँजियार।
   गगन सहस लोचन सों, निखें तेहिक सिंगार॥

—इन्द्रावती, पृ० ४५

७. दिष्ट न आवत ताकी छाया, मानहुं जीव धरे है काया।
   बोहि डोलैं सब डोलैं, थिरें थिरें सब कोई।

—वही, पृ० ४६

समक्ष नत थी ।[१] पीलू ने साहिबां के सौंदर्य से तीन सौ नागा साधुओं के भ्रष्ट होने की बात कह कर प्रकारान्तर से उसके सौंदर्य का उल्लेख किया है ।[२] साहिबां के सौंदर्य के साथ तो जन्म के समय ही हूरें ईर्ष्या करती थी ।[३] साहिबां के ही समान हाफिज़ बरखुरदार ने सस्सी के भी अनुपम सौदर्य का संकेत किया है । लोगों को संदेह था कि यह आकाश से उतरी पुतली है या कोई हूर परी ।[४]

वारिस ने हीर के नखशिख का विस्तृत वर्णन करते समय उसे अकथनीय बताकर[५] अनेक ऐसे उपमानों की योजना की है जिनसे उसकी अद्वितीयता प्रतिभासित होती है । चीन, कश्मीर में उसके चित्र बने हुए है, उसका कद स्वर्ग के सरू जितना है । वह शाहपरी की बहन रानी पंजफूलां के समान हजारो में भी छिप नहीं सकती । पता नहीं, वह लंका के बाग की परी या इन्द्राणी है अथवा चंद्रबिम्ब से प्रकट हुई है । उसके रूप मे चीन एवं रूम का सौदर्य एकत्र हो रहा था ।[६] इसी प्रकार हाशम ने सस्सी के सौंदर्य को अपनी बुद्धि एवं कल्पना से बाहर की वस्तु बताते हुए स्वर्णवर्षा करने वाले सूर्य के समकक्ष कहा है ।[७] शीरी की रूपाभा तो फरिश्तों,

१. वड्डी होई हीर सलेटी जिमी पर पैर न लाए ।
जो कोई वेखे हीरे ताईं पैर न मूले चाए ।
× × ×
अठा वर्हियां दी छोहिर होई, तां दर दर कूका पाईआं ।
दसां वर्हिया दी छोहिर होई, चारे नई निवाईआं ।

—हीर दमोदर, पृ० १८

२. तिन सै नागा पिंड रिहा हो गए चौड़ चपट्ट ।

—बबीहा बोल, पृ० १००

३. घर खीवे दे जम्मी साहिबां, हूरां रशक करन्न ।

—मिरजा साहिबां (हाफिज बरखुरदार), पृ० ४

४. अरशों लत्थी पुतली या एह हूर परी ।

—कोइलकू, पृ० १०२

५. कोई हुसन ना अंत हिसाब दा जी ।

—हीर वारिस, पृ० १६

६. लिखी चीन कशमीर तसवीर जट्टी, कद सरू बहिशत गुलज़ार विच्चों ।
× × ×
शाह परी दी भैण पंज-फुलराणी गुज्झी रहे न हीर हज़ार विच्चों ।
× × ×
लंका बाग दी परी कि इंदराणी, हूर निकली चंददी धार विच्चों ।
पुतली चीन दी ते नकश रूम वाले, लधा परी ने चंद उजाड़ विच्चों ।

—हीर वारिस, पृ० १७

७. अकल खिआल किआसों बाहर नज़र करे वल नकशां ।
हाशम आख तरीफ हुसन दी शमस मिसाल जरफशां ।

—हाशम रचनावली, पृ० ८१

सितारों और पक्षियों तक को मोहित कर देती थी, मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? वनों में पशु-पक्षी एवं देश-विदेश में लोग उसके हुस्न की प्रशंसा करते थे ।[1] अहमदयार ने हीर के सौंदर्य की असह्यता का वर्णन कर चारों दिशाओं को उसके आगे नमन करते चित्रित किया है ।[2] अहमदयार ने 'किस्साकामरूप' में भी कामलिटां के सौंदर्य का विस्तृत वर्णन किया है ।[3] इसी प्रकार फज़लशाह[4] तथा मियां मुहम्मदबख्श[5] ने नायिका के नखशिख के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय लगाया है परन्तु नायिकाओं के रूप को अलौकिकता प्रदान करने में इन कवियो ने रुचि नही ली । प्राय· सूर्य, चांद, तारे, शमा, परी, हूर आदि के साथ उपमा देकर ही सन्तोष किया गया है ।

अत: स्पष्ट है कि नायिका के सौंदर्य की अद्वितीयता स्पष्ट करने में दोनों ही भाषाओं के कवियों ने अपनी शक्ति एवं सीमाओं के अनुसार भरसक प्रयत्न किया है । सौंदर्य को प्रेम का मूलाधार मानने की यह मौन स्वीकृति है । हिन्दी के सभी कवि, चाहें वे हिन्दू है चाहे मुसलमान, नायिका के रूप में जिस अलौकिकता की प्रतिष्ठा करते है उसका पंजाबी प्रेमाख्यानों में सर्वथा अभाव तो नही कहा जा सकता परन्तु उसका प्रसार उस सीमा तक दिखाने में ये कवि अवश्य असमर्थ रहे है ।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायकों का रूप-वर्णन—अद्वितीय सौंदर्य की प्रतिष्ठा केवल नायिकाओ में ही नही है, नायकों में भी उसके दर्शन हो जाते है । इसमे सन्देह नही कि यहां उस प्रकार का अलौकिक उत्कर्ष दिखाई नही देता । लोरक के सौंदर्य पर मुग्ध होने वाली चन्दा को उसकी धाय बृहस्पत ने समझाया कि लोरक की ज्योति सूर्य की है; उसकी कचन वर्ण देह पर धूल नहीं पड़ी और वद मदन की मूर्ति

---

१. उस नूं वेख फरिशते जीवण आशक होण सितारे ।
पंछी वेख डिगण असमानों आदम कौण विचारे ।।

× × ×

मिल मिल करन तरीफ हुसन दी मिरग मरू विच्च झल्लां ।
शारी हुसन जगत विच रोशन देस विदेसीं गल्लां ।।

— हाशम रचनावली, पृ० १३३

२. अक्खी तक्कण झल्ल न सक्कण बुक्कल इकस नजारे ।
अहमदयार आए जग वेखण निवीआं कूटां चारे ।।

—गुलदस्ता हीर, पृ० ९१

३. किस्सा कामरूप, पृ० ११

४. सोहणीं महीवाल, पृ० ७-९

५. सैफुलमुलूक, पृ० १०९

है।[1] 'छिताईचरित' के समरसिंह[2] एवं चतुर्भुज कृत 'मधुमालती वार्ता के मधु[3] को देखकर नारियाँ मूर्च्छित हो जाती थीं। रतनसेन में हजारों सूर्यों का प्रकाश समाहित था।[4] मनोहर को देखकर मधुमालती संशय में पड़ गई थी कि यह इन्द्रलोक का कोई देवता है अथवा पाताल का नाग या कोई मानव।[5] उसे देखकर अप्सराएं भी डोल गईं थीं।[6] माधव का सौदर्य तो उसके सम्पूर्ण सौभाग्य एवं दुर्भाग्य का कारण था, उसके सौंदर्य के अपूर्व आकर्षण से ही उसे देश-निकाला मिला। अनिरुद्ध का सौंदर्य देखकर सभा हड़बड़ा उठी।[7] कृष्ण तो रूप के स्वामी ही माने जाते हैं। उनके रूप से ईश्वरत्व की आभा झलकती है। कुन्दनपुर में कृष्ण को देखकर उन्हें रमणियों ने काम, छली-कपटी लोगों ने काल, सामान्य लोगो ने नारायण, वेदज्ञों ने ब्रह्म एवं योगियों ने योगतत्त्व समझा।[8]

'चित्रावली' तो राजकुंअर के चित्र पर ही ऐसी मोहित हुई कि वह चित्र सहस्र

---

१. लोरहिं चांद सुरुज की जोती। कुंडल सोवन दिपहिं गजमोती।।
× × ×
कनक बरन भरकति हइ देहा। मदन मुरति उडि लागि न खेहा।।

—चांदायन, पृ० १३४

२. देखति कुंवरहि मूरछा भई। जानहु कामबान सर हई।।
बदन देखि तिह लीयो उसासा। असौ पुरुष होइ जो पासा।।

छिताईचरित, पृ० ११८

३. देखत त्रिया होइ काम अंधा।

—मधुमालती वार्ता, पृ० ३

४. पदमावति जस सुना बखानू। सहसहुँ करों देखा तस भानू।।

—पदमावत, पृ० १८६

५. कै तुम्ह इंद्रासन के देवता, कै पतार के नाग।
कै तुम्ह मिरितु लोक के मानुस, कहहु भग्म चित भाग।।

—मधुमालती, पृ० ८४

६. देखत गंध्रप मुरति अमोला। अछरनि केर देखि चित डोला।।

—वही, पृ० ५६

७. अनिरुद्ध आवत देखि के सभी उठी भहराइ।

—उषाचरित्र (रामदास) हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य डॉ० सियाराम तिवारी पृ० ३६६ से उद्धृत।

८. कामिणि कहि काम, काल कहि केवी, नारायण कहि अवर नर।
बेदारथ इम कहै वेदवंत, जोग तत्त जोगेसवर।।

—वेलि क्रिसन रुकमणी री, पृ० १५४

कलाओं से उसके हृदय में समा गया और वह चेतनाशून्य हो गई ।[1] कुमार सूर मन्मथ-रूप था । वह सम्पूर्ण ससार की सुन्दरियों को मोहित करने में समर्थ था ।[2] 'नलदमन' मे नल का रूप भी अलौकिकतापूर्ण है । उसके रूप के सम्मुख रूप स्वयं फीका पड़ जाता था; उसके रूप को देखकर अपूर्व शान्ति मिलती थी । जिसने भी उसे एक बार देख लिया वह जन्म भर उसे भुला नही सकता था । उसका रूप ब्रह्म के रूप के समान हृदय में समा जाता था और लोग भ्रम मे पड जाते थे ।[3] गुरदासगुणी का राझा मनुष्य एवं देवताओं को अपने कनकवर्ण से मोहित करने वाला है । उसके सुन्दर मुख को देखकर ऐसा लगता था मानों कामदेव ने ही अवतार लिया हो ।[4] इसी प्रकार की सम्मोहन शक्ति 'हंसजवाहर' के नायक हंस में थी ।[5]

पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायकों का सौंदर्य-वर्णन—इसमें सदेह नही कि पंजाबी प्रेमाख्यानों में भी अन्य गुणो की उपेक्षा कर नायक-नायिका के सम्मोहन का आधार रूपासक्ति को ही बताया गया है, परन्तु यहां रूप-वर्णन की दिशा मे सुन्दर

---

१. अपुरुब रूप चित्र वह दीठा । राजकुंवर जनु आइ बईठा ॥

× × ×

सहस कला होइ हिय सभाना । निरषि रूप चित चेत भुलाना ॥

—चित्रावली, पृ० ४८-४९

२. गुन आगर नागर नवल, मनमथ रूप कुमार ।
जग जुवती जन मन हरन, सुन्दर सूर उदार ॥

—रसरतन, पृ० २२

३. जिन्ह मुख रूप कहै तिहिं नीका । नल मुख रूप रूप मुख फीका ।

× × ×

सूर कांति बरनी मुख जोती । पै सूरह मुख जोति न ओती ॥
नैनहि जोति जरै रवि देखे । सीतल होइ हेम तब पेखे ॥
सूरहि देखि लोभाइ न कोइ । इन्ह देखें सो दरसन होई ॥
जो गति नैनन की रबि ताकैं । सोगति छिन ताकैं मुख याकै ॥
पुरुष नारि जाके चित परा । फिरि भरि जनम न चित सों टरा ॥
ब्रह्म रूप जग हीय समाना । जिन्ह देखा सो देखि हिराना ॥

—नलदमन, पृ० २१

४. बरनो ताको रूप बिसाला । ससि सूरज जिउ निपटि उजाला ॥
कनक बरन नख सिख लौ सोहै । मानस कहा सुर नागसु मोहे ॥
अति सुन्दर मुख सोभा भर्यो । मानो मनमथ अवतर्यो ॥

—कथा हीर रांझनि की, पृ० ५३

५. देखै लाग लोग सब कोई । जो देखै तन मन वश होई ॥

—हंस जवाहर, पृ० १२

काव्य-प्रतिभा के दर्शन नायकों के सम्बन्ध में भी नही होते। हीर की अपेक्षा दमोदर ने रांझे, एवं बरखुरदार ने जुलेखां की अपेक्षा यूसफ के रूप का विस्तार से वर्णन किया है। रांझे का सौंदर्य आरम्भ से ही दीप्तिमान था। उसे देखकर राहगीरों के पैर रुक जाते थे।[1] मार्ग में एक धीवर कन्या उस पर मोहित हो गई। वर देखने के लिए गई उस कन्या की माता के उद्गार[2] रांझे के रूपाकर्षण पर सर्वथा उपयुक्त टिप्पणी हैं। यूसफ तो मुस्लिम विश्वास में अद्वितीय सौंदर्य के लिए विख्यात है। कवि बरखुरदार उसके वर्णन में अपनी जिह्वा को असमर्थ पाते है। उसके रूप की कोई सीमा नहीं सम्पूर्ण संसार उससे परिचित है। यदि उसका लाखवां भाग भी वर्णन का विषय बनाया जाए तो जीवन भर लगे रहने पर भी यूसफ के सौंदर्य का वर्णन सम्पूर्ण नही होगा।[3] ऐसे अद्भुत सौंदर्य के दर्शनार्थ (नीलामी मे) सम्पूर्ण 'मिसर' इकट्ठा हो गया। उसका मोल लगाने मे लोग असमर्थ थे क्योंकि वे तो गुलामों का मोल जानते थे, लालों (हीरों) का नही।[4] मुकबल ने रांझे के सौंदर्य का संकेत मात्र किया है, हंसते समय उसके मुख से गुलाब बरसते थे।[5] लुत्फअली ने

---

१. तिस दे घर विच धीदो जम्मिआं रोशन रूप तदाहीं।

× × ×

जो वेखे वस्स थीवे सोई फाथा टुरन न पावे।

—हीर दमोदर, पृ० ३८

२. नाहीं माऊ पीऊ जाइआ किस जबान सलाही।
वेख विकाणी धीवर आखी कदम उठी उस नाही।
है जे चुख वडेरा होवे तॉ मै आप निकाह बन्हाही।

—वही, पृ० ४८

३. हुसनं यूसफ दी हद न काई किआ तफसील सुणाईं।
जीभा कल्ली कित्थों पहुचे मदह यूसफ दे ताईं।
इक कलम इक जीभ विचारी किचरक करसी पारी।
रूप हिसाब शुमार न कोई वाकिफ खलकत सारी।
जे त[illegible]फ करेसी हाफिज़ लख हिस्से थीं हिस्सा।
उमरे अन्दर तम्म न होवे हुसन यूसफ दा किस्सा।

—यूसफ जुलेखा, पृ० ४४-४५

४. ओथे अजब तमाशा होइआ मिसर इकट्ठी होई।

× × ×

गरम बाजार यूसफ दा होइआ लग्गी चुप दलालां।
असीं आदमीआं दा मुल्ल करेहां कीमत-असां न लालां॥

—वही, पृ ७०

५. मूहों झड़न गुलाब दे फुल ताजे जदों खुल्ह के सोहणां हसदा सी।

—हीर रांझा पृ० १

नाग दंश, मारते रहे, दंश मारते रहे, दंश मारते रहे।[1] यूसफ को सौदर्य का प्रतीक मान कर अनेक कवियों ने नायकों के रूप का वर्णन किया है। फजल शाह ने भी इज्ज़तबेग को सौदर्य में यूसफ के समकक्ष दिखा कर वस्त्राभूषण पहनने के अनन्तर उसकी अद्‌भुत दीप्ति का बखान किया है।[2] केवल मियांमुहम्मद बख्श ने ही इस सम्बन्ध में कुछ कवित्वपूर्ण वर्णन किया है। सैफुलमुलूक के प्रदीप्त मुख की दीपशिखा आकाश को स्पर्श करती थी। उसके प्रशंसक नरनारी पतंगों की भांति उस दीपशिखा पर जलते थे। यदि वह आकाश की ओर दृष्टि करता तो तारे उसकी चमक न सह सकते, दृष्टि नीची कर यदि वह पृथ्वी की ओर देखता तो बिजली चमकती प्रतीत होती। इस प्रकार के अनुपम रूप की सभी प्रशंसा करते थे।[3]

रूपवर्णन के इन प्रसंगों की यदि तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के कवि विविध बिम्बों की सहायता से सौंदर्य का जो प्रभाव एवं विस्तार दिखाने में समर्थ हुए है वह पंजाबी किस्सा-काव्य में दुर्लभ है। इसमें संदेह नहीं कि प्रेम के प्रत्यक्ष कारण मे स्वरूप अथवा सौदर्य का वर्णन दोनों ही रचनाओ में हुआ है। नायक भी उसी प्रकार सौन्दर्य-स्नात थे जिस प्रकार कि नायिकाएं। अत: अद्‌भुत सौदर्य के आधार पर नायिकाओं को ही किसी प्रतीक-बन्धन मे बांधना उचित नही है।

हिन्दी एवं पंजाबी में प्रेमोदय की विधियां

यह रूप-सौदर्य स्वप्न, दर्शन, श्रवण, चित्र-दर्शन अथवा प्रत्यक्ष दर्शन होने पर अपना प्रभाव दिखाता है। नायक-नायिका एक दूसरे पर आसक्त होकर प्रेम करने

---

१. डिठा ना जो हुसन दी वेहर दी झुल।
गिआ झुल झुल, गिआ झुल झुल, गिआ झुल।
ज़ुलफ दे नागां ने पाए अजब वल।
डंगन वल वल, डंगन वल वल, डंगन वल।

—कोइलकू, पृ० २१५

२. फजलशाह दा बदर कमाल होइआ, यूसफवांग जमाल अयान जानी।
× × ×
ज़री बादले दा गल पा कुरता उत्ते देख उस दे लाल शाल मीआं।
फज़लशाह न विच्च खियाल तेरे, ऐसा चमकिआ हुसन जमाल मीआं।

—सोहणी महीवाल, पृ० ११-१२

३. रोशन शमा नूरानी चिहरा पहुँचे लाट असमानी।
वांग पतंगा सड़न चौफेरे आशिक मरद जिनानी।
जे उह नज़र करे वल अंबर चमक न झलन तारे।
× × ×
नीवी तक्के धरती लगण बिजली दे चमकारे।
ऐसे रूप अनूप करम दी सिफत करेंदे सारे॥

—सैफुलमुलूक, पृ० १०५

लगते है। इनमें से अधिकांश कवियों ने हिन्दी में स्वप्न एवं पंजाबी में प्रत्यक्ष दर्शन को विशेष रूप से अपनाया है।

स्वप्न—नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती' मे स्वप्न-दर्शन को महत्वपूर्ण बताया है क्योंकि इसके द्वारा असभव को भी संभव बनाया जा सकता है।[1] पुनः कवि का विचार है कि स्वप्न मे दर्शन देकर प्रेमास्पद छिप जाता है, फलस्वरूप प्रेमी में मिलन की अभिलाषा उत्तरोत्तर बढ़ती है और वह दूसरे मार्ग पर नही जा सकता।[2] 'रूपमंजरी', 'उषा-अनिरुद्ध' कथाचक्र एवं जान कवि की अनेक रचनाओं मे तथा 'इन्द्रावती' प्रभृति प्रेमाख्यानों मे प्रेमोदय के लिए स्वप्न का आश्रय लिया गया है। अनेक बार सुप्तावस्था में नायक एवं नायिका को रति एव कामदेव, (रसरतन मे) परियां (मधुमालती एवं हंसजवाहर में) या कोई अन्य दैवी शक्ति (सूररभावत में गंधर्वपति चित्रसेन एवं चित्रावली मे गढ़ी का स्वामी देव) मिला देती है। इस मिलनकाल मे प्रेमानन्द का उपभोग कर प्रेमी ज्यों ही निद्रामग्न होते है कि पुनः वियुक्त कर दिये जाते है और वे वियोग मे छटपटाने लगते है। इसमे सन्देह नही कि हिन्दी काव्य मे कुछ हिन्दू कवियों ने भी स्वप्न दर्शन के द्वारा प्रेम को पल्लवित किया है, परन्तु इस ओर अधिक रुचि मुसलमान कवियों ने ही दिखाई है। 'स्वप्न का इस्लाम मे विशेष महत्त्व है। वह साक्षात्कार का उत्तम साधन समझा जाता है। स्वप्न की दशा मे प्रियतम की जो झलक दिखाई देती है ...निद्रा मे जो उसका स्पर्श होता है, उसके सहारे हम प्रियतम के प्रसाद के पात्र बनते है और उसकी ओर खिचते चले जाते है।[3] जुलेखा ने अनेक बार स्वप्न मे ही यूसफ के दर्शन किये थे। परन्तु इस्लाम की इस धार्मिक रूढ़ि को पंजाबी के लोकप्रिय प्रेमाख्यानों में प्रायः नहीं अपनाया गया। पंजाबी में यूसफ जुलेखा के अतिरिक्त दो एक स्थानो पर ही इस माध्यम को अपनाया गया है। मुकबल ने इसका संकेत मात्र किया है—

नैणां हीर दिआं खाब विच जिबह कीता
भेत किसे नूं मूल न दसदा सी।[4]

---

१. यह सपने की बात पर, अचरज करे न कोइ।
सपने मो सो होत है, जो सौतुकै न होइ॥

—इन्द्रावती, पृ० ११

२. दर दिखाइ कै दरसन, आपुहिं लेहु छिपाइ।
अधिक बढ़ै अभिलाप तेहि, दूसर पंथ न जाइ॥

—वही, पृ० ५०

३. तसव्वफ अथवा सूफी मत, पं० चन्द्रबली पाडे, पृ० १२४

४. अर्थ—हीर के नयनों से स्वप्न में घायल किया गया वह अपना भेद किसी को भी नहीं बताता।
—हीर रांझा, पृ० १

अहमदयार एव फजलशाह ने हीर को भी स्वप्न मे रांझे के दर्शन कराए हैं[१] परन्तु तब रांझा घर से निकल चुका था। अतः दोनों ही परिस्थितिओं में स्वप्न-दर्शन के अनन्तर हिन्दी प्रेमाख्यानों मे उपलब्ध होने वाले पूर्वराग की अतिविस्तृत व्यथाओं का अनुभव पंजाबी के प्रेमियों को प्रायः नही हुआ। अहमदयार रचित 'किस्सा कामरूप' ही एक ऐसी रचना है जिसमें यह प्रसंग हिन्दी प्रेमाख्यानों के ही समानान्तर है।

चित्रदर्शन—चित्रदर्शन द्वारा प्रेमोदय का वर्णन हिन्दी में 'चित्रावली' 'पुहपावती' (हुसेन अली) मे ही है अन्यथा अधिकांश रचनाओ में चित्रों के माध्यम से प्रेम का पल्लवन ही किया जाता है। 'कुतबमुश्तरी' तथा' रसरतन' जैसी रचनाओ मे चित्रो का यही उपयोग किया गया है। स्वप्नदर्शन के मायिक मिलन को 'रसरतन' एव 'सूररभावत' मे प्रत्यक्ष कल्प ही बनाया गया है। प्रत्यक्ष के मिश्रण से आलिगित होकर इन दोनों रचनाओं मे प्रत्यक्ष मिलन पुनः स्वप्नकल्प बन जाता है। बाद में बुद्धिविचित्र के प्रयास से दोनों को एक दूसरे के चित्र भी प्राप्त हो जाते हैं। कवि ने प्रेमाख्यानों मे उपलब्ध दर्शन के सभी उपायों के प्रयोग की प्रतिज्ञा सी कर ली थी:

काम कहै सुनु सुंदरी दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र परतिच्छ प्रिय प्रगट प्रेम विस्तार ॥[२]

अतः, इस रचना में इनका उपलब्ध होना कोई विशेष विस्मय की बात नहीं। चित्रदर्शन का उपयोग पंजाबी में कम है। हाशम की सस्सी चित्रकार द्वारा बनाये पुन्नूं के चित्र को देखकर मोहित होती है।[3]

सैफुलमुलूक एव बदीउलजमाल की कथा पर आधारित हिन्दी एवं पंजाबी की रचनाओं मे नायक चित्रदर्शन के द्वारा प्रेम-विमोहित होता है और स्वप्नदर्शन से उसका पल्लवन होता है।

गुण-श्रवण—इन दो के अतिरिक्त सौदर्य-श्रवण के द्वारा प्रेमोदय के कई उदाहरण हिन्दी मे मिलते है। इस कार्य के लिए पक्षी, मनुष्य या पुस्तकों का प्रयोग किया गया है। 'पदमावत', 'कृष्ण-रुक्मिणी' एव 'नलदमयन्ती' प्रभृति रचनाओं में इसी का उपयोग हुआ है। कवि कल्लोल ने 'ढोलामारू' की कथा के दोहा-बन्ध मे स्वप्न तथा 'चउपई-बंध' में कुशललाभ ने गुणश्रवण के द्वारा प्रेम का आरंभ किया है।[४]

पंजाबी में अहमदयार की सस्सी को किसी योगी पंडित ने बताया था कि की चमकरान के अलीहोत का पुत्र पुन्नूं तुम्हारा वर होगा,[५] अतः वह तब से उसी को प्राप्त करने के उपायों में लगी रही।

१. गुलदस्ता हीर, पृ० ६२
२. रसरतन, पृ० ३०
३ हाशम रचनावली, पृ० ८७
४. ढोलामारू रा दूहा, पृ० ४ एवं २६१
५. सस्सी पुन्नूं, पृ० ५२

साक्षात्-दर्शन - प्रेम के मुख्य कारण रूप के प्रत्यक्ष दर्शन का भी हिन्दी की कई रचनाओं में उपयोगहुआ है। कुतबन रचित 'मृगावती', शेखनबी कृत 'ज्ञानदीप', दुखहरण की 'पुहपावती' एवं माधवानल कामकंदला सम्बन्धी रचनाओ में इसी विधि का प्रयोग हुआ है। पजाबी में मुख्यत· यही विधि अपनाई गई है। 'हीर' (दमोदर) में नायिका अपने प्रेमी को सामने देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। यद्यपि मुकबल ने स्वप्न का सकेत किया है और मार्ग में पीरो ने उसे हीर बख्श भी दी थी परन्तु रांझा एवं विशेषकर हीर का प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन-जन्य ही था।

हुसन रांझे दा देख मुशताक होई, गल नाहीं सू आंदी का मीआं।[1]

हीर अवाक् रह गई। उसने सेवा द्वारा रांझे को जगाकर समर्पण की इच्छा प्रकट की। उसमें अत्यन्त स्वाभाविक व्याकुलता के दर्शन होते हैं—

रॉझा हीर नू दे जवाब टुरिया हीर पल्लिओ पकड़ खलोंवदी ए।
तसबी आशकां दी, मोती हजूआं दे धागे आहीं दे नाल परोंवदी ए।
करे कीरने दरद फिराक वाले उभेसाह लैंदी ज़ारी रोंवदी ए।
मुकबल वस्स अजोकड़ी रात ऐथे मिन्नतदार गरीबणीं होंवदी ए।[2]

इसके विपरीत रांझे के मन में उत्पन्न भावनाओं को कवि ने बड़े कौशल से छिपाया है। वह तो जानबूझकर, सोच समझ कर उसकी शैया पर सोया था। प्राप्तव्य को प्राप्त कर रांझे के मन में अपूर्व सन्तोष हुआ। उसके सिर से वियोगजन्य दुख दरद का बोझ उतर गया। उसकी सारी दौलत हीर ने घुंघराले बालो का फंदा डालकर लूट ली।[3] वारिस की हीर में जैसे ही निद्रामग्न रांझे की निद्रा टूटी, एक अलौकिक सौंदर्य को देखकर वह 'वाह सजन!' से अधिक कुछ नहीं बोल पाया।

राँझे उठ के आखिया वाह सजन।
हीर हस्स के मिहरबान होई॥[4]

हाशम की 'सोहणीं' में इज्जतबेग ने यद्यपि नौकर के मुख से नायिका के सौदर्य को सुना,परन्तु प्रेमास्पद का निवास समीप होने के कारण, नायक उसी समय दर्शनों

---

१. अर्थ—रांझे का सौंदर्य देखकर वह मोहित हो गई और अवाक् रह गई।
—हीर मुकबल, पृ० १०

२. अर्थ—रांझा हीर को उत्तर देकर चल पड़ा। हीर उसका वस्त्र पकड़ खड़ी हो गई। उसने आहों के धागों में आसुओं के मोतियों को पिरोकर आशिकों के लिए माला बनाई। वह वियोग व्यथा का वर्णन करते हुए लम्बे-लम्बे सांस लेती है और रोती है। हीर ने कहा—हे प्रिय, मैं प्रार्थना करती हूं, आज की रात तो यहां रह जाओ।
—वही, पृ० ११

३. हीर मुकबल, पृ० ११

४. अर्थ—रांझे ने उठ कर कहा वाह सजन और हीर हंस कर उस पर दयालु हो गई।
—हीर वारिस, पृ० १८

के लिए चला गया और इश्क का तमाचा खाकर लौटा।[1] फरहाद ने शीरीं को प्रत्यक्ष देखकर ही विरह का नाग लड़ाया।[2] फज़लशाह की 'सोहणी' में भी यही क्रम है। राजबीबी भी नायक को देखकर बेताब हो गई। प्रेमी को देखने के लिए झरोखे मे बैठ जाती; दिल के शीशे में प्रेमी का सौदर्य छलकता और आँसुओं की धारा बह चलती।[3]

प्रेम-प्रभाव—इसके अतिरिक्त हिन्दी की कुछ रचनाओं में नायक अथवा नायिका के प्रेम के प्रभाव से दूसरे पक्ष के हृदय में प्रेम की उत्पत्ति दिखाई गई है। जायसी के 'पदमावत' में रतनसेन के योग के प्रभाव से पद्मावती के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया।[4] 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' में रुक्मिणी के प्रेम ने कृष्ण को आकर्षित किया[5] एवं सूरदास कृत 'नलदमन' में नल के प्रेम की अनन्यता एवं सत्यता ने दमयंती को आकर्षित किया।[6] पंजाबी में हाशमशाह की सोहणी प्रेमी महीवाल की निष्ठा से प्रभावित होकर उसकी ओर आकृष्ट हुई।[7] दोनों ही भाषाओं के प्रेमाख्यानों में इस विधि का विशेष महत्त्व नही है। सोहणी पर प्रभाव पड़ने में तो प्रत्यक्ष का अंश बहुत अधिक है। हिन्दी मे चतुर्भुज की 'मधुमालती' वार्ता मे नायक को वश में करने में सम्मोहन मंत्र का उपयोग भी किया गया है।[8]

विशेष-प्रसंग—प्रेमोत्पत्ति के कारणों के विवेचन के समय शेखनबी कृत 'ज्ञानदीप' अपनी दो-तीन विलक्षणताओं के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहली तो यह कि इसमे सर्वप्रथम प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा, नायिका की अनुचरी नायक पर मोहित

---

१. हाशम खाई के इशक तमाचा मुड़िया वाङ् निमाणे।

—हाशम रचनावली, पृ० ५३

२. वही, पृ० ११५

३. सहिआं सणे बज़ार नैणां दे बहिन झरोके मल के।
दिल दे शीशे महबूबां दी। सूरत झलमल चमके।
अहमदयार हंझू दी नै विच ठाठ नदी दा छलके।

—राजबीबी नामदार, पृ० ७

४. पदमावती तेहि जोग संजोगाँ। परी पेम बस गहें बियोगाँ॥

—पदमावत, पृ० १६१

५. वेलि क्रिसन रुकमणी री, पृ० १५०-१५१

६. नलदमन, पृ० ६९-७०

७. दिल नूं राह करे दिले औड़क झूठ किवें गल नाही।
कीता असर सोहणी विच उस दे, दरद सिआपे आही।

—हाशम रचनावली, पृ० ५८

८. मधुमालती वार्ता, पृ० ४३

होती है।[1] उसके प्रेम को देखकर नायिका भी मोहित हो गई[2], एवं नायक को आकर्षित करने का यत्न करती है। उनके सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते हैं परन्तु अन्त में नायक नायिका के संस्कृत ज्ञान से आकर्षित होकर[3] प्रेम-पाश में फंस जाता है और (अनुचरी) सुरज्ञानी एवं नायिका देवजानी दोनों से ही प्रेम करता है।[4] वे दोनों भी ऐसा करने का ही आग्रह करती है।[5] बदीउलजमाल स्वर पर ही मोहित हो जाता है।[6]

हिन्दी प्रेमाख्यानों में गुण-श्रवण-जन्य प्रेम के उदय में एक तृतीय पक्ष को महत्त्व मिल जाता है। 'पदमावत' मे रतनसेन, हीरामन शुक के मुख से पद्मावती के गुणों को सुनकर मोहित होता है, जायसी ने उसे गुरु कहा है।[7] इसी प्रकार 'चित्रावली' में भी परेवा को गुरु कहा है और उससे अपनी डोर खींचने का आग्रह किया।

मैं अनाथ तुम्ह नाथ गुरु, गहि खैंचहु मम डोर।
तैं मोर अगुआ पथ तहँ, मैं पिछलगुआ तोर॥[8]

'प्रेमप्रगास' की मैना को भी गुरु स्थानीय माना जा सकता है। क्योंकि वह मनमोहन के हृदय में प्रेम जागृत कर नायिका से उसकी भेट करवाती है। पुहपावती (दुखहरन) मे मैना एवं मालिन दोनो को गुरु की पदवी दी गई है।[9]

इन मध्यस्थों की योजना पंजाबी मे नही है वहां नायक नायिका स्वयं ही एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर लेते है। वहां तो नेत्र व्यापारी है, किसी अन्य सध्यस्थ की आवश्यकता ही नही, प्रेम ही मध्यस्थ बन जाता है—

१. पत्र बिमल रही सुरज्ञानी। देषत दरस परस विहसानी।
२. तुम दुष देषे मोहि दुष, तुअ सुष के सुष मोहि।
तुम षडित दुष पंडित, केइ दीन्हेउ दुख तोहि॥
तनक भनक स्रवनन महं परी। अंगिरानि दुष दावा बरी॥
३. चौकि परा सुनि रावल बाता। पंडित पढौ औ सुन्दर गाता॥
विहंसि बइठि ससि निरषौ लाग। जनु सोने महं मिलै सोहाग॥
४. अंक मा लाइ दुहुन को, उर सों उर ही मिलाइ।
मुष चुम्बन षंडन अधर, आलंगिन रत भाइ।
५. हम दोनों विच ऐसो नाही। एक तन दुसरी परछाही॥
६. कहो यों यू किसका है नादिर गला, किया है मेरी रूह कूं मुबतला।
—सैफुलमूलूक व बदीउलजमाल, पृ० १४६
७. गुरु बिरह चिनगी पै मेला। जो सुलगाई लेइ सो चेला॥
८. चित्रावली, पृ० ८४
—पदमावत, पृ० १२०
९. (क) कुंअर सुनत दुती मुख बाता। भाचित चेत हेत कैराता॥
गुरु कहि चीन्ह पांव लई परा। रोवे लागु विरह दुख जरा॥
—पुहपावती
(ख) नागमती कहं जसभा सुआ, एहि मैना कहं सो गुन हुआ
—पुहपावती

नैण हीर ते राँझे दे करन सौदा,
इशक दोहां दे विच्च दलाल मीआं ।[1]

इस प्रकार हिन्दी के प्रेमाख्यानों में प्रेम को आरंभ करने के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया गया है परन्तु पंजाबी में स्वप्न, चित्र-दर्शन अथवा गुण-श्रवण का प्रयोग अपवाद रूप में ही हुआ है; अधिकाश रचनाओं मे प्रत्यक्ष दर्शनजन्य प्रेम को ही चित्रित किया गया है। पजाबी प्रेमाख्यानों मे अत्यन्त स्वाभाविक रूप से उत्पन्न इस प्रेम को सान्निध्य से पुष्ट किया गया है, फलतः गुणश्रवण या चित्रदर्शन मात्र के अनन्तर हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायक अथवा नायिकाओ में जो असह्य काम-पीड़ा, वियोगजन्य कृशता तथा उसे दूर करने के लिए नाना उपचार, वैद्य आदि की योजना देखने को मिलती है उसका पंजाबी में प्रायः अभाव है। अभिजात वर्ग की इन ठिठोलियों को 'किस्सा कामरूप' या 'सैफुलमुलूक' जैसी दो तीन रचनाओं में ही स्थान मिला है।

हिन्दी की रचनाओं में अभिव्यक्त प्रेम बहुत समय तक एकपक्षीय ही रहता है। नायक या नायिका जो भी पहले प्रेम-पाश में पड़े उसे दूसरे के विषय में सोचने की आवश्यकता प्रतीत नही होती। जिसके लिये वह इतना व्याकुल है उसके मन में क्या विचार है—यह किसी ने सोचा ही नही। इस प्रकार अनेक बार हिन्दी की रचनाओं का यह प्रेम अत्यन्त अस्वाभाविक सा लगता है, परन्तु पंजाबी प्रेमाख्यानों मे विशेष रूप से उभयपक्षीय प्रेम का ही वर्णन किया गया है। प्रेम के प्रारंभिक काल मे नारी की भावनाओं की जो उपेक्षा अधिकांश हिन्दी प्रेमाख्यानों में उपलब्ध होती है वह संभवतः पजाबी वातावरण के अनुकूल न होने के कारण अपनाई नहीं जा सकी। हिन्दी की 'चंदायन' अथवा 'माधवानल कामकंदला' चक्र की कथाओं में भी उभयपक्षीय आकर्षण को ही पल्लवित किया गया है।

प्रेम का विकास

विरह वेदना—नायक अथवा नायिका के हृदय में उत्पन्न हो जाने के अनन्तर प्रेम का विकास होता है। प्रेम ऐसी वस्तु है जो छिपती नहीं। उसका प्रभाव शारीरिक कृशता एव मानसिक विह्वलता के रूप में दिखाया जाता है, फलतः व्याकुलता को दूर करने के प्रयत्नों का आरंभ होता है। प्रिय का संयोग प्राप्त करने की उत्कट लालसा ही उस व्याकुलता और इन प्रयत्नों का मूल आधार है। अधिकाश कवियों ने विरह के आविर्भाव को ही प्रेमोत्पत्ति का लक्षण बताया है। जायसी के अनुसार प्रेम के प्रादुर्भाव के साथ-साथ दुःख का आगमन होता है। प्रेम की बेल उगने के अनन्तर किसी अन्य वस्तु के पनपने का अवकाश नहीं रहता।

---

१. हीर अहमद, पृ० १९५

यह बेल दिन प्रतिदिन फैलती है।[1] परन्तु इस दुख में जन्मजन्मान्तर का सुख निहित है।[2] इसके बिना इस ससार में आना उसी प्रकार निष्फल है जिस प्रकार सूने घर में पाहुना—

मंझन एहि जग जनमि कै बिरह न कीता चाउ।
सूने घर का पाहुना जेउं आया तेउं जाउ॥[3]

और विरह के संचार से अमरता-प्राप्ति स्वयं-सिद्ध है—

मंझन अमर मूरि जग बिरहा जनम जो पावै तासु।
निहुचै अमर होइ सो जुग-जुग काल न आवै पासु॥[4]

'नल दमन' में राजा नल के हृदय में दमयन्ती का प्रेम जागृत हो जाने पर उसकी दशा अत्यन्त चिन्तनीय हो गई। जिसे प्रियतम चाहता है उसी की ऐसी दाहक दशा होती है, सभी को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता।[5] जिसके मन में प्रेम का उदय हो जाता है उसके तन मन को जलाता है। यह जलन तभी बुझती है जब प्रियतम मुख में पानी डालता है, अन्यथा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है—

प्रेम अगिन जौने घट परै। तन मन जार जीव सौं अरै॥
जौ लौं जीउ कहं पिउ त मिलावै। पिउ मुख पानिप पान न पावै॥
तौ लौं जरत रहै न सिराई। औ न घटै नित होइ सवाई॥[6]

विरह के सम्बन्ध में इसी प्रकार के विचार अनेक कवियों ने स्थान-स्थान पर प्रकट किए है। पंजाबी में भी वारिसशाह ने स्पष्ट लिखा है कि 'इश्क को पक्का करने के लिए सिर देना आवश्यक है।'[7] एक बार प्रेम आ जाए तो वह सम्पूर्ण पूंजी

१. प्रीति बेली, असे तनु डाढ़ा। पलहुत सुख बाढत दुख बाढ़ा॥
प्रीति बेलि संग बिरह अपारा। सरग-पतार जरै तेहि झारा॥
प्रीति बेलि केइ अम्मर बोई। दिन-दिन बाढ़े खीन न होई॥
प्रति अकेली वेलि चढि छावा। दोसरि बेलि न पसरे पावा॥

—पदमावत, पृ० २४२

२. एक निमिख दुख कहां, नहिं पूजै चारिहुं जुग के संवाद।
कौन कौन दुख बेरसब तेहि दुख के परसाद॥

—मधुमालती, पृ० ६५

३. वही, पृ० २००
४. वही, पृ० १६७
५. पेम दाह ताही पै दाहै, जाको पीउ पिरीत सो चाहै।

—नलदमनपृ०, ६०

६. वही, पृ० ५८
७. सिर दित्तिआं बाझ न इशक पक्के, नाही एहु सुखालिआं यारिआं वे।

—हीर वारिस, पृ० ३६

को लूट कर एक अलौकिक वेदना दे जाता है।[1] जिस प्रकार वायु लगने से आग भड़कती है उसी प्रकार इश्क भी कष्टों में पलता है।[2] प्रेम का आनंद तो पतंगा ही जानता है। जैसे-जैसे कष्ट आते है, वैसे-वैसे प्रेम का आनंद बढ़ता जाता है।[3] 'इश्क' तो स्वयं ही अग्नि है और स्वयं ही भूनने वाला भठियारा है। वह स्वय जलता है और जलाता है। जिन्होने प्रेम का प्याला पी लिया, उन्हे चैन कहाँ ?

आतश आप आपे भठियारा आप जले नित जाले।
हाशम फेर केहा सुख सोवण जिन पीते प्रेम पिआले ।।[4]

एक बार इश्क की अफीम खाने के बाद दीन-दुनियां एवं पाप-पुण्य की चिन्ता कहां रह सकती है।[5] पारिवारिक मर्यादाएं छोड़नी अनिवार्य हो जाती है[6]। वह इश्किया बेल के समान मनुष्य को सुखा देता है।[7] प्रेम मार्ग में कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ हैं। वस्तुतः मनुष्य का वैशिष्ट्य उस मार्ग पर न्योछावर होने मे है।[8] दुनिया के लोग तो एक बार मरते है परन्तु प्रेमी प्रतिपल मरते है।[9]

---

१. चाट बिरहों दी हीर नूं जोर लगी, सुध बुध जहान दी भुल गई।
जो कुछ हीर दे पास बसात आही, धाड़ा बिरहों ने मार के लुट लई।
मुकबल जग जहान थीं बाहरी ही ऐस इशक बेदरद दी चाट पई।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० १०

२. आतश तेज तिवें तिउं हुंदी वाउ लगी उह रमके।
हाशम जाण इशक दा जौहर खुआर होइ तिउं झमके।
—हाशम रचनावली, पृ० ६१

३ बुझीए सार पतंगों इस दी देख शमा जलि जावे।
हाशम जाण सोई सुख पावगु आपणा आप गवावे।
—वही पृ० ६३

४. वही, पृ० ८८

५. इकसेबार अफीम जनूनी खाधी शोख नजर दी।
मसत होइ फिर खबर न रहीआ मजहब दीन कुफर दी।
—हाशम रचनावली, पृ० १०८

६. बाप दादेदी शरम हया दी सिरों बगा सट्ट खारी।
—राजबीबी नामदार (अहमदयार) पृ० १०

७. अहमदयार इशकिया ही इशक साइआ, जिस रुक्ख लपेट सुकाइआ।
—ससी पुन्नं (अहमदयार) पृ० ३७

८. साबत मुइआ सुकामल होइआ मुकत मुइआं बिन नाही।
हाशम जान बचावें मरनों, रहिआ खराब तदाही।
—हाशम रचनावली, पृ० १५२

९. इक वारी मर जावे हर इक, आशिक पल पल मरना।
—वही, पृ० १५२

प्रेम-मार्ग में बाधाएं—प्रेम के मार्ग में अनेक बाधाएं आती हैं, यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। यह स्वर्ग से भी ऊंचा पहाड़ है, बिना आश्रय के इस पर चढ़ना कठिन है।[1] इस दुर्गम पर्वत पर चढ़ना हंसी खेल नहीं। इसमें अनेक अलंघ्य घाटियाँ हैं जिन तक पक्षियों अथवा चीटियों की भी पहुंच नहीं। मार्ग की खांइयाँ लांघना तो दरकिनार इसकी पाताल जैसी गहराई को देखकर ही जंघाएं कांप जाती हैं।[2] प्रेम के दुख की भीषणता को व्यक्त करने के लिए हिन्दी की अधिकांश रचनाओ में नायकों को लम्बी-लम्बी यात्राए करनी पडी है। 'मृगावती', 'पदमावत', 'मधुमालती', 'चित्रावली', 'रसरतन', 'सैफुलमुलूक', 'हस जवाहर' 'इन्द्रावती' आदि सभी रचनाओं में इन यात्राओं की योजना है। इन यात्राओं में अनेक मानवीय, अमानवीय अथवा प्राकृतिक बाधाएं इन नायकों के मार्ग में अवरोध प्रस्तुत करती है। इन बाधाओं के रूप में राक्षस, नाग, पक्षी, नदियाँ, पहाड़, झंझावात, हाथी, शत्रु राजा सभी आते हैं और नायक इन से प्राय: अपने आपको बचाता हुआ अपने उद्देश्य की ओर बढ़ता है।

लम्बी यात्राओं की प्रतीकात्मकता—हिन्दी मे इन यात्राओं को आध्यात्मिक मंजिलो का प्रतीक बताकर इन पर विस्तार से विचार किया गया है। उसमान ने 'चित्रावली' में भोगपुर, गोरखपुर, नेहनगर एवं रूपनगर का विवेचन प्रस्तुत कर[3] सूफी मत में मान्य चार मंज़िलों—नासूत, तरीकत, जबरूत एवं लाहूत का समर्थन किया है।[4] डॉ० श्याममनोहर पांडेय ने अन्य रचनाओं में इन मजिलों की खोज करने के यत्न का सार बताते हुए लिखा है कि, कुतबन कृत 'मृगावती', जायसी कृत 'पदमावत', मंझन कृत 'मधुमालती' तथा शेखनबी कृत 'ज्ञानदीप' में इन मंज़िलो को हम स्पष्टतया नही दिखा सकते। स्वयं सूफी सिद्धान्तों को अभिव्यक्त करने वाले ग्रंथों मे भी इन मंज़िलों में मतैक्य नही·····आध्यात्मिक साधना के उच्चतम शिखर लाहूत की स्थिति अलोच्य काल के इन प्रेमाख्यानों मे भी स्पष्ट नही हो पाती। दक्खिनी के प्रेमाख्यानों में भी प्रेम की ये आध्यात्मिक स्थितियां प्राय: अस्पष्ट रह जाती हैं।"[5] इस बात की पुष्टि डॉ० यश गुलाटी के इस कथन से भी होती है कि "इनके अन्तर्गत वर्णित मजिलों, लोकों और मुकामो, अवस्थाओ का विश्लेषण करते हुए यह बात विस्मृत नहीं कर

---

१. प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊँचा। बिनु रेधे कोउ तहँ न पहूंचा॥

—चित्रावली, पृ० ४०

२. कहेसी कुंअर यह पंथ दुहेल॥ अस जनि जानु हँसी औ खेला॥
अग.म पहार विषम गढ़ घाटी पंखी। न जाइ चढ़ै नहिं चांटी॥
खोह घराट जाइ नहीं लांघी। दखि पतार कांप नर जांघी॥

—वही, पृ० ७६

३. चित्रावली, पृ० ७६-८३

४. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १३५-१३६

५. वही, पृ० १३६-१३८

सकते कि उनमें आध्यात्मिक यात्रा को प्रस्तुत करते हुए कथा की रोचकता को भी बनाए रखने का प्रयास किया गया है। ये रचनाएं फारसी की यूसफ जुलेखा, मजनूं लैला नामक रचनाओं से सन्तुलित की जानी चाहिए जिनमें सोपानों का चित्रण नहीं है या अत्यन्त धुँधला है।"[1]

बाधाओं के चित्रण द्वारा प्रेम-मार्ग की अगम्यता प्रकट करने की प्रवृत्ति मुसलमान कवियों की ही विशेषता नहीं, यह तो उन रचनाओं में भी उल्लेखनीय है जिनमें प्रेम के एक से एक अधिक वासनापूर्ण चित्र मिलते हैं। 'रसरतन', 'विरहवारीश' जैसी रीतिकालीन परम्परा की अनुगामिनी रचनाओं में भी प्रेम की इस स्थिति का वर्णन उन कवियों के मन में प्रेम के साथ त्याग एवं बलिदान की भावना की अनिवार्यता को स्पष्ट करता है। इन विचारों की परोक्ष अभिव्यजना ही नहीं, स्पष्ट कथन भी इन कवियों ने किया है।[2] रूपमंजरी को तो विरह में ही सुख मिलता है क्योंकि इसके कारण सम्पूर्ण ससार मे प्रेमास्पद के दर्शन होते है—

हौं जानौ पिय मिलन ते, बिरह अधिक सुख होय।
मिलतै मिलियै एक सों, बिछुरे सब ठां सोय।।[3]

वास्तव मे मुसलमान कवियों में साग्रह सूफी सिद्धान्त खोजने की प्रवृत्ति[4] ने उन प्रेमाख्यानों मे अभिव्यक्त प्रेम को एक विशेष प्रकार के आवरण से ढकने का यत्न किया है। वह आवरण इतना झीना है कि भीतर की चाकचक्य छिप नहीं पाती 'चंदायन' मे अवस्थाओं को खोजते हुए डॉ० नित्यानन्द तिवारी कुछ दूर चलकर ही स्वीकार कर लेते है कि 'यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि 'चदायन' में सूफी साधना की मंजिलों का स्पष्ट चित्रण नहीं हुआ है। कहीं-कहीं हल्के संकेत[5] भर कवि द्वारा दिए गए है।[6]

१, हिन्दी और पंजाबी सूफी कविता का तुलनात्मक अध्ययन, (टंकित प्रति), पृ० ३८९

२. (क) षड्गु धार मारग जहा, गंग जमुन दुहूँ ओर।
प्रेम पंथ अति अगमु है, निबहत है नर थोर।।
पुहकर सागर प्रेम को निपट गहिर गंभीर।
इहि समुद्र जो नर परै, बहुरि न लागहि तीर।

—रसरतन, पृ० ३९

(ख) यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पै धावनी है।

—विरह वारीश

३. नंददास ग्रन्थावली, सं० ब्रजरत्नदास, पृ० १३९

४. सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में नायिका की परिकल्पना (टंकित शोध प्रबन्ध) डॉ० निरंजनलाल शर्मा पृ० ५८४

५. उन्होंने लोरिक के चंदा के प्रति आकर्षण और विरह-व्याकुलता में नासूत मंजिल मानी है, और हताश अवस्था में ईश्वर पर भरोसा करने को मलकूत का संकेत (?) मान लिया।

६. मध्ययुगीन रोमान्चक आख्यान, पृ० २६९

पंजाबी में बाधाएं—पंजाबी प्रेमाख्यानों में प्रायः इन लम्बी यात्राओं का एतद्विध आयोजन नहीं है। 'किस्सा कामरूप', 'बहरामगुर' अथवा 'सैफुलमुलूक' में इस प्रकार की यात्राओं की योजना है। इन में 'सैफुलमुलूक' की यात्राएं ही विशेष महत्त्व की हैं। संभवतः यहां रचनाकार का अभिप्राय चार मंजिलों से साम्य का भी हो। कथा आरंभ करने से पूर्व मंजिले इस्तगणा, मजिले तौहीद, मंजिले हैरत एवं मंजिले फकर का वर्णन इस ओर सकेत करता है। इन चारों मंजिलों का वर्णन कर कवि ने स्पष्ट कहा है कि ढूंढने वाला कभी निराश नहीं होता, सैफुलमुलूक को ही देखो उसने जो खोजा सो पा लिया। आसिम का धैर्य एवं विश्वास तथा शहजादे का साहस लेकर मुहम्मदबख्श तुम भी दुखों को सहकर प्रेमास्पद को खोजो।[1] अतः यहां भी कवि 'चित्रावली' में उसमान के समान मंजिलों की योजना करना चाहता है, परन्तु कथा में वैसे संकेत कहीं नही है। इसी कथा पर आधारित एवं मियां मुहम्मदबख्श से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व रचित मौ० लुत्फअली की कृति 'मसनवी सैफुलमुलूक' में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं है।[2]

अन्य रचनाओं में नायक-नायिका इकट्ठे ही रहते हैं और येन-केन प्रकारेण समय निकाल कर मिलते जुलते रहते हैं। उनके मध्य स्थानीय दूरी बाधा बन कर नहीं आती, केवल सामाजिक भय ही उन्हें पृथक् रखता है।

बाधाएं दूर करने के उपाय—इन कठिनाइयों को दूर करने और प्रेमास्पद तक पहुंचने के लिए 'सत्य' का आश्रय परमावश्यक है। दाऊद[3], कुतबन,[4] जायसी,[5] सूरदास[6] सभी ने सत्य को प्रेममार्ग का साथी बताया है। सांसारिक मोह, लोभ प्रेमास्पद को प्राप्त करने में बाधक है। 'पदमावत' में रतनसेन द्रव्य-मोह के कारण समुद्र में पद्मावती से बिछुड़ जाता है—

---

१. सैफुलमुलूक पृ० ९०-९१

२. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ६९

३. सतु साथी, सतु सांभल सतई नाउ कंडहार।

—चांदायन, पृ० १९९

४. जौ पै सत है तौ सिधि होई, दुरिजन दूत कहा करै कोई॥

—मृगावती, पृ० १४३

५. जो सत हिएँ नैनन्ह दीआ। समुँद न डरै पैठि मरजिया॥

× × ×

सत साथी सत कर सहिवॉरू। सत खेई लै लावै पारू॥

—पदमावत, पृ० १४४

६. मैं मन अपना सत कैं धरा। तन सो निकस पेम जिउ परा॥

—नलदमन, पृ० ६५

दरब जों जानहिं आपन, भूलहिं गरब मनाँह ।
औरे उठाइ न लै सकै, बोरि चले जलमाँह ।।[१]

प्रेम का अत्युच्च पर्वत उत्साह एवं धैर्यपूर्वक ही चढ़ा जा सकता है। बिना धैर्य एवं कष्ट-सहन के सुख-प्राप्ति नही हो सकती।[2] दुख-वियोग में धैर्यपूर्वक दयाल से दया की आशा करनी चाहिए।[3] प्रेमी गिरि, पर्वत या घने काननों की चिन्ता नहीं करता, प्रेम-प्रासाद के सामने ये सब तुच्छ है—

गिरि पर्वत औ कानन घना। प्रेम प्रसाद न लेखे गना ।।[४]

वह न तो जल से घबराता है और न तेल के समान तपते आकाश से, परन्तु ऐसा वीर कोई कोई ही है जो इस मार्ग मे सफल होता है—

लूक उठे जल भीतरे, तपै तेल असमान।
दस मंह एके जाय कोई, न तो होय जिवहान ।।[५]

अतः इस जीव-हानि से भयभीत न होने वाला कोई सूरमा ही प्रेम के मार्ग में सफल होने की आशा कर सकता है—

पेम समुद्र अपार अति, नाहिं ओर नहिं छोर।
जे बूड़ै सोइ तिरै, यहै पेम दधि ओर ।।[६]

उसके लिए मानापमान तुच्छ होते है—

देह मान तिनहीं पै माना। जिन्ह मन पेम ग्यान नहिं आनां।।
का इहिं छूंछे मान भुलावहु। पेम मान अपमान न जानहु ।।[७]

---

१. पद्मावत, पृ० ३९५

२ (क) गिरिवर प्रेम विकट अति ऊंचा । धाइ चढ़ा सो तहां पहूंचा ।।
धीरज धरि जो लेइ पथ हेरि । चढ़ै जाइ जहां शृंग सुमेरी ।।

—चित्रावली, पृ० ४४

(ख) पहले दुख सहै जो कोई । ता पाछे सुख पावै सोई ।।

—वही, पृ० ६६

३. दुख बियोग महं धीज धरीजै। ता दयाल कह आस करीजै ।।

—नलदमन, पृ० ६०

४. चित्रावली, पृ० १२०

५. हंस जवाहर, पृ० १५५

६. नलदमन, पृ० ६४

७. वही, पृ० ६७

नूर मुहम्मद ने भी धैर्य[1] धारण करने एवं शरीर-लोभ[2] का भी त्याग करने को आवश्यक बताया है। उसे एक मात्र प्रेमास्पद के दर्शनों की इच्छा होती है—

हौं जोगी तेहि पन्थ को, नहिं चाहौं कविलास।
चाहउं दरसन भिच्छा, राखत हौं नित आस॥[3]

पंजाबी प्रेमाख्यानों मे प्रेम मार्ग के यात्रियों के लिए लोभ, क्रोध आदि छोड़ने एवं धैर्य-धारण करने का आग्रह है। बरखुरदार कृत 'यूसफ जुलेखा' में जुलेखा के चरित्र की विशेषता आजीवन धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा में ही है। अपने आपको ईश्वरच्छा के सहारे छोड़ देना चाहिए।[4] प्रेमी के लिए स्वाभिमान का त्याग आवश्यक है।[5] 'खुदी' का त्याग कर लक्ष्य की सिद्धि के लिए धूनी रमा देने से ही इस मार्ग में सफलता मिलती है।[6] प्रेमियों को हीर जैसा दृढ़[7] एवं सस्सी जैसा निर्भय होना चाहिए।[8] इस मैदान में बहादुर लोग ही जीतते है[9], शरीर पर तीर सहते है परन्तु डरते नही।[10]

---

१. धीरज धरे रहहु मन, सुमिरहु एकहि नाउँ।
बेगि तीर तुम पावहु, धीरज के बड़ साउँ।

—इन्द्रावती, पृ० ३०

२ प्रेम समुद्र मरजिया सोई। जाको जिउ की लोभ न होई॥

—वही, पृ० १५७

३. वही, पृ० ४५

४. न कर बहुत शिकायत हाफिज़ मत रब्ब गैरत आवे।
इशक मजाज़ी मुशकल बाज़ी, रखे जिउ रब्ब भावे॥

—यूसफ जुलेखां, पृ० १११

५. कीती मरद मुराद मुयस्सर छोड खुदी खुद बीनी।

—मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ३४८

६. लुत्फअली मकसूद लधा उै सिदकों दौद धुखाया।

—वही, पृ० ३०२

७. वारिसशाह न मुड़ां रभोटड़े थों, भावें बाप दे बाप दा बाप आवे।

—हीर वारिस, पृ० ४७

८. अहमदयार इस यार दे राह वाले, मैंनूं सूल बबूल कबूल अम्मां।

× × ×

अहमदयार परदेश ही बंज मरसां, वले घत्त न ऐस कुपत्तड़ी नूं।

—सस्सी पुंन्नूं, पृ० १००

९. लुफअली मैदान मुहब्बत मरद जंगावर जितया।

—मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० १४१

१०. तीर सरीर दुसल्लू भल्ले मौतों मूल न डरिआं।
यार न छड्डीं अहमदयारा कीवें आँच न लग्गे खरिआं।

—राजबीबी नामदार (अहमदयार), पृ० १०

पंजाबी प्रेमाख्यानों में कवियों की मनोरंजनात्मक मनोवृत्ति के कारण 'सिद्धान्त-कथन' का अभाव-प्राय है। इसीलिए उपदेशात्मक बातें वहां कम हैं। वहाँ पात्रों के वार्तालाप अथवा आचरण से ही इन तथ्यों का साक्षात्कार किया जा सकता है।

प्रेम के मार्ग पर चलते समय बुद्धि की आवश्यकता का निषेध करते हुए 'ज्ञानदीप' मे शेखनबी ने लिखा है—

ज्ञान कुंवर कै रहै न पावै। रहै ज्ञान तौ काज न आवै ॥

प्रेम के लिए ज्ञान छोड़कर अज्ञानी बन जाना अधिक उचित है—

कहेसि सुनहु मो से सुरज्ञानी। ज्ञान तजेउ भल भयौ अज्ञानी ॥'

इस मार्ग पर चलने वालों को भूख, प्यास अथवा डर का आभास नहीं होता। एक बार कमर कस लेने पर तो कठिनाइयां ही सुविधाएं प्रतीत होती हैं—

पेम पथ मोहि अति सुगम, भूख प्यास डर नाहिं।
कसक करेजे काटहीं, नीर सु नैनन माहिं ॥[1]

हाशम ने भी इश्क को अक्ल का दुश्मन कहा है और यह भी माना है कि इश्क के सामने अक्ल सदा पराजित होती है—

हाशम फतहे नसीब इशक वे अकल हमेशा हारू।[2]

बुद्धि एवं हृदय का विरोध चिरकालिक है। प्रेम हृदय का व्यापार है, बुद्धि का नही। सच्चे प्रेमी बुद्धि से परिचालित होकर कभी भी प्रेम-मार्ग का त्याग नहीं करते।

संयोग-सुख

इन कष्टों के अनन्तर हिन्दी प्रेमाख्यानों मे नायक-नायिका का मिलन होता है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में मात्र पीड़ा प्रधान वियोग का वर्णन ही नही है इनमें अनेक बार स्वप्न के मिलन को भी वास्तविकता का मिलन बताया गया है। दीर्घ प्रयत्नों के बाद सुख की आशा करना सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का वैशिष्ट्य है। आश्चर्य है कि यह प्रवृत्ति पजाबी काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान न पा सकी। पंजाबी मे प्रेम के संदर्भ मे सुखद संयोग का अभाव सदा खटकता है। इसका यह अभिप्राय नही कि वहाँ नायक-नायिका आपस मे मिलते नही। वे तो दीर्घ काल तक इकट्ठे उठते, बैठते, घूमते एवं खाते पीते है। इस काल मे उनके संभोग के आभासपरक सकेत भी मिलते हैं परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानों में जैसा निर्विघ्न एवं सुखोत्पादक संयोग मिलता है वैसा पंजाबी में नही। हिन्दी की अधिकांश रचनाओ मे विवाह के अनन्तर एवं कुछ में विवाह के पूर्व भी आलिंगन, चुम्बन एवं सुरत-सुख के अनेकविध चित्र मिलते हैं। इन चित्रों में कई वार सीमातीत ऐन्द्रियता के दर्शन भी होते है। ऐसे चित्र प्रायः सभी प्रेमाख्यानों में है। 'ढोला मारू' मे

१. नलदमन, पृ० ६३
२. हाशम रचनावली, पृ० ७५

तो 'अष्टयाम'[1] का वर्णन ऊपर से जोड़ा गया लगता है परन्तु, यह कवि-परम्परा में वियोग-वर्णन के साथ-साथ संभोग की अनिवार्यता प्रकट करने का सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' में लगभग आधे भाग मे कृष्ण-रुक्मिणी के सभोग का सविस्तार वर्णन है। कालिदास, श्रीहर्ष, जयदेव आदि संस्कृत कवियों द्वारा चित्रित सम्भोग के उदाहरण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इन्ही की परम्परा बाद मे 'गाथा सप्तशती' जैसी रचनाओ मे प्रवाहित होती रही। अतः हिन्दी प्रेमाख्यानों में इनका अस्तित्व इसी बात का प्रमाण है कि ये रचनाए सर्वतोभावेन उसी परम्परा का अनुगमन करती है। संयोग की यह प्रवृत्ति हिन्दू कवियों मे विशेष लोकप्रिय रही है। ये कवि संयोग श्रृंगार के वर्णन मे रीतिकालीन कवियों के साथ कदम से कदम मिला कर चलते है। प्रेमिका का आलिंगन किसी भी धार्मिक कृत्य से कम फलदायक नही—

बेनी कौ दरस कुच संभु कौ परस जहाँ।
माधुरी सौ अधर पयूष रस पीजियै॥
आनन्द मगन हूजे मिटै दुख दाइ सब।
कलपलता सी उर लाइ जब लीजियै॥
पुहकर विलोकै मुष पायौ है अमर पदु।
लगै न पलक प्यारी चाहि चित दीजियै॥
मेटियै मुक्तहार कंचुकी मुकत भई।
ऐसी प्रमदा को तजि कौन तपु कीजियै॥[2]

पंजाबी में ऐसा सुखद संयोग अपवाद रूप में ही मिलता है।

दुख भोगने के अनन्तर सुख मिलेगा[3]—भारतीय मानस का यह निश्चय हिन्दी की सभी रचनाओ में प्रतिपादित एव फलित हुआ है। पंजाबी मे यह भावना लुप्त है। वहां तो प्रेम का उद्देश्य दुखभोग ही है। प्रेम मे सुख का क्या काम? उसमें तो मृत्यु ही अमरता है।[4]

१ ढोला मारू रा दूहा, पृ० १४१

२. रसरतन, पृ० १२६

३ (क) प्रीतम लागि बहुत दुख सहिए। दुख कै लिइ तौ रे सुख लहिए॥

—मृगावती, पृ० ६१

(ख) मंझन एहि कलि दुक्ख बिन, सुख मंति चाहे कोइ।
प्रथमहि तरु पतझर कर, तो नौ पल्लौ होइ॥

—मधुमालती, पृ० १२०

(ग) पहिलें दुख सहै जो कोई। ता पाछे सुख पावै सोई॥

—चित्रावली, पृ० १६

४. (क) इशक हीर ते रांझे दा आफरीं है कौल अपना पाल विखाइआ।
वांग बकरे इशक कसाब कोलों मुफ्त आपना आप कुहाइआ।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ७२

(ख) एहो खूब इशक विच मर तूं मरन नहीं इह तरना।

—हाशम रचनावली, पृ० १५२

परिवेश

हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रेम के विविधि परिवेश —इन रचनाओं मे पुरुष एव नारी के प्रेम का वर्णन है। दाम्पत्य प्रेम एवं दाम्पत्य भावना-रहित प्रेम, इसकी दो अवस्थाएं हो सकती है। हिन्दी प्रेमाख्यानों मे यद्यपि दोनों ही प्रकार की रचनाए मिलती है परन्तु प्रधानता दाम्पत्य प्रेमपरक रचनाओ की ही है। दूसरी प्रकार की रचनाएं तो अपवाद ही मानी जा सकती है। इनके तीन भेद किए जा सकते है —

१. विवाह के अनन्तर प्रेम का विकास जैसे—'छिताई चरित', 'बीसलदेव रासो', 'ढोला मारू', 'मैनासत' एव 'मैना सतवन्ती' आदि।

२. प्रेम का विवाह के रूप मे परिणत होना जैसे 'मधुमालती', 'रसरतन', 'ज्ञानदीप' आदि तथा उषा-अनिरुद्ध एवं कृष्ण-रुक्मणी के आख्यान पर आधारित रचनाए।

३. प्रेम का विकसित होकर विवाह के रूप में परिणित एवं पुनः परिपक्व होना। जैसे 'मृगावती', 'पदमावत' एवं 'नल दमन' आदि।

प्रथम कोटि की रचनाओं में विवाह के उपरान्त किसी कारण नायिकाएं अपने पति से बिछुड़कर वियोग व्यथा सहती हैं। सत्यनिष्ठा एवं वियोग-पीड़ा ही ऐसी रचनाओ के प्रेम का सारतत्व है, अतः यह प्रेम प्रायः नायिकाओं में ही विशेष प्रभाव दिखाता है। उनके प्रेम की पीडा बारहमासे या सन्देश-प्रेषण के द्वारा प्रकट होती है। नायिका का सतीत्व इन में विशेष रूप से उभारा जाता है। 'छिताई चरित' में विवाह के उपरान्त छल द्वारा नायिका का हरण नायक समरसिह एव नायिका छिताई को समान रूप से व्यथित करता है। नायक उसकी असह्य वेदना के कारण राजपाट छोड़कर योगी बनता है

दूसरी कोटि की रचनाओं में नायक अथवा नायिका में समान कोटि का प्रेम होता है। 'कृष्ण-रुक्मिणी' अथवा 'उषा-अनिरुद्ध' की कथाओं में भी प्रारंभ में प्रेम चाहे एकपक्षीय हो, परन्तु शीघ्र ही नायक भी उस मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव कर लेते है। 'मधुमालती वार्ता' (चतुर्भुज), 'मधुमालती' (मंझन), 'रसरतन' 'ज्ञानदीप' आदि इन सभी रचनाओं में नायक अथवा नायिका मे समान कोटि का प्रेम है और दोनों अपनी निष्ठा एवं धैर्य से आपस में विवाह-सूत्र में बध जाने में सफल हो जाते है। प्रेम की सर्वोत्तम स्थिति यही है।

हिन्दी में तीसरी कोटि की रचनाएं विशेष प्रसिद्ध है जिनमें प्रेम के परिणाम-स्वरूप विवाह एवं विवाह के अनन्तर प्रेम की परिपक्वता दिखाने का यत्न किया जाता है। 'मृगावती' में राजकुंअर मृगावती पर आसक्त होता है और निरन्तर कष्ट सहते हुए प्रयत्नरत रहकर नायिका से विवाह करने में सफल हो जाता है। पुनः दोनों बिछुड़ जाते हैं और कुछ घटनाओं के बाद पुनर्मिलन होता है। 'पदमावत', 'कुतबमुश्तरी' 'चित्रावली', 'प्रेमपरगास', 'नलदमन', 'पुहपावती', 'हंस जवाहर', 'इन्द्रावती' आदि

रचनाओ में इसी प्रकार का प्रेम है। यह प्रेम प्राय. आरंभ में एक पक्षीय ही प्रतिभासित होता है और पर्याप्त समय बाद दोनों पक्ष इस तथ्य से आश्वस्त हो पाते है कि वे दोनों ही एक दूसरे से प्रेम करते है।

'लैला मजनू' एवं 'चंदरबदन महियार' जैसी एकाध रचना ऐसी भी है जिसमें अन्त तक केवल नायक का प्रेम वर्णित है और नायिका उसकी मृत्यु के बाद ही पसीजती है। इन रचनाओं में पहली कोटि की रचनाओं के विपरीत वेदना एवं चीत्कार केवल पुरुषों मे ही दिखाया गया है।

इन सभी रचनाओं मे प्रेम समाज स्वीकृत परिधि में ही रहा है। केवल अन्तिम भेद मे इसका रूप कुछ-कुछ असामाजिक हो गया है। हिन्दी साहित्य की यह विशेषता सुविदित ही है। सम्पूर्ण रीतिकालीन साहित्य में अश्लीलता के रहते हुए भी असामाजिकता नहीं है, प्रेमाख्यान-साहित्य मे भी यही स्थिति है। 'माधवानल कामकंदला' के आख्यानों में नायक वेश्या कामकदला पर मोहित होता है परन्तु वेश्या के सतीत्व एवं निष्ठा के कारण वहां भी असामाजिक तत्त्व स्वत बहिष्कृत है। अन्त में नायक-नायिका का विवाह हो जाता है।[1] कुछ रचनाओं उदाहरण के लिए 'मधुमालती वार्ता' अथवा 'रसरतन', में विवाह-पूर्व के सम्भोग-चित्रों में सामाजिक मान-मर्यादाओं का उल्लघन अवश्य खलता है परन्तु समयान्तर मे उन्ही से विवाह हो जाने के कारण वे विशेष चर्चा का विषय नही रहते।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में स्वकीया नायिका ही विशेष रूप से समादृत रही है।[2] स्वकीया प्रेम के महत्त्व की प्रतिष्ठा करने में इन प्रेमाख्यानों का योगदान उल्लेखनीय है। जिन रचनाओं में परकीया-प्रेम का आधार लिया गया है उनमे से कुछेक पर तो अलौकिकता का आवरण डालकर उनकी असामाजिकता का दश समाप्त कर दिया गया है। 'रूपमजरी' ऐसा ही एक उदाहरण है जिसमें विवाहिता नायिका का कृष्ण से प्रेम मर्यादाहीन लगता है परन्तु कृष्ण के ईश्वरत्व के कारण उसकी अमर्यादा भी मर्यादाबद्ध हो गई। 'चदायन' में नायिका चंदा का लोरक के प्रति प्रेम अवश्य असामाजिक लगता है। लोरक को देखने के लिए बार-बार प्रयत्न करना, उसे अपने धवलगृह में बुलाना, उसके साथ संभोग आदि मे मर्यादोल्लंघन ही है। इस प्रकार के मर्यादाहीन असामाजिक प्रेम को अभिव्यक्त करने वाली रचनाएं हिन्दी साहित्य में अधिक नहीं है। इसमें संदेह नही कि चंदा के पति के व्यवहार का संकेत कर चंदा के इस कृत्य का औचित्य जताने का यत्न अवश्य हुआ है। इसी प्रकार की असामाजिकता हंस कविकृत 'चन्द्रकुंवर री वात' में परिलक्षित होती है। बारह वर्ष तक पति की

१. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, कुशललाभ की कृति; पृ० ४३७

२. मुसलमान कवियों ने भी स्वीकीया को ही महत्त्व दिया है। डॉ निरंजनलाल शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में नायिका परिकल्पना में इसका विस्तार से—पृ० २४१-२७८ विश्लेषण किया है।

अनुपस्थिति में काम-पीड़ा की असह्य वेदना की शान्ति के लिए अन्य सम्बन्ध को मनु ने भी वैध[1] माना है परन्तु प्रेम-मार्ग का पथिक तो प्रतीक्षा में कई बारह वर्ष बिता सकता है। इस प्रकार की रचनाएं प्रेम के महत्त्व की अपेक्षा चिरकाल तक घर से बाहर रहने वाले पुरुषों को सावधान करने के लिए लिखी गई होंगी।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में दाम्पत्य भावना का विरोध

हिन्दी के प्रेमाख्यानों में दाम्पत्य जीवन, सामाजिक नियमों एव मर्यादाओं की स्वीकृति की जो भावना मिलती है, पंजाबी प्रेमाख्यानों में वह पूर्णतः ध्वस्त प्रतीत होती है। यद्यपि पंजाबी में भी पुरुष एवं नारी के प्रेम को ही प्रश्रय दिया गया है, समलिंगी प्रेम के उदाहरण न हिन्दी रचनाओं में हैं और न पंजाबी में परन्तु दाम्पत्य प्रेम की भावना की स्वीकृति भी पंजाबी में नही। दाम्पत्य प्रेम का मूल है विवाह। पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायक-नायिका के जीवन में विवाह प्रसन्नता की अपेक्षा दुख एव कष्टो का ही सृजन करता है। हीर को विवाह द्वारा प्राप्त पति का साथ एक क्षण के लिए भी नही सुहाता। सोहणी भी विवाह करवाती है परन्तु विवाह-संस्कार की किसी मर्यादा को उसने स्वीकार नहीं किया। विदेशी स्रोतों से गृहीत कथाओं (जिनमें प्रेम की स्थिति दोनो ही भाषाओं में समान है) को छोड़कर पंजाबी में सभी रचनाएँ मुख्य रूप से चार कथाओं पर आधारित है। उनमें से एक (सस्सी) में प्रेम का परिणाम विवाह, एक (साहिबां) मे विवाह से पूर्व पलायन तथा दो (हीर एवं सोहणी) में विवाह संस्कार का पूर्णरूप से विरोध है।

जिस एकमात्र कथा, सस्सी पुन्नू में प्रेम की परिणति विवाह मे दिखाई गई है, उसमें भी विवाह का स्थान अत्यन्त महत्त्वहीन है, कई कवियों ने तो विवाह का संकेत भी नही किया क्योंकि उसके शीघ्र बाद पुन्नू के भाई आकर नायक को कपट-पूर्वक ले जाते है। इस कपट-योजना से छली गई सस्सी रोती एवं विलाप करती हुई भयंकर मरुस्थल में प्राण दे देती है। मिरज़ा एवं साहिबां भी कृष्ण-रुक्मिणी के समान विवाह से पूर्व भाग जाते है परन्तु जहां कृष्ण एवं रुक्मिणी का पलायन सफल है और विवाह मे परिणत होता है वहां इस युगल को मृत्यु का ही वरण करना पड़ता है। सोहणीं एवं हीर भी विवाह से सन्तुष्ट न हो सकी। प्रेम स्वेच्छा से होता है, ये विवाह इच्छा के विरुद्ध, बलपूर्वक अन्यत्र किये जाते है। अतः ये नायिकाएं उसे स्वीकार नही करतीं। इनका प्रेम हिन्दी प्रेमाख्यानों के संदर्भ में विवेचित किसी भी कोटि के अन्तर्गत नही आता। आचार्य शुक्ल ने प्रेम के जो चार प्रकार बताएं हैं[2]

---

१. प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रीस्तुवत्सरान्॥

—मनुस्मृति, ९/७६

२. जायसी ग्रंथावली, पृ० २७

संभवतः, यह उनमें से किसी के भी अन्तर्गत नही आता। अपने प्रेमियों के लिए सदैव प्राण-त्याग करने वाली इन नारियों का अपने (वैधानिक) पतियों के प्रति अति क्रूर व्यवहार है। अपने प्रारभिक रूप में स्वाभाविक होता हुआ भी यह प्रेम समाज के प्रबल विरोध के कारण सदैव असामाजिक बना रहा। इसी वर्ण्य के कारण ये रचनाएं चिरकाल तक परिवारों से बहिष्कृत रही और अश्लीलता के विशेषण से संबद्ध होती रही।

प्रेम की विवाह में परिणति पजाबी के उन्ही प्रेमाख्यानों में देखी जा सकती है जिनका उत्स विदेशी साहित्य है। 'यूसफ जुलेखा', 'सैफुलमुलूक', 'शाह बहराम हुसनबानो' प्रभृति रचनाओं में प्रेम का विकास समानान्तर हिन्दी रचनाओं जैसा ही है। 'चन्द्रबदन महियार' के विषय मे भी यही कहना उचित है। 'राजबीबी' की रचना में भी नायक-नायिका का प्रेम अन्य पजाबी रचनाओं की भाँति दुखान्त ही रहा। यही स्थिति 'शीरी फरहाद' (हाशम) की है।

पंजाबी में स्वच्छन्द प्रेम

पंजाबी की अधिकांश रचनाओं मे प्रायः एक ही प्रकार का प्रेम है। उसे असामाजिक स्वच्छन्द प्रेम कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। समाज के विरोध को सहते हुए भी प्रेमी एवं प्रेमिका अपने मध्य किसी अन्य की सत्ता स्वीकार नहीं करते। उनके प्रेम का हृदयबेधी दुखान्त उन्हें भारतीय परम्परा मे प्राप्त होने वाली अधिकांश रचनाओं के सुखांत प्रेम से सर्वथा पृथक् कर देता है।

प्रेम में सघनता

सामाजिक मर्यादाओ से अलग होकर यदि व्यक्तिगत धरातल पर इनके प्रेम का विश्लेषण करें तो उसके निम्नलिखित रूप हो सकते हैं—

१. नायक का प्रेम।
२. नायिका का प्रेम।
३. उपनायिका का प्रेम।
४. प्रतिनायक का प्रेम।

नायकों की प्रम निष्ठा

हिन्दी प्रेमाख्यान—हिन्दी प्रेमाख्यानों में अधिकतर आरम्भ में नायक ही नायिका पर मुग्ध होते हैं और कुछ देर तक यह प्रेम एक पक्षीय ही रहता है। आकर्षण का कारण प्रायः सौन्दर्य है और उसके प्रभाव से ये नायक मूर्च्छित हो जाते हैं। सम्मोहन के अनन्तर तो इनकी दशा इतनी बिगड़ जाती है कि इलाज के लिए अनेक वैद्य, गुणी ओझे आदि बुलाए जाते हैं परन्तु प्रेम के बाण से घायल व्यक्तियों का इलाज करने मे ये कभी भी समर्थ नही हुए। अन्ततः ये नायक योग धारण कर घर से निकल पड़ते हैं और माता, पिता या पत्नी आदि किसी भी प्रियजन

का अनुरोध या विनय भरे वचन इनको रोकने मे असमर्थ ही रहते हैं । मार्ग में अनेक कष्टों को सहकर अन्ततः ये अपनी प्रेमिका को प्राप्त कर लेते हैं । प्रेम के कारण इन नायकों में अप्रतिहत शक्ति एवं अदम्य साहस का संचार हो जाता है । मृगावती के लिए राजकुंअर, पद्मावती के लिए रतनसेन, चित्रावली के लिए सुजान, पुहपावती के लिए राजकुंवर आदि सभी ने असंख्य कष्टों को सहन किया । प्रेम के मार्ग में कष्ट-सहन अनिवार्य है । प्रेमी तो अनेक बार जल-जल कर मरता और मर-मर कर जीता है ।[1]

इनके प्रेम में प्रायः अनन्यता या निष्ठा का अभाव झलकता है । किसी प्रकार के सैद्धान्तिक तर्कों से एकनिष्ठता सिद्ध करने का यत्न वास्तविकता पर पर्दा डालना है । । नायिका से प्रेम के सम्बन्ध में इन नायकों का दृष्टिकोण, सामंतकालीन शासकों के समान, भोग-प्रधान ही है । नारी को देखकर या उसके विषय में कोई रंजक वार्ता सुनकर इनकी वासना छलछला उठती है । लौकिक भावना की दृष्टि से यह शुद्ध लोभ ही माना जा सकता है । उनकी एकनिष्ठता प्रेमिका मिलन से पूर्व, मार्ग मे किसी अन्य सुन्दरी के दर्शन के समय तिरोहित हो जाती है । 'मृगावती' मे वीर राजकुमार रुपमिनी के पिता की सामान्य सी धमकी पर ही योगसज्जा उतार देता है,[2] और उस युवती से विवाह कर लेता है । दुखहरन की 'पुहपावती' में अगणित कष्टों से प्राप्त पुहपावती अन्त में योगी बने धर्म को दान में दे दी गई ।

'ढोला' भी सदेशवाहक शुक से मालवणी की मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यन्त उपेक्षापूर्ण एवं कटु उत्तर देता है—

सूड़ा सगुण ज पंखिया, म्हाँकउ कह्यउ करे ज ।
नव मण चंदण, मण अगर, मालवणी दागेज ।।[3]

परन्तु जब उसे मारवणी के बुढ़ापे की सूचना मिलती है तो उसके पश्चात्ताप से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह विषयासक्त है, प्रेम-विह्वल नहीं ।

'लखमसेन पद्मावती कथा' के लखमसेन का व्यवहार भी यही बताता है कि ये नायक विषयासक्त है । पद्मावती के वियोग में बन-बन घूमते हुए, निराहार, निर्जल रहकर 'पद्मावती पद्मावती', पुकारते हुए लखमसेन का साक्षात्कार एक सुललिता नारी से हो जाता है । वह तत्काल निश्चय कर लेता है कि यह पद्मावती ही है, ऐसा रूप अन्यत्र कहां मिल सकता है—

---

१. जरि जरि मरइ सो मरि मरि जिअै । सो पै पेम सुरा रस पिअै ।।

—मृगावती, पृ० १८१

२. जोग क साज अहा सो उतारा । जोग तंत बैसंदर जारा ।।

—मृगावती, पृ० ११३

३. ढोला मारू रा दूहा, पृ० ९३

ईसइ रूप नहु दूजी कोई । पदमावती सरीखी होई ॥
नखसिख मुख निरखइ नर चाहि । पदमावती प्रत्यक्ष छई आहि ॥[1]

फलत. 'नारी एवं नाह अहि निसि रमण' करने लग पड़े । इनके इस दृष्टिकोण को 'रसरतन' के कवि पुहकर ने सविस्तार स्पष्ट किया है—रंभा के प्रति सूर की आसक्ति देखकर स्तब्ध रह जाना पड़ता है। उसे सर्वत्र रभा की ही मूर्ति दिखाई देती है। सोते जागते वह उससे पृथक् नही होता ।[2] रसना उसका नाम जपती है; कान उसी का नाम सुनते है और नेत्र उसी का रूप देखते है। उसके हृदय मे रंभा का ही नाम निवास करता है। रभा का चित्र उसके लिए 'हारिल की लकरी' के समान है ।[3] परन्तु कल्पलता को देखकर एक बार तो यह हारिल की लकड़ी पीछे छूट गई । कुमार सोम सूर उस अलौकिक रूप को देखकर स्तभित रह गया ।[4] सौन्दर्य को देखकर भँवर मुग्ध हो गया—

भँवर वासु रस रह्यो लुभाई ।[5]

नायक उस सौंदर्य मूर्ति को देखकर उपभोग के लिए उत्कंठित हो गया । इन कवियों को इसमे कुछ दोष दिखाई नही देता। ये कोई न कोई तर्क प्रस्तुत कर नायक का पक्ष ले लेते है। जहां न पहुचे रवि वहां पहुचे कवि - कितनी प्रबल युक्ति है—

पुहकर जो मन में बसै, नैन विलोके ताहि ।
मूरति पूज पाषान की, ध्यान धरत कर जाहि ॥[6]

अतः कल्पलता में रंभा की कल्पना दोषपूर्ण नहीं हो सकती । तृप्ति लाभकर[7] समझ आई 'यह न होई रंभा उनहारी ।' अतः उससे पूछ लिया कि तू कौन है—

---

१. लखमसेन पद्मावती कथा, पृ० ४३

२. जित देषौं तित मूरति सोई। नैननि और न देषौ कोई ॥
रहै प्रान मधि प्रान पियारी। सोवत जगत होइ न न्यारी ॥

—रसरतन, पृ० ७४

३. वहै नाम रसना जपै श्रवण सुनै वह नाम।
वहै नाम हिरदे बसै और नाम नही काम।
सो चित्रहि. करही धरै लोचन चाहत जाहि।
करि हारिल को लाकरी निमिष तजहिं नही ताहि ।

—वही, पृ० ८३

४. निरषत रूप सिंधु अति पूरा। चकित चंद विथकित भा सूरा ॥

—वही, पृ० ११३

५. वही, पृ० ११६

६. वही, पृ० ११७

७. पुहकर रस भरि रीझि करि, आनँद भरे अपार।
त्रिपिति भये करि केलि रुचि मदन जुद्ध तिहिं वार।

—वही, पृ० १२०

भूप सुता किधौं आछरी, रति डोलति संग दासि ।
इंद्रानी किधौं सुरसुता, नागसुता सुख रासि ।।[1]

अनेक बार इस 'सुखरासि' से सुख प्राप्त करने के पश्चात् ही समझ आई कि वह उद्देश्य से भटक गया है अतः एक दिन उस 'इंद्रानी' को छोड़कर निकल गया।

नारी को प्राप्त कर इनकी दृष्टि उसके प्रति उपेक्षायुक्त हो जाती है। बारहमासों को आधार बनाकर लिखी गई रचनाएं इसका प्रबल प्रमाण हैं। 'बीसलदेव रासो' मे तनिक सी बात पर क्रुद्ध नायक नायिका राजमती के अनुनय विनय की उपेक्षा कर उसे बिलखती हुए ही छोड़कर चला गया। 'मैनासत' में नायिका के रोकने पर भी नायक लालन व्यापार के लिए 'परदीप द्वीप' की यात्रा पर निकल जाता है।

मुसलमान कवियों की रचनाएं और सूफी साधना-परक प्रेम

यहा शंका हो सकती है कि 'सूफी सिद्धान्तों' को आधार बनाकर लिखी गई रचनाओं में नायकों का व्यवहार ऐसा नही। इन रचनाओं के विषय में एक विशेष प्रकार का भ्रम फैलाया गया है। वास्तव मे उनमे काव्य ही प्रधान है, सिद्धान्त नहीं। ये कवि भी नायिकाओं या उपनायिकाओं के साथ अन्य रचनाओं से विलक्षण व्यवहार नहीं करते। 'पदमावत' में रतनसेन सामने आई हुई पार्वती की ओर यदि नहीं देखता तो केवल इसलिए ही कि यह भेंट पद्मावती के दर्शनों के अनन्तर करवाई गई है अन्यथा पद्मावती को प्राप्त करने की आकांक्षा पूरी होने के अनन्तर उसी नागमती का संदेश रतनसेन को लौटाने के लिए पर्याप्त है जिसे कि वह मतिहीन कह, तिरस्कृत कर छोड आया था।[2] उस समय नौ मन मोती टूट गए, दस मन कांच की चूडिया फूटकर बिखर गईं, परन्तु राजा विचलित न हुआ।[3] कारण स्पष्ट है कि उस समय राजा पद्मावती के लिए व्याकुल था। वह साध पूरी हुई तो संदेश मात्र से ही प्रस्थानशील हो गया—

भाउदास जिउ सुना सदेसू। संवरि चला मन चितउर देसू ।।[4]

'चांदायन', 'हंस जवाहर', 'पुहपावती', 'इन्द्रावती' आदि सभी रचनाओं मे पहली रानी के सदेश अथवा स्वप्न मात्र से (हंसजवाहर मे) ये लोग घर की ओर लौटते है और मार्ग में पुरानी परिचिताओ को साथ लेते आते हैं। 'ज्ञानदीप' में नायक नायिका एवं उसकी सखी दोनों से एक साथ ही प्रेम करता है।[5] 'चंदायन' में नायक

---

१. रसरतन, पृ० १२१
२. पदमावत, पृ० १२७
३. वही, पृ० १२८
४. वही, पृ० ३७५
५. अंक मलाइ दुहुन को, उर सो उरहि मिलाइ।
मुख चुम्बन खंडन अधर, आलिंगन जत भाइ ।।

—ज्ञानदीप

की अनन्यता की चर्चा करते हुए डॉ० नित्यानन्द तिवारी भी प्रारम्भिक भाग मे ही अन्यता की चर्चा करते है, किन्तु अन्त में लोरिक जब, चंदा के विरोध करने पर भी मैना के प्रेम के कारण, गोबर लौटने को तैयार होता है वहा इस अनन्यता की रक्षा नहीं हो पाती ।[1]

नायिकाएं अवश्य विवाह से पूर्व रमण का निषेध करती है । इस प्रकार के निषेध 'मृगावती', मधुमालती' एवं 'ज्ञानदीप'[2] में भी है परन्तु यह नायिकाओं का संयम है, नायकों का नही क्योंकि इन्होने तो सदा प्रणय-दान की याचना ही की है ।

एकनिष्ठता का निभाव मंझन कृत 'मधुमालती' एवं उसमान कृत 'चित्रावली' मे अवश्य दृष्टिगोचर होता है । मनोहर प्रेमा को राक्षस के पाश से बचाता है । प्रेमा का पिता उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है परन्तु मनोहर उसे अस्वीकार कर अपनी बहन बना लेता है और कालान्तर मे अपने मित्र ताराचंद को सौप देता है। 'चित्रावली' में नायक तब तक कौलावती से संभोग न करने की शपथ लेता है जब तक चित्रावली प्राप्त नही हो जाती ।[3] यह कहना अप्रासगिक न होगा कि इन सभी स्थलों में केवल संभोग का ही निषेध है, संभोगपूर्व की शेष सभी क्रियाएं करने मे वे पूर्ण स्वतंत्र है तभी तो नायक एवं नायिका कुछ समय पश्चात् रीतिकाल की प्रसिद्ध

---

१. मध्ययुगीन रोमांचक आख्यान, पृ० २६६

प्रसंगवश इसी संदर्भ में डॉ० तिवारी की यह टिप्पणी भी उद्धरणीय है "इस संदर्भ में केवल इतना कहा जा सकता है कि कवि ने उन्हीं अवसरों पर सूफी प्रेम की व्यंजना की है जहां कथा के मूल स्वभाव में व्याघात न पड़ता हो । नहीं तो पूरे चंदायन में लोक-कथा का रंग इतना गहरा है कि अगर ये कुछ आध्यात्मिक सी (?) लगने वाली पंक्तियां न होती तो इसे सूफी रहस्यवाद से वंचित काव्य भी कहा जा सकता था । केवल एक स्थान को छोड़ कर (लोरकहा छंद ५६) स्पष्ट शब्दों में दाऊद ने सूफी प्रेम के सम्बन्ध में कोई संकेत भी नहीं दिया है, उसकी व्यंजना और भावना तीव्रता के द्वारा ही उसका अनुमान (?) होता है ।"

(क) वह छंद निम्नलिखित है—

"दाऊद कवि जो चॉदा गाई । जेइं रे सुना सो गा मुरुछाई ।
धनि ते बोल धनि लेखन हारा । धनि ते आखर धनि अरथ बिचारा ।।

—मध्ययुगीन रोमांचक आख्यान पृ० २६८ पर उद्धृत

निश्चित रूप से ऐसी पंक्तियों में सूफी मत की व्यंजना 'अनुमान' का ही विषय है, यथार्थ नही । यह भी अवधारणीय है कि वही पर पादटिप्पणी में इस छंद के प्रक्षेपकत्व की भी संभावना व्यक्त की गई है । —लेखक

२. (क) मृगावती, पृ० ६७

(ख) मधुमालती, पृ० १०१

(ग) जब गुरु बेद जाप कछु कीजै । तब लहि नैनन सो रस लीजै ।। —ज्ञानदीप

३. चित्रावली, पृ० १५५

नायिकाओं[1] के समान'अधरों पर काजर लीक एवं नयन पर पीक' के चिन्हों का प्रदर्शन करता है —

कुंवर अधर पर परगट परी जो काजर लीक।
औ सोभित कारी मँह दीसी नैन सुहागिनि पीक।[2]

अथवा

अधर रदन छद उरज नख उधसि गई प्रति माँग ।
प्रथ समागम जनु कियो सिथल भयो सब आँग ।[3]

इनकी विशेषता यही है कि प्रेममार्ग मे असंख्य कष्ट सहते हुए भी ये प्रेम विमुख नही होते । इस विषय में किसी प्रकार के संदेह का अवकाश नही । प्रेमिका की प्राप्ति के लिए 'मधुमालती वार्ता' के मधु से लेकर 'इन्द्रावती' के राजकुंवर तक सभी नायक अनेक बार जीवन की बाजी लगाते हैं—मरण का वरण करते है। इसीलिए इन लोगों ने प्रेम के मार्ग को दुख का मार्ग कहा है, यह मरण का मार्ग है।

इन नायकों का उपनायिकाओं के साथ भी वैसा ही प्रेम है, जैसा कि नायिका के प्रति । नायिका के प्रथम आकर्षण से उसकी प्राप्ति के समय-पर्यन्त इनके प्रति विरक्ति के दर्शन अवश्य होते हैं । प्राप्ति के अनन्तर ये उन्हें भी वैसे ही प्रेम करते हैं जैसे कि नवोढ़ाओं को । 'मृगावती' में राजकुंवर दोनो से अहर्निश भोग करता है ।[4] इस संदर्भ में मानवती नागमती को कहे गए रतनसेन के ये शब्द विशेष रूप से मनन योग्य है—"नागमती तू तो पहली ब्याही है । तू कृष्ण के प्रेम मे राधा के समान मेरे विरह में दग्ध होती रही । बहुत दिनों के बाद आने वाले प्रियतम से उठकर न मिलने वाली पत्नी का हृदय पत्थर का होता है । गगा का जल चाहे श्वेत है परन्तु जमुना का सावला जल भी बहुत मीठा है । कोई यदि आशा से आये तो उसे निराश नही फेरना चाहिए, और फिर राजा ने गले लगाकर अपनी रानी को मनाया—

कंठ, लाइ के नारि मनाई । जरी जो वेलि सींचि पलुहाई ।।[5]

'चंदायन', 'रसरतन', 'हंसजवाहर', 'चित्रावली', 'इन्द्रावती' आदि में अपनी उपनायिकाओ के सदेश प्राप्त कर लौट आना उनके प्रति इनके प्रेम का ही प्रमाण है ।

---

१ पलनु पीक अंजन अधर लसत महावर भाल ।
आजु मिले सु भली करी भले बने हो लाल ।।

—बिहारी रत्नाकर, दोहा सं० २२

२. मधुमालती, पृ० १४४

३ चित्रावली पृ० १५६

४. मृगावती, पृ० ३४६

५. पदमावत, पृ० ४३३

अतः उपनायिकाओं से इनके प्रेम के विषय में डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ का यह कथन सत्कार्य है कि 'इन कवियों ने नायक एवं प्रतिनायका[1] के प्रेम को नीचा नहीं रखा, हाँ उसमें संघर्ष नही दिखलाया। इस कारण वह पाठक के मन पर अपनी वह उज्ज्वल आभा नही डालता जोकि नायिकारब्ध प्रेम डालता है।"[2]

पंजाबी प्रेमाख्यान—पंजाबी प्रेमाख्यानों मे नायक एकान्तभावेन नायिका से प्रेम करता है। हिन्दी प्रेमाख्यानों के नायकों के समान उनके जीवन में दूसरी नारी नही आती। रांझा घर से निकला, मार्ग मे उसके सौदर्य पर मुग्ध होने वाली कई रमणियां मिली परन्तु हीर के अतिरिक्त अन्य किसी नारी पर वह आसक्त नहीं हुआ। यह आसक्ति सान्निध्य के द्वारा पुष्ट हुई। रांझा हीर को प्राप्त करने के लिए कोई विशेष यत्न नहीं करता परन्तु बिना कुछ लिए अनेक वर्षों तक नायिका के द्वार पर सेवाकार्य में लगे रहना किसी प्रकार भी कम कष्टकारक नहीं। इस सम्पूर्ण काल में शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त वह जनता के व्यग्य, समाज का अपमान सब कुछ सहता है। एक बार तो उसे चाकरी से भी वंचित कर दिया गया परन्तु इस सम्पूर्ण अपमान को सहकर वह पुनः उसी द्वार पर प्रतीक्षा करता है। नायिका का विवाह उसकी सारी आकांक्षाओं पर पानी फेर देता है आशा के अवशिष्ट सूत्र भी छिन्न-भिन्न हो गए। वह अपने भाइयों के पास लौट आता है। भाइयों ने डांटा फटकारा—'योगी महाराज। आपने सिआल नगर में बावड़ियां खुदवाई, और दुर्ग बनाए। तुम्हें लज्जा नही आती ? तुमने चाकर कहलवाकर अपने पिता के मुख पर कालिमा पोती है। तुम पर लानत है, तुम वही क्यों न मर गये ? कभी तो तुम भैसे चराते रहे, कभी हीर की डोली के साथ 'टम्मक' उठा कर गए।[3] भौजाइयों ने हीर के विषय में पूछताछ की परन्तु उसका उत्तर यही था 'सलेटी की बात न करो, मुझे मृत्यु का कष्ट पहुंचता है। मैं डरता हुआ आह भी नही निकालता। कही, उसे यह अनुचित न लगे।[4] उसका श्वसुर पुनः विवाह का प्रस्ताव लाया परन्तु रांझे ने उसे दो टूक उत्तर दे दिया, जहां चाहो विवाह करो, मुझे कोई सरोकार नही—

जाहे विआहु करो जित भवें में दावा कोई नाहीं।[5]

कोई उपाय न देखकर उस कन्या का विवाह रांझे के भतीजे से निश्चित हो गया। इस फकीर को भी बारात में ले गए। वहां गांव की लड़कियां उसे देखकर मोहित एवं अवाक् रह गई। ब्याही जाने वाली कन्या ने भी जैसे कैसे उसके समीप पहुंचकर प्रार्थना की, अनुनय विनय की, रोष भी दिखाया, अपनी प्रतीक्षा की दुहाई दी—

---

१. प्रतिनायिका की अपेक्षा इन्हें उपनायिका कहना अधिक उचित है।

२. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० ३८७

३. हीर दमोदर, पृ० १२१

४ वही, पृ० १३०

५. वही, पृ० १३१

किउं कावड़ कर बोले तूहां मैनूं नित अंदेसा।
अट्ठे पहिर निहारीं पैंडा रोंदी इत वरेसा॥
जां मैं भर जोबन रस माती रंग वटइआ केसां।
जे हीर हक्क पराए पिछे, ता मैं किउं हक्क छुड़ेसां॥[1]

परन्तु रांझे ने कोई तर्क-वितर्क नही किया, स्पष्ट इनकार कर दिया—

तैडा हक्क न असीं बीबी, मतलब असां नाहीं।[2]

वह हीर का ही 'हक्क' था, वही रहा। किसी और को उसने अपना नही समझा। हीर का सन्देश आने पर वह पुनः प्रेम के समरांगण मे कूद पड़ा। उसने योग धारण किया कुछ सिद्धिया सीखी और फिर उसी नगर में जा पहुंचा जहां से वह निराश लौटा था।

रांझे के ही समान महीवाल भी सोहणीं के द्वार पर अनेक वर्षों तक तपस्या करता रहा। इस मौन प्रेमी ने तो अपना प्रेम-निवेदन भी बहुत देर बाद किया। इसे भी रांझे के ही समान अपमानित कर चरवाहे का हीन कार्य छीन, निकाल दिया; गली गली भटकता रहा परन्तु प्रेमास्पद के दर्शन की अभिलाषा उसके घर से दूर नही जाने देती।[3] एक रात भिक्षा के बहाने उसके द्वार पर पहुंच ही जाता है और उसकी आज्ञा मान नदी के दूसरे तट पर फकीर का भेस बनाकर मिलन की आशा में ठहर जाता है। प्रतिदिन नदी पार कर प्रेमिका से मिलता है। उसके लिए मछली का कबाब लाता है। एक दिन भयानक तूफान के कारण मछली नहीं मिलती, अपनी जाँघ के माँस को ही भून कर ले आता है। प्रेमी के पास खाली हाथ कैसे जाएगा ? प्रेमी पर सर्वतोभावेन इतनी प्रगाढ़ अनुरक्ति का इस से अधिक हृदय-स्पर्शी उदाहरण असंभव है। प्रेमी के कहने पर ही यह क्रम बदल सका। यही दशा पुन्नू की है, सस्सी के प्रति उसकी अनुरक्ति गुण-श्रवणजन्य है, साक्षात् दर्शन के अनन्तर वह उसी का हो लिया। राजपाट छोडकर सस्सी के घर में ही कपड़े धोने का काम किया और अन्त

---

१. अर्थ—तुम उल्टी बाते क्यों बोलते हो? मुझे नित्यप्रति तुम्हारी शंका रहती थी। मैं आठों पहर तुम्हारा मार्ग जोहती रही और इतने वर्षों तक रोती रही। मैंने यौवन तुम्हारी प्रतीक्षा में बिता दिया, अब मेरे केशों का रंग भी बदलने लगा है, हीर तो पराये हक्क पर लगी है, भला मै अपना हक्क क्यो छोड़ूं।

—हीर दमोदर, पृ० १३७

२ वही, पृ० १३७

३. अदखी यार दिसे जिस हीले हिकमति होर बणाई।
लावे अंग बिभूत अन्हेरे जावे करन गदाई।
पहुंचे ओस गली हर हीले अपणा आप बचाई।
हाशम रात नही दिन उमनूं, देवे यार दिखाई।

—हाशम रचनावली, पृ० ६२

में अपनी प्रेमिका को प्राप्त कर लिया। मधुयामिनी में उसके भाई भी आ गए और धोखे से शराब पिला कर उसे लौटा ले गए। जब तक शराब की बेहोशी थी तब तक ही वह चुप रहा। होश आते ही वह उलटे पैरों दौड़ा। न मां रोक पाई, न पिता और न अपार वैभव। सस्सी के प्रेम के समक्ष इन सभी का कुछ मूल्य नही।[१] जब भाई नहीं माने तो कटार निकाल ली भाइयों ने छोड दिया। वास्तव में जो जान देने पर तुल गए हों, उन आशिकों को कौन पकड़ सकता है? करहे के प्रति कथित 'अरे करहे, तुम्हें दूध मलाई खिलाऊंगा जरा शीघ्र चल। यही समय है, मुझे मेरी सस्सी से मिला दे'[२] आदि वचनों के द्वारा भी उसकी प्रेमातुरता ही स्पष्ट होती है।

मिरज़ा भी प्रेमिका के सदेश को प्राप्त कर किसी की नही सुनता। मां रोकती है, पिता वंजल मना करता है, अपशकुन होते है परन्तु प्रेमी के लिए ये सब महत्त्वहीन है। वह अपनी प्रेमिका के सदेश की अवहेलना नही कर सकता। अपनी घोड़ी पर चढ़कर प्रेमिका के पास पहुंच जाता है।

ये सब प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं के लिए मृत्यु का वरण करते है। हीर की मृत्यु का समाचार सुनकर रांझा मर जाता है, सस्सी की कबर पर सिर पटक कर पुन्नूं प्राण त्याग देता है, सोहणीं की पुकार सुनकर महीवाल तूफानी नदी में कूद पड़ता है और साहिबां की दुविधा मिरजे की जान ले लेती है। प्रेम के मार्ग में वे जानबूझकर मृत्यु का वरण करते है। जानते है कि प्रेम के मार्ग में मिटने पर ही प्रेमास्पद प्राप्त होता है—

हाशम इश्क मुइआं खडि मेले, फेर मिले दिल जानी।[3]

हाशम ने प्रेमी के इसी स्वरूप को अपनी रचना 'शीरीं फरहाद' मे भी स्पष्ट किया है। फरहाद किसी भी दशा मे महीवाल या रांझे से कम नही था। प्रेमिका के लिए वह दीवाना कहलाया। कुटनी के मुख से शीरी की मृत्यु की बात सुनते ही अपने शरीर पर तेसा (बसूला) मार कर मर गया।

---

१. हिजरी अग्ग पुन्नूं तन भड़की तोड़ जवाब सुणावे।
कैदी माउं पिता पुत कैदे नाल मुइआं मर जावे।

—हाशम रचनावली, पृ० १०३

२. बहुत लचार होइआ शाहिज़ादा खिच्ची पकड़ कटारी।
छड्ड मुहार दित्ती तद भाईयां डरदिआं जान पिआरी।
हाशम कौण फड़े जिंद बाजां जिन्हां जान इश्क विच हारी।

× × ×

झब्ब सुट्ट पैर सस्सी वल करहा, वकत इहो दुग भाई।
हाशम दुध मलीदा देसां करसां टहिल सवाई।

—हाशम रचनावली, पृ० १०३

३. अर्थ—हाशम मरने पर इश्क प्रेमास्पद को खोज कर उससे मिला देता है।

—हाशम रचनावली, पृ० ७८

नायकों के प्रेम की तुलना पंजाबी के प्रेमाख्यानों में जो एकनिष्ठता दिखाई देती है, वह हिन्दी प्रेमाख्यानों में उपलब्ध नही होती । ये प्रेमी सदैव प्रेम के मार्ग में कष्ट सहते हुए मर जाते है । इनके प्रेम में भी धैर्य का वही स्थान है, परन्तु निष्ठा की दृष्टि से इनके प्रेम की सघनता एवं तीव्रता हिन्दी प्रेमाख्यानों के अधिकांश नायकों से कही अधिक है । वास्तव मे पुरुष के लिए इस प्रकार के प्रेमादर्श की कल्पना हिन्दी प्रेमाख्यानकार कर ही नही पाए । उस काव्य में प्रेम के दोनों रूपों को चित्रित करने का आग्रह एव पति के लिए पत्नी के ही सती होने की परम्परा ने नायकों को प्रेम-मार्ग में नायिकाओं से नीचे ही रखा जबकि पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य मे प्रेम-मार्ग मे दोनों ही एक दूसरे से आगे है ।

हिन्दी प्रेमाख्यानों मे उपनायिकाओं के प्रति नायकों के मन मे कुछ देर के लिए ही विरक्ति उत्पन्न होती है, अन्यथा ये उनसे भी उतना ही प्रेम करते है जितना कि नायिकाओं से । पंजाबी मे उपनायिकाओं का अभाव है ।

नायिकाओं का प्रेम

हिन्दी प्रेमाख्यान हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायिका का प्रेम नायक से अधिक तीव्र एवं प्रगाढ़ है । चाहे प्रेम का आरंभ विवाह के अनन्तर हुआ हो और चाहे विवाह प्रेम की परिणति स्वरूप हुआ हो; चाहे इसका आरभ नायक की ओर से हुआ हो चाहे नायिका की ओर से; ये सभी नायिकाएं मन, कर्म, वचन से प्रेमी में अनुरक्त है । पति-प्रेम मे इनका आदर्श तुलसी की सीता से भिन्न नही है । यह निष्ठा एवं सतीत्व मारवणी, पद्मावती, मधुमालती, छिताई, मैना, रुक्मिणी, चित्रावली आदि सभी नायिकाओं के प्रेम का मूल आदर्श है । वास्तव मे इन्हीं की निष्ठा के कारण इन प्रेमाख्यानों में प्रेम का अलौकिक रूप स्पष्ट हो पाता है । नायको के प्रेम में वासना की जो झलक मिलती है उसका उदात्तीकरण एवं संयमन यह निष्ठा ही करती है । अधिकतर विवाह से पूर्व सुरत-सुख मे इनकी रुचि नही होती । अपने पति को पथभ्रष्ट होने से मृगावती, मधुमालती, चित्रावली, देवयानी सभी बचाती हैं, परन्तु कुछ रचनाओं में सुरतसंभोग आदि के विषय मे इस प्रकार का दृष्टिकोण नही अपनाया गया । वास्तव में ये रचनाएं नारी के लिए 'एक प्रेमी' के सिद्धान्त को स्वीकार करती है । नन्ददास ने 'रूपमंजरी' मे इस बात को स्पष्ट किया है ।[1] प्रेमी का स्वच्छन्द वरण एवं गांधर्व विवाह के अनन्तर सुखभोग का औचित्य सत्कार्य न होते हुए भी भारतीय परम्परा में निन्दनीय नही माना गया, भिन्न-भिन्न पुरुषों से प्रेम सम्बन्ध का निषेध वहां अवश्य है । इस दृष्टि से मारवणी, पद्मावती, मैना, रंभा जैसी कुलवती नारियां ही नही, कामकंदला जैसी वेश्या भी पीछे नहीं है । कामकदला माधव के प्रेम मे दिन-दिन क्षीण

---

१. प्रेम एक इक चित्त सौं एकही संग समाय।
गंधी कौ सौधौ नही, जन जन हाथ बिकाय ॥

—नंददास ग्रंथावली, पृ० १३३

होती जा रही है। उसका स्वरूप अमाग्रसित चन्द्र के समान हो गया। ऐसी अवस्था में विक्रम को अपने द्वार पर देखकर वह चकित रह गई। उसने स्पष्ट कह दिया कि माधव के अतिरिक्त सब को मैं पिता तुल्य समझती हूँ।[1] राजा ने माधव की निन्दा कर अपना परिचय दिया, परन्तु कामकंदला अपने विचारों पर दृढ़ रही। उसने कहा—

संसारि सरजी न थी अे काया कहि दूजि।
कइ माधव रस माणसिइ कइ प्रलयानल पूजि॥[2]

माधव के अभाव मे मैं प्रलयानल को ही स्वीकार करूंगी। और जब राजा ने माधव की मृत्यु का झूठा समाचार दिया तो उसके प्राण निकल गये—

प्राण गयु तव नीसरी, दशम दूआर विछोडि।[3]

हिन्दी प्रेमाख्यानों में अधिकांश नायिकाओं ने इसी प्रकार, प्रेम-मार्ग में निरंतर वियोग के आघातों को सहते हुए भी, इस निष्ठा का वीरतापूर्वक निर्वाह किया है। अनेक बार दूतियों ने आकर इन नायिकाओं को मार्ग-भ्रष्ट करने के लिए विविध प्रलोभन दिए है परन्तु इन्होने सदैव दो टूक उत्तर देकर उनका निरादर किया है। 'छिताई चरित', 'पदमावत', 'मैनासत', 'मैना सतवंती' आदि सभी रचनाओं मे कुटनी (दूती) की दुर्दशा कर अपमानित किया गया है।

'सदयवत्स सावलिगा' में नायिका का विवाह अन्यत्र कर दिया जाता है परन्तु वह उस व्यक्ति से पृथक् ही रहती है और अन्ततः अपने प्रेमी से मिल जाती है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायिका के स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन कुछ रचनाओं में अपवाद रूप में ही हुआ है अन्यथा, नायिका के शील की रक्षा करने में कवियों ने सर्वत्र विशेष सावधानी प्रदर्शित की है।

नायक की भ्रमर-वृत्ति इन्हे कष्ट पहुंचाती है परन्तु उसे ये प्रायः स्वीकार करती है और उसी की आज्ञा मानकर जीवन-निर्वाह करती है। नायक की मृत्यु के उपरान्त जीने का तो प्रश्न ही नही उठता। 'सारस पक्षी अपनी जोड़ी से अलग होकर नहीं जीता तो भला ये कैसे जी सकती है।'[4] जीवन भर प्रियतम के प्रेम में जलने वाले मरने पर भी प्रसन्नतापूर्वक साथ हो लेते है। इस संसार का क्या भरोसा वह तो

---

१. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० ३००

२. वही, पृ० ३०३

३. वही, पृ० ३०४

४. सारस पंखि न जियै निनारे। हौं तुम्ह बिनु का जियौं पियारे॥

—पदमावत, पृ० ७०६

मिट जाता है परन्तु प्रियतम एवं प्रेमिका का साथ तो दोनों लोकों का है ।[1] जवाहर कहती है कि 'योगी बनने वाले प्रियतम को क्या दिया जा सकता है ? प्रिय का 'प्राण' ही तो मेरे पास है, सो मैं दे रही हूं ।[2] यह कहकर उसने प्राण त्याग दिए । पति की मृत्यु के उपरान्त कोई नायिका जीवित नही रहती ।

पंजाबी प्रेमाख्यान—प्रेम-मार्ग में नायिकाओं की ऐसी ही निष्ठा एवं सघनता पंजाबी प्रेमाख्यानों मे भी लक्षित होती है । अपने नायकों के अतिरिक्त नायिका मन, कर्म, वचन से किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं चाहती । उसका विश्वास है कि ऐसा प्रेमी उसे ईश्वर ने प्रदान किया है[3] और वह उसी की है । परिवार एवं समाज बलपूर्वक उसे किसी दूसरे के हवाले कर देते हैं परन्तु वह उसको स्वीकार नही करती । अपने प्रेमी को अपने पास रखने के लिए वह न्याय की दुहाई देती है; मां बाप से झगड़ा करती है, मुल्ला और काजी के सम्मुख अपने प्रेम को स्वीकार करती है और स्पष्ट कहती है कि किसी दूसरे व्यक्ति के साथ वह नही रहेगी ।[4] उसका चर्म ही खेड़ों को दिया जा सकता है ।[5] वह सब कुछ मानने को तैयार है परन्तु प्रेम के विषय में, या प्रेमी के सम्बन्ध मे उसे कुछ सुनने की इच्छा नही ।[6] अपने 'एक मात्र' दिल को वह अपने प्रेमी के लिए अर्पण कर मनसा, वाचा, कर्मणा निष्ठा का पालन करती है ।[7]

---

१. जियत कंत तुम्ह हम कँठ लाई । मुए कंठ नहिं छाँडहिं साँई ॥

× × ×

एहि जग काह जो आथि निआथी । हम तुम्ह नाहँ दुहूं जग साथी ॥

—पदमावत, पृ० ७११

२. तुम मोहिं लाग भयौ पिव जोगी । मैं का देउँ अहौ पिव जोगी ॥
जो मो पास प्रान पिव तोरा । सो मै देउँ और का मोरा ॥

—हंसजवाहर, पृ० २६१

३. (क) रांझा रोज मीसाक दा यार मेरा, अज कल्ह न नेहु लगाइआ ई ।
(ख) रांझा मंग लिआ दरगाह थी जी, काजी रांझे दा राह सो राह मेरा ।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० २१, ३२

४. घर खेड़िआंदे नही वस्सणां में, साडी इन्हां दे नाल खड खस्स होई ।

—हीर वारिस, पृ० ७१

५. असां जान रंझोटे दे पेश कीती,
साड़ा खेडिआं नूं देह चम्म माए ।

—हीर अहमद, पृ० ११८

६. कही माउ ते बाप दी असां मन्नी, गल्ल पल्लड़ा ते मुंह घाह मीओं ।
इक्क चाक दी गल्ल न करो मूले, उसदा हीर दे नाल निबाह मीआं ॥

—हीर वारिस, पृ० ३१

७ इक्को दिल आहा सोई लिआ रांझे, भरस खेड़िआं दे सिर पाउनीआं ।
इकरार मुहों, तसदीक दिल थी मुकबल दीन अमान धराउनीआं ।

—हीर रांझा (मुकबल), पृ० २२

दौलत एवं सौभाग्य के पीछे तो भूखे लोग भागते हैं ।[1] उसे दौलत की इच्छा नहीं,लखपति खेड़ा उसे एक कौड़ी से भी तुच्छ प्रतीत होता है ।[2] प्रेमी के कष्टों को वह यथाशक्ति कम करने मे पीछे नहीं। महीवाल की निष्ठा ने सोहणीं को आप्यायित कर दिया और वह स्वय उसे मिलने के लिए नदी तैर कर जाने का वचन देती है। इश्क में सोच विचार का कोई स्थान नही। सोचने से 'प्यार' का नाम नीचा होता है सच्चा प्रेमी इश्क को कभी बदनाम नही करता ।[3] सोहणी इसीलिए कच्चे घड़े को लेकर दुर्दान्त नदी मे कूद पड़ती है। प्रेम की व्याकुलता मे सस्सी पैदल ही पुन्नूं की खोज में चल पड़ती है, पति के चरण चिह्नों को प्राप्त कर ही उसे अपार सन्तोष होता है। इस मार्ग में वे मां बाप, भाई-बहन सब को छोड़ देती हैं परन्तु साहिबां इसका अपवाद है, उसके मन में भाइयों की मृत्यु की आशंका ने स्थान बना लिया। फलतः मिरज़ा के तरकस एवं कमान को उसने अलग कर वृक्ष की चोटी पर रख दिया। मिरजा समय पर शस्त्रों के अभाव में मर गया। यह सत्य है परन्तु साहिबां की निष्ठा विभाजत नही हुई, अपने कृत्य के प्रति उसे पश्चात्ताप है और उसने भी प्रेमी के वियोग में प्राण त्याग दिए। प्रेम के मार्ग में किसी दूत या दूती की उसे आवश्यकता नही। सस्सी का विचार है कि प्रेमोदय के बाद सदेशवाहक का कोई काम नहीं—

अम्मां मेरीए नेहुं जद लगदा ए,
रहिन्दे नहिंओ कम्म सुनेहिआंदें।
घर बैठ उड़ीकना वांढिआंनू
इह नहीं चाले शौकेहीआंदें।[4]

नायिकाओं के प्रेम की तुलना---हिन्दी एवं पजाबी के प्रेमाख्यानों में नायिकाओं का प्रेम अपनी निष्ठा एवं उत्कटता में समान है। हिन्दी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं का प्रेम अन्त मे प्राय. सुखान्त है, सफल है। वे अपने प्रेमियों को अधिकारपूर्वक गले लगाती है। जबकि पजाबी प्रेमाख्यानों में नायिका संयोग-सुख से वंचित ही रहती है। उसका प्रेम दुख में समाप्त होता है। प्रेम-मार्ग मे मर मिटने की साध दोनों में ही है और दोनों समय आने पर उसको पूरा भी करती है। पंजावी प्रेमाख्यानों में नायिका सामाजिक दृष्टि से अपमान सहती है। विवाह के द्वारा भी उसे प्रेमी को छोड़ने के लिए बाध्य

१. मुकबल यार दा शोक है बस्स मैनूं मंगन नआमता दौलतां भुख वाले।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० २२

२. हिकसे कसीरे तों खेड़ा खोटा रांझा लक्खीं तुलीवे।
—हीर दमोदर, पृ० ६१

३. हटिआं लाज इशक नूं लगदी। करीए जान कुताही।
पर उह इशक न मुड़ने देदा जो सिर बाज सिपाही।
हाशम इशक अकल दा दुशमन कहिआ कदीम गवाही।
—हाशम रचनावली, पृ० ७४-७५

४, सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० १०१

किया जाता है परन्तु प्रेम में किसी भी प्राकृतिक, अप्राकृतिक या सामाजिक बंधन को तोड़ने से वह घबराती नही और न किसी सदेश वाहक की आवश्यकता समझती है। प्रियतम के वियोग में घर में बैठे-बैठे छटपटाने की अपेक्षा वह घर से निकल उससे मिलने के यत्न में ही विश्वास करती है।

उपनायिकाओं का प्रेम

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायिकाओं के अतिरिक्त उपनायिकाओं की भी योजना है। वे प्रेम के क्षेत्र में नायिका से किसी रूप मे भी कम नही। उनके प्रेम में भी वही निष्ठा एवं घनिष्ठता है जो नायिकाओ के प्रेम मे है। पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का वे ध्यान नही करती। उनमें अपने सौंदर्य का गर्व और अभिमान पति के प्रेम का ही फल है परन्तु पति के अन्याभिमुख होते ही इनके जीवन में अपार व्यथाओं का समावेश हो जाता है। सयोग के समय के दृश्य एवं वस्तुएं इनके हृदय को सालती हैं। अपनी व्यथा को वह बारहमासे के रूप में वर्णन करती हैं और प्रियतम के पास पक्षी, पवन या किसी व्यक्ति के हाथ संदेश भेजती है, संदेशवाहकों को भांति-भांति के प्रलोभन देती है।[1] प्रियतम के दर्शन मात्र की उसे पिपासा है।[2] प्रियतम के दर्शन मात्र से वह पुनः लहलहाने की आशा रखती है।[3] सोहागिनों का पति-सौभाग्य उसकी ईर्ष्या का विषय बनता है।[4] परन्तु पति के सुख में ही अपने सुख को समाहित करने वाली यह नारी नायिका की उत्कृष्टता स्वीकार कर प्रसन्नतापूर्वक रहना भी जानती है, इसके अतिरिक्त और उपाय भी क्या है ? पति की मृत्यु पर ये भी नायिकाओं के साथ ही सती होती है। अतः प्रेम की उष्णता अथवा निष्ठा में ये नायिकाओं के ही समान हैं।

प्रसिद्ध पंजाबी प्रेमाख्यानों में उपनायिकाओं की भूमिका नहीं है।

---

१. देउं तुरी चढु सुरिजन उड़इ पवनु पंखि लाई !
दस गुन लाभ देव मइं तो कहं लोरु बेसाहइ जाई ॥

—चांदायन, पृ० ३५७

२. देखन चाहइ पीउ कहं लोहु रोवइ नित्त।

—मृगावती, पृ० २८६

३. कॅवल जो बिगसा मानसर, छारहिं मिलै सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जो पिय सीचहुँ आई ॥

—पदमावत, पृ० ३५३

४. कातिक दीपमालिका होई। घर घर दीपु धरहि सब कोई ॥
बर कामिनी षेलिहि मिलि सारी। पिया जुवा परस रस प्यारी ॥
परम पुनीत मास जग जाना। सब नर नारी करैं असनाना ॥
कामिनी कंत भरहिं अँकवारी । हौ अलि बिरह संग लै डारी ॥

प्रतिनायकों का प्रेम

प्रतिनायक एवं नायिका के प्रेम के दर्शन भी कुछ रचनाओं में हो जाते हैं। 'छिताई चरित' का अलाउद्दीन, 'मृगावती' का दानव, 'पद्मावती' का अलाउद्दीन एवं देवपाल, 'मैनासत' का सतन, 'इन्द्रावती' का कामसेन आदि सभी नायिकाओं से प्रेम प्रदर्शित करते है। इनमें से 'छिताई चरित' आदि की अपेक्षा केवल 'पदमावत' में ही अलाउद्दीन के प्रेम को विकसित करने का यत्न हुआ है। अन्यथा सर्वत्र छोटे मोटे युद्ध के अनन्तर प्रतिनायक हार कर घटना-स्थल से अदृश्य हो जाता है। आचार्य शुक्ल ने अलाउद्दीन के प्रेम को रूप-लोभ कहा है। इसके विपक्ष में (१) पद्मावती का पर-विवाहिता होना तथा (२) अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना[१]—ये दो अनुचित कार्य बताए हैं जिनसे कारण उसके प्रेम को 'प्रेम' नहीं कहा जा सकता। डॉ० माताप्रसाद ने स्वसम्पादित 'पद्मावत' में इन दोनों अनौचित्यों पर विचार करते हुए[२] यह स्पष्ट किया है कि भारत में इन दोनों भावनाओं को अनुचित समझते हुए भी सामान्यतः सूफी-साधना से ये विरुद्ध नहीं पड़तीं। उनके विचार में सूफी-साधना का चरमोद्देश्य विरहानुभूति है। उसके अभाव में अलाउद्दीन को प्रेमी का स्थान प्रदान नही किया जा सकता। 'इन सूफी कवियों की दृष्टि में जब तक कोई भी प्रेम का दम भरने वाला दुख की काँवरी नहीं ढोता है और दोनों जगत् के सुख 'उस दुख' पर न्योछावर करने को प्रस्तुत नही होता, वह प्रेमी नहीं है। रूप-लोभी है, दंभी है, छली है। अलाउद्दीन यही है और इसीलिए रत्नसेन से भिन्न।'[३]

डॉ० माताप्रसाद का यह तर्क साम्प्रदायिक समाधान है परन्तु सम्पूर्ण प्रेमाख्यान-काव्य धारा की पृष्ठ भूमि मे आचार्य शुक्ल के दोनों तर्क ही पर्याप्त सबल हैं। चरित्र-चित्रण के प्रसंग मे इन पर विचार किया जा चुका है। प्रेम का मार्ग अहिसा का मार्ग है। वीरता-प्रदर्शन, छल-कपट अथवा वैमनस्य का मार्ग नही। इन प्रतिनायको का खलत्व अहिंसा-मार्ग के न अपनाने के कारण है। इनके प्रेम मे केवल ग्रहण का आग्रह है त्याग का नहीं।

पंजाबी में प्रतिनायकों के स्थान पर विवाहित पति ही आते हैं परन्तु उनके प्रेम को प्रकट करने में कवियों ने कोई रुचि नहीं ली।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में अभिव्यक्त प्रेम और आध्यात्मिकता

मुल्ला दाऊद, जायसी प्रभृति कवियों की रचनाओं में सूफी-साधना का स्पष्टीकरण माना जाता है परन्तु यह मान्यता एक आग्रह मात्र है। इससे पूर्व नायक और नायिका के चरित्रानुशीलन के प्रसंगों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इन रचनाओं

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० ३३

२. पदमावत पृ० ४६-४७

३. वही, पृ० ४६

में न तो नायक साधक के प्रतीक है और न ही नायिकाएँ ब्रह्म या ईश्वर की प्रतीक स्वरूपा मानी जा सकती है। लम्बी यात्राओं और विविध बाधाओं की प्रतीकात्मकता संबन्धी विवाद का भी उल्लेख किया जा चुका है।[1] अभिव्यक्ति-पक्ष पर विचार करते समय हम पुन. देखेंगे कि इन कवियों ने अनायासभावेन भारतीय साधना पद्धति एवं काव्य अथवा शास्त्रीय कामशास्त्रीय शब्दावली का अनेकश: अनेकधा प्रयोग किया है। केवल प्रारम्भिक स्तुति-खंडों को देखकर अथवा कुछ गोपनीय या रहस्य का वर्णन करने की घोषणाएं पढ़कर अथवा संदर्भ विशेष की समासोक्ति परक व्याख्याएं कर पाने मात्र से इन रचनाओं में किसी साधना-विशेष को अनुस्यूत मान लेना दुराग्रह मात्र है। ये लोग परम्परा-सिद्ध कवि थे इसमें तनिक भी सन्देह का अवकाश नही है। इन रचनाओं मे 'प्रेम' के महत्त्व को बढ़ा चढ़ा कर व्यक्त किया गया है और उसे सभी जप-तप-त्याग से सर्वोपरि सिद्ध किया गया है। इनमें किसी साधनावाद की अपेक्षा नही है।

इनमें अभिव्यक्त प्रेम को सूफी-साधना की अभिव्यक्ति मानना सर्वथा अनुचित है। सूफी-साधना में प्रेम सुखान्त नही माना जाता जबकि इन रचनाओं का प्रेम सर्वत्र सुखान्त है। यह प्रेम सम है और उभयत्र निर्भ्रान्त रूप से भोगात्मक एवं लौकिक है। इसकी मांसलता किसी साधना से मेल नहीं खाती। 'सूफी प्रेमसाधना अशरीरी है'[2] परन्तु यहां ऐन्द्रीयता के सुखद संस्पर्श अनेक स्थानों पर उपलब्ध होते है। इस संदर्भ में मुहम्मद अफज़ल 'अफज़ल' रचित 'बिकट कहानी' (रचनाकाल- १६२५ ई०) का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। 'अफजल' की यह कृति एक बारहमासा है। इसमें फारसी शब्दावली की भरमार है, बीच-बीच में फारसी की पक्तियां भी आ गई है। इसे भी 'इश्के हकीकी' की रचना स्वीकार किया जाता रहा है परन्तु डॉ० मसऊद हुसेन खां ने इस पर विस्तार से विचार करते हुए लिखा है कि अब्दुल्ला अंसारी (सन् १८२३ई० के लगभग एक अन्य बारहमासा लेखक उर्दू कवि एवं अफ़जल के प्रशंसक) के इस ताअबीरोतशरीह के बावजूद कि 'बिकट' राहे मारफत का एक अंदाज है अफजल की कहानी सर ता सर राम कहानी है और इसमें हजरत जामी के इक्तबासात से कतआ नजर कही भी हकीकत की सतह कायम नहीं हो पाती। यह एक बिरहनी की कहानी उसी की जबानी है जिसमें मज़ाज की तड़प और जिस्म की मायूस पुकार मुकम्मल तौर पर नुमायां है।'[3] डॉ० खां के इस तर्क में बल है कि मांसलता की आकांक्षा रहते प्रेम को 'इश्के हकीकी' की पदवी नही दी जा सकती।

कई हिन्दी रचनाओं के अन्त में तो नायिकाएं सती होती है। यदि 'फना' के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाए तो नायक की मृत्यु पहले होनी चाहिए थी या फिर नायकों को ईश्वर या ब्रह्म मानना चाहिए था। 'फना' के अभाव में सूफी-साधना का

१. देखें प्रस्तुत प्रबन्ध, पृ० १५३,१६८, २२२-२२४,२३५-२३८
२. सूफी काव्य विमर्श, डॉ श्याम मनोहर पांडेय, पृ० १६४
३. कदीम उर्दू, (जिल्द अव्वल) पृ० ३६०

क्या महत्त्व ! ऐसे स्थानों में कथा-आग्रह की दुहाई देकर साधना-मार्ग से पृथक होने की बात कही जाती है। इस प्रकार यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि कहा-कहां साधना-मार्ग का प्रवेश है और कहा-कहा नही। यह सब कुछ साधना-समर्थकों की यदृच्छा पर ही निर्भर करता है !

हिन्दी की रचनाओ मे अधिकांशतः भारतीय विचार-पद्धति का अनुसरण है परन्तु उसे 'सूफी-कवियों' की ग्रहणशीलता मान लिया जाता है तथा भारतीय प्रभाव स्वीकार कर सूफी मान्यताओं के अनुसार उसका विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है परन्तु अभी तक इन रचनाओ में प्रस्तुत शुद्ध विदेशी या इस्लामी तत्त्वों को स्पष्ट करने से बचने का यत्न किया जा रहा है। प्रारम्भिक स्तुतियों के अतिरिक्त इन रचनाओं मे इस्लामी संस्कृति, इस्लामी साधना-पद्धति, इस्लामी धर्म-ग्रन्थों, इस्लामी कथा-सकेतों की ओर कदाचित् ही संकेत मिलेगे। किसी साधना-पद्धति के विश्लेषण के लिए उसकी शब्दावली को तो ग्रहण करना ही पड़ता है। आज भी 'गीता प्रेस, गोरख-पुर' से हिन्दू धर्म के प्रचारार्थ प्रकाशित की जाने वाली अगरेजी सामग्री में परिनिष्ठित शब्दावली का प्रयोग देखा जा सकता है। विशिष्ट शब्दावली के अभाव में साधना की व्याख्या न तो उपदेष्टा को ही सन्तुष्ट कर सकती है और न शिष्य या श्रोता ही उससे प्रभावित हो सकता है। अतः ये रचनाएं तो इसी अभाव के कारण सूफी-दायरे से बाहर हो जाती हैं। गुरु नानक पर सूफी प्रभाव को नकारते समय मैक लॉड ने एक यह तर्क भी प्रस्तुत किया है।[1]

शुद्ध रूप से प्रेमपरक आख्यान-साहित्य लिखने वाले इन कवियों ने स्त्री एवं पुरुष दोनों ही के लिए प्रेम की अनिवार्यता पर बल दिया है। गार्हस्थ्य एवं दाम्पत्य जीवन का प्रचार किया। यह प्रेम लैला मजनूं या शीरीं फरहाद के गार्हस्थ्य-विरोधी प्रेम से सर्वथा भिन्न है। उच्छृंखल प्रेम की कठिनाइयां स्पष्ट कर उसे दाम्पत्य में परिणत करने का समर्थन ही इन कृतियों मे किया गया है।

यह सही है कि सूफी-दार्शनिकों के अनुसार मज़ाज हकीकत का पुल है, यह भी सही है कि जामी ने सांसारिक प्रेम को छक कर पीने का आग्रह किया है ताकि होंठ और अधिक शुद्ध प्रेम सुरा का पान कर सकें परन्तु मज़ाज से हकीकत तक की यात्रा तो दिखानी पड़ेगी। पुल पर ही रहने वालों को तो पुल पार करने वालों में नही गिना

---

1. Secondly, there is a conspicuous lack of Sufi terminology in the works of Guru Nanak. Even when a Sufi term makes an appearance it is rarely used in a sense implying the precise meaning which it would possess in Sufi usage, and in some cases such terms are introduced with the patent intention of providing a reinterpretation of their meanings.

—Gurn Nanak And The Sikh Religion P. 159

जा सकता ! सांसारिक सुरा का पान करने वालों को ही आध्यात्मिक सुरा का शैदा कैसे माना जा सकता है ?

सत्य तो यह है कि परस्पर वैर, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष से आक्रान्त पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन मे प्रेम की प्रतिष्ठा किये बिना आगे बढ़ने की गुंजाइश ही उस समय कहां थी ? इसलिए ये लोग इस जीवन में सुख शान्ति के लिए प्रयत्नशील रहे। इन लोगों ने अपने काव्यानुशीलन के अधिकारियों के लिए भी प्रेमी होने का अनुबन्ध लगा दिया था—

विद्या ज्ञान बहुत जेहि होई। अर्थ छिपाने बूझै सोई॥
नूर मुहम्मद यह कथा' कहै प्रेम की बात।
जेहि मन होइ प्रेम रस, पढ़ै सोई दिन रात॥[1]

रात-दिन घृणा एवं वैमनस्य की ज्वाला में जलने वाले इन रचनाओं के अधिकारी नही माने गए। इन रचनाओं में उदार दृष्टिकोण अपनाकर स्वभाव की कोमलता का ही आग्रह है, किसी मतवाद का प्रचार-प्रसार इनका ध्येय नहीं। प्रेम के ही कारण मनुष्य मे देवता जाग्रत होता है अन्यथा वह जड़ पदार्थ मात्र है—

मानुस प्रेम भएउ बैकुंठी। नाहि त काहु छार एक मूंठी॥[2]

ससार मे जप तप संयम सभी गौण है, प्रेम ही सर्वोपरि है—

ज्ञान ध्यान मद्धिम सबै, जप तप संजम नेम।
मान सो उत्तम जगत मन, जो प्रतिपारै प्रेम॥[3]

प्रश्न यह है कि क्या आध्यात्मिकता के अभाव में इश्क या प्रेम का महत्त्व कुछ न्यून हो जाता है ? सभवत. इन कवियों के मन में इस प्रकार का कोई आग्रह नहीं था। इसका उत्तर पंजाबी के कवियों ने तो अति स्पष्ट शब्दों में दिया है—

रुख आदम फल इशक हकीकी, एही फल मजाजी।[4]

इश्क मजाजी भी अपनी निष्ठा के करण हकीकी के समान ही वन्दनीय है। इसीलिए अहमदयार ने 'सस्सीपन्नू' में लिखा है—

इशक सच्चा झुठा भावें जेहा होवे।
उत्थों शौक हजूर दा लभदाई।[5]

अपनी इसी मान्यता को अन्यत्र व्यक्त करते हुए वे कहते है—

बरकत इशक दी अहमदयारा सदा हयाती पाई।[6]

---

१. इन्द्रावती, पृ० १७६
२. पदमावत, पृ० १५६
३. चित्रावली, पृ० २३६
४. यूसफ जुलेखा, पृ० ४२
५. सस्सी पुन्नूं, पृ० १२५
६. राजबीबी नामदार, पृ० ४

'नलमदन' आदि सभी में नायक के विरह की तीव्रता देखी जा सकती है। इसी के साथ-साथ 'चन्दायन' 'मधुमालती', ' पदमावत', 'ज्ञानदीप' आदि रचनाओं में नायिकाओं की विरह-पीड़ा भी कम मर्मस्पर्शी नहीं। सर्वत्र नायक-नायिका समानरूपेण वियोग-व्यथा का अनुभव करते है, अतः इस आधार पर इन रचनाओं में भेदक रेखा खीचना कठिन और अव्यावहारिक है।

मुसलमान कवियों का वैशिष्ट्य प्रेम के स्वरूप वर्णन की अपेक्षा विरह को विशाल परिप्रेक्ष्य प्रदान करने में है। पग-पग पर विरह की व्याकुलता एवं अनिवार्यता को अभिव्यक्त करना ये नहीं भूलते। यही गुण इन्हें अन्य भारतीय प्रेमाख्यानों से किंचित् पृथक् करता है। ये कवि प्रेम को एक महत्त्वपूर्ण साधना मानकर चलते है और साधना-मार्ग के अनेक कष्टों का सकेत करते है। इनके इस दृष्टिकोण को डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने स्वसंपादित 'चांदायन', 'मृगावती, 'मधुमालती' एव 'पदमावत' की भूमिकाओं में स्पष्ट किया है। इस विषय में कवि मंझन ने विशेष विस्तार से प्रकाश डाला है। 'दुख का उदय सृष्टि के आरम्भ मे ही ब्रह्मा के साथ हो गया और सच्चा मनुष्य दुख की कांवरी ढोता रहता है।[1] जिस स्थान पर दुख होता है, प्रीति भी उसी स्थान पर निवास करती है। जिस के शरीर में दुख का निवास नही वह प्रेम की बात कैसे जान सकता है ?[2] आरम्भ में प्रेमी एवं प्रेमिका एक साथ ही नही अपितु एक होते है और बाद मे द्विधात्मक हो जाते है जैसे एक ही जल से दो मिट्टियां सानी गई हों अथवा एक ही जल दो प्रणालियों में बहने लगा हो।[3] प्रेम एवं दुख के अविनाभाव का यही कारण है। इसीलिए प्रेमी को पग-पग पर मरण का वरण करना पड़ता है और प्रे म की साधना मरण-मार्ग की यात्रा बन जाती है।[4] संसार में भी प्रेम का मार्ग कंटकाकीर्ण ही है। इन रचनाओं मे इन बाधाओं का

---

१. दुख मानुस करि आदि गरासा। ब्रह्म कंवल महं दुख कर बासा ॥

× × ×

अब लै बहौ दुक्ख कै कांवरि। दुइ जग देउं सुक्ख नेउछावरि ॥

—मधुमालती, पृ० ६६

२. जेहि ठां दुख होइ जग भीतर, प्रीति होइ बस ताहि।
प्रीति बात का जानै बपुरा, जेहि सरीर दुख नाहिं ॥

—वही पृ० ६७

३. औ मै तुइं दइएक शरीरा। दुइ माटी सानी एक नीरा।
एक बारी दुइ बहै पनारी। एक दिया दुइ घर उजियारी ॥

× × ×

एकै जोति रूप पुनि एकै, एक परान एक देह ॥

—वही, पृ० ६८

४. मधुमालती (सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त), भूमिका, पृ० २६

सविस्तार वर्णन है। चंदा लोरक से पूछती है कि वह दुख बताओ जो तुमने मेरे निमित्त सहन किया। बिना दुख सहे यह अनुराग किस प्रकार रहा। यदि कोई सिर पर खड्ग का आघात सहन नही करता तो उसे एक रत्ती भर भी रंग नहीं हो सकता[1] लोरक ने विस्तार से अपने कष्टों का वर्णन किया।[2] 'मृगावती' मे भी कुतबन ने बिना दुख सहन किए प्रेम के ऊंचे गढ़ पर चढ़ने की कामना करने वाले को बावला कहा है। वास्तव में प्रेम का खेल सिर देकर ही खेला जाता है।[3] यह तो दुर्लभ रस है जो किसी किसी को ही मिल पाता है।[4] सच्ची बात तो यह है कि प्रेम का मार्ग मरण-मार्ग से भी भयानक है। प्रेमी न तो मर ही पाता है न जीवित ही रहता है।[5]

इसमे संदेह नहीं कि हिन्दू कवियों ने भी विरह का वर्णन किया है और प्रेम का महत्त्व व्यक्त किया है। सिर की बाजी लगाने एव डूबने पर ही तैरने की बात हिन्दू कवियों को भी समान रूप से स्वीकार है—

सीस एक ओर कै डारै। तब इह ओर आइ पग धारै ॥
पेम खेल मह माथे बाजी। सो खेलै जो इह पर राजी ॥

× × ×

पेम समुद अपार अति नाहिं ओर नहिं छोर।
जो बूड़े सोई तिरै यहै पेम दधि ओर ॥[6]

उन्होंने प्रेम को कभी भी सरल काम समझ कर उपेक्षा योग्य नही माना। इस मार्ग की कठिनाइयों की चर्चा प्राय: की जाती है। परन्तु नायक, नायिका एवं सृष्टि के अणु अणु मे विरह की व्यापकता दिखाने मे मुसलमान कवि अद्वितीय है। विचारधारा में कोई विशेष भेद न रहते हुए भी उसे इतना विस्तृत पटल प्रदान करना इन्ही कवियों का दम है।

भारतीय संस्कृति के आख्याताओं ने प्रेम को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए भी तरुण लावण्य के आकर्षण के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता पर बल दिया है। प्रेम-प्राप्ति के लिए तप-त्याग की महिमा की अनिवार्यता तो कालिदास ने 'कुमारसंभव

---

१. चांदायन, पृ० २०१

२. वही, पृ० २०२

३. पेम उतंग ऊंच गढ आहा। बाउर सोइ जो बिनु दुख चाहा ॥
पेम खेल जो चाहइ खेला। सिर सेउ खेलि जीउ पर हेला ॥

—मृगावती, पृ० १६१

४. बिरुला यह रस पावइ कोई। जो यह पाव अमर होई सोई ॥

—वही, पृ० १८१

५. कठिन मरन तें पेम बेवस्था। ना जिअं जिवन न दसइं अवस्था ॥

—पदमावत, पृ० ११५

६. नलदमन, पृ० ६४

में ही स्पष्ट कर दी थी। काम-दहन के प्रसंग मे रूप की मादकता का निराकरण ही है। भारतीय विचारधारा में प्रेम को स्थूल रूपासक्ति से पृथक् रखने का यत्न है। सामने जलते कामदेव को देखकर पार्वती कामदेव की निन्दा करती है। वास्तविक सौभाग्य प्रियतम का सौभाग्य ही है।[1] शरीर का सौदर्य मात्र स्वरूप ही नही, तपस्या भी है, इसीलिए पार्वती तपस्या के मार्ग पर चलती है।[2]

कालिदास के 'कुमारसंभव' मे भारतीय विचारधारा के इसी महान् सूत्र को प्रतिष्ठित किया गया है और 'शाकुन्तलम्' मे स्वच्छन्द प्रेम के मार्ग में आने वाली सभावनाओं पर प्रकाश डालते हुए उधर सोच-समझकर बढ़ने की आवश्यकता पर वल दिया है।[3] हिन्दी प्रेमाख्यानों की अधिकांश रचनाओं में रूपाकर्षण के साथ अनिवार्य तपस्या अथवा त्याग एव कष्ट-सहन को सयुक्त कर कालिदास के मार्ग पर चलने का ही यत्न है तथा प्रेम के मार्ग में रुपाकर्षण पर चलने वालों के लिए चेतावनी है। पुरुषों एवं नारियों के लिए यह उपदेश लगभग सभी रचनाओं में है। इनमें त्याग के साथ ऐश्वर्य के अद्भुत समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया गया है। उपलब्ध प्रेमाख्यानों में ऐसी रचनाएं नगण्य ही है जिनमें बिना कष्ट सहन के ही प्रेमी एवं प्रेमास्पद आनंद भोग के अधिकारी हुए हो। जीवन के बलिदान के लिए तत्पर हुए बिना इस मार्ग पर चलने का इनमें प्रत्यक्ष विरोध है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों का उद्देश्य कुछ भी हो परन्तु इस दिशा में वे भी भिन्न नही है। हीर, सोहणी, सस्सी या साहिबां का मार्ग तो 'शकुन्तला' के मार्ग से भी अधिक कंटकावृत है। शकुन्तला ने तो पति के साथ प्रणय का सौभाग्य प्राप्त कर लिया परन्तु ये तो आजीवन उसके लिए तरसती रही। पंजाबी प्रेमाख्यानो मे यत्र कुत्र आने वाले ग्राम्य अश्लील प्रसंगो को यदि एक ओर अपसृत कर दिया जाए तो प्रेम के साथ त्याग एव तपस्या का सदेश उन रचनाओ मे किसी भी हिन्दी रचना से अधिक भास्वर है। यद्यपि ऐसे प्रसग हिन्दी प्रेमाख्यानों में अधिक विस्तृत है तथापि, ऐसी स्थिति में पंजाबी रचनाओं की इतनी उपेक्षा का कारण पहेली ही बना रहता है।

इसका समाधान हिन्दी एव पंजाबी के 'सहृदय समाज' में ही खोजना पड़ेगा। पंजाबी रचनाएं प्रायः जनसाधारण के लिए ही लिखी गई थी। पुनः वे

१. तथा समक्षं दहता मनोभवं, पिनाकिना भग्नमनोरथासती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥

—कुमारसंभव, ५।१

२. इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयम् तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

—वही, ५/२

३. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम॥

—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ५।२६

अध्ययन की नहीं, श्रवण की वस्तु बन गई। हिन्दी की भी अनेक रचनाएं श्रवण की वस्तु रही है परन्तु उनकी अश्लीलता क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहती है जबकि पंजाबी में इसके संकेत कभी भी आ सकते है और विस्तृत न होते हुए भी वे स्थायी प्रभाव छोड़ जाते है। प्रेम की पूर्णता, निष्ठा, घनता सभी दृष्टियों से पंजाबी प्रेमाख्यानों का स्वर अधिक तीव्र एवं स्पष्ट है परन्तु समाज के सशक्त विरोध के कारण उनको अपेक्षित महत्त्व नही मिला। समाज के अतिरिक्त इसका दूसरा कारण पंजाबी कवियों का समाज विरोधी स्वर भी है। पंजाबी कवि अपने स्वभाववश समाज की कटु आलोचना से पृथक् नही रह सके। हिन्दी में प्रेमाख्यान लिखने वाले अनेक मुसलमान कवियों ने भी हिन्दू विश्वासों, आचार-विचारों एवं रीतियों के प्रति जैसी आस्था दिखाई है, वैसी एक भी पंजाबी रचना मे खोज पाना कठिन है। इन्हीं संदेशों को समाज के अनुकूल रहकर, कम से कम,सामान्य आलोचक बनकर भी प्रकट किया जाता तो इन रचनाओं की उपयोगिता अधिक बढ जाती।

हिन्दी प्रेमख्यानों में प्रेम के विविध रूप है, अनेक भूमिकाओं में उसके महत्त्व एवं स्वरूप को प्रकट किया गया है। सुखान्त एवं दुखान्त, पुरुष-प्रधान एवं नारी-प्रधान, लौकिक एवं अलौकिक, सामाजिक-असामाजिक सभी रूपों का उसमें आकलन किया गया है परन्तु पंजाबी में उसका क्षेत्र सीमित है। पंजाबी प्रेमाख्यानों की यह कमी उसकी रचनाओं के आकार एवं संख्या की न्यूनता के कारण भी है और परम्परा विशेष से असंबद्ध होने के कारण भी।

दमोदर के पूर्व-पजाबी में प्रबंध-परम्परा के अभाव के कारण तथा अभिजात साहित्य के प्रति विरोधात्मक भाव के कारण इन रचनाओं में किसी भी परम्परा का अनुगमन नहीं किया गया। किसी परम्परा के अभाव में इस प्रकार की एकदेशीयता स्वाभाविक ही है।

: ६ :

भाव-सम्पदा

शब्दार्थमय काव्य-शरीर की आत्मा भावमय है। भाव का सम्यक् परिपाक रस कहलाता है। प्रेमाख्यानों का मुख्य विषय प्रेम है अतः रति स्थायीभाव का प्रसार इनमें अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त अन्य भावों की भी छुटपुट अभिव्यंजना इनमे उपलब्ध हो जाती है। परन्तु इनमे जितनी समृद्ध श्रृंगार रस की अभिव्यंजना हुई है उतनी अन्य रसो की नहीं।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में श्रृंगार-व्यंजना

आलोच्य प्रेमाख्यानों में श्रृंगार रस के संयोग एवं वियोग—उभय पक्षों की I अत्यन्त मनोरम व्यंजना उपलब्ध होती है। इस सरस अभिव्यक्ति का कारण कवियों द्वारा श्रृंगार रसाभिव्यंजक सामग्री की संयोजना ही है। अतः विषय के स्पष्ट विवेचन के लिए श्रृगार रसात्मक अभिव्यक्ति का विश्लेषण करने के साथ-साथ श्रृंगार रस की व्यंजना मे सहायक विभावादि सामग्री के स्वरूप पर भी प्रकाश डालना नितान्त समीचीन एवं अनिवार्य प्रतीत होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम अपने विवेचन को अधोलिखित उपशीर्षकों की परिधि में समाहित करेंगे— (क) आलम्बन विभाव, (ख) उद्दीपन विभाव, (ग) अनुभाव, (घ) संचारी भाव, (ङ) रस-भेद, संयोग एवं वियोग।

आलम्बन विभाव

नायिका—श्रृंगार के आलम्बन नायक एवं नायिका माने जाते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानों मे आयु के अनुसार मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा; धर्म के अनुसार स्वकीया, परकीया एवं सामान्या; तथा अवस्थाके अनुसार खंडिता, प्रोषित भर्तृका, आगतपतिका रूपगर्विता आदि अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन हुआ है। तथा कथित सूफी रचनाओं में भी इन्ही को आधार बनाया गया है।[1]

'माधवानल कामकंदला' कथाचक्र की कामकंदला सामान्या नायिका है परन्तु निष्ठ एवं प्रेम की दृष्टि से वह स्वकीयाओं से भी बढ़ जाती है। रूपमाधुरी मे अद्वितीय कामकदला का सौंदर्य अत्यन्त मनोहर है—

---

१. विस्तार के लिए देखें 'सूफी प्रेमाख्यानों में नायिका की परिकल्पना' (टंकित) —पृ० २००-२६७

कुंतल चिहुर चुवहिं ज्यों घाला । अंबुधार कैधो अलिमाला ।।
मध्यमाँग चंदनु घसि भरै । दूध धार विषधर मुख परै ।।
कहुँ कहुँ पुष्प कहुँ कहुँ मोती । जनु घन में तारागन जोती ।।[1]

कामकदला का चित्रण प्रायः प्रगल्भा के रूप में ही हुआ है। वह माधव से पुनः विलास की तिथि पूछती है, 'स्वामि वली सगम कदा ?[2] यौवन भर विलास का आवाहन करती है—

हूं पद्‌मिनी तूं भमरलु, तू तरुअर हू वेलि ।
माधव महा यौवन मांहि, हूं खेलूं तूं खेलि ।।[3]

विवाह से पूर्व ही प्रेम का उदय दिखलाने के कारण इन प्रेमाख्यानों में परकीया का वर्णन अधिक हुआ है और ये परकीयाए अनूढ़ा है। अनूढ़ा परकीया पद्‌मावती का यह चित्र संक्षिप्त होते हुए भी प्रभाव डालने मे सक्षम है—

गंध्रपसेनि तहाँ बड़ राजा । अछरिन्ह माँह इन्द्र विधि साजा ।।
सो पदुमावती ताकरि बारी । औ सब दीप मांहि उजिआरी ।।
चहूँ खड के वर जो ओ नाहीं । गरबन्ह राजा बौलै नाहीं ।।

उअत सूर जस देखिअ, चाँद छपै तेही धूप ।
अैसै सबै जांहि छपि, पदुमावति क रूप ।।[4]

इनमें 'चदायन' की चदा ऊढ़ा परकीया है। बाजिर उसके मुख की छवि देखकर मूच्छित हो गया। उसके रूप की प्रशसा राजा को सुना रहा है -

तहवां चांद लिरी मइं देखी । पाथर कीरि जइसि चित लेखी ।।
मन हुत कैसेहुँ मेंटि न जाई । दिनु-दिनु होई अधिक सेवाई ।।
सहदेव महर के धिय, चांदा चहूँ भुवन उजियारि ।।
मानिक जोति जानु परजरहिं, नागरि चतुरि अपारि ।।[5]

परकीया नायिका ही नही, प्रतिनायिका के सौदर्य मे भी ऐसे ही अनुपम सौदर्य के दर्शन किए जा सकते है। परकीया प्रेमा के सौदर्य को देख मनोहर ठिठक गया—

सोवति सैनि बरनि को कहा । कंवल भवर जनु संपुट गहा ।।
अंब्रित बिख दुह जानि न गए । बिबि लोयन दहुं काके भए ।।
बदन लिलाट सराहि न जानौं । खिन पूनिव खिन दुइजि बखानौं ।।

---

१. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १८८
२-३ माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० १०७, ३२६
४. पदमात, पृ० ६१
५. चांदायन, पृ० ६०

सारंग सारंग हिय प्रतिपाला। ससि कै प्रीति मिरिग रथ चला।।
तिल कपोल पर बनेउ अपारा। एक बूंद भा सहस सिंगारा।।[1]

यद्यपि प्रेमाख्यानों में परकीया नायिकाओं को ही आलम्बन के रूप में प्रयुक्त किया गया है तथापि स्वकीया का रूप-सौंदर्य भी उपेक्षित नहीं हुआ। ये परकीयाएं भी विवाहोपरान्त स्वकीया बन जाती है। स्वकीया में रूपगर्विता एवं स्वाधीन-पतिका नायिकाएं भी वर्णित हुई हैं। परन्तु अधिकाँश रचनाओं में विवाहोपरान्त कथा समाप्त हो जाने के कारण स्वकीया का विकास नही हो पाया।

नागमती के इस कथन में रूपगर्विता स्वकीया नायिका के दर्शन किए जा सकते हैं—

कहहु कंत जो बिदेस लोभाने। कसि धनि मिली भोग कस माने।।
जो पदुमावति है सुठि लोनी। मोरे रूप कि सरबरि होनी।।
जहाँ राधिका अछरिन्ह माहां। चंद्रावलि सरि पूज न छाहाँ।।
भँवर पुरूख अस रहै न राखा। तजै दास मुहुंआ रस चाखा।।[2]

'चंदायन' की मैना खंडिता है। उसमें खंडिता की उग्रता एवं विषाद दोनों ही स्पष्ट लक्षित होते हैं—

सो कस आहि रांडहि भंडहाई। सेज छाड़ि जो अपुनिह जाइं।।
घर कह सुंदरि कीन्हि बिराई। आपनि कीत्यो आनि पराई।।

तोहि लागि चितु बांधेउं, जीउ मोर तूं आहि।
कहहि न कवन भंडिहाई, देस निसारउ ताहि।।[3]

परन्तु ऐसी उग्रता बहुत कम स्थलों पर देखने को मिलती है। खंडिता पद्मावती में वह उग्रता[4] नहीं जो चंदा मे है। इसी प्रकार इन रचनाओं में प्रवत्स्यत्तिका, प्रोषित-पतिका, आगतपतिका का वर्णन भी हुआ है।

प्रवत्स्यत्पतिका मारवणी आंगन से हटती नही। आंसुओं से आखों का काजल धुलता जा रहा है—

साइधण हल्लइ सांभलइ, ऊभी आँगण छेह।
काजल जल भेला करी, नाँखी नाँख भरेह।।[5]

आगमिष्यत्पतिका चित्रावली अपना आवेश संभाल नहीं पा रही—

१. मधुमालती, पृ० १५५
२. पदमावत, पृ० ४३४
३. चांदायन, पृ० २२४
४. पदमावत, पृ० ४३६, ४५६
५. ढोलामारू रा दूहा, पृ० ७१

सुनतहि चित्र चाउ चित बाढ़ी । होइ व्याकुल धौराहर ठाढ़ी ।।
देखत मुख बुद्धि सुधि सब हरि । होय अचेत पुहुमी खसि परी ।।[1]

और आगतपतिका मालवणी के हर्ष का पारावार नही—

सखी, सु सज्जरा आबिया, हुंता मुज्झ हियाह ।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फलियाह ।।[2]

इसी प्रकार आगतपतिका इन्द्रावती का भी रूप निखर आता है—

इन्द्रावति मन में हुलसानी । हुलसे कुच कचुकि सकरानी ।।
मुख पर छबि बाढ़ी अधिकाई । गई पियराइ भई ललताई ।।
भयेउ परमदा परमद भेषा । भै दुख में सुख जो मुख देषा ।।[3]

इन नायिकाओं का हर्ष-विषाद पति के संयोग एवं वियोग पर ही आश्रित है । पति के वियोग का दुख उसके आने से ही मिट सकता है । पति के आने पर रूप का प्रभाव बढ़ाने के लिए वस्त्रालकार-भूषिता होकर मिलन के लिए तैयार हो जाती है । ऐसी वासकसज्जा मैना को देखकर लोरक चंदा को भूल गया—

मैनां चेरिन्ह लइ अन्हवाई । मुंगिया सारि आनि पहिराई ।।
दुसरे पाट जउ ओहि बइसारे । मुखि तंबोल चखि काजर सारे ।।
बदरी हुत जनु उछटि नीसरा । देखि सुरुज तब चंदा बिसरा ।।[4]

वय.सन्धि वर्णन—कवियों के लिए इन नायिकाओं की वय.सधि विशेष आकर्षण का विषय रही है । नायिका की वयःसधि का वर्णन करने मे कवि पुहकर अपने आपको असमर्थ मानते हैं—

लसै वय सधि आछी अमल अनूप अंग ।
अम्बर उदित इन्द्र कैसो चद्र देषिये ।
पुहकर कहै दुति वरनी न जात मोपै ।
जोई कवि कहै छबि ताही तै विसेषिये ।।
लेषि न परति सिसुताई तरुनाई तन ।
कौन घटि कौन बढ़ि कौन भाँति लेषिये ।
सोभा धाम छाँह ज्यों सुनैनी कैसे नैन ज्यों ।
कुरग कैसे नैन ज्यों दुरग वैस देषियें ।।[5]

---

१. चित्रावली, पृ० १९५
२ ढोला मारू रा दूहा, पृ० १२८
३. इन्द्रावती, पृ० १६३
४. चांदायन, पृ० ३८७
५, रसरतन पृ० २८

यह 'दुरंगी वैस' देखने दिखाने का चाव इन कवियों को प्रायः रहा है।

संक्षेप में इन प्रेमाख्यानों में प्रायः परकीया एव स्वकीया तथा अपवादरूपेण सामान्या नायिका आलम्बन रूप मे वर्णित हुई है। यद्यपि इन रचनाओं मे मुग्धा नायिका के वर्णन का विशेष अवकाश था तथापि अधिकतर मध्या एवं प्रगल्भा के मिश्रित रूप का ही वर्णन हुआ है। खंडिता नायिका का वर्णन भी यदा-कदा ही आया है। स्वकीयाएं प्राय प्रोषितभर्तृका के रूप मे दिखाई पड़ती है। समागम के प्रारंभ में इनका मुग्धा रूप शीघ्र ही मध्या एवं प्रगल्भा मे परिवर्तित हो जाता है।

नायिकाओं के रूप का आकर्षण एवं सम्मोहन ही प्राय. इन रचनाओं में वर्णन का विषय रहा है। कई बार उनके अगों की घातक शक्ति का वर्णन इनमे अवश्य मिल जाता है परन्तु समग्र प्रभाव सम्मोहन का ही है। रचनाओं के सुखान्त होने के कारण यह उचित भी है।

नायक—इन रचनाओं मे नायकों के अनेक रूप उपलब्ध नही होते। अधिकतर नायक दक्षिण एवं अनुकूल है। शठ अथवा धृष्ट नायक इन में नहीं है। गुणों के आधार पर वे धीरललित ही है, धीरोदात्त का एकाध गुण ही उन में आ पाता है।

नायक के सौदर्य का वर्णन विवेच्य काव्य में रुचिपूर्वक हुआ है। वैसे भी आलम्बन का उभयपक्षीय सौदर्य शृंगार की अभिव्यंजना के लिए आवश्यक है। भक्त कवि नंददास ने रूपमजरी के आलम्बन कृष्ण का अत्यन्त मनोहर चित्र उपस्थित किया है—

स्याम बरन तन अस रस भीनौ। मरकत रस निचोय जल कीनौ॥
मोर चंद सिर अस कछु लौनौ। मानहु अली टटावक टोनौ॥
सोहति अस कछु बांकी भौंही। यो मन जानै कै पुनि हौंही॥
चुनि-चुनि सरद कमल दल लीजै। तिन कहुं मोती पानिप दीजै॥
ता मोहन के नैनन आगै। अलि तेऊ अति फीके लागै॥
नासिक मोती जगजम जोती। कहती तौ.मति होती औती॥
पीत बसन दुति परति न कही। दामिनी सी कछु थिर ह्वै रही॥[1]

कृष्ण का यह स्वरूप उनकी अलौकिकता के वर्णन से मुक्त है परन्तु 'माधवानल कामकंदला' में आलम ने माधव के रूप दर्शन में अलौकिकता से सभी को चकित कर दिया—

राज मंदिर माधौ चला। सुन्दर विप्र मदन की कला॥
कँठ सोहै मौतिन की माला। कानन कुंडिल नैन विसाला॥

१. नंददास ग्रंथावली, पृ० १२९

झीने पट की धोवती, उपर उपरनी झीन ।
सीस पाग वेना धरै, राजमंदिर पगुदीन ॥

× × ×

बैठ्यो विप्र सिंहासन जाई । देखि लोग सब रहे भुलाई ॥
कै रे इन्द्र कै चन्द्र है, कै कान्हर कै काम ।
कै कुबेर कै जच्छ है, कै किन्नर कै राम ॥[1]

निस्सन्देह नायक की अपेक्षा नायिका के रूपवर्णन में इन कवियों का मन विशेष रमा है, उसके अंगों की सुषमा, उसके रूप की मोहक शक्ति सभी रचनाओं में विस्तार से वर्णित हुई है । रूप-वर्णन मे नायक-नायिका के वस्त्राभूषण भी रूपप्रभाव को अभिवृद्ध करने में सहायक होते हैं ।

उद्दीपन विभाव

प्रेमोदय के अनन्तर उसे उद्दीप्त करने में सहायक विभाव उद्दीपन कहे जाते है । बाह्य और आन्तरिक भेद से ये दो प्रकार के हो सकते है । बाह्य उद्दीपनों में षड्-ऋतु वर्णन, बारहमासा वर्णन, चद्रिका, उद्यान आदि की गणना की जा सकती है एवं आन्तरिक उद्दीपनों मे नायिका का रूप-यौवन, सरलता, मोहकता आदि आते है। इनका वर्णन नखशिख के अन्तर्गत किया जाता है । हिन्दी प्रेमाख्यानों में आन्तरिक उद्दीपन का अनेकशः वर्णन करने की प्रवृत्ति है । पद्मावत, मधुमालती, रसरतन आदि रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है । नायिका की वाणी का माधुर्य ओष्ठों की सुधाप्यायित लालिमा, अंगकान्ति, उरोजों की कठिनता, कटि की क्षीणता को प्रकट करने के लिए अनेकों उपमान सम्मानित एवं अनेकशः तिरस्कृत हुए हैं । इसके अतिरिक्त सखा-सखी, वन, उपवन, चन्द्र, चांदनी एवं चन्दन के साथ-साथ ऋतु-वर्णन भी किया गया है । ये सभी तत्त्व समय-समय पर प्रेम को उद्दीप्त करने में सहायक होते हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि ये रचनाए राजपरिवारों से सम्बद्ध है, राजप्रासादो में उल्लिखित भित्ति-चित्र भी उद्दीपन का काम करते हैं—

आसन चित्रै विविध प्रकाई । सुभजे परी तरंगि रस सारा ॥
आसन देखति खरी लजाई । आँचर मुँह मूँदें मुसकाई ॥[2]

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार की सुन्दर मूर्तियों एवं उनके पास सुगंधित द्रव्यों के द्वारा भी वातावरण को उद्दीपक बनाने की कला में हिन्दी के कवि विशेष रूप से सिद्धहस्त है—

१. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १६१

१. छिताई चरित, पृ० १८

पुतरी गढ़ि गढ़ि खंभन्ह काढीं । जनु सजीव सेवाँ सब ठाढ़ीं ॥
काहू हाथ चंदन कै खोरी । कोइ सेंदुर की गहे सिंधोरी ॥
कोइ केसरि कुंकुह लै रही । लावै अंग रहसि जनु चही ॥
कोई गहें कुंकुमा चोवा । दरसन आस ठाढ़ि मुख जोवा ॥

× × ×

पाँतिन्ह पाँति चहूँ दिसि पूरी सब सोंधे कर हाट ।
माँझ रचा इंद्रासन पदुमावति कहँ पाट ॥[1]

चिर-प्रतीक्षित प्रेमिका के साथ इस वातावरण मे अन्य किसी उद्दीपन का अवकाश ही कहां रह जाता है ।

उद्दीपन रूप में प्रकृति —विरहावस्था में तो सम्पूर्ण जड़-चेतन ही विरहोद्दीपक प्रतीत होता है । पवन, चन्द्र, मेघ आदि में किसी को भी दूत स्वीकार कर विरह निवेदन किया जा सकता है । षड्ऋतु अथवा बारहमासा के प्रसंग में भिन्न-भिन्न ऋतुओं के प्राकृतिक दृश्य एवं मानवीय कार्य-कलाप इन नायक-नायिकाओं को अधिक पीड़ित करते है । ज्येष्ठ मास की दाहक तपन माधव को कामकंदला की शीतलता का स्मरण दिलाती है—

अंबरि बारह रवि तपइ, दिशा प्रति दि दाह ।
शीतल तुझ संभारवउं, अवर न एकू ठाह ॥[2]

और आषाढ़ के काले बादल जलाते है—

कालां बदल ऊतरइ, मोर करइ किंगार ।
आषाढ़इ अमृत झरइ, मुझ लागइ अंगार ॥[3]

माधव कोई अपवाद नहीं, सभी नायको अथवा नायिकाओं की यही स्थिति है । संयोग में प्रकृति के उपकरण अधिक सुख देते हैं एवं वियोग में दुख को उद्दीप्त करते है । संयोग में पावस ऋतु की प्रत्येक वस्तु आल्हादकारी है, प्रियतमा को प्रियतम के समीप ले जाती है, हिंडोला डालने को प्रेरित करती है—

रितु पावस बिरसै पिउ पावा । सावन भादौं अधिक सोहावा ॥

× × ×

चमके बिज्जु बरिस जग सोना । दादर मोर सबद सुठि लोना ॥
रंग राती पिय संग निसि जागे । गरजै चमकि चौंकि कँठ लागै ॥
सीतल बुंद ऊँच चौबारा । हरियर सब देखिअ संसारा ॥

---

१. पदमावत, पृ० २७८
२-३. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० २६४

मलै समीर बास सुख बासी। बेइलि फूल सेज सुख डासी ।।
हरियर भुम्मि कुसुंभी चोला। औ पिय संगम रचा हिंडोला।[1]

परन्तु वियोग में ये ही बूदें, दामिनी एवं अनन्त क्षया प्राणान्त कष्ट देते है—

अगम दुक्ख दिन जाहिं न गाढ़े। लोयन गांग जौन होइ बाढ़ै ।।
रक्त आँसु धर परे जो टूटी। सांवन भए ते वीर बहूटी ।।

× × ×

मैं पिक रूप फिरिउं सभ वारी। नैन रगत बिरहैं तन जारी ।।
सावन घटा तरग जल दामिनि छपा अनंत।
कठिन प्रान जो घट रहहिं ऐ सखि बिछूरे कत ।।[2]

चन्द्रमा बेकरार करता है, पपीहे के बोल जीवहरण करते है और कोयल के वचन अश्रुधारा को तीव्र करते है —

देखत चंद्र चंद्र बिकरारा। पपिहा बोल सबद जिव मारा ।।
बोलिहि मोर सोर बनमांहा। झीलि झूकनि काम तन दाहा ।।
कोकिल कूकत कलरव बोली। बिरह पसीजि भीजि तन चोली ।।[3]

प्रकृति के उद्दीपक रूप के साथ नायक या नायिका के हृदय की दशा को स्पष्ट करने के ऐसे प्रयोगों के अतिरिक्त एक अन्य रूप में भी प्रकृति का उपयोग किया यगा है। हेतूत्प्रेक्षा की सहायता से भिन्न-भिन्न प्राकृतिक वस्तुओं के वर्तमान रूप में नायिका का विरह ही कारण बनाया जाता है—

कुहुकी कुहुकी जसि कोइलि रोई। रक्त आँसु घुंघुची बन बोई ।।

× × ×

तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे परभाते ।।
राते बिंब भए तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूं ।।[4]

अतः शृंगार-रस की विभाव-सामग्री, अपने दोनों रूपों में यथोचित सजधज के साथ, हिन्दी-प्रेमाख्यानों में उपलब्ध होती है।

अनुभाव-वर्णन

उद्दीपन के ही समान इन रचनाओं में अनुभावों का वर्णन भी विस्तारपूर्वक हुआ है। प्रथम दर्शन के अनन्तर नायक अथवा नायिका में जो व्याकुलता दिखाई देती है वह अनुभाव-चित्रण के द्वारा ही स्पष्ट रूप से लक्षित होती है । विवेच्य साहित्य

---

१. पदमावत, पृ० ३३६
२. मधुमालती, पृ० ३५१
३. ज्ञानदीप (हस्तलिखित)।
४. पदमावत, पृ० ३६१

में श्रृंगार रस की व्यंजना में कायिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अनुभावों की सुन्दर योजना हुई है। यहाँ संक्षेप में इसका संकेत किया जा रहा है।

कायिक अनुभाव—श्रृंगार में कटाक्षपात, भृकुटि-भंग, हाथ मलना, हँसना आदि कायिक अनुभाव है। प्रेमाख्यानों मे इनका प्रयोग अनेकशः हुआ है। इनकी योजना में किसी विशेष कौशल का यत्न भी नहीं करना पड़ता, अपनी स्थूलता के कारण ये अधिक स्पष्ट भी हैं। निम्नलिखित उदाहरण में नायक का हँसना एवं नायिका के अंशुक को अपनी ओर खीचना कायिक अनुभाव है जिनके द्वारा दोनों की रीति-भावना का ज्ञान होता है—

> **अंब्रित वचन चांद अनुसारा। हंसा बीरु भा बोलु अधारा॥**
> **हंसि कइ बीरू चीरु कर गहा। मोतिन्ह हार टूटी गियं रहा॥**[1]

इसी प्रकार निम्नलिखित सोरठे में जागने पर विरहवश नायिका का हाथ मलना भी कायिक अनुभाव ही है—

> **सूती पड़ी रणेहि, जोयइ दिसि जातांतणी।**
> **जागी हाथ मलेहि, बिलखी हूई, वल्लहा॥**[2]

वाचिक अनुभाव—वाचिक अनुभावों के अन्तर्गत संदेश-कथन, विलाप, प्रलाप आदि आते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानों में इनकी योजना विशेष रूप से की गई है। ऐसी कोई रचना मिलनी कठिन है जिसमें इस अनुभाव का विस्तार न हो। नायिकाएं अपने आप ही एकान्त में प्रिय से प्रणय-निवेदन करती है, समय-समय पर असहाय होकर चेतन पशु-पक्षी अथवा अचेतन वनस्पतियों से सहायता की याचना करती हैं। चित्रावली की यह उक्ति जिसमें जड़-चेतन से विरह-निवेदन है, वाचिक अनुभाव के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

> **बनसपती सुन बिथा हमारी। बरहे मास होइ पतझारी॥**
> × × ×
> **भयो खीन जस चल दल पाता। पौन उसास डोल मम गाता॥**
> **जो जग सुनी बिथा यह मोरी। तै सराहि पिय छाती तोरी॥**
> **कहत फिरत मारुत बिथा, पातन सौं बन माहि।**
> **धुनत सीस सुनि सुनि सब, पीय दया तोहि नाहि॥**[3]

वाचिक अनुभाव का प्रसार हिन्दी प्रेमाख्यानों मे सर्वाधिक है।

आहार्य अनुभाव—इनमें वेश रचना द्वारा स्थायीभाव की व्यंजना समझी जा सकतीहै। नायिकाओं ने अपने हार्दिक उल्लास एवं रति के अनुकूल वेश रचना में रुचि

१. चांदायन, पृ० २०६
२. ढोला मारू रा दूहा, पृ० ८७
३. चित्रावली, पृ० १६८
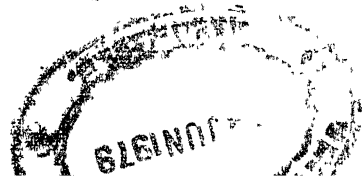
दिखाई है। नायक रतनसेन के पास रमणेच्छा से जाती हुई पद्मावती ने अपने आपको विविध वस्त्राभरणों से अलंकृत किया—

सिरै जो रतन मांग बैसारा। जानहुं गंगन टूट लै तारा।।
तिलक लिलाट धरा तस डीठा। जनहुं दुइज पर नखत बईठा।।
मनि कुंडल खुंटिला और खूँटी। जानहुँ परी कचपची टूटी।।
पहिरि जराऊ ठाढ़ि भौ, बरनि न आवै भाउ।
मांग क दरपन गँगन भा तौ ससि तार देखाउ।।[१]

यह प्रसंग पर्याप्त विस्तृत है और जायसी ने नायिका के बारह आभूषणों और सोलह शृंगारों का जमकर वर्णन किया है।

आहार्य अनुभावों की योजना का सौदर्य आलम की इन प्क्तियों में भी दर्शनीय है—

काम कंदला कर्यो सिंगारा। अरून फूल के पहिरे हारा।।
तापर पहिरि कुंचुकी झीनी। सौंधे छिरकि बेल सौं भीनी।।
पुष्प गूंथि वैनी बनवाई। चंचल गात प्रवीन सुहाई।।
दियो लिलाट चदन को टीका। मध्य विंदु विंदुन कौ नीका।।[२]

'वेलि' में रुक्मिणी के हृदय में उच्छलित प्रिय के सगमोल्लास को भी आहार्य अनुभावों द्वारा ही व्यक्त किया गया है। रुक्मिणी ने सुगन्धित जल से स्नान कर धुली हुई साड़ी पहनी और भिन्न-भिन्न प्रकार का शृंगार किया।[३]

संयोग में उल्लास की अभिव्यक्ति के समय ऐसे समृद्ध एवं कोमल वस्त्रालंकार का वर्णन है तो वियोग की वेदना इनकी मलिनता से प्रकट की जाती है। परन्तु इन प्रसंगों में आहार्य अनुभवों की विस्तृत योजना नहीं होती। संक्षेप से संकेत मात्र किया जाता है।

प्रिय-वियोग में पद्मावती का यह विवरण वेश वियोगमूला रति का ही अनुभाव है—

सेंदुर चीर मैल तस सूखि रहे सब फूल।
जेहिं सिंगार पिउ तजिगा जरम न बहुरै मूल।।[४]

सात्विक अनुभाव—अन्तःकरण की भावना के अनुकूल मन में हर्ष-विषाद आदि के उद्वेलन को सात्विक अनुभवं कहते है—

१. पद्मावत, पृ० २८८
२. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १६७
३. वेलि क्रिसन रुकमणी री, १५५-१६०
४. पद्मावत, पृ० ६४०

मुक्ख न जोति कया अति रूखी । चांद सनेह सुरिज गा सूखी ।।[1]

यहां लोरक के हृदयगत विषाद का वर्णन है । सात्विक अनुभावों में अश्रु, रोमांच, स्वेद, कम्प आदि की गणना होती है । निम्नलिखित पंक्तियों मे क्रमशः अश्रु, स्वेद एवं रोमांच सात्विक अनुभावों का वर्णन है—

१. लई लोरक घर सेजि ओल्लारा । बहहि नैन गांगहि असरारा ।।[2]

२. सज्जण चाल्या हे सखी नयणे कीयो सोग ।
सिर साड़ी गलि कंचुवउ हुवउ निचोवण जोग ।।[3]

३. मुदित रोम पुलकित ह्वै आये । मानो प्रान मृतक फिरि पाये ।।[4]

ये अनुभाव शुद्ध एव मिश्रित रूप में भी चित्रित किए गए है । 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' के अधोनिर्दिष्ट पद्य में रोमांच, अश्रु तथा स्वर-शिथिलता आदि सात्विक एवं वाचिक अनुभावों का सुन्दर गुम्फन दर्शनीय है—

आणन्द लखण रोमांचित आंसू वाचत गद गद कंठ न वणै ।
कागल करि दीधौ करुणाकरि तिणि तिणि हीज ब्राह्मण तणै ।।[5]

इसी प्रकार कल्पलता के इस वियोग में आहार्य एवं सात्विक एक साथ है—

जा दिन तै पति गवनु किय, ता दिन तें सुष कौन ।
मलिन बसन कृस अंग अति, भावतु भोगु न भौन ।।
कीर पढ़ावति सुन्दरी, नीर भरे जुग नैन ।
आंसुनु सींचति वाटिका, बोलति कातर बैन ।।[6]

'सूर रंभावत' में कुमार सूर की प्रेम-अवस्था वर्णित करने में कायिक, वाचिक, सात्विक सभी की योजना पूर्ण सौदर्य से की गई है । विक्षिप्त सूर कुंवर के कर्म जितने अदम्य और द्रुत वेग से होते हैं कवि उतनी ही तीव्र गति से उनका चित्रण करता चलता है । लाक्षणिक प्रयोगों अथवा सादृश्य की खोजों में प्रवाह को रोकना नहीं चाहता —

हा हा करे, हाथ पुनि तोरे । पाथर लै कर सीस चहोरे ।।
ऊँचा रोवै चीरन फारे । भसम सकेल सीस महि डारे ।।
फुरकि फुरकि पुनि मीचै नैना । तरफि तरफि तरफाए बैना ।।
गिरि गिरि परे जरे तन राधे । मुख परि झाग बुदबुदे बाधे ।।

× × ×

---

१. चांदायन, पृ० १४६
२. वही, पृ० १५०
३. ढोला मारू रा दूहा, पृ० ८३
४. रसरतन, पृ० ५५
५. वेली क्रिसन रुकनणी री, पृ० १५०
६. रसरतन, पृ० २०५

थर थर कांपे डर डर चमकै। मुर मुर मुलगे जर-जर तमकै ।।[१]

संचारीभाव

इन कवियों ने शृ गार रस के प्रसंग में प्रायः संचारी भावों का भी वर्णन किया है। यहां उदाहरण के रूप में कुछ दर्शनीय है—

शंका और विषाद—लोरक द्वारा फैंके बरहे को अनेक बार चंदा ने नीचे गिरा दिया। परन्तु अपनी इस चंचलता पर वह शंकाग्रस्त हो गई—

चांद कहा अब लोरिकु जाइहि। मन उतरें फुनि फिर नहि आइहि ।।
हउं असि बोलिउ चतुर सयानी। बरहा छाडिउ कवनि अयानी ।।[२]

पहली पक्ति में नायिका हृदयावस्थित शंका व्यक्त होती है कि मन उतर जाने पर नायक फिर नहीं आएगा, और दूसरी पंक्ति में इसी शंकाजन्य विषाद है। चतुर सयानी होकर भी यह क्या कर दिया इस प्रकार इन दो पंक्तियों में शंका एवं विषाद नामक संचारियों की व्यंजना होती है।

हर्ष - प्रियतम के आगमन पर नायिका मारवणी का हर्ष इन पंक्तियों में अत्यन्त कौशल से व्यक्त किया गया है---

सखिए साहिब आविया, जांहकी हूँती चाह।
हियड़उ हेमागिर भयउ, तन-पंजरे न माइ ।।[3]

हर्षातिरेक से फूला हृदय हेमगिरि-सा हो गया है और छोटे से शरीर में नहीं समाता।

गर्व— इन्द्रावती की इस उक्ति मे अपने रूप की प्रशंसा तथा उसके प्रभाव की अभिव्यक्त के द्वारा गर्व भाव की व्यंजना होती है—

अधरन मों मुसकानी रानी। होइ अभिमानी बोली रानी ।।
है मोंहि रूप विमल उँजियारा। बस मंह रहै सो प्रीतम प्यारा ।।
ऐ गुन भये न रूठै देऊं। तनु मुसुकाय हाथ कै लेऊं ।।

× × ×

पाहन समा कठोर जो होई। करऊं शृंगार होइ जल सोई ।।[४]

औत्सुक्य और विषाद—अभीष्ट-प्राप्ति में विलम्ब को न सह सकना औत्सुक्य कहलाता है। पद्मावती की इस उक्ति में औत्सुक्य संचारीभाव की व्यंजना होती है—

---

१. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ४०५ से उद्धृत।
२. चांदायन, पृ० १८५
३. ढोलामारू रा दूहा, पृ० १२७
४. इन्द्रावती, पृ० १७५

तासों कवन अंतरपट, जो अस प्रीतम पीउ ।
नैवछावरि गइ आप हौं, तन मन जोबन जीउ ।।[1]

और इस पद्य में नागमती के असहाय अवस्था जन्य विषाद की —

कवने जतन कंत तुम्ह पावौं । आजु आगि हौं जरत बुझावौं ।।
कवन खंड हौं हैरौं, कहाँ मिलहु हो नाहँ ।
हेरैं कतहूँ न पावौं, बसहु तौ हिरदै माँह ।।[2]

दीनता और जड़ता—विषाद की अधिकता नायिका में दैन्य का संचार कर सकती है अथवा निराशा के कारण उसे जड़ भी बना सकती है । 'हंसजवाहर' की इन पंक्तियों में जवाहर की असहाया अवस्था जन्य दीनता की अभिव्यक्त है—

यक दिन रैन भई निशि कारी । रोवन लागी सेज पर नारी ।।
पड़ी अकेलि बिनवै करतारा । कित मोहि आन दई तोहिं डारा ।।[3]

इस छन्द में ईश्वर-वन्दना उसके दैन्य को मुखरित करती है। दैन्य मे दरिद्रनारायण के सहायक करतार का स्मरण आना स्वाभिविक ही है । नल का चित्र देखते-देखते दमयन्ती की निश्चलता के वर्णन में 'जड़ता' संचारीभाव का अंकन है—

हेरत हेरत चित्र में चित्र रूप होइ जाइ ।[4]

निद्रा और स्वप्न—कृष्ण का स्मरण करती-करती रूपमंजरी की अधोवर्णित दशा में निद्रा एवं स्वप्न संचारीभावों का वर्णन हुआ है—

उतनी कहत कुँवरि उयबानी । सहचरि दौरि उसीसो आनी ।।
दै उसीस पर सुन्दर बाँही । सुंदरि सोय गई सुख माही ।।
जो देखै तौ वह बन आही । सपन की संपति सब अवगाही ।।

× × ×

कछु छल कछु बल कछु मनुहारी । लै बैठे तहं लाल बिहारी ।।[5]

रति भाव की गहनता इस स्वप्न से कलात्मकता-पूर्वक अभिव्यक्त हुई है ।

इस विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शृंगार के विभिन्न अंगों की योजना में इन कवियों ने विशेष रुचि ली है ।

संयोग शृंगार

संयोग शृंगार-वर्णन में नायक-नायिका के हास-परिहास का विशेष महत्त्व है । अनेक रचनाओं में नायक-नायिका समस्यापूर्ति, प्रहेलिका, अन्तरालाप द्वारा मनोविनोद

१-२ पदमावत, पृ० ३१४, ६३५
३. हंसजवाहर, पृ० २३१
४. नलदमन, पृ० ७६
५. नंददास ग्रंथावली, पृ० १४१, १४२

कर आनन्द विभोर होते हैं। अनेक बार (जैसे गणपतिकृत माधवानल कामकंदला प्रबन्ध एवं पदमावत में) विस्तार के कारण ऐसे प्रसंगों में रसव्यंजना की अपेक्षा शुष्क वाद-विवाद ही प्रधान हो जाता है परन्तु, अनेकशः रस एवं उक्ति-वैचित्र्य की अद्‌भुत लहरें मन को आह्लादित कर देती है। ढोला के आगमन पर नायिका मारवणी हर्षातिरेक से फूली नही समाती। प्रियतम को प्राप्त कर उसके सौंदर्य की आभा एवं यौवन का उल्लास दमक उठे है, विरहगत कृशता एवं निराशा पता नहीं कहाँ चले गए। ढोला पूछ ही तो लेता है कि सुन्दरी किस सुख से तुम्हारी काया में यह सौदर्य छलक रहा है। मारवणी का उत्तर कितना मोहक है--आपको पधारे हुए, और चित्त में चाहते हुए मुझे एक पहर हो गया, मेंढक तो घन के बरसते ही क्षण भर में जीवित हो जाते हैं—

पहुर हुवउ ज पधारियां, मो चाहती चित्त।
डेडरिया खिण-मइ हुवइ घंण बूठइ सरजित ॥[1]

इस वार्तालाप में नायिका के अंग-सौदर्य का वर्णन भी कई बार स्पष्टतः आ जाता है।इस प्रकार के हास-परिहास के साथ चौपड़ आदि भी खेले जाते है। अधिकांश रचनाओं में हास-परिहास के साथ चौपड़ खेलने के पश्चात् रमण की क्रिया का वर्णन है।

संयोग श्रृंगार-गत चुम्बन, आलिंगन, सुरत, विपरीत रति, सुरतांत के चित्रों की इन रचनाओं में कमी नहीं।

आलिंगन—आलिंगन के चित्र इनमें एकाधिका बार आए है। कुमार सूर एवं नायिका रम्भा का यह चित्र कितना माँसल है—

रानी कुंवर सेज पर खेलै। मुसक मुसक पुन हाथन मेलै ॥
रानी कुंवर धरे मुखबीरा। बहु रंभा मुख मले अंबीरा ॥
रानी कुंवर गहे कर होडा। हाथ गहे कुच कभी न छोडा ॥[2]

इन काव्यों में आलिंगन एवं चुम्बन प्रभृत्ति सुरत-पूर्व की क्रियाओं का कवियों ने विशेष वर्णन किया है। कवि मंझन के शब्दों में मधुमालती एवं मनोहर के आलिंगन एवं चुम्बन का वर्णन रस की सीमा को स्पर्श करता है—

अहे जो लोयन आस तिसाए। दुहूं पिया रस रूप अघाए ॥
दगधि हिए दुहुं केरि जुडानी। मिलत उरहि उर तपति सिरानी ॥
नैन नैन सेउं लोभे मन सेउं मन अरुझान।
दुवौ हिय उर मिलि एक भे भजियउ प्रानहि प्रान ॥[3]

---

१. ढोला मारू रा दूहा, पृ० १३१
२. सूररंभावत, पत्रांक १२३
३. मधुमालती, पृ० ३९३

रमण · इनके उपरान्त राजकुंवर एवं मृगावती का यह रमण चित्र विभाव अनुभाव, संचारीभावों के संयोग से सभोग शृंगार की ऐन्द्रियानुभूति कराने में पूर्णतया समर्थ है—

हम लगि एत दुख देखेहु नाहां। बेरसहु सो फल राखि उछाहां।।
पवन न लाग सूर पहं राखेउ। बासु अवर भंवरा नहि चाखेउ।।
दारिउं नारग दाख जंभीरा। बेरसहु तुम्ह आगें हम नीरा।।
आलिगन अल्लिउ कुच धरै। कर कुच गहै सुरत रस करै।।
उरहि लाइ कै दलमलइ, रैनि सेज रस लेइ।
कुंदइ हंसइ मानकर बाला अरु आलिगन देइ।।[1]

आलम्बन नायिका अपने शरीर की नव्यता एवं अव्याज मनोहरता का वर्णन कर नायकाश्रित रति को उद्दीप्त कर रही है। आत्म-समर्पण ही उसका अनुभाव है। हर्ष, उत्सुकता, चचलता आदि के द्वारा रति की मनोहर व्यजना हुई है।

उपरि-उद्धृत उदाहरण में संकेतों से ही सुरत का वर्णन है। 'पद्मावत' में ऐसे प्रसंगान्तर्गत सुरत-युद्ध के द्वारा रमण का अप्रत्यक्ष वर्णन है,[2] अनेक रचनाओं मे इसे संकेत मात्र से ही कह दिया है,[3] परन्तु बोधा को यह सब स्वीकार नही। उन्हें सुरत का अत्यन्त स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किए बिना आनन्द नही आया—

बीरा प्रिय के कर खात, तिय के कंपे थर थर गात।
ऊग्यो अंग अंग अनंग, समझो कोक को यह अंग।
तिय की गही पिय ने बांह, तब तिय कही नाहीं नाहं।
मो कों दरद हूहै मित्त, ऐसी आनिये नहिं चित्त।
ज्यों ज्यों करत बारए बाम त्यों त्यों बढ़त द्विज हिय काम।
नाहीं करत बारम्बार, टूटत जलज मणिमय हार।
कुच के छुवत झुकि झहरात, तकिया ओर टरकत जात।
कमर ग्रीव पकरी दोय, बाला रही हूनर होय।
सखिन से कहै तुम धाय, मो कहं आय लेहु बचाय।
राखी दुवौ जघन बीच, कुच भुज नैन दै के घींच।
माधौ गही बाल रिसाय, जंघा भुजा ऊपर नाय।

---

१. मृगावती, पृ० २०१
२. पदमावत, पृ० ३१६
३. जैसे 'ज्ञानदीप' में—
बरनै कहां न जानौ गुपुत मरम की ठाउ।
सब मन महं जानत हौं कहौं बखानउ नाउ।।

लागी कंपन थर थर बाम, पिय पै चलत कांपे गाम।
उझकत झुकत यों थहरात, चल दल पातलो यह रात।[१]

इस सदर्भ में आलम्बन एवं उद्दीपन तो प्रसंगतः उपस्थित हो गए है। अनुभावों एवं भिन्न-भिन्न सचारियों का कथन स्पष्ट है ही परन्तु यहां रति की अपेक्षा नायक के उत्साह का आभास ही अधिक मिलता है। संभवत. ऐसे ही प्रसगो मे स्थायी की गौण-मुख्य योजना को देखकर 'रसवत्' अलंकार की आवश्यकता पड़ी थी। निश्चय ही यहाँ पर रस-व्यंजना की अपेक्षा 'अलंकार' योजना मानना अधिक उचित जॅचता है।

'बोधा' जो बात अभिधा के प्रयोग से अत्यन्त स्पष्टता से कहकर भी रस की व्यंजना करने मे सफल नही हुए 'मुल्ला वजही' ने वही कुछ लक्षणा के प्रयोग से कह दिया। अनुभावों के स्पष्टाख्यान एव हर्ष, चचलता, श्रम, आवेग आदि संचारियो के साहचर्य से 'रति' स्थायीभाव से संयोग श्रृंगार की अभिव्यक्ति हो रही है—

सुधड़ शह सूँ संग्राम धन की अहै, के याकूत दामन में भर ली अहै।

× × ×

सुहाते थे शह धन सूँ इस वक्त यूँ के हरनी कूँ लै बैठता बाग ज्यूँ।
चल्या तंग कूँचे में शह का तुरग, हुआ सुस्त आखिर के था ठार तग।

× × ×

खिल्या फूल तन का मदन बाव ते, के खुश है वो सभोक के चाव ते।
चचल चुलबुला जो उठी शोर कर, सिराना चल्या पायँती के उधर।
पिरत का झुटन शह झुटे इस सूँ जब, बिछाना हुआ घाँघरा घोल सब।[२]

सुरत के इन चित्रों के ही समान विपरीत रति के प्रसगो मे भी मांसलता आ गई है जिनका अनेक कवियों ने वर्णन किया है—

विपरीति रति रचि केलि कला। घन ऊपर ज्यौं चमकै चपला॥
बिथूरी लट आनन रूप रसै। रजनी तम वै रजनीसु लसै॥

× × ×

श्रम सीकर ल्हास सुषं हरषै। दधिजात सुधा कर से बरषै॥
कुच ऊपर मुत्तिय हार चलं। सिर संकर गंग प्रवाह ढलं॥

× × ×

कट किंकनि कंकन भेद बजै। तरुनी तिहिं ऊपर नृत्य सजै।
अधरामृत पानि सुदांत लगै। हम ताजनु ज्यौं मनमथ्थ जगै।

× × ×

१. बोधाकृत विरह बारीश १५ वी तरंग, रीति स्वच्छंद काव्यधारा, डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, पृ० २१८ से उद्धृत।
२. कुतबमुश्तरी, पृ० १६२

दंपति जोबन जोर तै भिरति सुरति संग्राम ।
हारे हार न मानहीं, संग सहायक काम ।।[1]

इस प्रकार के वर्णन अनेक रचनाओं में अपने मांसल-आकर्षण के कारण पुन: पुन: संयोजित किए गए है । जीवन लाल के 'उषा हरण' में नायिका सभोगरत हो कभी प्रिय की कटि पकड़ती है और कभी उसके अगों पर नख-क्षत गड़ाती है तो कभी उसे कुच-अवमर्द प्रदान करती है ।

सम्भोग करत विपरीत रीति तिय स्वेच्छा तै धरि अमित प्रीति ।
कटि लचकि उचकि कुच कठिन कोर, जब मचकि अंग मरियत किसोर।
भंकार होत पायल निसद्द, कोकिल रव कूकत केलि नद्द ।
मद छके नैन नैननि मिलाय, द्रिग पियत रूप अमृत अघाय।
प्रिय अधर मधुर रस चूंखि लेत, चुंवत अरु कुचन अवमर्द देत।
कटि पकरि लेत प्रिय हिय लगाय, मुसिकात कहत मृदु वचनराय।
नखदंत क्षत तें प्रिय सुअंग, हुव मदन रंग रंगित अभंग।
एकंत अवर तह नहीं कोय, दुहुं रमत सुमन भरि मत होय।
निशि है कि दिवस सो सुधि न लीन्ह, इहि भांति एक लग केलि कीन्ह।[2]

सुरत वर्णन की अश्लीलता से बचने के लिए बहुधा सुरतान्त-वर्णन के द्वारा भी कवियों ने प्रिया एवं प्रियतम के संयोग का वर्णन किया है । 'चित्रावली' में रति-फाग क्रीड़ा के अनन्तर नायिका बेसुध हो रही थी । सखियो ने देखा तो अत्यन्त हर्षित हुई—

सुखसाला सखियाँ मिल गईं । सेज बिलोकि अनंदित भईं ।।
चित्रावलि करि पाउँ अडारी । परी बिसुध जानहु मतवारी ।।
उधसि मांग अलकावली छूटी । बेनी खुली बली कर फूटी ।।
सखी एक हीरा पहँ आई । बिकसे अधर दसन चमकाई ।।
कहिसि कि आइ देखु धिय साजा । मोहिं कहत आवै मुख लाजा ।।
रानी आइ देखि मुसुकाई । मांग चूमि चित्रिनी जगाई ।।[3]

अधिकांश सुरतान्त-वर्णनों में आंखों की निद्रा, अधर-खंडन, हार टूटने, नख-क्षत पड़ने, चोली फटने आदि का ही वर्णन होता है—

निकट आइ निरषहि रति रानी । सुंदर वदन वदन कुम्हिल्यानी ।।
कज्जल छीन हीन रंग बीरा । नीचै नैन किये धन धीरा ।।
× × ×

१. रसरतन, सं० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ११९
२. हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, पृ० ३९७ से उद्धृत ।
३. चित्रावली, पृ० २०४-२०५

षंडत अधर नैन अरुनाई। बिहिबल बाल परम छवि छाई ।।

× × ×

कंचुकि स्याम दरिक लषि देही। मनौ कसौटी कंचन रेही ।।
झपकत पलक नैन छपकारे। जनि पिय रूप भार भये भारे ।।

× × ×

सोभित सुंदरि नैन उंनीनी। लोचन छबि इंद्री बर लीनी ।।[1]

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानों में संयोग शृंगार का अनेकरूपेण सर्वांग वर्णन उपलब्ध हो जाता हैं। सुरतपूर्व, सुरत एवं सुरतांत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णनों को अभिधा अथवा लक्षणा की सहायता से काव्यबद्ध किया गया है। ऐसा कोई ही प्रेमाख्यान काव्य होगा जिसमें इन चित्रों के प्रति उपेक्षा दिखाई गई है। सूर एवं नन्ददास जैसे भक्त कवि ही जब इस नैसर्गिक प्रवृत्ति से असम्पृक्त न रह सके तो प्रेम के इन पुजारियों के लिए तो यह अति स्वाभाविक ही था।

वियोग शृंगार

संयोग की अपेक्षा वियोग शृंगार के वर्णन में इन कवियों ने अधिक रूचि ली है। काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने वियोग के चार भेद माने है. पूर्वराग, प्रवास, मन एवं करुण। इन चारों का अनेकविध विस्तृत वर्णन इन रचनाओं में उपलब्ध होता है—

पूर्वराग—प्रेमी या प्रेमिका के स्वप्न, चित्र, श्रवण अथवा साक्षात् दर्शन से मन मे अपूर्व बेचैनी आरंभ हो जाती है। यह बेचैनी अनुराग के उदय का चिन्ह है। हिन्दी के प्रायः सभी प्रेमाख्यानों मे इसके दर्शन होते है। पूर्वराग की व्याकुलता मे ही भूख-प्यास नष्ट हो जाती है। नल के विरह मे दमयन्ती को दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है—

भूष न प्यास उदास रहै नित भोजन भूले हूं नाहिन षैहे।
फूल की माल ज्यों सूघत बाल जरै तत्काल उसास जुलैहै ।।
जीवन कैसे बने बनिता कौ अबं जु प्यारे को नाहिन पैहे।
मैन करो अति मैन ते कोमल ज्योतीभ्रित धाम ढरी धन जैहै ।।
चंद ऊदे गिर जाती धन मानहु डसी भवग।
वाकी किर्न जु विषभरी पसरत सिगरे अंग ।।[2]

दमयन्ती की ही नही, नल की भी ऐसी ही विकट दशा हो रही थी। व्याकुलता के कारण उसकी व्यथा प्रतिक्षण बढ़ रही थी। निःश्वास इतने तापपूर्ण थे

---

१. रसरतन, पृ० १६६
२. जानकृत कथा नलदमयन्ती (हस्तलिखित)

कि सामने खड़े होने वाले की छाती जलने लगती थी, आँसू गिरने पर तो चूने में पानी डालने की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी—

अति व्याकुल छिन चैन न पावै । पल पल पीर प्रबल होइ आवै ।।
मुख उसाँस निकसे इमि ताती । सनमुख होइ जरै तिन्ह छाती ।।
अंसुवन परै झार उर आवे । मनौ चूनगर चून बुझावै ।।
तन मन अति व्याकुल बिकल, छिन न होइ बिश्राम ।
लेत उसास तपत भई, मंदिर भयो हमाम ।।[1]

इस पद्य में आलम्बन दमयन्ती के उद्दीपक नखशिख का वर्णन सुनकर दीर्घ निःश्वास, अश्रु प्रभृति अनुभावों, और आवेग, श्रम आदि संचारी भावों के संयोग से वियोग शृंगार की अभिव्यंजना है। पूर्वराग के ये ऊहात्मक वर्णन रीतिकालीन शैली के है, परन्तु वियोग की व्यथा इन ऊहाओं के बिना भी प्रकट की जा सकती है। मृगावती को देखकर राजकुंवर का पूर्वराग नल या दमयन्ती से कम दाहक नहीं परन्तु कवि कुतबन ने उसका ऊहात्मक वर्णन न कर अत्यन्त स्वाभाविक एवं वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है—

संवरइ ताहि जो देखेसि अहा । रोव बहुत संग कोउ न रहा ।।
धाइ एक आछत तेहि ठाए । घेरि मोह किछु कहइ बुझाए ।।
खिन एक धाइ बात चित लावै । फुनि जिउ जाइ जहां ओहि आवै ।।
सूनी कया न जिउ घट महां । पीन कुरंगिनि देखिसि जहां ।।
कामबान बेधा न संभारै । जपै कुरंगिनि खिनु न बिसारै ।।

निसि बासुर बिबि तैसेहि, दोसर चित न कराइ ।
चित महुत गयंद जेउं, कैसेहु उतरि न जाई ।।[2]

यहां मृगावती आलम्बन विभाव; राजकुवर आश्रय; मृगावती का सौदर्य, वनप्रदेश, वियोग आदि उद्दीपन विभाव; रोना, प्रिया के रूप का बारम्बार स्मरण करना, व्याकुल होना अनुभाव; चिन्ता, तन्मयता, मोह, स्मृति आदि सचारी भाव है। इनसे परिपुष्ट रति वियोग शृंगार के रूप में अभिव्यजित हुई है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों मे नायक एवं नायिका दोनों ही पूर्वराग के कारण दु.सह व्यथाओं को सहते है। रात दिन उस प्रियतम की ही स्मृति मन को घेर लेती है। व्यथापनयन के लिए नाना प्रकार के उपचार होते है। साथियों एव सम्बन्धियो मे हलचल मच जाती है। देखिए स्वप्न-दर्शन के अनन्तर रंभा की अवस्था से चितित उसकी सखियाँ शुभेच्छा एवं असंदिग्ध प्रेम के कारण अनेकानेक शंकाएं करती है—

---

१. नलदमन, पृ० ५५
२. मृगावती, पृ० ३०

एक कहै आज लाल चूनरी पहिरि सांझ
गई फूलबारी मांझ तहां भरमाई है।
एक कहै यौजगी है एक कहै छली काहू
एक कहै काहू करतूति करवाई है।[1]

इन शंकाओं के द्वारा सखियों की घबराहट का चित्र खींचकर[2] कवि ने नायिका के असह्य वियोग को ही अभिव्यक्त किया है और उस असह्यता को दूर करने के उपचारों के द्वारा रोग की असाध्यता की अभिव्यंजना भी हुई है—

इक सषी वारि फेरि जल पीवहि। कहहि कुँवरि इहि कारन जीवहिं।

× × ×

तिहु छिनु दान करन इक लागी। राज कुँवरी के हित अनुरागी।

× × ×

राई नौन उतारहिं बाला। नौनी मूरति निरषि रसाला।[3]

इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर कवि नायिका के वियोग का वर्णन करने के लिए उसी का एक चित्र उपस्थित करता है। नायिका प्रेम-समुद्र में डूब-उतर रही है, वह भूली हिरनी के समान इधर-उधर घूमती थी, अंजन के बजाए चदन ही आंखों में डालकर श्रृंगार भी अव्यवस्थित ढंग से कर रही है—

काम रस माती उन्माती सी बिहाल बाल
प्रेम के समुद्र माँझ मगन परी है जू।
भूली सी फिरति ज्यौं कुरंगिनी कुरंग नैनी
मानौ सर पंच नैनी जोबनि हरी है जू।
अंजनु बनायौ भाल, चदन सु आजें दृग
सकल सिंगार बिपरीत को करी है जु।
बीरी लावै कान नहिं ज्ञान न सयान कछू
बारुनी के पान ज्यौं बिधान बिसरी है जू॥[4]

विभाव, अनुभाव के साथ हर्ष, मद, मोह, उन्माद आदि संचारी भावों के संयोग से इस रचना में पूर्वराग की अति सुन्दर व्यंजना हुई है। इन वियोग चित्रों

---

१. रसरतन, पृ० ३४

२. एक चलैं धाई एकै परै मुरझाई धर,
एकै कहै हाइ हाइ कौन कहां आई है।
एक गहै पाइ एकै वदन बलाइ लेइ,
हाहा इत हेरि नेंक कौने डरवाई है।

—रसरतन पृ०, ३४

३. रसरतन, पृ० ३४

४. वही, पृ० ५०

की यह विशेषता है कि इन में विरह की वस्तुव्यंजना की अपेक्षा संवेदना की व्यंजना करने में कवियों ने विशेष रूचि ली है। इसी कारण ये वर्णन वस्तु व्यंजना प्रधान फारसी ढंग के विरह चित्रण से पृथक् हो गए है।

मान—मान के उदाहरण इन रचनाओं में बहुत कम स्थलों पर ही मिलते हैं। प्रिय के वियोग में दीर्घ काल तक तड़पने वाली इन नायिकाओ से मान की आशा है भी व्यर्थ। फिर भी स्वभाव तो स्वभाव ही है, यदा कदा कुछ देर के लिए ही सही! सिंहल से लौट, दिन भर के उत्सव के अनन्तर रतनसेन जब नागमती के पास गया तो उसका मान नैसर्गिक एवं सामयिक ही था। नागमती ने उस समय रतनसेन को जो कुछ कहा उसमें प्रणय एवं ईर्ष्यामान की अत्यन्त स्पष्ट झलक है। रस-सामग्री के विवेचन की आकांक्षा न रखने वाली इन पंक्तियों में अद्वितीय रस-व्यंजना है·—

सब दित बाजा दान दवांवा। भै निसि नागमती पहँ आवा।।
नागमती मुख फेरी बईठी। सौंहं न करै पुरुख सौं डीठी।।
ग्रीखम जरत छांडि जो जाई। पावस आव कवन मुख लाई।।
जबहिं जरै परबत बन लागे। औ तेहि झार पंखि उड़ि भागे।।
अब साखा देखिअ औ छाहां। कवने रहस पसारिअ बाहां।।
कोउ नहीं थिरकि बैठि तेहि डारा। कोउ नहिं करै केलि कुरुआरा।।
तूं जोगी होइगा बैरागी। हौं जरि भई छार तोहि लागी।।
काह हँससि तूं मोसौं किए जो और सौं नेहु।
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेंहु।।[1]

आलंबन रतनसेन को एकान्त में पाकर दीर्घकालीन उपेक्षा एव पद्मावती की उपस्थिति के कारण उद्दीप्त रति स्थायी भाव विभिन्न कायिक, मानसिक, वाचिक एवं वैवर्ण्य आदि सात्त्विक अनुभावो के द्वारा अभिव्यक्त हो, असूया, अमर्ष आवेग, हर्ष, गर्व और औत्सुक्य आदि अनेक संचारी भावों के सयोग से मान विप्रलम्भ को अभिव्यक्त कर रहा है। "तुम्हारे मुख पर प्रसन्नता की बिजली चमक रही है और मेरे मुख से विषाद के अश्रुओं की वर्षा हो रही है" में दैन्य, विषाद, आवेग एव असूया की अति प्रबल अभिव्यक्ति है।

मानवती के मान की रक्षा करना नायक का कर्त्तव्य है। अत: रतनसेन उसकी मिन्नतें करते हुए समझाता है। जितना उग्र मान था उतना ही विनम्र मान-भंग का यह प्रयत्न है। मान-मनौवल के इतने सुन्दर उदाहरण बहुत कम है। "हे नागमती, तू तो पहली ब्याही है। तूने उसी प्रकार विरह सहा है जैसे कृष्ण के वियोग मे राधा ने। चिरकाल के पश्चात् आने वाले प्रियतम का स्वागत न करने वाली नारी

---

१. पद्मावत, पृ० ४३२

का हृदय तो पत्थर का ही होता है। पत्थर और लोहे जैसे कठोर पदार्थ भी पूर्व वियोग का स्मरण कर मिल जाते हैं। तू क्यों चुप बैठी है? गंगा का जल कितना ही श्वेत क्यों न हो जमुना का जल भी तो सांवला और अति मीठा है। जब वर्षा का आना निश्चित है तो कुछ दिन की तपन का क्या? यदि कोई किसी आशा से आए तो उसे दर्शन से प्रसन्न करना चाहिए, निराश नहीं। इतना कहकर उसने नागमती को गले से लगाकर मना लिया, फिर क्या था झुलसीं और जली हुई बेलें स्नेह-सिंचन से पल्लवित हो उठीं—

नागमती तू पहिलि बियाही। कान्ह पिति डही जसि राही।।
बहुते दिनन्ह ग्रावै जौं पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ।।
पाहन लोह पोढ़ जग दोऊ। सोउ मिलहिं मन सँवरि बिछोऊ।।
भलेहि सेत गंगा जल डीठा। जउँन जो स्याम नीर ग्रति मीठा।।
काह भएउ तन दिन दस डहा। जौं बरखा सिर ऊपर अहा।।
कोउ केहि पास ग्रास कै हेरा। धनि वह दरस निरास न फेरा।।
कंठ लाई कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींचि पलुहाई।।[1]

स्वयं सदेशे भेज-भेज कर प्रियतम की मिन्नतें करने वाली नागमती के लिए 'जमना जल' की प्रशंसा ही पर्याप्त थी। अब तो प्रियतम ने गले से भी लगा लिया, मान का कलुष घुल गया।

मान के अन्य छोटे-मोटे उदाहरण कई स्थानो पर मिल जाते है। उदाहरण के लिए कुतबनकृत 'मृगावती' में रुपमिनी पति की प्रतीक्षा में अनेक स्वप्न देख रही थी। अन्ततः वह दिन भी आया जब दुर्लभ सदेशवाहक ने प्रियतम के आने का सदेश दिया। हर्षातिरेक में उस आगमिष्यत्पतिका नायिका की कचुकी तार तार हो गई, परन्तु पति को अपने पास आया देख मानवती बिना मान के आत्मसमर्पण नही कर सकती। सजी धजी वह एक ओर खड़ी हो गई—

कुंअर कहा कस नियर न आवहु। कहिसि किरितघन डीठि मेरावहु।।
बोलत लाज न आवइ तोही। नैन सौंह कै बोलसि मोही।।
बरय भुजन कर गहना, कुच मांडन बहु ढीठ।
त्रिभुवन बीज बांधी हौं, दै जौ गए मोहि पीठ।।[2]

कुंवर तो यह सब कुछ जानता था। उसने रुपमिनी का दुकूल पकड़ा, नायिका ने पिता की शपथ दी, परन्तु किया क्या जाए? अब सखी ने भेज ही दिया है तो न चाहते हुए भी निष्ठुर से मिलना पड़ेगा।[3]

यही स्थिति नायिका चित्रावली ने भी उपस्थित कर दी। उसे छोड़ नायक कौलावती के पास जो चला गया था, चित्रावली ईर्ष्यामान से जल रही थी—

---

१. पदमावत, पृ० ४३३

२-३. मृगावती, पृ० ३२१, ३२१

चित्रावलि पुनि जी हठ ऐसी। पीठ दिये घूंघट कै बैसी ।।[1]

राजा ने विनय की, हाथ पकड़ना चाहा, क्रुद्ध नायिका ने झटक दिया—

गहु न हाथ रे बावर जोगी। तासों लागु होइ तोरे जोगी ।।

× × ×

तू भिखारी हौं राजा बारी। राज भिखारिहि कौन चिन्हारी ।।

× × ×

जूठ अधर औ कपटी हीआ। नागेसर रस चाहे पीआ ।।

× × ×

जोगी जो घर घर परसादी। जोगी नाहिं आही रसबादी ।।

× × ×

तुम्र सँग सुंदरि नारि एक, परगट सूझै मोहिं।
रूप सलोना आपना, काह देखवौं तोहि ।।[2]

कुंअर ने शिव की शपथ ली तब कहीं कामिनी मानी। इनमें से प्रथम उदाहरण का मान, ईर्ष्या एवं प्रणयजन्य था, द्वितीय उदाहरण में रुपमिनी का मान केवल प्रणयजन्य एवं चित्रावली का मान केवल ईर्ष्याजन्य कहा जा सकता है।

प्रवास—प्रवास विप्रलंभ का वर्णन इन काव्यों मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है। शास्त्रकारों ने प्रवास के तीन कारण—शाप, भय और कार्य बताए हैं परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानों में अनेक बार भाग्यवश भी प्रवास होता है। मंझनकृत 'मधुमालती' में मालती की माता उसे शाप देकर पक्षी बना देती है और मालती वियोग में तड़पती है। माधवानल कामकंदला चक्र में माधव राज भयवश कामकंदला का त्याग कर चला जाता है जिस से दोनो को ही वियोग की ज्वाला में जलना पड़ता है। 'बीसलदेव रासो', 'चंदायन', 'पदमावत', 'मैनासत', 'इन्द्रावती' आदि रचनाओं का प्रवास कार्यवश माना जा सकता है परन्तु 'मृगावती', 'छिताई चरित', 'ज्ञानदीप, 'नलदमयन्ती' प्रभृति रचनाओं में शाप न होकर भाग्य का अभिशाप ही प्रवास का कारण है। कारण कुछ भी हो सर्वत्र प्रवास अवधि-रहित है। नायक-नायिका दोनो ही इस निरवधि-शिला के गुरुवार से पिसते है परन्तु अपने प्रेम पर अगाध विश्वास ही इन्हें करुण वियोग की अवस्था मे पहुंचने से रोकता है।

बीसलदेव के चले जाने पर राजमती को विरह असह्य हो गया। दीर्घकालीन प्रवास, वर्षा की भयानकता तथा एकाकीपन से उद्दीप्त वाचिक अनुभाव के द्वारा अभिशप्त रति का साक्षात्कार होता है। अमर्ष एवं विषाद प्रभृति संचारियों के संयोग से इन पंक्तियों में प्रवास वियोग की सुन्दर अभिव्यंजना द्रष्टव्य है—

---

१. चित्रावली, पृ० २०३

२. वही, पृ० २०४

भादरवइ वरसइ गुहिर गंभीर।
जलथल महिअल सहि भर्या नीर।
जाणि कि सायर ऊलट्यउ।
निस अंधारी बीज षिवाइ।
बादल धरती स्यं मिल्या।
दुइ दुष नल्हकं सहणाजाइ॥[1]

राजभय से निकले माधव के विरह में असहाय कामकंदला की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई। सूर्योदय होने पर वह रात्रि की प्रतीक्षा करती है और रात्रि के अन्धकार में सूर्योदय की, न उसे दिन में चैन था और न रात मे। उसका शरीर वर्षो का रोगी प्रतीत होता था। उसकी विरहाकुलता के निम्नोद्धृत चित्र में सात्विक, कायिक, वाचिक, आहार्य अनुभावों एवं दैन्य, आवेग, विषाद, ग्लानि, स्मृति, चिन्ता आदि अनेक संचारियों के संयोग से, पुष्ट आलंबनाश्रित रति का, वियोग श्रृंगार में, मनोहर परिपाक द्रष्टव्य है—

कामकंदला भई वियोगिनि। दुर्बल जनू वर्स की रोगिनि॥
अंजन मंजन भोग बिसारे। सजल नैन बहैं जल के नारे॥
वस्त्र मलीन सीस नहीं धोवे। लंक टेक माधौ मग जोवैं॥
नींद न भूख न भावै पानी। काया छीन दीन मुख बानी॥
हा हा आइ स्वास के गाढे। छिन-छिन बिरह अनल तन बाढै॥

हा हा प्रान न संग गये, जब बिछुरे भावंत।
कर मीजै बस्तर धुनै, गहै अँगुरिया दंत॥[2]

विरह की व्यथा ऐसी ही होती है। उसमें न तो नींद ही आती है और न पानी ही अच्छा लगता है। शाप से मुक्ति पाकर मधुमालती प्रियतम के लिए और अधिक व्याकुल हो उठी। प्रियतम की खोज में सहायता करने वाली सखियों को दिए गए उसके संदेश में धृति, औत्सुक्य, गर्व, मति प्रभृति संचारियों से पुष्ट नायकविषयक रति वियोग श्रृंगार के रूप में अभिव्यंजित सहृदय को रससिक्त करती है—

भइउं रेनु मगु पिय तोहि ताई। मकु कैसेहुँ लागहुं तुम्ह पाई॥
जौ घर हुते जिउ निसरै मोरा। तौ घर हुतें दुख जाइ न तोरा॥
पेम बिछोह देहु जनि नाहां। करहु जो तुम्ह भावै चित माहां॥
जौ सइ हाथ मारु पिय मोही। सौ जिउ देउं एक का तोही॥
जौ कलि जीउ दिए पै मोरें। कस न मुएउ जिउ तोहि निहोरे॥

---

१. बीसलदेव रासो, पृ० ६४
२. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० २०४

तुम मंत जानहु बिछुरे, घटै पिराना नेहु।
जेउं जेउं बाढ़हिं देवहरे, तेउं तेउं अधिक सनेहु ॥[1]

समीक्ष्य काल में करुण विप्रलम्भ की स्थिति विवादास्पद है। करुण रस एवं विप्रलम्भ का निर्णय स्थायी भाव के द्वारा हो सकता है परन्तु श्रृंगार में भी पुनर्मिलन की आशा समाप्त हो जाने की स्थिति में करुण रस का क्षेत्र आरंभ हो जाता है। रति के स्थान पर निराशाजन्य शोक प्रधान हो जाने के कारण ऐसे स्थानों पर विप्रलम्भ श्रृंगार मानना उचित नहीं है। शापजन्य मृत्यु एवं उसके निराकरण की विधि के अज्ञान की अवस्था में अभिव्यक्त विरह ही करुण-विप्रलम्भ का वास्तविक विषय है। इसके उदाहरण प्रेमाख्यान साहित्य में दुर्लभ हैं।

कामदशाएँ

विरह में मनुष्य का मन अनेक प्रकार की परिकल्पनाओं, शंकाओं एवं आशाओं में डूबता-उतरता है। आचार्यों ने इन मानसिक अवस्थाओं को कामदशा की संज्ञा दी है। वियोग श्रृंगार का विस्तृत क्षेत्र होने के कारण हिन्दी प्रेमाख्यानों में रसोद्रेक के लिए अनेकशः इनकी योजना की गई है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

अभिलाषा—प्रिय से मिलन या विवाह की अभिलाषा यदि पूर्ण न हो तो हे विप्र पवन, मेरे शरीर की भस्म तो उस प्रियतम से मिला देना—

कै बिहाय हम गमनव आने, पिय जो न आउ।
विप्र पवन एह छार लेइ, बोन सो करहि मेराउ ॥[2]

राजरानी की अपेक्षा तो अच्छा था कि जाटनी बनती, अपने पति के साथ खेत कमाती एवं उससे हंस-हंस के बातें करती, राजमती की यह अभिलाषा कितनी भावपूर्ण है—

आजणी काइ न सिरजीय करतार।
षेत कमावती सं भरतार।
पहिरिण आछी लोवड़ी।
तुंग तुरा जिम भीड़ती गात्र।
साइ लेती सामुही
हसि हसि बूझती पीई की बात ॥[3]

चिन्ता—चिन्ता विरह को अधिक कष्टदायक बनाती है। मिलन के उपायों को सोचकर नायिका रंभा अपनी असमर्थता पर छटपटाती है—

मार सुमार मार सर कीनी। क्षुधा त्रिषा निंद्रा हरि लीनी ॥
बहु विधि जतनु बिचारत बाला। मदन बान उर लगे विसाला ॥

१. मधुमालती, पृ० ३६४
२. ज्ञानदीप (हस्तलिखित)
३. बीसलदेव रासो, पृ० ६७

नैन मुदित मिसु करि पुनि सोवै । देखिहिं नहिं बहुरि पुनि रोवै ।।
इहि विधि सेज वहे वह धामा । सुकल रैन अरु वे नहीं स्यामा ।।[१]

गुण-कथन – प्रिय न सही, प्रिय के गुणो का कथन कर सन्तोष किया जा सकता है । प्रियतम में अब अनेक गुण दिखाई देते है, मैना का स्वामी अत्यन्त वीर है, वह प्रिय है —

तोरु अंबरांउ राखि केउ पारा । विरसु आई पिउ आंब सुहारा ।।
न जानौ करहु कौन वन रहा । सुरिजन मोको सुनौ तोर कहा ।।

× × ×

आवहु सुतरै बीर गुसाईं । घर होइ भानु तपै बिनु साईं ।।[२]

स्मृति—दिन रात प्रियतम का ही स्मरण करने वाली जवाहर को यह भी पता नही कि प्रियतम कहां है अन्यथा पाती ही भेज देती—

कँवल सो शोच जरै दिन राती । कन्त कहां जो पठऊँ पाती ।।
मोहिं कर नार जो जन्म अभागी । कन्त चला मैं संग न लागी ।।
कियो न ब्याह रह्यो न बारी । अधजल मांद दई मोहिं डारी ।।[३]

उद्वेग—मन की अशान्त अवस्था में सुखद वस्तुएं भी दुखद प्रतीत होती है । यह उद्वेग दशा प्रायः सभी को व्यथित करती है इन्द्रावती की यह स्थिति अति कष्टकर है—

सुन्दर बाक मनाक न भावै । गगन चाक उदबेग सतावै ।
विरह आग सों भै उर दाहू । धन ससि कहं भा मंदिर राहू ।।
भावर लाय न सिच्छा मानी । छिन-छिन कहै आन की बानी ।[४]

प्रलाप—जब उद्विग्नावस्था मे मन पर काबू नहीं पाया जा सकता तो प्रलाप की अवस्था आ जाती है । हिन्दी प्रेमाख्यानों में यह अवस्था अधिक विस्तार से वर्णित हुई है । विरहिणी मारवणी अनेक बार संदेशे कहती और फिर उन्हे बदलती है ।[५] वह प्रियतम को कहला भेजती है कि यदि इस फाल्गुण मास मे तुम न आए तो चर्चरी नृत्य की बहाने होली की ज्वाला में गिर पड़ूंगी—

फागुन मासि बस तरुत आयउ जई न सुणेसी ।
चाचरि कइ मिस खेलती, होली झंपा वेसी ।।[६]

उन्माद—विलाप एवं प्रलाप के भी निष्फल हो जाने पर उन्माद स्वाभाविक

---

१. रसरतन, पृ० ४६
२. चांदायन, पृ० ३५०
३. हंसजवाहर, पृ० १२२
४. इन्द्रावती, पृ० १४६
५-६. ढोलामारू रा दूहा पृ० ४०, ३२

ही है। जवाहर प्रियतम को हेरती-हेरती अपने आपको ही भूल गई है। उन्माद के कारण उसकी विक्षिप्त अवस्था सहृदय को व्यथित कर देती है—

हेरत पिउ धन आप हिरानी। तन भूली मन ज्ञान भुलानी ॥
रोवत भई जोगन के भेसा। उघरा गात छूट गये केसा ॥
लाज खोय निकसी बनवारा। बन पांखी तें करै बिचारा ॥[1]

व्याधि—यह दशा नायिका के शरीर को आभाहीन एवं पीतवर्ण कर देती है। नायिका कई वर्षो की व्याधिग्रस्त प्रतीत होती है। व्याधि दशा में चित्रावली की विवर्ण अंगयष्टि का वर्णन इस प्रकार है—

एहि बिधि बीते जो दिन चारी। निसि धौराहर दिन चित सारी ॥

× × ×

रूप मलीन बदन पियराना। अंचल दीप न रहै छिपाना॥
आनन पियर तेज बिनु गाता। लखि चरची मुख हेरा माता ॥[2]

जड़ता—दुख की असह्यता नायिका को जड बना देती है। वह अपने आपको भूल' जड़ता' की अवस्था मे पहुंच जाती है। रभा की ऐसी ही दशा है—

नैन तार उघरैं नहीं काऊ। मनौ गये पिय पास अगाऊ ॥
बैन बोल रसना नहीं आवै। प्रान भाव नासिका बतावै ॥
श्रवनन सुनै बोल सहचारी। परस कठोर सहै सुकुमारी ॥
मृतक तुल्य जीवनि इमि देषि। मनहु नृजीव बिरह बस लेषी ॥[3]

मरण—मरण की अवस्था का वर्णन रसभंग के भय से काव्य में नही किया जाता,मृत्यु की कामना ही मरण अवस्था मानी जाती है। विरह में अपनी असहायता एवं नायक की निष्ठुरता के कारण अनेकशः ऐसी उक्तियाँ एवं प्रार्थनाएं मिल जाती है जिनमें मरण का वर्णन होता है—

नौती ढारि गएउ हम नाहां। मारेउं तन गाडेउं हिय माहां ॥
का करिहौं बिनु जिय लै कया। जिउ लै कंत बिसारी मया ॥[4]

शरीर जीव के बिना किस काम का ? जीव तो कंत साथ ही ले गया है। यही बात मंझनकृत 'मधुमालती' में नायिका मधुमालती कुमार को सदेश भेजकर अपनी मरणासन्न दशा बताती हुई कह रही है—

कया जौ नहि पहुंचे तुम्ह ताई। जिउ निसि दिन तौ संघ गोसाई।
जब सेउ मैं तुम्ह बिछुरी, मुइयं बिसूरी बिसूरी।
जिउ तुम्हरे चरनन तर जइ सरीर सेउं दूरी ॥[5]

---

१. हंसजवाहर, पृ० १३५
२. चित्रावली, पृ० ५०-५१
३. रसरतन, पृ० ५१
४. मृगावती, पृ० २६२
५. मधमालती, पृ० १६२

मैं खेद करते-करते मर गई हूँ, मेरा शरीर चाहे तुम से दूर है परन्तु जीव तुम्हारे चरणो में है।

नायकों का विरह

विरह के सन्ताप से केवल नायिकाएं ही नही नायक भी व्याकुल रहे है। कवियों ने उनकी व्यग्रता, उद्विग्नता एवं कृशता का वर्णन बड़ी रुचि से किया है। प्रिया पद्मावती के वियोग में सन्तप्त लखमसेन उसी के नाम की रट लगाता हुआ वन-वन में घूमता फिरा, उसने अन्न-जल का त्याग कर दिया। पीड़ित होकर सारे संसार को धिक्कारने लगा—

बन बन राय ममतउ फीरइ, पद्मावती वयण ऊचरइ।
हा ध्रिग ध्रिग कहइ संसार, न पीयइं नीर न लीयइ अहार ॥[1]

'पदमावती' में पद्मावती को शिवमंदिर में देखते ही रतनसेन मूर्छित हो गया। पद्मावती उसके वक्षस्थल पर कुछ लिखकर चली गई, जागने पर वियोगी रतनसेन की प्रेमव्यथा हिलोरें मारने लगी। इस प्रसग के मनोरम वर्णन द्वारा वियोग शृंगार की मार्मिक व्यंजना हुई है—

रोवै रतन माल जनु चूरा। जहाँ होइ ठाढ़ तहां कूरा॥
कहाँ बसत सो कोकिल बैना। कहां कुसुम अलि बेधै नैना॥
कहाँ सो मूरति परी जो डीठी। काढि लीन्ह जिउ हिएँ पईठी॥

× × ×

टपकै महुव आंसु तस परई। होइ महुवा बसंत जेउँ झरई॥
मोर वंसत सो पदुमिनि बारी। जेहि बिनु भएउ बसंत उजारी॥[2]

प्रस्तुत स्थल में नायिका का अपूर्व सौंदर्य आलम्बन तथा उसी के द्वारा स्नेह-पूर्वक लिखे अक्षर उद्दीपन हैं। फलतः रुदन, गुणकथन तथा प्रलाप आदि सात्त्विक एवं वाचिक अनुभावों द्वारा प्रतीयमान 'वियोग-रति' ग्लानि, दैन्य, स्मृति तथा विषाद आदि संचारी भावों के द्वारा परिपक्व होकर अभिव्यंजित हुई है।

इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी प्रेमाख्यानों में शृंगार-रस का अनेकशः बहुविध पारिपाक हुआ है। इसके सभी पक्ष इन प्रेमाख्यानों में उपलब्ध हो जाते हैं।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में शृंगार-व्यंजना

पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य में भी मुख्य रस शृंगार ही है, परन्तु वहां वियोग की अपेक्षा संयोग का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। संघर्ष-प्रधान होने के कारण इन

१. लखमसेन पद्मावती कथा, पृ० ४०
२. पदमावत, पृ० १९२

रचनाओं में समग्र रूप से रस का वैसा प्रसार भी नही है जैसा कि हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्राय: देखने को मिलता है।

आलम्बन चित्रण

नायिका—रस की भूमि आलम्बन विभाव है। नायिका एवं नायक का रूप ही शृंगार रस का आधार होता है पंजाबी प्रेमाख्यानों में परकीया नायिका को ही आलम्बन बनाया गया है। स्वकीया अथवा सामान्या नायिका का वर्णन पंजाबी रचनाओं में नही के बराबर है। कुछेक रचनाओं में जब विवाह के अनन्तर नायिका स्वकीया बनती है तो कथा समाप्त हो जाती है फलतः उसके इस रूप एवं हाव-भाव के आस्वादन से सहृदय वंचित रह जाते हैं। 'यूसफ-जुलेखा' सम्बन्धी रचनाओ में नायिका जुलेखा स्वकीया बनती है परन्तु कथा वहीं पर समाप्त हो जाती है। 'सस्सी-पुन्नू' एवं 'सैफुलमुलूक' अवश्य ऐसी रचनाएं है जिनमें नायिका को स्वकीया बनने का सौभाग्य मिलता है और वे अपने प्रेमी के साथ आनन्दपूर्वक रहती हैं। परकीया नायिकाएं भी पर्याप्त समय तक अनूढाए ही रहती हैं। कथा के अन्तिम चरण में किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह हो जाने पर भी ये एक प्रकार से अनूढाए ही कही जा सकती है, यह बात चरित्र-चित्रण के प्रसंग में स्पष्ट की जा चुकी है।

जुलेखा के संयोग-वर्णन के अभाव में यह कहना कठिन हो जाता है कि वह मध्या है या प्रगल्भा। अनुमान लगाया जा सकता कि जीवन भर पति की कामना करने वाली यह नारी कम से कम मुग्धा तो हो नहीं सकती। परकीया भाव में जुलेखा की काम-चेष्टाओं को ध्यान में रखते हुए उसे प्रगल्भा नायिका कहना ही तर्कसंगत है। 'सैफुलमुलूक' के मिलन की प्रतीक्षा करती बदीउलजमाल भी प्रगल्भा नायिका ही है। शहजादे को देखकर वह उठ खड़ी हुई, प्रियतम की भुजा पकड़ कर उसे शय्या पर बिठाया और प्रियतम का चुम्बन आरंभ कर दिया—

पलक-पलक दा सरफा मैनूं, रब्ब शाहज़ादा भेजे।
दाइआं माइआं सभ उठि जवण यार चढ़े झट सेजे।

× × ×

बाहों पकड़ि बहाइओस सेजे तेगि इश्क दी कुट्ठी।
आशिक पे माशूक पिआरे चढ़ि सेजे ते सुत्ते॥[1]

इस वर्णन में बदीउलजलमाल स्पष्टतः प्रगल्भा स्वकीया के रूप में ही वर्णित हुई है।

पंजाबी साहित्य की परीकीया नायिकाएं यद्यपि अनूढ़ा अथवा कन्याएं हैं परन्तु

---

१. अर्थ—मेरे लिए प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। ईश्वर ने राजकुमार को मेरे पास भेजा है। धाय एवं सखिया सभी उठ जाएं ताकि प्रियतम शैय्या पर आ जाए। प्रेम की तलवार से घायल राजकुमारी ने प्रियतम को भुजा पकड़ शैया पर बैठा लिया और दोनों आनन्द मग्न हो गए।

—सैफुलमुलूक, पृ० ६१३

उनमें कन्या-सुलभ लज्जा आदि गुणों का सर्वथा अभाव है। ये नायिकाएं एक प्रकार से साहित्याचार्यों के 'सामान्या' के लक्षणों के अधिक समीप बैठती हैं यद्यपि सामान्या के समान अनेक पतित्व इनमे नहीं। ये निश्चित रूप से 'सत्यानुरागिणी मदनायत्ताएं' हैं। अपने प्रेमी को निमंत्रण देते समय हीर का प्रगल्भा रूप ही सामने आता है। सभी सहेलियों को झूला झूलने के लिए भेजकर स्वयं रांझे को पकड़ पलंग पर बिठा लिया और अपना प्रेम निवेदन कर दिया—

हीरे सभ उठाईआं कुड़ीआं हस्सी दूर बहाई।
उठहु पीघां उत्ते वंजहु इत्थे बहहु न काई।
आप अकेली होई छोहिर हस्सी दूर बहाई।
आख दमोदर नप्प रंझोटा धिन्न पलँघ पर आई।[1]

हीर स्वयं दूतिका नायिका है। उसका यह स्वरूप प्रायः सर्वत्र समान ही है। मुकबल की रचना में नायक राँझा प्रथम दर्शन के समय हीर को छोड़कर चलने लगता है तो हीर उसका वस्त्र पकड़कर आंसू बहाती और दीर्घ निःश्वास लेती हुई प्रणय निवेदन करती है।[2] सामाजिक मानमर्यादाओं के बंधन में बंधे आचार्य इस असामाजिक रूप के नाम के विषय में सोच ही नही सके। सगाई करने मात्र से इन नायिकाओं में वह रोष एवं आवेग देखा जा सकता है जो एक खडिता नायिका में उपलब्ध होता है। हीर, सोहणी दोनों का यह रूप सभी रचनाकारों ने चित्रित किया है। परन्तु प्रेम-सम्बन्ध के आरंभिक काल में सोहणी का व्यवहार अवश्य अपवाद है। हाशम ने विरह में क्रमशः कृश होते हुए नायक के शरीर और यौवनोल्लास से नित्यप्रति वर्धमान अज्ञातयौवना सोहणीं के वयःसन्धि-जन्य सौन्दर्य की तुलना कर अतीव सुन्दर चित्र उपस्थित किया है --

पाइआ आण जुआनी जोबन होर दिहों दिहु जोरा।
समझी होग महबूबां वाली, लाड़ु गुमान नहोरा।
मेहींवाल तिवें तिव आजिज़, रोज़ वधे ग़म झोरा।
हाशम चंद पइआ नित वाधे, घटदा नित चकोरा।[3]

यहां यौवन के उल्लास से अनजान मुग्धा नायिका का वर्णन करते समय उसके प्रणय-गर्व एवं अचेत उपालम्भों का संकेत कर 'मौग्ध्य' की व्यंजना की गई हैं। इसी प्रकार कादरयार ने भी आलम्बन रूप में अज्ञातयौवना सोहणी का सुन्दर वर्णन किया है।[4]

विवाह के अनन्तर सोहणी एवं हीर के अभिसारिका रूप को भी आलम्बन बनाया

---

१. हीर दमोदर, पृ० ६१-६२
२. हीर रांझा (मुकबल), पृ० ११
३. हाशम रचनावली, पृ० ५७
४. कादरयार, पृ० ६६

गया है । परन्तु अभिसारिका का वर्णन किसी रचना में नही मिलता केवल संकेत-मात्र है—

इक रात चल्ली सोहणीं यार वल्ले, सोहणां हार शिंगार लगा बेली ।[1]

वासकसज्जा जुलेखा का अति सुन्दर चित्र हाफिज बरखुरदार ने प्रस्तुत किया है, प्रेमी की कामना में यह बनाव-सिंगार दर्शनीय है—

हार हमेलां चूड़े जे कुझ आहा साज जनाना ।
अ ब अतर मिलाइआ बीबी फिरिआ होर ज़माना ।
तेल फुलेल दंदासा सुरमा मस्सी दंदीं लाई ।
मांग सधूर वणे सिर सालू बादशाहां देवाले ।[2]

इसी प्रकार हीर भी अपने प्रेमी योगी रांझे से मिलने के लिए वासकसज्जा नायिका के समान पूर्ण शृंगार रचाकर ही जाती है—

हीर नहाए के पट्ट दा पहिन तेवर, वालीं अतर फुलेल मलांवदी है ।
वल्ल पाइ के मेढ़िआं कालीआं नूं, गोरे मुख ते ज़ुलफ लम्हकांवदी है ।
कज्जल भिन्नड़े नैण अपराध लुट्टे, दोवें हुसन दे कटक लै धांवदी है ।

× × ×

सिरी साफ संदा ओछरण पहिन उत्ते, कन्नीं बुक-बुक वालीआं पांवदी है ।[3]

संयोग के लिए आतुर इन वासकसज्जाओं के संसार से बाहर निकल कर देखें तो वियोगिनी नायिका की हृदयबेधी प्रतिमा झकझोर देती है । प्रोषितभर्तृका सस्सी ने शृंगार तोड़कर सिर पर खाक मल ली, उसके लिए संसार ही बदल चुका था—

नैण उघाड़ सस्सी जद देखे, जाग लइ सुध आई ।
वाहद जान पई उह नाहीं नाल सुती जिस आही ।
ना ओह ऊठ न ऊठां वाले, न उह जाम सुराही ।
हाशम तोड़ शिंगार सस्सी ने, खाक लई सिर पाई ।[4]

बाग उजड़ने के कारण क्रुद्ध सस्सी का क्रोध पून्नूं के आगमन के संदेश से ठंडा हो गया । जिस पुन्नूं को बुलाने के उपाय वह कर रही थी उसके आने का समाचार कानो में पड़ते ही सब दु.ख भूल गई, हृदय में एक अज्ञात वेदना उठी, सूखती बेल ईश्वरीय कृपा की वर्षा से लहलहा उठी । आगतपतिका का यह चित्र भी अत्यन्त मनोहर है ।[5]

---

१. सोहणी महीवाल (फज्लशाह), पृ० ३८
२. यूसफ जुलेखा, पृ० ११५
३. हीर वारिस, पृ० १७५
४. हाशम रचनावली, पृ० ६६
५. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० ७०

आलम्बन-चित्रण करते समय नायिका के रूप का वर्णन करने में पंजाबी कवियों ने विशेष रुचि ली है। पंजाबी प्रेमाख्यानों में यद्यपि अंगसौंदर्य का सविस्तार वर्णन नही है, तथापि उनकी मादकता एवं घातकता का वर्णन लगभग समान ही है। 'नायिका का सौंदर्य' मदोन्मत्त हाथी के समान अली-अली करता हुआ सभी में भगदड़ मचाता है। वह स्वयं कमान पर चढे तीर के समान प्रहार करने को उद्यत है। उसका इश्क घटा बांध कर हाहाकार मचाता आता है।[1] प्रायः यह घातकता एवं मादकता सभी कवियो के आलम्बन चित्रण का मुख्य वर्ण्य है—

जो वेखे बेताब हो जावे, जावे नहीं सलामत।
पलकां तीर कमानां अबरू मिसल की उस तरहां दी।
× × ×
चीते समझ चुपीते नट्ठे जालिम चाल कटक दी।[2]

उसको देखने वाला व्याकुल हो जाता है। भ्रुवो और पलको के तीर-कमान को देख चीते भाग गये, इस सौंदर्य-सैन्य की गति अत्यन्त घातक है।

बरखुरदार एवं वारिस के आलम्बन चित्रण में कई बार नारी की कोमलता एवं मधुरता के भी दर्शन हो जाते हैं परन्तु, दुखान्त रचनाओं मे सौदर्य के घातक स्वरूप का वर्णन ही अधिक उपयुक्त बैठता है। यही कारण है कि नारी की निन्दा एवं उसके सौंदर्य के घातक रूप के वर्णन में इन कवियो ने अधिक रुचि ली। हाफ़िज बरखुरदार ने जुलेखा के मोहक रूप का वर्णन करते समय पेचदार जुलफों, लालमोतियों जैसे होंठों चमकदार नयनों एवं दाँतों के सौदर्य की प्रशंसा की है[3], तो वारिस ने उसे शराब के रंग के समान मादक, जील के तार से निकले राग के समान मोहक बताते हुए भी अनेक अंगों का सौंदर्य ग्रामीण वातावरण के चिरपरिचित उपमानों से स्पष्ट कर उसके घातक प्रभाव पर ही अधिक बल दिया है। खूनी चूंडियां (जुल्फें), लाहौरी कमान के समान भ्रुवें, तलवार की नोंक के समान नाक एवं समग्र रूप-प्रभाव कंधार से आने वाले सैन्यदल के समान है। ऐसे लगता है कि खूनी जल्लाद कत्ल करता हुआ छावनी से निकल रहा हो।[4]

---

१. उह चिल्ले चढी कमान ज्यों मारन हार खली।
× × ×
यां हाथी इशक संधूरिआ करदा अली-अली।
× × ×
हाफज़ इशक आइआ घट बन्ह के पेश करेंदा पेश।

—मिरजा साहिबां (बरखुरदार), पृ० ६

२. अहसनुलकसिस, पृ० १६

३. यूसफ जुलेखा, पृ० ४७

४. हीर वारिस, पृ० १६, १७

आलम्बन के रूपचित्रण संबन्धी इस प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए डॉ० आत्म-जीत सिह् ने लिखा है कि इसका मूल हम उस समय के अस्थिर एवं अशान्त राजनीतिक परिस्थितियों में खोज सकते है। शस्त्रवद्ध युद्ध की भावना उस काल के ज़ीवन के अंग अंग में समा चुकी थी। इसी ने पंजाबी के कवियों के रूप-वर्णन को प्रभावित किया है।[1] हमारे विचार में इसके अतिरिक्त यह प्रवृत्ति फारसी साहित्य के प्रभावस्वरूप भी आई। फारसी साहित्य मे भी इसके प्रचार का वही कारण हो सकता है जो ऊपर डॉ० महोदय ने बताया है। संभवतः समान परिस्थितियों के कारण इसे पंजाबी के अनेक कवियों ने अनजाने ही अपना लिया।

नायक —नायिका की अपेक्षा नायक-चित्रण में इन कवियों ने कम रुचि ली है। यद्यपि मुख्यतः नायिकाएं ही पहले मोहित हुई हैं और इस आधार पर नायकों के रूप का ही विशेष वर्णन तर्कसंगत होता है तथापि आलम्बन-रूप मैं नायक का वर्णन बहुत कम कवियों ने किया है। ये नायक 'अनुकूल' हैं शठ, दक्षिण आदि नायकों के दर्शन पंजाबी साहित्य में नहीं होते। गुणों के आधार पर इन्हे धीरोदात्त के कुछ गुणावगुणों से युक्त 'धीरललित' नायक कह सकते हैं। इनमें मिलने वाले क्रोध एव अविश्वास की भावना ही इन्हें पूर्णतया धीर ललित नहीं बनने देती, पुनः धीरललित में अपेक्षित कला-नैपुण्य भी अधिकांश नायकों में उपलब्ध नही होता।

नायक के रूप-सौंदर्य का चित्रण करने में दमोदर ने अपेक्षाकृत अधिक रुचि ली है, परन्तु यह वर्णन अनेक स्थानों पर बिखरा पड़ा है और कही भी इसमे विस्तार नहीं। रूप-वर्णन की अपेक्षा इन कवियों को उसके प्रभाव का संकेत कर सौदर्य की व्यंजना ही अभीष्ट रही है। अहमदयार ने भी 'अहसनुलकस्सिस' में यूसफ के अंग सौदर्य के ऐसे संकेत ही दिए हैं जिनके द्वारा उसका सामना करना भी कठिन प्रतीत होता है—

जो कोई यूसफ दाओं वेखे, मसत दीवाना थींदा।
वेखण वाले दा मूंह उस विच्च, शीशे हार दसींदा।

× × ×

बुरका रक्खे मुंह ते यूसफ, खलक दीवानी होई।
आशिक हो घर बार विसारन, झाल न झल्ले कोई।[2]

---

१. सतारहवीं-अठारहवीं सदीआं विच दा पंजाबी शिंगार काव्य, (गुरुमुखी में टंकित प्रति.) पृ० १३६

२. अर्थ— जो भी यूसफ की ओर देखता मोहित एवं उन्मत्त हो जाता। देखने वाले का मुँह उसके उज्ज्वल मुख-दर्पण में प्रतिबिम्बित हो जाता। यद्यपि यूसफ मुंह पर बुरका रखता, तो भी लोग उसे देख दीवाने हो जाते थे। वे मोहित होकर घरबार की सुध भूल जाते, कोई भी उसके सौंदर्य को सह न सकता।

—अहसनुलकस्सिस, पृ० ३४

खास अंबर अंबीर मिलाकेते,
चंबा मोतीआ हार हमेल कीते।
चंबे फुल्ल गुलाब महताब रोशन,
चढ़ावणे तेल फुलेल कीते।
फरश सेज दे किउड़े सिउते थीं,
शब-बू खुशबू रवेल कीते।
अहमदयार बहार उभार दित्ता,
दिलां सिकदिआं दे रब्ब मेल कीते।।[1]

संयोग श्रृंगार के विशेष वर्णन के अभाव में पंजाबी प्रेमाख्यान साहित्य मे एतद्विध उद्दीपन सामग्री का वर्णन अधिक नही मिलता। वियोग मे नायक के समीप रहकर भी मिल न पाना ही मुख्य उद्दीपक है। प्रकृति के अतिरिक्त सखी-सहेलियों का भी इस साहित्य मे विशेष वर्णन नहीं। हीर को ही सहेलियां प्राप्त है, जो मायके में उसकी सहायिका हैं। ससुराल मे ननद भी सहायता कर उसके प्रेम को उद्दीप्त करती है। उद्दीपन रूप मे नखशिख, बारहमासा या षड्ऋतु वर्णनों का इन रचनाओ में अभाव है। माता-पिता की उक्तियां, जो अनेकशः आयोजित की गई है, वियोग को उद्दीप्त करने मे असमर्थ है। माता के हाथ में मेंहदी देखकर हीर का विरह उद्दीप्त हो जाता है—

माए इआणी तुध महिंदी आणी, कंदे दसत रगेसी।
हिक दिल आही रांझण लीता, खेडिआं नूं के देसी।[2]

इस पद्य में तो उद्दीपन-अनौचित्य ही झलकता है।

मियां मुहम्मद बख्श ने 'सैफुलमुलूक' मे वियोग-वर्णन करते समय उद्दीपन रूप में प्रकृति की सहायता ली है। हेतूत्प्रेक्षा के माध्यम से वियोग पीड़ा का विस्तार दिखाने में इस कवि ने विशेष रुचि का परिचय दिया है —

नाल अफसोस ओहदे कर बैठा अंबर नीला जामा।
सूरज दा गमनाकी कोलों हो गिआ रग पीला।
सीने दाग चन्ने नूं लग्गा तक के शाह दा रूला।
नित दिहाड़ी कहिदा जांदा कहिदा हाइ मकबूला।[3]

मौ० लुत्फअली ने विभिन्न उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा एवं व्यतिरेक योजनाओं में तो प्राकृतिक उपादानों का उपयोग किया है परन्तु, श्रृंगार पक्ष में उद्दीपन के लिए

---

१. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० ८२
२. हीर दमोदर, पृ० ६८
३. सैफुलमुलूक, पृ० ४८५

प्रकृति को सहायक नहीं बनाया। वास्तव में इस रचना में भी अन्य पंजाबी प्रेमाख्यानों के समान घटना-वर्णन का ही आग्रह है।

'यूसफ जुलेखा', 'अहसनुलकस्सिस' एवं 'सैफुलमुलूक' जैसी रचनाओं मे स्वप्न ही विशेष उद्दीपक है। रसव्यंजना के स्थलों मे प्रसंगानुसार उद्दीपन विभावों की प्रायः कल्पना ही करनी पड़ती है।

अनुभाव-चित्रण

अनुभावों की योजना में पंजाबी के कवियों ने कृपणता नही दिखाई। आलम्बन एवं उद्दीपन वर्णनों जैसी संक्षेपप्रियता इनमे नही हैं। परन्तु ये अनुभाव-चित्रण अन्य आवश्यक सहयोगियों के अभाव में रसपरिपाक में समर्थ नही होते।

कायिक अनुभाव—प्रथम दर्शन के समय रांझे के प्रति हीर के उद्बुद्ध रति-भाव का संकेत भूमि पर लकीरें खींचने एवं आँखें चुराकर देखने से मिलता है। इन पंक्तियों में दमोदर ने कायिक अनुभावों की सुन्दर योजना की है—

तां चोरी वेखे हीर सिआली मूंहों न मूल अलाए।
धरती उत्ते लीकां खट्टे आख न मूंहों सुणाए।[1]

इसी प्रकार प्रेमी पुन्नू का स्वर मात्र सुनकर उल्लास को संभालने में असमर्थ सस्सी का कंठहार उतारकर दान देना भी कायिक अनुभाव ही है—

सस्सी पुन्नूं होत दी सुण के कन्न बलेल।
बखश दित्ती चारवाहिआं गल दी लाह हमेल॥[2]

वाचिक अनुभाव—अपनी विरह-वेदना को उच्च स्वर से प्रकाशित करती हुई सस्सी अपने चीत्कार से दीवारों मे भी छेद करती थी, नायिका की विवशता को प्रकट करने वाली इन पंक्तियो में वाचिक अनुभाव स्पष्ट है—

कंधी छेक पांदी नाल नारिआंदे।
मेरे होत नूं ठग लै गए लोका।
रह गई वांग अल्ला मारिआं दे।[3]

वाचिक अनुभावों की इन रचनाओं में भी कमी नहीं। विवशता, ग्लानि एवं वेदना को हल्का करने का और उपाय भी क्या है? निम्नलिखित पद्य मे योगी रांझे के सामने हीर अपनी असहायता एव प्रेम-विह्वलता को व्यक्त कर रही है—

हीर आखदी जोगीआ झूट बोलें, कौण विछड़े यार मिलाउंदा ई।
एहा कोई न मिलिया मैं ढूंड थक्की, जिहड़ा गिआं नूं मोड़ लिआँउंदा ई।

---

१. हीर दमोदर, रस पृ० ९८
२. कौइलकू, पृ० १०६
३. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृष्ठ ९४

साडे चम्म दीआं करे कोई, जिहड़ा जीउदे रोग गवांउदा ई।
भला दस्सयाँ चिरीं बिछुन्नआं नूं, कदों रब्ब सच्चा घरी लिआँउदा ई।[1]

सदीक लाली रचित 'यूसफ जुलेखा' में जुलेखा प्रस्तर-प्रतिमा के समक्ष आत्म-निवेदन करती हुई मनोकामना पूर्ण करने के लिए कृतज्ञता प्रकट कर रही है। प्रस्तर पूजा के विरोधी इस धार्मिक कवि की नायिका का यह वाचिक अनुभाव इस बात का सुन्दर उदाहरण है कि विवशता में व्यक्ति विधि-निषेधों की चिन्ता नहीं करता। प्रणय की विवशता तो और भी असमर्थ बना देती है—

दिल विच यूसफ मन विच यूसफ अक्खीं यूसफ वेखे,
यूसफ पगड़ पई विच सजदे बुत तों मंगे आखे;
ऐ बुत करां मैं पूजा तेरी बरकत तेरी पाया
यार प्यारा दिलदा साथी इह मैंनूं हथ आया।[2]

संयोग एवं वियोग संबन्धी वाचिक अनुभाव इन रचनाओं में यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते है।

आहार्य और सात्त्विक अनुभाव—वाचिक अनुभावों के ही समान आहार्य अनुभावों के प्रति भी पंजाबी प्रेमाख्यानों के कवि उदासीन नहीं। जुलेखा के इस हार-सिंगार एवं बनाव-ठनाव में आहार्य अनुभावों का स्पष्ट चित्रण है—

लाल जवाहर चोली पन्ना, मेंहदी दस्त लगाई।
अतर फुलेल दंदासा सुरमा, मांग संधूर भराई।

× × ×

होर नगार नग जो कीते जीनत, सुख सुफेदी जरदी।
सारी खूबी ते कुल जीनत कारन यूसफ करदी।[3]

अनेकशः इस ओर उनका ध्यान ही नही गया। मौ० लुत्फअली की विस्तृत एवं समृद्ध रचना में आहार्य अनुभावों की उपेक्षा ही की गई है।[4]

---

१. अर्थ—हीर ने कहा अरे योगी तू झूठ बोलता है, बिछड़े प्रेमियों को कौन मिलाता है। मैं खोज करती थक गई परन्तु ऐसा कोई न मिला जो गए प्रेमी को लौटा लाए। यदि कोई मेरे हृदय का रोग मिटा दे तो उसे मैं अपने चर्म का जूतियां पहनाने को प्रस्तुत हूं। भला बता, तो चिरकाल से बिछुड़े (प्रेमियों को) सच्चा ईश्वर कब लौटा रहा है ?
—हीर वारिस, पृष्ठ : ३५

२. अर्थ—जुलेखा के दिल, मन और आँखों में यूसफ समाया हुआ था। यूसफ को पकड़ कर वह 'बुत' के आगे नतमस्तक होकर कहने लगी, ऐ बुत, मैं तेरी पूजा करती हूं, तेरी कृपा से ही मैने यूसफ को प्राप्त किया है, मेरा प्रिय, मन का मीत मेरे हाथ आया है।
—प्रेम कहानी, पृष्ठ २८८

३. यूसफ जुलेखा, पृष्ठ ७५

४. आसमशाह, सैफुलमुलूक एवं साअद के विवाहानन्तर तीन बार रतिवर्णन में कहीं भी नायक अथवा नायिका की सज्जा का उल्लेख नहीं किया गया।

सात्विक अनुभावों में कम्प, वैवर्ण्य, मुच्छा, स्तम्भ, अश्रु आदि के उदाहरण मिल जाते है परन्तु रसपरिपाक के प्रति विशेष रुचि न होने के कारण इन कवियों में अनु-भाव-चित्रण विशेष मनोहारी नहीं बन पड़ा। अधिकतर ऐसे प्रसंगों में हाय-तोबा मचाने, बाल नोचने, वस्त्र फाड़ने जैसे स्थूल अनुभावों का ही वर्णन हुआ हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

वैवर्ण्य एवं मूर्च्छा—**डिट्ठा महिरम यार कदीमी गिरदी खाके ढट्ठी।**
रंग न रहिआ सुरख गुलाबी, जोत हो वंजी मट्ठी ॥[1]

स्तम्भ— **अहमदयार चुपाती मोई, कानी धस गई कारी।**
होर जवाब सवाल न होए नैण नैणां विच्च मत्ते ॥[2]

पश्रु— **सैफल दरदों दहाय कड्ढी पो हार हंजूवे दाणे।**
बोले बहुँ निमाणा होके बिया रोंदे नैण निमाणे ॥[3]

कम्प— **आवे दरद सजण दा उसनूं, कंबि जमीं पर झड़दी।**[4]

संचारी भाव

पंजाबी प्रेमाख्यानों में भिन्न-भिन्न संचारी भावों की योजना भी देखी जा सकती है।

हर्ष एवं दैन्य—इष्ट प्राप्तिजन्य हर्ष का वर्णन प्रायः हुआ है। हीर को सामने देख रांझे के हर्ष का वर्णन मुकबल ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया है—

वा फजर दी नाल जिउं फुल्ल खिड़दे, तिवें चाक भी फुल्लदा जाउंदा ए।
लख वहियां दे मोए नूं जिंद पई, मुकबल रब्ब दा नाम धिआउंदा ए ॥[5]

ऐसे ही यूसफ का नाम-श्रवण मात्र से प्रसन्न जुलेखा के वर्णन में हाफिज़ बरखुरदार ने हर्ष सचारी की योजना की है—

सुण के नाम्रों जुलेखां फुल्ली वांग खमीरिआं नानां।
सुक्की वेल कीती रब्ब ताज फिरिम्रा होर जमाना ॥[6]

जुलेखा का तो समय बदल गया परन्तु बेचारी कामलिटां अत्यन्त व्याकुल है,

---

१. कामरूप (अहमदयार), पृ० ६४
२. राजबीबी नामदार (अहमदयार), पृ० ७
३. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० २१८
४. सैफुलमुलूक, पृ० ७५
५. अर्थ—प्रातःकालीन समीर से जैसे पुष्प विकसित होते हैं उसी प्रकार रांझा भी खिल उठा। लाखों वर्ष के मृत में जान आ गई।

—हीर रांझा (मुकबल), पृष्ठ ४६

६. अर्थ—नाम सुनने से ही जुलेखा खमीर से फूले नान के समान फूल गई। सूखी बेल ईश्वर ने हरी कर दीं, उसके दिन फिर गए।

—यूसफ जुलेखा, पृष्ठ ५३

देवी के आगे मस्तक झुका कर प्रार्थना करती है, हाथ बांधकर दया की भीख मांगते समय उसकी वाणी में दैन्य संचारी अत्यन्त स्पष्ट है—

रन्नी राणी देवी अग्गे बन्ह के हत्थ खलोती ।
कदे ते कर तूं दैआ असां ते सामर तकदी जोती ।।[१]

औत्सुक्य—रांझे को देखते ही हीर आपे से बाहर हो गई। उसका परिचय प्राप्त करने की शीघ्रता का वर्णन करते समय अहमदयार ने औत्सुक्य संचारी की सुन्दर योजना की है—

दस्स शिताब तेरा की नाओं केहड़ा है टिकाणा ।
जाण न जाण असां इस तेरे दर ते धूआं पाणां ।।[२]

इसी प्रकार प्रियतम के आगमन की उत्सुकता में रानी कामलिटां को रातभर नींद नहीं आई, औत्सुक्य में एक रात एक वर्ष की लगने लगी—

खुशीआं नाल होई रस भिन्नी रौशन जिवें माहताबी ।
रात वरहे दी ऐस उड़ीके राणीं मसां गुजारी ।।[३]

विषाद—रांझे की इस उक्ति में विषाद संचारी की योजना देखी जा सकती है—

नेहुँ लाइके कुझ न बट्टीआ में, ऐवें जग विच्च चाक सदाइआई ।
कुझ तेरे भी जट्टीए वस्स नाहीं, कीता आपणा मुकाबले पाइआई ।।[४]

इन रचनाओं में इनके अतिरिक्त स्वप्न, अपस्मार, श्रम आदि[५] संचारियों के उदाहरण भी अनायास मिल जाते हैं।

---

१. कामरूप (अहमदयार), पृष्ठ ८४
२. गुलदस्ताहीर, पृष्ठ ९३
३. कामरूप (अहमदयार), पृष्ठ ८५
४. अर्थ—प्रेम लगाकर मैंने कुछ भी न पाया। व्यर्थ में ही संसार में चरवाहा कहलाया। अरी हीर जट्टी, तुम्हारा भी कोई वश नहीं। यह तो मैं अपने कर्मों का ही फल प्राप्त कर रहा हूं।

—हीर रांझा (मुकबल), पृष्ठ ५०

५. स्वप्न— कामरूप इक सुफना डिट्ठा, कामलिटां विच खाबे ।
रोवे रो रो कमला होवे रुद्धा इशक शराबे ।।

—कामरूप (अहमदयार), पृष्ठ ६६

अपस्मार— इह गल्ल करके झड़ी जमी ते हो बेताब जुलेखा।

—अहसनुलकस्सिस, पृष्ठ २३

श्रम— सस्सी ढूंढ थक्की घर बाग वेला ।
नही लभदा यार बेजार होई ।

—सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृष्ठ ९८

मति— धुरों लेख जो उस दे नाल मेरे, दसां कौण तूं दर्ए हटा माए ।
तेरे बोल में पाल विखालसांगी, बस्स होर न पई सता माए ।।

—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृष्ठ २८

संयोग शृंगार

इसमें संदेह नही कि संयोग शृंगार का परिपाक करने के लिए पंजाबी प्रेमाख्यानकारों के पास पर्याप्त अवकाश था परन्तु उस ओर उन्होंने विशेष रुचि नही ली। नायक-नायिका पर्याप्त समय तक इकट्ठे रहते है। उनके बीच प्रणय-सम्बन्ध के सकेत भी यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। स्पष्ट है कि किसी प्रकार के सदाचार या वर्जना का पालन इन्होंने नही किया फिर भी संयोग शृंगार का विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति इनमें नहीं। आलिगन, चुम्बन, सुरत एवं सुरतान्त के लघु चित्र इनमें कहीं-कहीं ही मिलते है।

अहमदयार की रचना 'हीर' में नायिका प्रथम दर्शन के समय ही आत्म-समर्पण कर देती है और नायक को चुम्बन एवं नग्न वक्षस्थल के आलिगन का सुख प्रदान करती है---

हीर सिआल कलावा भर के रांझा पलंघ बहांदी।
हार गुलाब रवेल चंबे दा माही दे गल पांदी।
मूहें ते मूंह धरके पुछदी, खोल सीना गल लांदी।
कौन कोई की नांव तुसाडा वतन गिराँ पुछाँदी॥[1]

इस पद्यांश में आलम्बन, उद्दीपन, अनुभावों एवं संचारियों के संयोग से उद्बुद्ध रति संयोग शृंगार के पूर्ण परिपाक में समर्थ हो रही है। प्रकरण से हीन इस सदर्भ में नायिका का प्रथम दर्शन के समय ही यह समर्पण संभवत: कुछ सहृदयों की शील-चेतना-उद्वेलित कर उन्हें सरस न कर सके, परन्तु स्वप्न के अनन्तर उसी आशा में बैठी नायिका स्वप्न-पुरुष को साक्षात् प्राप्त कर उसे यदि गले लगा ले तो आश्चर्य ही क्या है!

चिर प्रतीक्षा के अनन्तर मिलने वाले प्रियतम से गले मिलते समय दो हृदयों के मध्य तो शरीर का व्यवधान भी असह्य है, अलंकार तो एक ओर। सैफुलमुलूक से आलिगनबद्ध बदीउलजमाल गले का हार एवं बलाक आदि सभी अलंकार उतार लेती है—

सीने ला मिले दिल दिल नू, मूंह मिले सन मूहाँ।
हार हुमैल गए हट पिछे झबदे लूड़न लूहां।
सिकदे दिल दिलाँ नूं मिलदे जिस दम करके धाई।
विच्च हजाब न भावे तन दा, जेवर किस दी जाई।
खार लगण तद हार हुमेलाँ, मिलण न देंदे छाती।
नत्थ बलाक पिआरों छप्पण, चाहीए रमज़ पछाती।[2]

आलिगन के समय एक ओर तो चिरप्रतीक्षित प्रियतम के सामीप्य का आह्लाद

---

१. गुलदस्ताहीर, पृष्ठ ९३
१. सैफुलमुलूक, पृष्ठ ५९६

और दूसरी ओर नई पहनी चूड़ियों के टूटने की आशंका व्यक्त कर संभवतः नायिका साहिबां आलिंगन को और भी प्रगाढ़ बनाने का निमंत्रण दे रही है। कवि पीलू के इस संयोग-चित्र में असीम संयम के साथ रति का परिपाक हुआ है—

मिरजा फुल गुलाब दा मेरी झोली टुट पिआ।
न फड़ बाहीआँ घुट्ट के वंगा जाँदीआँ भज्ज।
कल मैं चीर चढ़ाईआँ पैहन न वेखीआँ रज्ज॥[1]

आलिंगन के असीम आनन्द के साथ-साथ नारी-सुलभ लज्जा एवं संकोच के ऐसे वर्णन पंजाबी साहित्य में अत्यन्त विरल है। केवल कथन मात्र से ही सूचना देने की प्रवृत्ति के कारण पंजाबी साहित्य में ऐसे सरस प्रसंग उपलब्ध नहीं होते। दमोदर ने हीर एवं रांझे का एक स्थान पर इकट्ठे सोने का वर्णन किया है—

अग्गे जल्हर उत्ते दोवें सुत्ते, किउं कर कीचे भाई।
वेखदिआं फिर मुड़िआ पिछाँ, आई लज्ज तिवाइ॥[2]

उन्हें देख लज्जित पिता पीछे लौट आया। मुकबल ने भी इसी प्रकार का उल्लेख किया है—

हीर राँझे नूं नाल पिआर दिल दे, नाल शौक दे गले लगाइआ ए।
शौक यार दे नाल हिआत रहिंदे, मुकबल आशकाँ तुआम ना खाइआ ए।[3]

ऐसे वर्णनों में रस की अभिव्यंजना का प्रश्न ही नहीं उठता।

पंजाबी प्रेमाख्यान साहित्य में सयोग वर्णन की विरलता सदाचार की किसी उच्च परम्परावश आई, ऐसा सोचना अनुचित है, क्योंकि छुट-पुट अश्लील सकेत इन रचनाओं मे सर्वत्र उपलब्ध होते है। इसका कारण संभवतः इन कवियों की वियोगाभिमुख रुचि ही है। चाहते हुए भी इन कवियों ने नायक-नायिका के सयोग का वर्णन नही किया। मिट्ठी नाइन के घर हीर एव रांझा मिलते है। वहां केवल संकेत द्वारा उनके संभोग का वर्णन है—

मिट्ठी सेज बिछाइ के फुल्ल पूरे
उप्पर आँवदा कदम खुदाईआँ दा
दोवें हीर राँझा राती करन मौजाँ
मझी खाग खड़ीआँ सिर साईआं दा।[4]

वैसे हीर अपने प्रेमी को अनेक क्रीड़ाएं कर रिझाती है। सभी सहेलियां जल-क्रीड़ा के समय राझे पर अपना प्रभाव डालती है—

१. बबीहा बोल, पृष्ठ १०५
२. हीर दमोदर, पृष्ठ ८४
३. हीर रांझा (मुकबल), पृष्ठ १६
४. हीर वारिस, पृष्ठ ४२

ओह वंझली नाल सरोद करदा हीर नाल सहेलीआं गाँवदी है।
रांझे नाल झनाउं दरिआए उत्ते रल होइ इकल्लिआं न्हांवदी है।
कोई जुलफ निचोड़दी रांझणे ते, कोई नाल कलेजे बे लांवदी है।
कोई चंबड़े लक्क नूं मुशक बेड़ी, कोई मुख नूं मुख छुहांवदी है।[1]

इस वर्णन में आलिगन एवं चुम्बन की खुली छुट्टी है परन्तु उन सबके प्रभाव को विविध विलास-क्रीड़ाओं से समाप्त कर हीर रांझे को अपने जाल में फंसा लेती है। उसके चारों तरफ तैरती है और उसे रिझाती है—

हीर तरे चौतरफ रंझोटेड़े दे मूई मछली बणे बण आंवदी है।
आप बणे मछली नाल चावड़ां दे मीएं रांझे नूं कुरल बणांवदी है।
ओस तखत हजारे दे नढड़े नूं रंग रग दीआं जालीआं पांवदी है।
वारिस शाह मीआं जट्टी नाज़ करे नित यार दा जीउ परचांवदी है।[2]

वारिस ने नायक-नायिका के संयोग के ऐसे ही संयमपूर्ण वर्णन द्वारा रति क्रियाओं के संकेत मात्र दिए है। निश्चय ही ये कवि संयोग वर्णन में रुचि नही लेते। सोहणी-महीवाल के मिलन में भी संयोग-वर्णन का अपार अवकाश था, जब लोग आराम की नीद सोते थे महीवाल नदी तैर सोहणीं के पास आता, वह भी उसकी प्रतीक्षा में बैठी रहती। मिल जुल कर दोनों कुछ खाते-पीते और लौट जाते—

खाण दोवें रल कादरा लज्जत हुंदी तां ;

× × ×

खातर कर के ओस दी मेहींवाल भवें।
फेर झनां नूं लंघ के जाई मकान सवें।[3]

घाव के कारण जब सोहणी ने महीवाल को आने का निषेध कर स्वयं जाना आरंभ किया तब वह घड़ा लेकर यार के दीदार के लिए जाती—

नित घड़ा लै के ठिल्ह पार जावे करे यार दा जा दीदार जानी।
मुड़दी वार लुका के रख आवे, घड़ा बूटिआं दे विचकार जानी।।[4]

सुरत-पूर्व की क्रियाओं के ही समान सुरत-वर्णन भी पंजाबी-साहित्य में अत्यन्त विरल है। अहमदयार ने 'सस्सी पुन्नूं' में लक्षणा की सहायता से प्रेमी-प्रेमिका की रतिक्रीड़ा का वर्णन किया है। आत्मा एवं शरीर दोनों एक हो गए, चित्र के समान दोनों का शरीर एक हो गया, प्रेमी एवं प्रेमिका किसी 'पाक' के समान एक रस हो गए। उन प्रेमियों की शय्या पूर्ण चन्द्र के समान आनन्द की वर्षा करने लगी—

---

१. हीर वारिस, पृष्ठ ४२
२. वही, पृष्ठ ४३
३. कादरयार, पृष्ठ ८०
४. सोहणीं महीवाल (फजलशाह), पृष्ठ ३८

इक्क हो गइआ दोहां दा जी जामा,
इक्को हो गइआ बदन तसवीर वांगूं ।
उत्तों चौधवीं चानणीं रात आही,
रल गए ने खंड ते खीर वांगूं ।
यूसफ नाल जुलेखा दा वसल होइग्रा,
धा आपो विच्च गए अकसीर वांगूं ।
मौजां सुट्टदी सेज, पिग्रारिग्रां दी,
अहमदयार उह बदर मुनीर वांगूं ।[1]

प्रेमी एव प्रियतमा के लाक्षणिक रमण-वर्णन के ही समान अभिधात्मक वर्णन के स्थल भी पंजाबी साहित्य में दुर्लभ है । एकाध वर्णन ही मिल पाया है । 'सैफुलमुलूक' में नायक एवं नायिका के रमण के चित्र में विभाव-अनुभाव एवं संचारी भावो के संयोग से रति स्थायी भाव की अभिव्यंजना हुई है—

आशिक ते माशूक पिग्रारे, चढ़ि सेजे रलि सुत्ते ।
अव्वल आब हयात पिग्राले, धरे लबां दे उत्ते ।
लै बोसे दिल कोसे होए, ता मुहब्बत कीता ।
जामा जीग्र हिरस दी सोजन मेलि तरेजा सीता ।
चाँदी दी सलाख शाहजादे बासनीओं कढ़ि बाहर ।
रंग बरंगी डब्बी घत्ती, मुड़ मुड़ करदा जाहर ।
लब्भ पिआ अणविद्धा मोती सुच्चा जरा ना वलिग्रा ।
फौलादी कर तेज सुपारी सैफमलूके सलिग्रा ।
हिरस-हवा खुल्हाई जोरी मीटी कली रवेलों ।
कर कर जतन फुले विच पहुता मोती साफ तरेलों
तंग मैदान कुमैत चलाइग्रा, सैफमुलूक शाहजादे ।
ओड़क थक्क के लड्डा होइया फेरे पा जिग्रादे ।
अजब बहार हुसन दी ग्रंदर सैर शाहजादे कीता ।
लज्जत नाल होइग्रा मसताना पुछ नहीं गल मीता ।[2]

मियां मुहम्मद बख्श का यह वर्णन पीछे उद्धृत[3] मुल्ला वजही के संयोग वर्णन से पर्याप्त मिलता है । सभव है कवि ने उसी की अनुकृति पर इसे लिखा हो लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक' में तो यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है और उसमें लक्षणा द्वारा संभोग का संकेत मात्र है ।[4]

---

१. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृष्ठ ८३
२. सैफुलमुलूक, पृष्ठ ६१३
३. प्रस्तुत प्रबन्ध, पृष्ठ २७०
४. मसनवी सैफुलमुलूक, पृष्ठ ३४६

वियोग शृंगार

पंजाबी प्रेमाख्यानों का मुख्य स्वर वियोगपरक है। वियोग में भी नायिका की मानसिक व्यथा की अपेक्षा कायिक अनुभावों एवं संचारी भावों के चित्रण की ओर इन कवियों ने विशेष ध्यान दिया है। भावव्यंजना के उत्कर्ष द्वारा रसपरिपाक की स्थिति इन प्रेमाख्यानों में प्रायः नहीं आ पाई। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इनमे सरस प्रसंगों का सर्वथा अभाव है।

प्रियतम यूसफ को स्वप्न में देखकर जगी ज़ुलेखा असह्य पीड़ा से व्याकुल कभी तो केशपाश उखाड़ती है और कभी हाथों से छाती पीटती है। उसकी चेतना समाप्त हो गई, और उसने शरीर में भस्म मल ली—

लिट्टां पुट्टे हत्थों सुट्टे, गुजरी सबर करारों।
बाझ जंजीरां रही न मूले न दिल डरे सु मारों।
उह लंघी गुज़र शऊरों, अक्लों, कीती बिरह दीवानी।
पिंडे भसम मुंह ते ज़रदी, उठ गई नूरानी।[1]

यहाँ पर आलम्बन को स्वप्न में देखना उद्दीपन है, बालों को उखाड़ना, भस्म मलना, व्याकुल होना और वैवर्ण्य अनुभाव हैं, उन्माद संचारी भाव है। इन सबके संयोग से रति स्थायी की अभिव्यक्ति हो रही है। परन्तु इसमे अनुभावों का चित्रण विशेष रूप से प्रधान हो गया है। प्रियतम पन्नू के चले जाने पर सस्सी की भी ऐसी ही दशा हुई। हाफिज़ बरखुरदार के इस वर्णन में भी रस की व्यंजना में अनुभावों का प्राधान्य स्पष्ट है—

वेहड़े उच्चड़े सस्सड़ी सिर विच्च पावे खेह।
अते हार हमेलां जेवरां सट पट पावे एह।
पर हाफज़ तिन्हां हंजू कालिआं तन लै दुखाइआ एह।
ज़ालम इशक सूलां खिच्चिआ अते दरदां चीरी देह।।[2]

सस्सी कभी सिर में धूल डालती है, कभी आभूषणो को उतार फैंकती है। काजल भरे नयनों से बहते अश्रुओं द्वारा सम्पूर्ण शरीर काला हो गया, इश्क के काँटों ने शरीर चीर ड़ाला।

हीर, सोहणी एवं साहिबां भी प्रियतम के वियोग में एक क्षण भी चैन नही

---

१. अर्थ—वह अपने केशों को खीचती थी, उसे कोई होश नही थी। उसे जंजीरों के बिना वश में रखना कठिन था, वह मार से भी नही डरती थी। उसे विरह ने इतना उन्मत्त बना दिया था कि वह शिष्टाचार एवं बुद्धि को छोड़ चुकी थी। उसका शारीरिक सौन्दर्य समाप्त हो गया था, शरीर पर भस्म लगा रखी थी तथा उसका मुँह पीला पड़ गया था।
—यूसफ जुलेखा, पृष्ठ ५२

२. कोइलूक, पृष्ठ १०६

पातीं। हीर तारे गिन-गिनकर रात व्यतीत कर देती है, केवल नाम के ही आधार पर समय व्यतीत कर रही है—

तेरा नाउं लै लै नड्ढी जींवदी है भावें जान ते भावें न जान मीआं।
मूहों रांझे दा नाउं जां कड्ढ बहिंदी उत्थे नित पौंदे जां घमसान मीआं।
रातीं घड़ी न सेज ते मूल सौंदी, रहे लोक बखेरड़ा रान मीआं।[1]

प्रेम का चिह्न आंसुओं से धोने पर भी नहीं मिटता। नायिका जुलेखा यूसफ के मिलन की चिन्ता में आतुर सिर झुकाए बैठी उसका चित्र देखने को भी तरसती है—

ऊंधी धौण जुलेखा बैठी दरद यूसफ दे रोवे।
दिल थी लहे ना दाग़ यूसफ दा हंजू मल मल धोवे।
आह! रब्बा हुण किउंकर भालीं मैं महिलीं उह बंदी।
उत्तें तल्ले कोई लिख विखावे सूरत यूसफ संदी।[2]

प्रियतम के चित्र के अभाव में वे सभी स्थान भी प्रेमी के संसर्ग का ही आभास देते है जिनमें कभी-कभी प्रेमी बैठा करता था। प्रकृति के साथ ऐसा तादात्म्य वियोग में ही संभव है। प्रियतम जिन वृक्षों की छाया में बैठता था, इन्हें गले लगाती है, जिन वृक्षों के फल खाता था, उनके नित्यप्रति प्रफुल्लित होने की कामना करती है। पक्षियों को चोगा डालती है, ताकि वे प्रियतम से उसकी दशा का निवेदन कर दे—

कदी रुक्खां नूं लै गल लांवदी ए,
छावें तुसां दी बहिंदा सी यार मेरा।
जिन्हां मेविआं नूं उह खांवदा सी,
उन्हां रुक्खां दे नाल पिआर मेरा।
मेवे उन्हां दरखतां दे खा गइआ,
फुल्ले फुल्ल नित सेब अनार मेरा।
अहमदयार चोगा पाए तोतिआं नूं,
दस्सो जाए के हाल इक्क वार मेरा।[3]

शारीरिक पक्ष की प्रधानता—पंजाबी प्रेमाख्यानों में वियोग-वर्णन में मानसिक व्यथा की अपेक्षा शारीरिक छटपटाहट का वर्णन अधिक है। यह छटपटाहट इस कारण भी है कि नायिकाएं प्रेम के मार्ग में स्वयं सक्रिय है। प्रेमी के वियोग में संदेशे से काम नहीं चल सकता, ये तो स्वयं ही प्रेमी की खोज में निकल पडती हैं। प्रेम का फल मृत्यु है इस तथ्य को ये भली भांति सोच समझ कर ही नदी की लहरों में उतरती हैं—

---

१. हीर वारिस, पृष्ठ ८०
२. यूसफ जुलेखा, पृष्ठ ८२
१. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृष्ठ ९७

सोहणीं तां होवां जेकर अज्ज मिलसां, नहीं कोझड़ी नाम धरा बेली।
मैथों किवें न मूल कज़ा होसी, जो कुझ आईआं लेख लिखा बेली।

× × ×

सच्चा इशक ताहीं जेकर अज्ज मिलसां, दिआं जान नूं घोल घुमा बेली।
इके यार दा जा दीदार कीता इके जान हो गई फिदा बेली।[1]

बदी-उल-जमाल के सफेद वस्त्रों पर आँसुओं के दाग पड़ गए। प्रेमी की प्रतीक्षा में उसका यौवन-रत्न भौरे क समान बाग से उड गया। हँसना खेलना भूल गया। सुन्दर फूल विरह को बढ़ाते है, नरगिस का पीला फुल देखकर कुछ शान्ति मिलती है क्योंकि वह भी तो उसी की भांति बीमार है। प्रियतम की प्रतीक्षा में एड़ियां उठा-उठाकर राह देखती है, धूप मे शरीर को झुलसाती है। सज्जन के वियोग में अनेक प्रकार के दोहरे, गज़लें एवं बैंत गा-गाकर प्रलाप करती है —

भोछण चिट्टे छापे लग्गे अत्थरूआं दे दागों।
जोवन रतन मुहम्मद बख्शा भौर गिआ उड्ड बागों।
हस्सण खेडण नाल साईआं दे, गल करन रहि चुक्की।
आवण सईआं गल करावण बोलण थीं हुण मुक्की।

× × ×

तकि पाटे पैराहन गल दे, पाड़ गवाए झग्गा।
वेख सड़े गुल लाले वाला दाग कलेजे लग्गा।
बैठ सिहांदी जां फिर वेखे नरगस दी बीमारी।
लाइ गल रोवे, दरद विछोड़े कीते असीं अज़ारी।

× × ×

होइ हैरान खलोती ओथे तकदी चा चा अड्डीआं।
वाड सरू सिरि सहिंदी ताबश धुप्प जालावे हड्डीआं।

× × ×

करे विलाप मिलाप सजण दे उच्ची सद्द सुणावे।
दोहड़े बैंत अलावे गज़लां सत सुरां कर गावे।[2]

चिर प्रतीक्षा एवं विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों से उद्दीप्त रति वाचिक, कायिक एवं सात्विक अनुभावों तथा जड़ता, मोह, उन्माद, औत्सुक्य आदि संचारी भावों के

---

१. अर्थ—मेरा नाम सोहणी तभी सार्थक होगा यदि मै आज ही प्रियतम से जा मिलूं। अन्यथा मै अपना नाम कोझड़ी (कुरूपा) रखूंगी। मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है उससे अधिक विपत्ति क्या आएगी? मेरा प्रेम तभी सच्चा है यदि मैं आज जान पर खेल कर प्रियतम से जा मिलूं। या तो प्रियतम के दर्शन ही कर लूंगी या फिर जान ही बलिदान होगी।
—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृष्ठ ४०

२. सैफुलमुलूक, पृष्ठ ५१४

संयोग से वियोग श्रृंगार के रूप में अभिव्यक्त हुई है ।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में वियोग के विविध भेदों में मान का तो अभाव ही है । पूर्वराग भी अति विरल है, करुण-वियोग भी परिस्थिति विशेष में एक सीमा तक ही माना जा सकता है । यहां प्रवास ही कुछ विस्तार से मिलता है । परन्तु रचनाओं के कथा-वैशिष्ट्य के कारण इन भेदों में से यहां कोई भी विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं बन पाया । सच तो यह है कि इन रचनाओं में द्वन्द्व एवं संघर्ष की प्रधानता है रस की नहीं ।

पूर्वराग—वियोग श्रृंगार के चार भेदों में से पूर्वराग का वर्णन इन रचनाओं में बहुत कम उपलब्ध होता है । विदेशी उत्स की कथाओं, चंद्रबदन महियार, राजबीबी, युसुफ जुलेखा और सैफुलमुलूक में ही इस प्रकार का वियोग मिलता है । 'यूसफ जुलेखा' में जुलेखा का प्रेम नायिका के पूर्वराग का उदाहरण है—

चोलीनूं पाड़ के कीता सौ लीरां ।
× × ×
जुलफ चट पट सुटे सट हट हिजर नूं ।
कमर नाजक होई कीता सबर नूं ।[1]

राजबीबी भी इसी प्रकार 'इश्क' को उपालम्भ देती है । अरे इश्क वकील ! तूने मेरे साथ भी वही कुछ किया जो हीर, सस्सी एवं साहिबां के साथ किया था ! तुमने किसी को पार नही पहुंचाया, अन्य नायिकाओं के समान तूने मेरा आंचल भी प्रेमी के रक्त से ही भरा है—

राज बीबी बांह सिर ते धर के आखिआ इशक वकीला ।
हीर सस्सी ते साहिबां वाला कीतोई मेरा हीला ।
तुध न कोई पार लंघाइश्रा बण के विच वसीला ।
अहमदयार न डिट्ठा रज्ज के घाड़ूमार रंगीला ।
× × ×
रोढ़िश्रोई फरहाद शीरीं नूं उन्हीं दा बन्ने पूर न लग्गा ।
जिउं श्रहमदयार घाड़ू दे रत्तू भरिश्रोई मेरा झग्गा ।[2]

पंजाबी साहित्य में नायिका की अपेक्षा नायक के पूर्वराग वियोग का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है । सैफुलमुलूक पूर्वराग में पागल होकर गलियों में घूमने लगा । वह किसी को पहचानता नहीं था, लोगों को अश्लील गालियां निकालता । हारकर पिता ने वैद्य-हकीम बुलाए परन्तु प्रेम का इलाज क्या है ? सभी विवश थे ।[3]

१. यूसफ जुलेखा (अब्दुलहकीम बहावलपुरी), कोइलूक पृष्ठ २१४ से उद्धृत ।
२. राजबीबी (अहमदयार), ववीहा बोल पृष्ठ २५८-२५६ से उद्धृत ।
३. सैफुलमुलूक, पृष्ठ १३७

ऐसी दशा में लोहे की जंजीरों से बंधने के अतिरिक्त कोई चारा न था परन्तु, सफुलमुलूक प्रियतमा के विरह मे तड़फता और विलाप करता रहता। उसके इस विलाप मे शृंगार के सभी अंगों की योजना है—

> **न कोई दस्स निशानी गिश्रों न कोई पता न रसता।**
> **मैं बेदिल तों बे निशानी कौण कटे इह फसता।**
> **हिको नाम तुसाडा जाणा, थां मकान ना काई।**
> **किथे गुजर किथे घर किथे महरमीअत अशणाई।**
> **कैद कराई संगल घत्ते सानूं आप आजादे।**
> **इशके बंदीवान बणाए आदों दे शहिजादे।**
> **कर हुण रहम असां पर सजनां देइ कुझ पता निशानी।**
> **कित वल ढूंढ किजीवे मुशकल होइ आसानी।**
> **इहो वैण करेंदा रोंदा होंदा मिसल दीवाने।**
> **वाङ् शिकार जिमीं पर झड़दा लगदा तीर निशाने॥[१]**

प्रियतम तक ही दौड़ा जा सकता है, उसके सिवा प्रेमियों का इस संसार में और है भी कौन !

प्रवास—पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य में प्रवास वियोग शृंगार भयजनित है। यह भय किसी देवता या शापवश नहीं है। पारिवारिक एवं सामाजिक भय के कारण वर्तमान अथवा भविष्यत् में प्रवास अथवा उसकी आशंका ही इस विरह का आधार है। प्रायः इसी के कारण नायक एवं नायिका वियोगाग्नि में जलते रहते हैं। पन्नूं को उसके भाई ले गए थे अतः उसका प्रवास कार्यवश माना जा सकता है। प्रवास के इन प्रसंगों में विरह के ताप, वेदना एवं तज्जन्य निराशा का चित्रण करने में ही कवियों ने विशेष रुचि ली है।

विवाह की चर्चा सुनकर हीर रांझे के पास आ गई। भावी प्रवास की आशंका तथा भयजन्य विरह मे अपनी विवशता और वेदना का वर्णन करते समय नायिका ने हृदय खोलकर रख दिया—

> **वे मीआं रांझा नाल हीरे दे ना कर गल्लां रुखीआं।**
> **मेरे वस्स की आहा सजनां बाप दुखाई दुखीआं।**

---

२. अर्थ—न तो तूने कोई निशानी ही बताई और न अपना मार्ग या पता ही बताया। मैं हिम्मत हार बैठा हूं, तेरा कुछ पता नहीं यह विपत्ति कैसे दूर हो, मैं केवल तुम्हारा नाम मात्र जानता हूं। तुम्हारे प्रेम ने तो मुझे शृंखलाओं में बांध दिया है। कुलीन राजकुमारों को प्रेम ने बन्दी बना दिया। सजन, अब तो कुछ दया करो, अपना पता बताओ; तुम्हारी खोज किधर की जाये, ताकि कठिनाई कम हो। इस प्रकार रोता-रोता वह मूर्छित हो जाता और तीर लगे शिकार के समान भूमि पर गिर पड़ता।

—सैफुलमुलूक, पृ० १३९

जिनहां शरीकां लाईआं लीकां जाईआं मरनै भुखीआं।
तैथों जुदा होवण दीआं सुखणां बदी नाहीओं सुखीआं।
अज्ज तक सिन्ने गोहे वांगूं विच्चो विच्च पई धुखीआं।
मै ते सुणदी ही बल गईआं कोल तेरे आ भुखीआं।[1]

विवशता के साथ उन शरीकों के प्रति नायिका का अमर्ष भी व्यक्त हो रहा है जिन्होंने इस युगल को पृथक् करने का षड्यन्त्र रचा था। ईश्वर करे कि उनकी पुत्रियां भूख से मरें! भीतर ही भीतर गीले उपले की तरह सुलगते और विवाह की बात सुनते ही भभक उठने में भावनाओं के उद्वेग का सुन्दर वर्णन है। इस सम्पूर्ण वर्णन में न तो उत्प्रेक्षाओं के द्वारा पीड़ा का प्रभाव दिखाया गया और न ही संसार के अन्य प्राणियों का दुःख व्यक्त हुआ। अकेली नायिका ही प्रेम के कारण तप-गल रही है।

दमोदर की हीर की भी लगभग यही दशा है। अकेली बैठी वेदना में सुलगती है पुनः शान्त हो जाती है, किसी से बोल नही पाती। सियालों को गालियाँ देती है परन्तु क्या लाभ? कभी औसिआं डालती है, कभी कौए को उड़ाती है परन्तु नायक को न देख पुनः माथा पकड़ लेती है। उसके रोम-रोम में प्रियतम का संचार हो गया है। वह प्रेमी जैसे जलाए, अरी मां, वैसे ही जलना है। अब तो हीर रांझे में समा गई है और रांझा हीर में। रांझा कह कर अब किसको पुकारा। वह स्वयं ही तो रांझा हो गई है। रात दिन रांझे के बिना और कोई बात ही उसे नही सूझती—

तड़फे सही निहाइत मच्छी गलदा पिंडा विचारा।
सुलके सुलक सुलक फिर बुझे मूहों न बोलनहारा।
हीर सिआली देही गाली कुझ न चलदा चारा।
औसी पाए ते काग उड़ाए, मत्थे ते हत्थ लाए।
लूं लूं वखल कीता रंझोटे ओही वारू लाए।
जिवें जलाए कामल मुरशद तेहा जालीं माए।
उलटी हीर हीरे विच रांझा हाल न जाणे कोई।
रांझा रांझा कैनूं आखां मैं आपे रांझण होई।
रांझा हीर, ते हीर रांझे दी रत्ती फरक न कोई।
राती देहां बाझ रंझोटे इसनूं जिकर न कोई।[2]

---

१. अर्थ—मेरे प्रियतम रांझा, तू मेरे साथ रूखी बातें न कर। मैं विवश हूँ, जिन शरीकों ने मुझे कष्ट दिया है उनकी पुत्रियां भूखी मर जाएँ। मैं तो तुम से बिछुड़ना नहीं चाहती, मैं आज तक गीले उपले के समान सुलगती रही हूँ। आज इस सूचना को सुनते ही मेरा शरीर जल उठा है और मैं तेरे पास आ गई हूँ।

—हीर (अहमदयार), गुलदस्ता हीर पृ० १६ से उद्धृत।

२. हीर दमोदर, पृ० १३९-१४०

प्रेमभाव की इसी अद्वीतीयता के कारण ये प्रेमी अमर हो गए। इस पद्य मे रसांगो की विवेचना की आवश्यकता ही नही। सभी अहमहमिकया उपस्थित हो रहे है।

पुन्नू की खोज में निकली सस्सी पहले तो उस ऊंट को शाप देती है परन्तु शीघ्र ही उसे उसके सौभाग्य एवं अपने दुर्भाग्य के प्रति ईर्ष्या होती है। उसके समान भाग्यवान् कौन है जिस पर प्रियतम ने सवारी की है। मैं तो भाग्यहीन हूँ; वही सौभाग्यशाली है जिससे प्रियतम हंस कर मिले—

फिर दिल समझ करे लख तोबा बहुत बेग्रदबी होई।
जिस पुर यार करे असवारी तिसदे जेड न कोई।
को मैं वांग निकरमण नाहीं, कित वल मिले न ढोई।
हाशम कौंत मिले हस्स जिसनूं जाण सुहागिण सोई।[1]

नायिका के इस वर्णन में अनुभावों एव सचारियों का तो स्पष्ट उल्लेख है ही, वह ऊंट उद्दीपन है जो नायक को ले गया था। इस प्रकार इस पद्य मे नायिकाश्रित रति की अति सुन्दर व्यंजना हुई है।

करुण—करुण विप्रलम्भ का वर्णन उन स्थानों मे माना जा सकता है जहां मिलन की क्षीण सी आशा लिए प्रेमिका आत्मबलिदान के लिए तैयार हो जाती है। सोहणी एव सस्सी मे ही ऐसे प्रसग की कल्पना की जा सकती है परन्तु इन प्रसगों मे रति शीघ्र ही शोक स्थायी भाव में परिणत हो जाती है और विप्रलंभ के स्थानों पर करुण की अभिव्यक्ति प्रधान हो जाती है।

काम दशाएं

भारतीय आचार्यो द्वारा विवेचित कामदशाएं भी इनमे खोजी जा सकती हैं। परन्तु इन अवस्थाओं का सविस्तार वर्णन इस साहित्य मे नही हुआ। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(१) **अभिलाषा**—नायिका बदीउलजमाल का कलेजा प्रति क्षण मुंह को आता है, वह खड़ी-खड़ी प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है क्या पता कही से प्रियतम के स्पर्श से अनुप्राणित हवा ही आ जाए। मेरे प्रियतम, तुम शीघ्र आओ। सज्जन से मिलने की अभिलाषा में उसका भौर जाता जाता मुड़ आया।[2]

(२) **चिन्ता**—प्रियतर के वियोग में बैठी, रानी कामलिटां रात-दिन उसी के विषय में सोचती रहती है। नायक के विषय में अशुभ सूचना मिलने पर उसकी

---

२. हाशम रचनावली, पृ० १०१

२. दम दम जान लबां पर आवे छोड़ि हवेली तनदी।
खली उडीके मत हुण आवे किधरों वा सजन दी।
आवी आवी न चिर लावी दस्सीं भात हुसन दी।
आए भौर मुहम्मदबखशा करके आस सजन दी॥

—सैफुलमुलूक, पृ० ३९२

चिन्ता बढ़ जाती है, वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती है। चिन्ता और प्रेम ने उसकी दुर्दशा कर दी।[1]

(३) **स्मृति**—नायिका हीर बीते दिनों का स्मरण करवाती हुई प्रियतम को पत्र लिख रही है कि हम दोनों का प्रथम मिलन नदी के किनारे हुआ था, 'वहां तुमने पलंग पर बैठ कर आनन्द मनाया था; चंदल नदी में केवल इश्क ही बहता है, तूने वह स्वय पिया और मुझे भी पिलाया था। भोली बांसुरी का शब्द सुनाकर मेरा हृदय अपने हृदय के साथ सी लिया था।[2]

(४) **उद्वेग**—सैफुलमुलूक अपनी दुर्दशा का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि मेरा दिल दुखी है, शरीर मे शक्ति नहीं, आंखों में नींद नहीं। इस कष्ट के कारण कहीं मर न जाऊं। ऐ मेरी प्रेमिका, तू मिलने की कृपा कर।[3]

(५) **गुणकथन**—विरही नायक कभी तो प्रेमिका के तीखे नयनों की प्रशंसा करता है और कभी अलबेली लटों को सराहता है। 'कस्तूरी की सुगन्ध तेरी जुल्फों की है और गुलाब का सौंदर्य तेरे मुख से प्राप्त किया हुआ है।[4]

(६) **प्रलाप**—विरह निवेदन की मार्मिक स्थिति प्रलाप है। जिसमें औचित्य-अनौचित्य को भूलकर अर्धचेतनावस्था में प्रेमास्पद के लिए संदेश आदि दिये जाते हैं। दुःखी सैफल प्रातःकालीन वायु से रो-रोकर संदेश कहता है और उसे प्रियतमा के पास पहुंचाने की प्रार्थना करता है।[5]

(७) **उन्माद**—इस स्थिति में शरीर भी गतिमान हो जाता है। पुन्नूं के चले जाने पर सस्सी उन्माद-ग्रस्त हो गई। कभी वह रंगमहल मे जाकर उसे खोजती है, वह यहीं तो बैठता था। उन दीवारों को चूमती है; उन द्वारों को गले से लगाती,

---

१. मैनूं कुझ ना आवे जावे वडा तअज्जब बनिआं।
इश्क फिकर इश्क इशाक मजाजी कैद कीता दो जनिआं॥

—कामरूप (अहमदयार), पृ० ६५

२. दरिआओ दे कंढे मिलाप होइआ, उत्थे पलंग लताडिओ शगन कीतो।
नदि चंदले सुघडा इशक बहै, मैनूं घोल पिलाइ ते या आप पीतो।
भोरी वंझली शबद सुणाइ के ते, मेरा जीओ आपणे जीए दे नाल सीतो।

—हीर अहमद, पृ० २०६

३. दिल गमनाक बेताकत होइआ नैनी नीदर वंजाई।
सखती दे विच्च मरां मतां मै कर आवन दी काई।

—मसनवी सैफुलमलूक, पृ० २१६

४. कसतूरी ने जुलफ तेरी थी बू अजाइब पाई।
मूँह तेरे थी फुल्ल गुलाबां लधा रंग सफाई॥

—सैफुलमुलूक, पृ० ३९२

५. मसनवी सैफुलमलूक, पृ० २१६

जिन पर वह खड़ा होता था। जिस स्थान पर वह नहाता था वहां जाकर लेट जाती।[1]

(८) **जड़ता**—स्वप्न में रांझे को देखने के अनन्तर हीर जड़वत् हो गई। न वह रोती, न हँसती, सदा प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठी रहती। दिल का भेद किसी को न बताती। उसे कोई भी सखी-सहेली न सुहाती और न ही वह कुछ बोलती।[2]

(९) **व्याधि**—ससुराल में हीर की दशा रोगियों-सी हो गई। दिन-प्रति-दिन क्षीणता को देखकर उसकी ननद घबरा जाती है।[3]

(१०) **मरण**—इस साहित्य मे मरण दशा का तो वर्णन है ही, साक्षात् मरण भी चित्रित किया गया है। असफल प्रेम-यात्रा में मृत्यु का वरण किसी मरण दशा से अधिक प्रभावकारी है। जुलेखा अपने प्रियतम को सदेश भेजती है कि हे प्रियतम मेरी दशा मरण से भी भयावह हो गई है, मेरे प्याले में भिक्षा डाल दे।[4]

पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य में प्राप्त कामदशाओं का विश्लेषण करें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इनमें सूक्ष्म-अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति आदि की अपेक्षा स्थूल-प्रलाप, उन्माद, जड़ता आदि का वर्णन अधिक है। वियोग वर्णन में उन्माद दशा का वर्णन अनेकशः किया गया है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों मे शृंगार के संयोग एवं वियोग, दोनो ही रूपों के इस विवेचन के उपरान्त यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इन कवियों की अधिक रुचि कथा-वर्णन की ओर है। अन्य वर्णनों के ही समान वे रसाभिव्यक्ति के प्रति भी विशेष जागरूक नहीं रहे। उदाहरण के लिए हीर-सम्बन्धी रचनाओं में सयोग एव वियोग शृंगार की उत्कृष्ट व्यंजना के अनेक स्थल उपलब्ध हो सकते है परन्तु उनकी अपेक्षा अपने आपको सुखन का वारिस—वाणी का उत्तराधिकारी-कहलाने वाला वारिस जैसा

---

१. कदी रंग महल ते जा ढूंडे, पुन्नूं ऐथे भी बैठदा होंवदा सी।
उन्हां कंधा नूं चुम्म चुम्म-लाए सीने, जिन्हा वूहिआं दे विच्च खलोंवदा सी।
अहमदयार लेटे उस जिमी उत्ते, जिस जगह उह न्हांवदा धोंवदा सा।
—ससी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० ९७

२. न रोवे न हस्से नढी, वेखे पइ दवाले।
दिल दा भेत न दे किसे नूं यार खजाना भाले।
सखी सहेली न कोई भावे, मूहों न बोले चाले।
—हीर (अहमदयार) गुलदस्ताहीर, पृ० ९४ से उद्धृत

३. आई जदों दी साहुरे पेकिआं तों, डिट्ठी असां न हसके कम्म लगी।
दिनों दिन तूं सुक्कदी जाउनीएं, दिसें साउली पीलड़ी जरद वग्गी।
—हीर रांझा (मुकबल), पृ० ४७

४. मै मौतो लंघ अगेरे गुजरी होले छड्ड हवाले।
रह सवाल न तूं कर यूसफ टुकड़ा पा पिआले।
—यूसफ जुलेखा, पृ० ७६

कवि भी संवादों की योजना में ही लगा रहा। रस के कुछ अच्छे प्रसंग सस्सी-सम्बन्धी रचनाओं में ही मिलते है। संवादों एवं घटना-वर्णन के मोह के कारण प्रायः रस-व्यंजना हुई है।

तुलना

हिन्दी प्रेमाख्यानों में शृंगार रस के आलम्बन एवं उद्दीपन के अनेक रूप मिलते हैं। इनमें नायिका के रूप एवं उसके अंग-अंग के सौदर्य का विस्तृत वर्णन; प्रकृति की पृष्ठभूमि मे नायिका की मनोदशा एवं भिन्न-भिन्न संचारी भावों के संयोग से पुष्ट अनेक भावभूमियो के दर्शन होते है। शृंगार रस की प्रधानता होने पर भी पंजाबी साहित्य में न तो नायिका का ही उतना विस्तृत वर्णन मिलता है जितना कि हिन्दी साहित्य में है और न नायक का ही। हिन्दी साहित्य की अपेक्षा यहां नखशिख-वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। उनका प्रभाव प्राय: आक्रमणात्मक एवं घातक है। यद्यपि हिन्दी प्रेमाख्यानों में भी रूप के घातक प्रभाव का वर्णन है परन्तु समग्ररूप से उसमें आकर्षण एवं सम्मोहन की शक्ति घाव करने की शक्ति बढ़ जाती है। इसी कारण इस रूप से वर्णन में अनेकशः कुरुचिपूर्ण चित्र आ जाते हैं। 'सोहणी' में शरीर के मांस को भूनकर नायिका को खिलाने की घटना प्रेम की घनिष्ठता सिद्ध करने के लिए चाहे कितनी भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो शृंगार रस की अभिव्यंजना में नितान्त विरोधपरक है। सम्पूर्ण रचना में शृंगार की अपेक्षा इस कुरुचिपूर्ण कृत्य-जन्य बीभत्स की गंध आती है।

जायसी द्वारा नागमती के विरह-वर्णन की उत्कृष्टता का वर्णन करते समय आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'इसमे वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू-दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ शुद्ध भारतीय हृदय की साहचार्य भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यन्त स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है। पर इन कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान जाने पर भी इसके सौदर्य का बहुत कुछ हेतु अनिर्वचनीय रह जाता है।'[1] वास्तव में यह अनिर्वचनीयता हिन्दी की अनेक रचनाओं में प्राय: उपलब्ध होती है। पंजाबी प्रेमाख्यानों का विरह-वर्णन बहुत कम स्थानों पर 'स्व' की परिधि को पार कर सका है। उनमे विरहावस्था के अन्तर्गत अभिलाषा का उत्कर्ष, गिने चुने स्थानों पर ही मिलता है। समग्र प्रकृति के साथ सम्बन्ध-स्थापना की कल्पना पंजाबी प्रेमाख्यानों में बहुत कम आ पाई है। इन रचनाओं में शरीर की व्याकुलता का ही अधिक वर्णन है, हृदय की पीड़ा बहुत कम उभरी है। गुणों के अतिरिक्त परिमाण में भी इन रचनाओं का शृंगार-वर्णन हिन्दी प्रेमाख्यानों की अपेक्षा थोड़ा है। हिन्दी प्रेमाख्यानों जैसी माँसलता का निश्चय ही पंजाबी में अभाव है परन्तु मांसलता का अभाव किसी विशेष परम्परा के पालन के फलस्वरूप होता तभी कुछ उपलब्धि समझी जा सकती थी। वर्तमान स्थिति में रसाभिव्यंजना में अशक्त इन कवियों की रचनाओं में अनेक ग्राम्य एवं अश्लील संकेतों के कारण अपेक्षित आध्यात्मिक उच्चता भी तो

१. जायसी ग्रंथावली (भूमिका), पृ० ४४

नहीं आ पाई। सचाई तो यह है कि पंजाबी प्रेमाख्यानों में शृंगार-व्यंजना अधिकतर विभाव, अनुभाव, संचारी भावों की सीमा से आगे नही जाती। रस परिपाक की अपेक्षा उनमें भाव-चित्रण से ही सन्तोष किया गया है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में अन्य रस

वीर रस

शृंगार के अनन्तर इन रचनाओं में वीर रस को स्थान मिला है। प्रायः सभी रचनाओं में युद्धों का वर्णन है। इन युद्धों के द्वारा अधिकतर नायक की वीरता का प्रदर्शन करने के साथ-साथ उसके साहस एवं अलौकिकता को व्यक्त करना भी कवियों का उद्देश्य रहा है। 'बीसलदेव रासो', 'ढोला मारू रा दूहा', 'मैनासत', 'रूपमंजरी' या 'मैना सतवंती' जैसी कुछ रचनाओं में वीर रस की योजना नही है। अन्य रचनाओं में इस रस का समावेश है, परन्तु यह नही भूलना चाहिए कि प्रत्येक रचना में ऐसे स्थल अति विरल हैं।

नायक के मार्ग में बाधा डालने वाले तत्त्व वीर रस के आलम्बन है। भयंकर राक्षस, भूत, नाग अथवा शत्रु-राजा इनमें प्रमुख हैं। सामान्यतया सैन्यप्रयाण भी आलम्बन के अन्तर्गत ही आता है। 'पद्मावत' मे यह प्रसंग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है।[1] सैन्य-प्रयाण का वर्णन अनेक रचनाओं मे अत्यन्त उत्साहकारी है। 'चदायन' में इसके कुछ अंश इस प्रकार है—

ठोके तबल मेघ जनु गाजे, घर घर सबहि राउत साजे।
अगनित बीर बहुल धनुकारा, सत्तरि सहस चले कुंतकारा।
नब्वे सहस घोर पाखरे, तारूं तरुवां लोहइं जरे।
× × ×
गाल्ह संकोचे लोह चबाहीं, समुंद लांघि जनु लंका जाहीं।
× × ×
पखरे हस्ति, दांत बहिराए, धानुक लइ ऊपर बइसाए।
× × ×
सबहि गजदल भएउ पयानां, ठोके तबल दइउ अगिराना।
आगे परइ नीरु खरु पावइ, पाछे रहइ सो धूरि बुकावइ।
एक छिति फौज चले असवारा, कोस बीस लगि भएउ पसारा।
× × ×
उठइ खेह दर सूझ न बागा, जानु सुरग धरती होइ लागा।
महते साथि बांठु लइ, राजा दीत पयान।
तुरिय टाप बासुगी, खरभरई, अंबरि सूरु लुकान।[2]

---

१. पद्मावत, पृ० ५३५-५४२

२. चांदायन, पृ० ८५-८८

अधिकांश रचनाओं में सेना-प्रयाण के ऐसे ही अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र हैं। जिन में योद्धाओं की गतिविधियों की अपेक्षा हाथी, घोड़ो की गणना और धूल उड़ने से आकाश-पाताल एक होने की चर्चा है।

उद्दीपन के लिए प्रायः दूतों के वचन ही इन रचनाओ में प्रयुक्त हुए है। समय-समय पर युद्धगत कृत्य व्यक्ति-विशेष के उत्साह को उद्दीप्त कर देते है। राजा विक्रम के दूत के उत्तर से प्रतिपक्षी का उत्साह उद्दीप्त होता है—

आयौ विक्रमचंद नरेसा। जा कहं कंपै सुरपति सेसा॥
हयदल गजदल रवत न, आवै ही औसर विचारि।
दुर्जन हू हँसि उठि मिलहु, बोलहि रोस निवारि॥
× × ×
कहै बसीठ राजा सुनहु, उठि रन मडहु जाइ।
सिंह रूप गाजै सुभट, वे मृग चलै पराइ॥[1]

मंझन कृत मधुमालती मे क्रुद्ध राक्षस की बातें ही उद्दीपन का कार्य करती है—

देखि कुंअर कहं आगें खरा। कोह अगिनि सिर पा लहि जरा॥
× × ×
कैरे अंत अनुपुरी तोरि आऊ। जम के मुंह आएसु तै पाऊ॥
तै मानुस भख मोरा लै आएउ करतार।
तोरि मींचु नियरानी पूजेउ मोर अहार॥[2]
× × ×
कहेसि छाड़ि राकस बकताई। संकट भएउ काल तोर आई॥
तोहि मारि पेमहि लै जाऊं। तौ रघुबसि कहाऊं नाऊं॥[3]

प्रेमाख्यानों में युद्ध की गति एवं नायक की वीरता के अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलते है। 'छिताई चरित' मे राजा रामदेव एवं अलाउद्दीन के युद्ध का सजीव एवं उत्साहपूर्ण वर्णन इस प्रकार है—

नाथा दिउ जूझिउ बलबंडा। जिह चढ़ि दछिनि लीन्हौं दंडा॥
भीम सेन दल कीन्ही मारा। बाजी तहां खनाखन सारा॥
ताकौ जूझ न वरिनिउं जाई। जूझति ताहि सराहइ राई।
× × ×
जूझइ भरथ महा बलबंडा। काटइ सूंड करइ दुइ खंडा॥
हाथ खरग लै उठिउ रिसाई। तुरक सैन उठियो भहराई॥[4]

---

१. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह, पृ० २२६
२. मधुमालती, पृ० २२३
३. वही, पृ० २२५
४. छिताई चरित, पृ० ८२-८३

युद्ध-गति के सजीव वर्णन में जायसी सिद्धहस्त है। राजा रतनसेन एवं बादशाह अलाउद्दीन के युद्ध में हाथी, घोड़े एवं सवार ही नहीं, सम्पूर्ण प्रकृति उत्साह-पूर्ण है—

हस्तिन्ह सौं हस्ती हठि गाजहिं। जनु परबत परबत सौं बाजहिं।।
गरुअ गयंद न टारे टरहीं। टूटहिं दंत सुंड भुँइ परहीं।।
परबत आइ जो परहिं तराहीं। दर महँ चाँपि खेह मिलि जाहीं।।
कोई हस्ती असवारन्ह लेहीं। सुंड समेटि पाय तर देहीं।।
कोइ असवार सिंघ होइ मारहिं। हनि मस्तक सिउँ सुंड उतारहिं।।

× × ×

बाजहिं खरग उठै दर आगी। भुँइ जरि चहै सरग कहँ लागी।।
चमकै बीज होइ उजियारा। जेहि सिर परै होइ दुई फारा।।

× × ×

टूटहिं कुंत परहिं तरवारी। औ गोला ओला जस भारी।।[1]

गोरा एवं सरजा का युद्ध भी भयानकता में कम नहीं—

टूटहिं सीस अधर धर मारे। लोटहिं कंध कबंध निनारे।।
कोइ परहिं रुहिर होइ राते। कोइ घायल घूमहिं जस माँते।।[2]

परन्तु इन वर्णनों मे प्रायः युद्ध की वह खनक नहीं, जो वीर-गाथा कालीन काव्यों का सर्वस्व मानी जाती है। ऐसे वर्णन अत्यन्त विरल है। भीम कविकृत 'सदयवत्स वीर प्रबन्ध' मे सेनाओ के उत्साह एवं युद्ध का यह वर्णन वीरगाथा काल की स्मृति को जागृत करता है—

ढम ढम विसमा बाजइ ढोल, उर कमकमइंति काया निटोल।
झब्ब झब्ब झब्ब कइ भालोह, धलमलत धसमसिया जोह।
धूसण-तणां कसण कसकसइं, गाढ़इ ग्रणि सींगिणी त्रस त्रसइं।
सावलोह सिरि तोमर तीर, भाले सिउं भेदिर सरीर।
जे मच्छरि मुहि आवी चड़इ, ते पायक पग आगलि पड़ई।[3]

ढोल के धमाकों एवं भालों की झंकार पुहकर तक पहुंचते-पहुंचते डमरू की डम डम में परिवर्तित हो गई, युद्ध का वह ओज कवि पुहकर के इस वर्णन में भी है—

मंडिय जंग जुर जंग तीरं। जग्गियं वीर वीराधि धीरं।
डमरू डमकि डमकियं गवरि कंतं। डंकनी जहां दमकंत दंतं।[4]

---

१. पदमावत पृ० ५५०-५१
२. पदमावत, पृ० ६११
३. सदयवत्स वीर प्रबन्ध, पृ० ८८
४. रसरतन, पृ० २२६

खेद का विषय है कि यह ध्वनि अधिक देर तक सुनाई नही देती और कवि पुहकर को 'सभु उरमाल' के लिए खोपडियां जुटाने की चिन्ता हो जाती है। अट्ठाईस खर्व से भी अधिक की माला अर्पण करने में कवि ने सफलता मानी।

हंसजवाहर में यह वर्णन वीर रस की शब्दावली से रहित होते हुए भी ओज-पूर्ण व्यंजना के कारण रसनिष्पत्ति में सफल है—

बाजे दल दोउ बज्र पहारा। उठी लूक भा लोक अँगारा।
बीरन भट भा झोंटक झोंटा। शूर शूर सों लेटक लेटा।
बीरन बीर सों हांकी हांका। पुरुषन पुरुष पड़ी रनसांका।
खड्गै खड्ग उठी झनकारा। ओडन ओर भयो घनकारा।
शेलहि शेल आनी अरझानी। गोली तीर पड़ै जसपानी।
घोड़न घोड़ सो लातकलाता। हस्तहि हस्ति सो दांतकदांता।
मांसहि मांस रुन्ड भा कादों। रक्त नीर भा सावन भादों।
कोस पांच लौं चहुं दिशि, लोह रक्त बरसाय।
लोथै एकै रक्त महँ बयठ एक उतराय॥[1]

अनेक बार युद्ध के प्रसगो मे ये कवि विरोधी उपमान योजना के द्वारा रस-परिपाक की उपेक्षा कर वर्णन मात्र में ही उलझ जाते है—

तरुनि भौंह सम धनुष बिसेखे। नोचहिं बान कटाछ अलेखे।
× × ×
जहां सेलि लागे उर आई। मनहुँ कँवल जल धार सोहाई।
जेहि सिर परी खरग की धारा। मानहु बेनी कर पतसारा।
× × ×
घायल परे जहाँ तहाँ हाथी। मानहुँ आहि लोहार की भाथी।
माथे छूटी सोनित धारा। भाथी फूंकि जनु आगि निकारा।[2]

अतः यह नही समझना चाहिए कि युद्ध-वर्णन में सर्वत्र वीर रस का परिपाक है। रस परिपाक की अपेक्षा अनेक स्थलों पर वर्णन-विस्तार ही मुख्य हो गया है।

भयानक रस

युद्ध के प्रसंगों में ही कभी-कभी भयानक एवं बीभत्स रसों की योजना भी हो जाती है। इसके अतिरिक्त भय की व्यंजना अप्राकृतिक बाधाओं के समय भी की गई है। 'पदमावत' में किलकिला समुद्र के वर्णन के समय भयानक रस की अभिव्यंजना प्राप्त होती है—

पुनि किलकिला समुंद महँ आए। किलकिल उठा देखि डरु खाए॥
गा धीरज वह देखि हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा॥

---

१. हंसजवाहर, २५१-२५२
२. चित्रावली, पृ० १४३

उठै लहरि परबत की नाईं । होइ फिरै जोजन लख ताईं ।।

× × ×

भा परलौ निअराएन्हि जबहीं । मरै सो ताकर परलो तबहीं ।

कै अवसान सबहिं कै, देखि समुँद कै बाढ़ि ।

निअर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि ।।[1]

नायक एवं उसके साथियों के हृदय-स्थित भय स्थायी समुद्र एवं उसकी हिलोरें (आलम्बन, उद्दीपन) देखने से उद्दीप्त होकर कम्प आदि अनुभावों से अभिव्यक्त एवं संत्रास, चिन्ता आदि संचारियों से पुष्ट होकर रस-व्यंजना में समर्थ हो रहा है। परन्तु भयानक वन का वर्णन करते समय कवि गणपति ने इस रस के मात्र आलम्बनों का ही वर्णन किया है—

किंहि किंहि बाघ वरू घणा, रोझ रींछडाँ जाय ।

किंहि किंहि रमता मेगला, केंडि केसरि घाय ।

× × ×

चीत्तल आडां उत्तरइ, जातां जाणी जरख ।

× × ×

मणिधर मोटा देखीइ पंखाला पुंन्नाग ।

सात फणइथी सहिस गल, बिभणी बिभणी वाग ।।[2]

उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारियों के अभाव में यह प्रसग रसाभिव्यंजना में असमर्थ है। नायकों के साहस एव धैर्य के कारण भय स्थायीभाव का परिपाक इन रचनाओं में प्रायः नही हो पाया। कदाचित् ही ऐसे स्थल उपलब्ध हो पाते हैं। चित्रावली में भयानक हस्ती के दर्शन के समय इस रस की अभिव्यजना हो जाती है—

ऊंच सीस जनु मेरु देखावा । सूंड जानु अजगर लरकावा ।

तरुवर जनु चबाइ दुइ दांता । डारत आउ खेह मदमाँता ।।

धावत जाइ पुहुमि जनु धसी । आवै पीठ सरग सों खसी ।।

भार्गाहं और हस्ति मद बासा । कुंअर देखि जिय भयो तरासा ।।

× × ×

अस्त्र न जो सनमुख होइ लरौं, जो निज मरन भागि का मरौं ।[3]

परन्तु परिपाक से पूर्व ही कुंवर के हृदय में अचानक उत्साह का संचार हो जाता है और भय स्थायीभाव छितरा जाता है—

कुंजर धाइ कुँअर पर परा । रहा ठाढ़ ही नेक न डरा ।।

× × ×

कुँअर हिये बिधि संवरा तहां । जो बिधि केर मीचु तेहि कहां ।।[4]

१. पदमावत, पृ० १४६

२. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, पृ० २५७-२५८

३-४ चित्रावली, पृ० ११६

बीभत्स रस

युद्धान्त के प्रसंगों में बीभत्स रस के भी दर्शन हो जाते है—

> खर्ग सम्हारि मारि अस करही। रुंड मुंड टूटे भू परही ।।
> सिर बिनु धरि धावै रन माही। गगन भई गीधन की छांही।।
> हाथी हनै घनै रन छूटै। टूटि मुंड धरि मस्तक फूटै ।।
> गज मुक्ताशिर श्रोनित धारा। अैसो जुद्ध भयौ असरारा ।।
> वारी नदी रुधिर की धारा। रथ घोड़े वहि लगें करारा ।।
> × × ×
> फिकरै स्वान भूत बैताला। जोगिनि गुहे मुंड की माला ।।
> चरख चील बहुदिसि तै धाए। हरखि गीधनि अंग लगाए ।।
> रुधिर भछि सब करै अहारा। पैरत भैरो फिरत अपारा ।।[1]

युद्ध के समय प्रेत-पिशाचों के अतिरिक्त कुत्ते, गीदड़, गीध आदि वन्य पशु-पक्षियों की भी मौज हो जाती हैं। आलम ने इनके वर्णन द्वारा बीभत्स की अभिव्यंजना में सफलता प्राप्त की है—

> फूटै मुंड चलै रन लोहुव। सुभटै सुभय फिरै जन कुहुरुव ।।
> जोगिनी फिरै भूतनी साना। बैठि करै लोहुअ कर पाना।।
> भिरहिं धाइ लोथि लै जाहीं। लोहू पियै मासु मिलि खाहीं ।।
> जोवन जाल करालै करोलैं। लोथहि काटि सरो महि बोलै ।।
> जोगिनि फोरै खोपरी, जंबुक भखै जु मास।
> सूरन की गति देखि कै, सूरज होई उदास ।।[2]

अनेक कवियों ने इसी प्रकार के आलम्बन-उद्दीपनों द्वारा जुगुप्सा को उद्‌बुद्ध कर बीभत्स रस की व्यंजना की है। पुहकर कवि के निम्नोद्‌धृत पद्य में इसी भाव को अधिक कौशल से अभिव्यंजित किया गया है—

> मरोरत मुंड नचावत चाड़, कटंकट दंत चचोरत हाड़।
> बचै इक फेरि रक्कत अघाइ, गिलै हकलीय अछंग वहाइ।
> गिरै छन अंग गही इक ओर, करे इसठीं इक जंबुक जोर।
> करग्ग समंडी बिहंडिय दंत, दुहुँदिस बेर मिटौ वह अंत।[3]

करुण रस

इष्ट-नाशजन्य शोक को उद्‌बुद्ध कर करुण रस की अभिव्यक्ति इन प्रेमाख्यानों मे यदा-कदा मिल जाती है। राज्यभ्रष्ट राजा नल के निम्नलिखित वर्णन में नल एवं

१. रामदास-कृत 'उषा की कथा', भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ३१२ से उद्धृत।
२. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह, पृ० २३०
३. रसरतन, पृ० २८८

दमयंती आलम्बन है, पुष्कर का कृत्य उद्दीपन, प्रजा तथा दमयंती का क्रंदन अनुभाव और लज्जा, विषाद, चिन्ता आदि सचारियों के संयोग से शोक स्थायी करुण रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है —

चले पुरुख नारी संग दोऊ। देखि उन्हिं झुरवै सब कोऊ ॥
सब दिन धरमराज इन कीन्हा। दुख धौं कौन दोख विधि दीन्हा ॥

× × ×

इन बातन्ह अधिकौ अकुलानी। चली उतायल लाज लजानी ॥
छाड़ी नगर बाहर भए दोऊ। नारी पुरुख और नहिं कोऊ ॥
घिर गति काल और रग फेरा। नगर छीनि बन दीन्ह बसेरा ॥

× × ×

चल कोसक व्याकुल होइ गए। पुरातन सुखो परे दुख नए ॥
बाट कँटीली पॉइ उघारे। काँटा अरें परें पुनि छारे ॥[1]

महत्त्वपूर्ण पात्र की मृत्यु पर भी करुण रस की अभिव्यंजना मिल जाती है। नायक हंस की मृत्यु पर शोक-विह्वल जवाहर का विलाप करुण रस का हृदय-द्रावक स्थल है—

देखत लोथ पड़ी तहं धाई। छांड डफारी लिये लिपटाई ॥
पिव मो कारन भयो भिखारी। मैं का करौं कुलक्षण नारी ॥
खोले शीश औ छिटकै बारा। तन बावर गरे लटकै हारा ॥
नैन रकत उमड़ै उल्थाहीं। भँवर फिरै बूडै उतराहीं ॥
तुम मोहिं लाग भयो पिव जोगी। मैं का देउँ अहौं पिव जोगी ॥
जो मो पास प्रान पिव तोरा। सो मैं देउँ और का मोरा ॥[2]

इस प्रसंग में नायक की मृत देह आलम्बन है; नायिका का पति-प्रेम एवं गुण-स्मरण उद्दीपन; बाल फैलाना, रोना, मृत शरीर से लिपटना अनुभाव; मोह, स्मृति, आवेग आदि संचारी हैं। इसी प्रकार शेखनबी के 'ज्ञानदीप' में राजकुमार ज्ञानदीप के प्रतिपालक पिता रायभान की मृत्यु पर भी शोक की अभिव्यंजना द्वारा करुण रस का परिपाक हुआ है—

कोई न रहा नएन बिनु रोए। भीजे बसन जो चुए निचोए ॥
हाय हाय कै माइय परै। लोग कुटुंब बिलषि सब परे ॥
विद्या नगर की नारी रोइ। बानि बकति सकति सब षोइ ॥

× × ×

---

१. नलदमन, पृ० १३२-१३३
२. हंसजवाहर, पृ० २६९

ज्ञान दीप सिर पाग उतारी। काढी कटार हिए पर मारी ॥
लोगन्ह हाथ-हाथ गहि लीन्हा। रंचक भएउ घाउ कर चीन्हा ॥
पिता मोर का कीन्हेउ मोका। कवन देषाउब मुष सिबलोका ॥[1]

शान्त रस

करुण रस की अपेक्षा इन रचनाओ मे ऐसे शोकपूर्ण स्थलों पर अधिकतर शान्त को ही महत्त्व मिला है। मृत्यु आदि के समय शोक के स्थान पर निर्वेद की अभिव्यक्ति की ओर इनका ध्यान गया है। निर्वेद ससार की असारता के ज्ञान का फल है। इस तत्त्व ज्ञान का दूसरा परिणाम तृष्णाक्षय भी हो सकता है। हेमचन्द्र ने इसका निर्देश कर 'शम' को शान्त रस का स्थायी भाव घोषित किया है।[2] हिन्दी प्रेमाख्यानों में इन दोनों स्थायीभावों के आधार पर शान्त रस की व्यंजना की गई है।

'मृगावती' में राजकुंवर की मृत्यु पर दोनों रानियां किसी प्रकार का विलाप आदि नही करतीं। राजा के साथ चिता पर बैठ सती हो जाती है। इस सम्पूर्ण दृश्य में निर्वेद की अभिव्यक्ति से शान्त रस का परिपाक होता है—

छुटि बिधि कोइ रहइ न इकेला। करता केर चरित सब खेला ॥
× × ×
जो किछु होनी कहुं सो भेंटा। बिधि का लिखा जाइ नहि मेटा ॥[3]

'पदमावत मे भी रतनसेन की मृत्यु पर इसी प्रकार निर्वेद की अभिव्यंजना से शान्त रस की अनुभूति होती है—

तेहि दिन साँस पेट मँह रही। जौ लगी दसा जियन की रही ॥
काल आइ देखराई साँटी। उठि जिउ चला छाडि कै माँटी ॥
काकर लोग कुटँब घरबारू। काकर अरथ दरब संसारू ॥
ओहि घरी सब भएउ परावा। आपन सोइ जो बेरसा खावा ॥[4]

कथा के अन्त में ही नहीं, आरंभ के भाग में भी मृत्यु से शोक की अपेक्षा निर्वेद की अभिव्यक्ति ही इन कवियों को अभीष्ट है। हंस के पिता की मृत्यु पर कासिमशाह ने शोक स्थायी भाव का परिपाक कर करुण रस की अभिव्यंजना में कोई रुचि नहीं ली—

बेदन भई प्राण अकुलाना। तब मन पूछ शाह पछिताना ॥
जनम न राजपाट चितलावा। अन्तकाल सो काल न आवा ॥
तब लग काल जो आय तुलाना। निकसा प्राण छोड़ अस्थाना ॥
रहिगा नगरकोट घर बारा। रहिगा देश औ कटक कुंभारा ॥
× × ×

१ ज्ञानदीप (हस्तलिखित)

२. तृष्णाक्षयरूपः शमः स्थायिभावश्च वर्णा प्राप्तः शान्तो रसः।
—काव्यानुशासन, अध्याय २

३. मृगावती, पृ० ३६७

४. पदमावत, पृ० ७०८

कासिम नर तन पायके, काज न एकौ कीन।
फिर पछिताय जो हार के, तब मांगे को दीन ॥[1]

राजकुमार हंस की मृत्यु पर भी शोक की अपुष्ट एवं निर्वेद की पूर्ण अभिव्यक्ति इस उदाहरण में दर्शनीय है—

पांतहि पांत सोवाय की, देहैं उपर तें छार।
छारहि करत औढाय के, अन्त छार की छार ॥
× × ×
छारहि ते साजा सबै, छारहि गौ सब भांज।
छारहि मांझ स्वरूप है, देखि सो दरपन मांझ ॥
× × ×
कासिम जक्त जान सब धोखा। जो जग भूल गयो सो खोखा ॥
× × ×
धोखा नगर कोटि घर बारा। धोखा द्रव्य औ रूप सिंगारा ॥
धोखा राजकाज सुख भोगू। धोखा सब लक्षण कुल लोगू ॥
× × ×
धोखा छांडि सुमिर करतारा। वही सो सोथ धोख संसारा ॥[2]

पुहकर के रतनसेन की समाप्ति भी शांत रस में ही होती है। राजकुमार सूरसेन नट के अद्‌भुत खेल को देखकर संसार की असारता को समझ कर वैराग्य ले लेता। सम्पूर्ण विलास वैभव से उसका मन फिर जाता है। तृष्णाक्षय के कारण वह ईश्वरस्मरण को ही संसार का सार समझता है—

जगत अनित्य कर्म ही नीरा। केवल विमल नामु हर हीरा ॥
कामिनि कनक और हय हाथी। ये तौ नहीं संग के साथी ॥
× × ×
सुकृत संग और नहिं कोई। क्यों नहि भजत हरी तिहि सोई ॥[3]

'चित्रावली' में युद्ध में शत्रु को परास्त कर हर्षोन्माद एवं विजयोल्लास के स्थान पर कुमार सुजान के मन में निर्वेद की ही जागृति होती है—

सोहिल परा मीचु मद पीये। उपजा ज्ञान कुँअर के हीये ॥
का भा सो जो डोलत आहा। जेही बिनु पुहुमी थकी सब रहा ॥
× × ×
मैं का जानी खरग कर लीन्हा। यह कारन केहि कारन कीन्हा ॥[4]

---

१. हंसजवाहर, पृ० १४
२. वही, पृ० २७०-७१
३. रसरतन, पृ० २६६
४. चित्रावली, पृ० १५१

हिन्दू कवियों द्वारा लिखे गए 'लखमसेन पद्मावती कथा', 'छिताई चरित,' 'मधुमालती वार्ता', 'माधवानल कामकदला', 'ढोला मारू' जैसी रचनाओं में शान्त रस की अभिव्यक्ति नहीं हुई ।

हास्य रस

अनेकशः आयोजित जलक्रीड़ाओं, विवाह-वर्णनों तथा सुरत एवं फाग-प्रसंगों में हास्यरस के लिए इन रचनाकारो के पास पर्याप्त अवकाश था परन्तु इसके प्रति इन रचनाओं में कोई रुचि दिखाई नहीं देती । प्रथम समागम से पहले या पीछे सखियों की मधुर छेड़-छाड़ का संकेत मात्र इनमें मिलता है । पद्मावती के साथ सखियों के इस प्रश्नोत्तर में हास्य की झलक मात्र है—

हँसि हँसि पूँछहि सखी सरेखी । जानहुँ कुमुद चंद मुख देखी ।।
रानी तुम अँसी सुकुमारा । फूल बास तनु जीव तुम्हारा ।।
सहि न सकहु हिरदै पर हारू । कैसे सहिहु कंत कर भारू ।।[1]

इसी प्रकार स्वयंवर के अनन्तर रम्भा की सखियां उसे छेड़ती हैं—

करहिं विलास हास वर बाला । बोलहिं बोल विनोद रसाला ।।
पौढ़ि लेहु अलि आजु अकेली । कालि होहु रति नाइक चेली ।।[2]

ऐसे स्थलों मे ये कवि प्रायः हास्य-योजना की अपेक्षा पांडित्य-प्रदर्शन में लग जाते है या फिर नायक अपनी कष्टपूर्ण यात्रा का वर्णन कर नायिका को प्रभावित करने का यत्न करते हैं और नायिका प्रथम समागम के भय से शंकित मौन धारण कर लेती है ।

'इन्द्रावती' में विवाह के पश्चात् एक सुन्दर चुहल मिलती है । जब इन्द्रावती राजकुंवर के पास जाती है तो उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई सखियाँ कहती हैं—

जानि परत भगिनि तुम्हारी । होइहि पियारी अति अधिकारी ।।[3]

सालियों की ऐसी छेड़-छाड़ परम्परा से चली आई है । परन्तु विवाहों के उपरान्त इसका वर्णन प्रायः नही हुआ ।

'नलदमन' मे चंचल सखियों ने नल को एक खेल में उलझा लिया और नायिका से मिलने मे अपने परिहास द्वारा बाधा डाली—

सबही रचा खेल व्योहारू । लागी करन हास कर चारू ।।
सुन दुलहै दुलहिन हम माहां । आवन देहिं न तिहिं तुम पाहां ।।
खेलहु जो तुम चतुर खिलैया । दोहा बिरहा पढ़ै सवैया ।।[4]

ऐसे प्रसंगों में लोक-परम्परा का उल्लेख मात्र है, हास्य की अभिव्यंजना नहीं हो सकी ।

---

१. पद्मावत, पृ० ३२१
२. रसरतन, पृ० १८१
३. इन्द्रावती, उत्तरार्द्ध (हस्तलिखित)
४. नलदमन, पृ० ११२

वत्सल रस

हिन्दी प्रेमाख्यानों में वात्सल्य के परिपाक के अनेक स्थल हो सकते थे परन्तु सर्वत्र ऐसा नही हुआ। शृंगार के प्रति अधिक रुचि के कारण अन्य रसों की अभिव्यंजना प्रायः उपेक्षित रही। अधिकांश रचनाओ में सन्तान के अभाव का वर्णन है परन्तु करुण-वात्सल्य की अपेक्षा चिन्ता, ग्लानि, दैन्य जैसे संचारी भावों को ही अभिव्यक्त कर कथा आगे बढ जाती है—

बिधि परसाद पूर सबही, निधि अन धन हय मैमंत।
सुत चिंता पै रैनि दिन, राजा के चित नित।[1]

अथवा—

करि अर्घ आदि आतीथ भाव। कर जोर दीन हो बिनय चाव।।

× × ×

करु मुहि अनाथ पै कृपा नाथ। कै चलौं जोग अवराधि साथ।।[2]

अथवा—

सुत चिंता राजा चितमाहीं। राजकाज मन भावै नाहीं।[3]

कथा के मध्य भाग में अनेक स्थानों पर संयोग एव वियोग वात्सल्य के कुछ सुन्दर उदाहरण अवश्य उपलब्ध हो जाते हैं। रतनसेन योगी बनकर चल पड़ा। माता का स्नेहपूर्ण हृदय घबरा गया। मेरा पुत्र, जो इतने दिनों ऐश्वर्य एव सुख में पला है, तप कैसे करेगा? कम्बली-कथरी कैसे ओढ़ेगा? पैदल कैसे चलेगा? रूखा भात कैसे खाएगा—

बिनवै रतनसेनि कै माया। माथे छत्र पाट निति पाया।।
बेरसहु नव लख लच्छि पिआरी। राज छांड़ि जनि होहु भिखारी।।
निति चदन लागै जेहि देहा। सो तन देखु भरब अब खेहा।।
सब दिन रहेउ करत तुम्ह भोगू। सो कैसे साधब तप जोगू।।
कैसें धूप सहब बिनु छाहाँ। कैसे नींद परिहि भुइँ माहाँ।।
कैसें ओढब काँबरि कथा। कैसे पाउँ चलब तुम्ह पंथा।।
कैसें सहब खिनहि खिन भूखा। कैसे खाएब कुरकुटा रूखा।।[4]

आलम्बन रतनसेन का योगी-भेष उद्दीपन है। माता का रुदन, विनय एवं पुत्र को मनाना अनुभाव है। चिंता, दैन्य, मोह आदि संचारी भावों के सयोग से इस कडवक में वात्सल्य की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। इसी प्रकार राजकुमार सदयवत्स के निर्वासन के समय उसकी माता के असह्य दुःख की व्यंजना में भीम कवि ने वियोग

१. मधुमालती, पृ० ३७
२. रसरतन, पृ० २५
३. चित्रावली, पृ० १५
४. पदमावत, पृ० १२५

वात्सल्य की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। कवि जायसी के वर्णन में बाह्य क्रिया-कलाप का अंकन है परन्तु भीम कवि ने आन्तिरिक वेदना की मार्मिकता को अत्यन्त कौशल से चित्रित कर इस प्रसंग मे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है—

चित्त चटकउ नीसरिउ, गहबर गलइ न माइ।
ऊसासे नीसासणे, जापे जीवी जाइ॥
बाला के रे बीजंपे, वारिणी छंटइ वाउ।
मइं हत्थइं सूदउ करइ, जणनी जीवे वाउ॥[1]

मनोहर के वियोग के समय उसके माता-पिता के विलाप में भी वात्सल्य की अभिव्यजना हुई है।[2] 'रसरतन' के कुमार सूर की माता की दशा अत्यन्त हृदय-द्रावक है—

कंठ लाय गहवर हिय रोवै। जनु सुतवदन अच्छ जल धोवै॥
वच्छ विछोह धेनु जिमि रंभै। व्याकुल अश्रु पात नहिं थंभै॥
राम चलत कौसिल्या जैसे। घुमि घुमि धरनि परतिवन ऐसै॥
अँखियाँ रहट कंभु जिमि चाही। भरि भरि आवै ढरि ढरि जाँही॥
सावन घटा नैन वरषावै। गद गद गिरा वचन नहीं आवै॥[3]

आलम्बन पुत्र को सामने उपस्थित कर अनुभावों एवं संचारियों के संयोग से कवि पुहकर ने इस पद्य मे वात्सल्य को रूपमान कर दिया है।

संयोग वात्सल्य के भी अनेक सुन्दर उदाहरण इन प्रेमाख्यानों में मिलते हैं। सूरदास के समान बालक की क्रियाओं एव हँसी-खुशी का चित्रण करने का अवकाश इन कवियों को नही मिला। प्रायः माता-पिता के हर्ष अथवा संतोष का ही वर्णन है। 'मृगावती' मे राजकुंवर के मुख को देखकर पिता को वर्णनातीत आनन्द हुआ—

राजइं पूत दिस्टि भरि देखा। भा अनद अस आव न लेखा॥[4]

धायों को आदेश देकर पालन-पोषण करवाया एवं पांच वर्ष का हुआ तो गुरु के हवाले कर दिया।[5] 'चित्रावली' में कवि उसमान ने इसमें कुछ रुचि प्रदर्शित की है। पुत्र के जन्म पर हर्षातिरेक से राजा के कुर्ते के बद टूट भी गए—

राजा हिएं रहस अस जागा। टूटे बंद फाटिगा भागा।
सुत सुनि राजा मन भयो, रोम रोम संतोष।
रानी रहसी देखि मुख, भई सँपूरन कोष॥[6]

---

१. सदयवत्स वीर प्रबन्ध, पृ० २०
२. मधुमालती, पृ० १४४
३. रसरतन पृ० १०२
४. मृगावती, पृ० ११
५. वही, पृ० १३
६. चित्रावली, पृ० २०

माता ने बालक को अपना दूध पिलाया। नित्यप्रति उसे हृदय से लगाकर सन्तोष का अनुभव करने लगी—

अपने छीर माइ सुत पोषा। अपने हिये लाइ संतोषा॥
निसिदिन हिए लांए सुख लहहीं। चारि नैन मुख लागे रहहीं॥[१]

परन्तु वात्सल्य के अपूर्व प्रवाह का साक्षात्कार तब होता है जब कुमार चित्रावली एव कौलावती को लेकर माता-पिता से भेंट करता है। यह प्रकरण संयोग वात्सल्य का सुन्दर उदाहरण है—

सुत कर बदन हेरि भा छोहा। घरी घरी हिय उठै मरोहा॥
हिय गहबरि मुख बात न आऊ। फिरि फिरि गहै पिता कर पाऊ॥
फिरि फिरि राउ गहै अँकवारी। लोग कुटुँब नेउछावरि सारी॥

× × ×

माता लै सुत कंठ लगावा। चूमि बदन कर आंखिन लावा॥
कहिसि कि धनि दिन धनि यह घरी। पूर्तहिं भेटिउँ अंक में भरी॥[२]

राक्षसादि के वश में पड़ी कन्याएं जब नायक की सहायता से सकुशल अपने परिवार मे पहुंचती है तो भी वत्सल रस के परिपाक का अवकाश होता है परन्तु ये कवि कुछ सात्त्विकों या संचारियों का ही चित्रण करते हैं। राक्षस के बन्धन से मुक्त हो राजकुमारी मधुमालती जब घर पहुंची तो राजा और रानी व्याकुलता से भागकर उससे मिले।

राजा उठि धाएउ बिसभारा। औ रानी सिर पा न संभारा॥

× × ×

ब्याकुल भै पूंछित महतारी। केतिक दूरि सो राजदुलारी॥

× × ×

पेमहि आइ मिला परिवारू। होइ लागि नेउछाउरि वारू॥[३]

ऐसे प्रसंगों में रस व्यंजना की ओर कवियों ने विशेष रुचि नहीं दिखाई है।

पंजाबी प्रेमाख्यानों में अन्य रस

अन्य रसों में पंजाबी साहित्य में वीर, करुण, बीभत्स, वात्सल्य आदि के उदाहरण यदा-कदा उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु ऐसे स्थलों की संख्या बहुत कम है।

वीर रस

वीर रस के स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना के कई अवसर पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य में उपलब्धहो सकते है। विशेष रूप से 'मिरज़ा साहिबां' में मिरज़ा एवं

---

१. चित्रावली, पृ० २२
२. चित्रावली, पृ० २३५
३. मधुमालती, पृ० २४१-४३

साहिबां के परिवार वालों का युद्ध, 'हीर-रांझा' में हीर अथवा सहती के भागने के समय के युद्ध में इस रस का परिपाक किया जा सकता था, परन्तु इन सभी स्थलों पर इन कवियों ने इसके सम्यक् परिपाक की चिन्ता नहीं की। 'मिरजा साहिबां' में मिरजे की गर्वोक्तियां ही सुनने को मिलती हैं—

मैं सौ सठ काने मैं तरकसां, देवां सालिआं वंड।
पहिले मारां खान शमीर नूं, दूजे कली दे तंग।
तेजे मारां जाहर खान नूं, जिहदी तूं साई मंग।
चौथे मारां तेरे बाप नूं, कुल मुकावां कलंक।
पंजवें मारां खान अल्लाह दाद नूं सुट्टां बिरहां दी पड।[1]

हीर अथवा सहती के भागने के समय भी पीछा करते हुए खेड़ा दल के साथ मुठभेड़ का वर्णन मात्र है—

पहिलां मिली मुराद नूं जाइ दाहर, अग्गे फटक बलोचां ने चाढ़ दित्ते।
लै के तरकशां अते कमान दौड़े, खेड़े नाल हथिआरां दे राड़ दित्ते।
हत्थ बरछीआं पकड़ बलोच कड़के, तेगां मार के वाहरू झाड़ दित्ते।
वारिसशाह जां रब्ब ने मिहर कीती बद्दल कहिर दे लुतफ ने पाड़ दित्ते।[2]

इन कवियों की रुचि वर्णनात्मक प्रसंगो में ही है। परन्तु दमोदर में इस रस का परिपाक हुआ है। दमोदर की नायिका हीर में उत्साह पुंजीभूत है। नौका लेकर भागते हुए नूर संबल के सेवक लुड्डन की घबराहट को देखकर, वह उपेक्षा एवं गर्व पूर्ण उत्तर देती है—

नूरा कौण बलाइ सुणाइआ बेड़ी जिन्हें घड़ाई।
बन्हसु टांग ठुक्के उस चप्पा एहु बेड़ी खुश आई।
आख दमोदर कोइ न रखी बिन मैं चूचक जाई।[3]

इस उपेक्षापूर्ण गर्व की सार्थकता उसके युद्धोत्साह में स्पष्ट हो जाती है। 'नूरा' दूत भेजता है परन्तु वह मार खाकर चला गया। फलतः, नूरा सरदार सजधजकर युद्ध के लिए आया। हीर की सहेलियों और नूरा संबल के योद्धाओं के युद्ध के इस वर्णन में वीर रस की अभिव्यंजना होती है—

रखे हत्थ कमाना उत्ते राठां भिड़ना चाइआ।
नाऊ ताजी घोड़ीआं मुलताने जिउं कर सावण आइआ।
उड़न तुरे भंबीरी वांगूं साउआं पर्हा बनाइआ।
आख दमोदर भिड़न सूरमे लोहे नूं हत्थ पाइआ।

× × ×

---

१. मिरजा साहिबां (हाफिज बरखुरदार), पृ० १२

२. हीर वारिस, पृ० १६६

३. अर्थ—नूरा कौन सा वीर है जिसने यह नौका बनवाई है। मुझे यह नौका अच्छी लगती है, इसे बांध लो, मेरे बिना इसे पकड़ने का साहस किसमें है?

—हीर दमोदर, पृ० २८

वांगू गोहई सीने परणे ऐली ऐली कर पईआं।
× × ×
वगीआं तेगां इदों उदों केही सिफत अखाहीं।
लोथां झड़ने जिमीं उत्ते रत्त लग्गे जंघी बाहीं।
जोगणीआं रत्त पीवण आईआं सीस धड़ांते नाहीं।
× × ×
मार मार कर बोलण सूरमे हुट्टे लड़दे ताहीं।
× × ×
ऐली ऐली कर लशकर वड़ीआं जावण देवण नाहीं।
आख दमोदर हुट्टे साउ, कुड़ीआं हुट्टण नाहीं।[1]

वीरतापूर्वक लड़ते-लडते उन कन्याओं ने योद्धाओं को खदेड़ दिया। बड़ी-बड़ी सेनाओं के युद्धों का वर्णन केवल 'सैफुलमुलूक' मे है। परन्तु युद्ध का ऐसा उत्साह एवं खनक उस प्रसंग में नही आ पाई। सेनाओं का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन ही अनेकशः आया है या थोड़ी बहुत मारकाट। वीर रस की अभिव्यंजना के लिए उत्साह की अनिवार्यता का पालन वहां नहीं हुआ।

सेना का यह वर्णन कितना अतिशयोक्तिपूर्ण है ? संख्या इतनी अधिक है कि 'खशखश' का दाना भी भूमि पर नही गिर सकता –

धूड़ धूड़ होइआ सभ आलम जां चढ़ि टुरी सवारी।
पैरां हेठ मलीदा दुशमन भज भज मिरग शिकारी।
लशकर जगल बारां गाहीआं होए रुख मलीदा।
× × ×
सहिरावां दी सबजी संभी, नदीएं नीर निखुट्टे।
सफन सफा होए रुख बूटे, तुखम जमीनों पुट्टे।
× × ×
लशकर नाल होइ पुर धरती होर हिसाब न जाणा।
जो खशखश दा छट्टा देईए भुंजे पवे ना दाणा।[1]

---

१. अर्थ—वीर योद्धाओं ने कमानों पर हाथ रखे, उनके अश्व उच्च एवं अच्छी जातियों के थे, वे ऐसे आए जैसे सावन की घटाएं आती हैं। हाथ में तलवारें लेकर, वे तीव्र वेग से दौडे। इधर से ये वीर कन्याएं भी गोह (गोधा-जंगली जंतु विशेष) के समान तन कर एली-एली करती हुई चली। दोनों ओर से खड्ग चलने लगे। उनकी प्रशंसा नही की जा सकती। मृतक शरीर भूमि–पर गिरने लगे, अंग-प्रत्यंग में रक्त बिंदु छिटके हुए थे। शरीरों पर सिर नहीं थे। जोगणी समूह रक्तपान के लिए आया। उन कन्याओं की मार से डरते वीर भागने लगे।

—हीर दमोदर, पृ० ३१

सैफुलमुलूक, पृ० ५३०

परन्तु, समरांगण में आमने-सामने खड़े इन वीर योद्धाओं का कार्य अत्यन्त आश्चर्यकारी है । सधि की आशा से दोनों ही ओर के योद्धा प्रहार में पहल नहीं करते —

सफां कतारां बन्हि खलोते इक दूजे वल तकदे ।
मीर वज़ीर ना तीर चलावण, बैर करन थीं झकदे ।
मत कोई ढो सुलह दा ढुक्के अव्वलि सट्टो-फट्टो ।[1]

परन्तु सुलह का कोई ढग न बन पाया और युद्ध आरंभ हो गया—

धौंसे धौंस आवाज़ों चाढ़ी शुतरी शोर मचाइआ ।
तुरम तबूरा ते करनाईं, गुल जगत विच पाइआ ।
यूनानी ईरानी बाजे, तुरकानी कर नाईं ।
गाओ दुमा कन डोरे कीते वज्जण था-ब-थाईं ।
कोरड़िआं दे सखत कड़ाके निकल जाण असमानों ।
पत्थर भन्न उडारी कढण ताज़ी मार सुमानों ।
शेर जवानां दी मुछ फड़के सुण सुण शेर दमामा ।
रन विच ताज़ी जुम्बश चाए चुकण सार लगामा ।

× × ×

धूड़ो धूड़ होए मुह मत्थे गरद चढ़ी सिर खौंदा ।
पंदरा हो गए इस जग विच, आहे तबक पर चौदां ।
गलत लिखे मैं पदरां नाहीं धरती इक घटी सी ।
गरदों अम्बर बणिआं जिहड़ी सुम्मां नाल पट्टी सी ।[2]

उत्साह की अपेक्षा इस वर्णन में घोडों के कौशल और सेना की विशालता का ही वर्णन है । विशाल वाहिनी का स्मरण कवि थोड़े-थोड़े समय पश्चात् करवा देता है । युद्ध-भूमि के दृश्य का भी कवि ने वर्णन किया है ।[3] परन्तु इन वर्णनों में रस-परिपाक नहीं हो पाता ।

करुण रस

करुण रस के स्थायी भाव शोक की अभिव्यंजना कई स्थलों पर हुई है । सोहणी एवं सस्सी के मृत्यु के समय के वर्णनों के अतिरिक्त हाफिज़ बरखुरदार ने साहिबां की मृत्यु का वर्णन अत्यन्त करुणापूर्ण किया है । उसकी मृत्यु पर मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी आंसू बहाते है—

तोतिआं मैंनां कूहीआं चुंजू लाल दसन्न ।
अते छाती कोही तिलीहरां हंजू नीर पवन्न ।

---

१. सैफुलमुलूक, पृ० ५३२
२. वही, पृ० ५३३
३. वही, पृ० ५३४-५३५

आशकां दा मातम कीता पंखूआं कल्ले पए रवन्न।
अते नीला वेस बणाइअन थर-थर पए कवन्न।
कर तुरिआ साता पंखनूं रो रो विदा थीवन्न।[1]

सम्पूर्ण परिवार का विरोध पालने वाले इन प्रेमियों के शोक में कवि के अतिरिक्त ये पक्षी ही रो सकते है !

इस साहित्य में करुण रस के परिपाक का सर्वोत्तम स्थल सोहणी की मृत्यु का दृश्य है। अन्तिम समय में असहाय सोहणीं की करुण चीत्कार का वर्णन इन कवियों ने भावपूर्ण ढग से किया है। वियोग-विप्रलम्भ में प्रकृति के साथ एकात्मता की कमी करुण रस के स्थलों में पूरी कर ली गई है। जल में मांस खाने के लिए आने वाले जल-जन्तुओं के आगे सोहणीं की प्रार्थना में शोक के साथ सोहणीं का दैन्य, विषाद, अभिलाषा, निष्ठा सभी को अभिव्यक्ति मिली है—

मछो कछो बुलहणों करां सवाल तुझे।
मैं दौलत महीवाल दी सोहणीं नाम मुझे।
शाला मेरे बदन नूं दाग न लाओ अजे।
है यार मिलण दी कादरा दिल विच तांग अजे।[2]

मिलन की इसी अभिलाषा के कारण तो वह तूफानी नदी में कूदी थी। यह अभिलाषा ईश्वर ने पूरी न की तो क्या है—कवियों ने पूरी कर दी। सोहणी इन्ही जलजंन्तुओं से प्रार्थना करती है कि जाओ, मेरे प्रियतम को कहना कि सोहणी 'झगां' में डूबकर मर गई है यह न समझना कि वह महलों में सोई हुई है। आज चीत्कार के मरुस्थल को चीरते-चीरते उसे नदी बहा ले गई। किसी के वश में कुछ भी नहीं, मेरा दाना-पानी ही समाप्त हो गया था—

जाण वक्त दे कूक नूं सोंहणी मारे आह
मछो कछो बुलहणों मेरे वलों जा।
महींवाल फकीरनूं कहणा जाइ तुसांह
सोहणीं विच झनाउं दे होई डुब्ब फनाह।
पिछों यार पिआरिआ दिल अफसोस करें
मत विच महिलों समझदों सोहणीं सुत्ती है।
आहीं दे थल चीरदी रोहड़ खडी/अज्ज नै
रिज़क मुहारां चुक्कीआं वस्स नहीं कुझ तै।[3]

फजलशाह ने इस सम्पूर्ण दृश्य से अत्यन्त कौशलपूर्वक करुण रस की अभिव्यंजना की है। मरते समय सोहणी के हृदयवेधी विलाप में व्यक्ति की असमर्थता,

---

१. कोइलकू, पृ० ११९
२. कादरयार, पृ० ८७।
३. कादरयार, पृ० ८८

भाग्य की सामर्थ्य, वैर-विरोध की शान्ति, प्रियतम के प्रति अद्‌भुत आकर्षण, कण-कण से क्षमा-याचना सब कुछ इस प्रकार वर्णित हुआ है कि हृदय बरबस शोकाकुल हो चीत्कार कर उठता है। यह सम्पूर्ण प्रसंग अपने में अद्वितीय है—

शरीर छोड़कर जाती हुई आत्मा के प्रति शरीर का विलाप कवि की अद्‌भुत सूझ है। प्रियतम प्रेमिका को छोड़ गया यही तो बात शरीर एवं आत्मा की है—

जांदे रूह नूं बुल पुकार कीती कित्थे चलिएं छड्ड निमाणिआं नूं।
मैनूं वणो तो होर वधाइओई बद्धे भार औ यार पलाणिआं नूं।
सोहणीं डोब झनाओं दे विच्च चलिओं, मछ कछ संसार दे खाणिआं नूं।

× × ×

नाम रब्ब दे मन्न सवाल मेरा, गल ला इक वार निमाणिआं नूं।
डोब सोहणीं नूं किहड़ी वल वैसें, यारा दस्स के जाह टिकाणिआं नूं।[1]

इसके बाद मृत शरीर प्रेमी महीवाल को भी संदेश भेजता है। वास्तव में यह सोहणी का ही प्रियतम के प्रति संदेश है जिसमें निष्ठा, अभिलाषा एवं विवशता की सहायता से करुणा की अभिव्यक्ति हुई है—

ढाई मार के अरज गुजार देणी, अग्गे यार दे बांह उलार मीआं।
तेरी सोहणीं विच्च झनाऊ डुब्बी, पिआ मौत दा लख असवार मीआं।

× × ×

कीता बहुत चारा यार मिलण कारण, तुसीं सुणीं न कूक पुकार मीआं।
तेरे इशक नूं दाग न लगण दित्ता, कीती तुसां ते जान निसार मीआं।[2]

प्रेमिका की आत्मा ने शरीर का संदेश जा सुनाया। महीवाल की भी वही दशा हुई जो सोहणी की हुई थी। शोक-विह्वल प्रेमी अपनी प्रेमिका के दर्शन की अभिलाषा मे विलाप करता है और अंततः नदी की धारा में कूद पड़ता है। दोनो के शरीर मिल जाते है। समग्र सृष्टि इनके शोक में व्याकुल हो उठी। आकाश के देवता, सूर्य, तारे, वासुकी नाग, हिमालय ही व्याकुल नहीं हुए पशु-पक्षियों ने भी खाना-पीना छोड़ दिया,

१. अर्थ—प्रयाण करती हुई आत्मा को प्रकार कर शरीर ने कहा, इस निरीह को छोड़ कर कहा चले हो? तुमने मेरे कष्टों में और वृद्धि कर दी है, मेरे बोझ को और बढा दिया है। सोहणी को मच्छो-कच्छपों और समुद्र के अन्य जीव-जन्तुओं के खाने के लिए छोड़ तुम चल दिए हो। ईश्वर के लिए मेरी विनती स्वीकार कर एक बार तो मुझे गले से लगा लो। मेरे प्रिय, तुम सोहणी को डुबो कर किधर जाओगे, अपना ठिकाना तो बताते जाओ।

—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० ४५

२. अर्थ—भुजाएं उठा कर, चीत्कार करते हुए मेरे प्रिय के आगे निवेदन कर देना कि तेरी सोहणी चिनाव नदी में डूब कर मर गई है। उसने प्रिय से मिलने का बहुत यत्न किया, परन्तु तुमने उसकी पुकार न सुनी। उसने तुम्हारे प्रेम पर धब्बा नही लगने दिया और तुम्हारे लिए प्राण दे दिए।

—सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० ६४

वाचिक, आहार्य एवं सात्विक अनुभावों तथा विषाद, दैन्य, चिन्ता, स्मृति, अपस्मार के योग से हृदय शोकाभिभूत हो जाता है—

छाती ते हत्थ मारे अव्वल झग्गा पाड़ि गवाइआ।

× × ×

सड़दी बलदी उठदी झड़दी न जीवे न मरदी।
चूंढीआं मारे मास उतारे छिल सटिओसु रुखसारे।
रत्त बिझोल होइआ सब चिहरा, सुरख होए हत्थ सारे।
वटि मुट्ठी वटि मारे छाती, वट्ट पए जद सीने।
पिट पिट पिट कीत्ते पट रत्ते पटि पटे घत सट्टे।
सट सिर सट सिरे दी लैंदी, भन्नि ज़ेवर सट सट्टे।

× × ×

सजना ! इह सजनौत ना आही यारां नाल न यारी।
याद कीते, बिन गिओं इकल्ला मैनूं दे सिर भारी।

× × ×

कित्थे राज सुहाग तत्तीदा लूठि जिस कवारी।
सुंजी सेज मुहम्मद बखशा हरदम खावण हारी।

× × ×

तन कोल्हू दिल बखरा मीरा, दरद तुसाडा तेली।
तत्ती तावां लाइ मुहम्मद पीड़ी जान इकेली।[1]

मुझे अकेला जान, तुम्हारा शोक-रूपी तेली निचोड़ रहा है।

कादरयार अथवा फजलशाह के करुण में जो विस्तार एवं प्रकृति के कण-कण के साथ एकात्मता स्थापित की गई है वह इसमे नहीं फिर भी वेदना की अतिशयता यहां भी कम नही।

भयानक रस

कभी-कभी भय की व्यंजना भी इन रचनाओं में मिल जाती है। चुड़ैल को आलम्बन बनाकर अहमदयार ने इस स्थायी भाव की अभिव्यक्ति की है—

इक चुलेल खलोती डिट्ठी मेरे वत सरहाणे।
दंद जिवें खूह खाइआं अंदर सुक्के रुख पुराणे।

× × ×

जीभ कसाईआं दी जिउं लटके कंधे नाल हलाली।
वाल निक्के विच घाह टोयां दे जम्मिआं पाली पाली।

---

१. सैफुलमुलूक, पृ० ६४४-६४६।

नासां बाङ् तंदूरा दिस्सण नक्क वड्डा ज्यों कोठा।
दस दस मण अक्खीआं दी चरबी वग्गे ठूठा ठूठा।[1]

परन्तु इस प्रकरण में यह भावाभिव्यक्ति मात्र ही रह गया। अनुभावों अथवा संचारियो की योजना इसमें नही हो पाई। अपने मित्र को इस घटना का वर्णन सुनाते समय केवल आलम्बन के भयानक रूप का वर्णन कर नायक अग्रसर हो गया है। 'सैफुलमुलूक' में भी जंगली रानी का वर्णन इसी से मिलता-जुलता है। परन्तु वहां कवि ने भय की अपेक्षा जुगुप्सा की अभिव्यक्ति करना अधिक उपयुक्त समझा। काम-क्षुधा से पीड़ित इस नारी के रूप को भय की अपेक्षा जुगुप्सा का आलम्बन बनाना ही उचित है—

हाथी वांगर अखीं खूईआं रत्तीआं रत्त चवाई।
गल्हां आफर आफर होईआं जिउं सावन दी जाई।
× × ×
वाल गल्हां दे मत्थे कन्नी, सेविआं वांगर सब्बदे।
× × ×
गंदी बू हवाड़ निकलदी जिउं दोजख दी मोरी।
खोते वांडू कन्न खलोते ठोडी वड्डी सारी।
नासां मिसल भड़ोले दिस्सण, सींढ जिन्हां थी जारी।
× × ×
कच्छां दी की गल्ल हिलावां भरी होई बदबोई।
डंगर जिवें तरक्कण जूहे नक्क न धरदा कोई।
सड़ी होई बदबोई ऐसी घा न टापू जम्मे।
छाती उपर मशकां वांगू लमके होए मम्मे।[2]

प्रकृति को आलम्बन बनाकर सोहणीं महीवाल की रचनाओं में 'भय' की सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है—

नीर नदी विच्च खड़कदा, मौजां कड्डण डंड।
तखता पट्ट जमीन दा रेतू सुट्टे ढड।
रुख उखेड़े कादरा मींह हनेरी ठंड।
× × ×
शेर जुरावर चितरे, पाहडे हिरन हजार।
× × ×
तिस दिन चंदल कादरा वगी ऐत शुमार।
पाटा साह झनाउंदा कपर वहिंदा जोर।

---

१. कामरूप (अहमदयार), पृ० ४५
२. सैफुलमुलूक, पृ० १८३

रात अंधेरी शूकदी बदलां कीता शोर।
पर ओह हाल बाझ खुदाई दे किसे मलूम न होर॥[1]

कादरयार ने इस प्रसंग मे आलम्बन का ही वर्णन किया है। अन्य उपकरणों के अभाव मे यह भय रस-दशा को प्राप्त नही होता। इसकी रसाभिव्यक्ति में हाशम को सफलता मिली है। झंझावात का भयपूर्ण चित्र, वन, बेला, नदी सर्वत्र भय का प्रसार, सोहणी के हृदय का कम्पन एव संकल्प की अभिव्यक्ति के कारण स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त हुआ है—

खूनीशाम घटा विच बिजली चमके नाल मरोड़ां।
× × ×
कबे तखत जिमीं दा बरहर सहण पहाड़न तोड़ां।
हाशम फेर न मुड़दी हरगिज मोड़े कौण अमोड़ां।
पार उरार अंधेरी जालम होण हजार अपुट्ठे।
पुट पुट रुक्ख बणे सण मूलीं, जाइ किते वल सुट्टे।
× × ×
झारश नाल होए पुर खाने कुल जीअ जान उछले।
× × ×
दानव देव सभे उस वेले हरगिज पैर न चल्ले।
× × ×
बोले नाल अन्हेरी बेला गिरदे हाल भलेरे।
जहिरी नाग अठ्ठहे शूकण भखदा चार चुफेरे।
× × ×
वासक पूत मणी उछालण खड़दे चुक्क अन्हेरा।
पहुती जाइ नदी तक सोहणीं कामल सिदक पहुंचाई।
फड़िआ जाइ घड़ा हत्थ डोबू, तार बन्ने जिन लाई।
दिल थीं ऐश हयाथी वाली तोड़ उमीद सिधाई।[2]

भय ने सोहणीं के हृदय मे भी खलबली मचाई परन्तु डरना कब तक ? तैरने वाले अन्ततः डूबते ही है। निष्ठावान् पीछे नहीं हटते—

सोहणीं समझ डिट्ठा विच दिल दे खूब नहीं हुण डरना।
आफत मौत न मुड़दी सिर थीं जद कद ओड़क मरना।
तारू अंत डुबंदे आहे किचरकु नै विच्च तरना।
हाशम कार सिदक दी नाहीं पैर पिछाहां धरना।[3]

---

१. कादरयार, पृ० ८४
२. हाशम रचनावली, पृ० ७३-७४
३. हाशम रचनावली, पृ० ७५

उस घातक जलधारा की भयानक लहरों से घबरा कर वह पीछे न हटी। जीवन की आशा तोड़कर उसने प्रियतम से नाता जोड़ लिया। भय से लोहा लेने वाली ऐसी वीरता पर करोड़ों जीवन बलिदान किए जा सकते है—

साबत सिदक सोहणीं कर धाई हटी न हटकी होड़ी।
खूनी वहिण कहिर दीआं लहिरां वाग पिछां न मोड़ी।
ऐसी प्रीति सज्जण वल जोड़ी आस जीवण दी तोड़ी।
हाशम सिदक सोहणीं दे उपरों वारे मरद करोड़ी।।[1]

वत्सल रस

पंजाबी साहित्य में वात्सल्य की अभिव्यजना भी बहुत ही कम प्रसंगों मे हुई है। नायिकाओं के समाज-विरोधी कार्यो के कारण इनके प्रति माता-पिता के स्नेह की अभिव्यक्ति नही हुई। 'यूसफ जुलेखा' अथवा 'सैफ़ुलमुलूक' में ही इसके दर्शन होते हैं।

पुत्र यूसफ के वियोग मे नबी याक़ूब का वियोग-वात्सल्य उद्धरणीय है —

रात दिहों उस यूसफ कारण, रो रो नैण वंजाए।
मौते कोलों बुरा विछोड़ा, दिलों फिराक न जाए।
विछड़ यूसफ बरछी लाई मुढ कलेजे हल्ले।
विछोड़े दा घाउ सताणा सांग कलेजे सल्ले।
पैगम्बर जिउं जल विच मच्छी कुंडी लग्गी फड़के।

× × ×

अन्हा होइ बैठा पैगम्बर दरद यूसफ दे विच रोवे।
कुव्वत गई बेतारक होइआ, आसा पकड़ खलोवे।[2]

इतनी हीन दशा मे पहुंच कर भी जब पुत्र ने अपना वस्त्र भेजा तो याक़ूब को उसमें पुत्र की सुगन्ध आई। सूखा वृक्ष लहलहा उठा, आँखों को ज्योति एवं हृदय को शान्ति मिली—

पैगम्बर पैराहन लैके अखीं उत्ते धरिआ।
रब्ब सुक्का ढींगर कुदरत सेती पल विच कीता हरिआ।
दीदे रोशन सीना ठडा दिल विच्च फरहत शादी।
पिऊ नूं रल मिल खलकत आई, देण मुबारक बादी।[3]

सैफ़ुलमुलूक को विदाई देते समय माता पुत्र के शरीर का प्रेमपूर्बक स्पर्श करती हुई आँसू बहाती है। साथियों का स्मरण दिलाती है, मार्ग की कठिनाइयों एवं भयावह जन्तुओं के भय से घबराती हुई अनेक शंकाएँ व्यक्त करती हैं। इन सबके द्वारा मातृ-वात्सल्य की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है—

---

१. हाशम रचनावली, पृ० ७५
२. यूसफ जुलेखा (बरखुरदार), पृ० ६२
३. वही, पृ० १०८

मां पिआर देवे मूंह उत्ते हत्थ फेरे हर पासे।
नाल मुहब्बत कंघी फेरे रखे ला दिलासे।
× × ×
हजू बारां वैण अम्बरां वाङ्ण मींह बहारां।
× × ×
हानी तेरे रलि मिलि खेडण तूं विच्चों क्यों नस्से।
इह कोह काफ समुंदर काले बच्चा कीकर फिरसें।[1]

इस छोटी सी आयु में नरक से भी अधिक भयानक यात्राएं कैसे करोगे। अनेक वनैले पशुओं और असंख्य आपत्तियों का सामना तुम कैसे करोगे ? बेटा मान जा—

आप सड़ें ते सानू साड़ें इस गल्लों बाज़ न आवें।
रो रो कहिंदी मां मुहम्मद इत्थे ही दिल लावें।[2]

पुत्र के अभाव में माता एवं पिता के करुण वात्सल्य का चित्र खींचने में हाफिज बरखुरदार ने 'सस्सी' में भी कौशल का प्रदर्शन किया है। चार पंक्तियों में ही पिता की निराशा तथा माता के विषाद एवं दैन्य को साकार कर दिया है—

अंगन आदम जाम दा रोशन थीवे कित्त।
नित घर तिस दे अंधेर है बाल न खेडे जित्त।
× × ×
ओह सुत्ती सुत्ती सेज ते हजू रोवे नित्त।
रब्बा सिप्प न मुख पसारिआ बूंद न पईआ तित्त।[3]

सस्सी का सन्दूक धोबियो के हाथ लगा। सुन्दर कन्या को प्राप्त कर निःसन्तान धोबिन का वात्सल्य छलछला उठा। ईश्वर का धन्यवाद करती हुई धोबिन के स्तनों से दूध बह निकला। सूखी डाली में फल लग गया—

सानूं आई बाद औलाद दी खरिओं बूंद पई।
एह भेजी तेरी रब्बना असां सिर ते झल्ल लई।
धोबन थनी नीर उछलिआ मेहर मुहब्बत नाल।
दोहनी धी धिआनी, फल लगा सुक्के डाल।[4]

तुलना

हिन्दी एव पंजाबी प्रेमाख्यानों में समाविष्ट भावों के इस दिग्दर्शन से एक बात तो यह स्पष्ट हो जाती है कि इन रचनाओ में कवियों की रुचि मुख्यतः शृंगार की

१. सैफुलमुलुक, पृ० १४६-१४७
२. वही, पृ० १४७
३. सस्सी पुन्नूं (बरखुरदार), कोइलकू, पृ० १०१
४. वही, पृ० १०२

अभिव्यंजना में रही है। अन्य भावों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। यद्यपि हिन्दी मे अनेक कवियों ने अपनी रचना को 'वीर शृंगार एवं योग' का वर्णन कहा है परन्तु जितना महत्त्व एवं विस्तार रति भाव को मिला है उतना अन्य भावो को नही। हास्य एवं रौद्र के स्थायी भावो, हास एवं क्रोध, के दर्शन इनमे प्रायः नहीं होते। विवाह आदि के प्रसंगों में इनकी योजना की जा सकती थी परन्तु रुचि के अभाव में यह संभव नहीं हो सका। संभवतः वियोग शृंगार के साथ हास्य के नैसर्गिक विरोध के कारण ही ऐसा हुआ हो। पजाबी में निर्वेद भाव की अभिव्यंजना नही हो सकी जबकि दुःखान्त रचनाओं में उसके लिए पूर्ण अवकाश था। हिन्दी प्रेमाख्यानों के अनेक कवियों में निर्वेद की अभिव्यक्ति के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है। ससार की असारता का ज्ञान करवा कर, प्रेम का महत्त्व प्रकट करना इन रचनाओ का उद्देश्य रहा है। जबकि पंजाबी प्रेमाख्यान इश्क की दु खात्मकता मात्र बताते है।

वीर रस के सदर्भ मे भी हिन्दी प्रेमाख्यानों की श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है। प्रायः सभी रचनाओं में इसका थोड़ा वहुत समावेश हुआ है। इसमें सन्देह नही कि अनेक बार आलम्बन विभाव, अनुभाव एवं कभी-कभी संचारी भावों की ही अभिव्यक्ति हो पाई है और वीर रसाभिव्यंजना मे इन कवियो को भी विशेष सफलता नहीं मिली परन्तु पजाबी प्रेमाख्यानो मे अधिकाश में तो ये दृश्य उपलब्ध ही नही होते और जहां उपलब्ध होते है वहां भी विशेष भावपूर्ण अभिव्यक्ति के अभाव मे रसाभिव्यंजना अपुष्ट ही रह जाती है।

अन्य रसों का भी पंजाबी प्रेमाख्यान साहित्य मे यदा-कदा साक्षात्कार किया जा सकता है। दोनों ही साहित्यों के अध्ययन से यही प्रभाव ग्रहण किया जा सकता है कि हिन्दी प्रेमाख्यानों जैसी भावसमृद्धि पंजाबी प्रेमाख्यानो में उपलब्ध नहीं होती। विशाल संख्या एवं वृहदाकार के कारण हिन्दी प्रेमाख्यानों में अनेक भावों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक स्थान उपलब्ध हो गए हैं जो पंजाबी प्रेमाख्यानों में संभव ही नहीं हो सकते थे। वहां सैफुलमुलूक के वृत्त पर आधारित रचनाएं मात्र अपवाद है जिनमें अनेक भावों की अभिव्यक्ति के प्रति कवियों ने सराहनीय यत्न किया है। निर्वेद के छीटे भी उसमें यदा कदा उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु कथापरक दृष्टिकोण के कारण पंजाबी के कवि पाठक को भाव-विह्वल नहीं कर पाते।

: ७ :

काव्यरूप

काव्यरूपों की परम्परा

अभिव्यक्ति कैसी भी हो उसका रूप अनिवार्य है। उसी के द्वारा अपने वैशिष्ट्य को सुरक्षित रखते हुए कवि अपना अनुभव व्यक्त करता है। पहले कवि अपने मन में रूप की अमूर्त संकल्पना करता है, तदुपरान्त वह स्वकीय भाव एवं विचार-सामग्री को विन्यस्त कर अमूर्त को मूर्त रूपप्रदान करता है। विषय, भाव, अलंकार, शैली, छन्द आदि के मिलने से ही रूप का अस्तित्व प्रकट होता है। कृति के सौंदर्य के लिए सामग्री एवं रूप का समुचित सामंजस्य नितान्त अनिवार्य है। अतः इन रचनाओं के विविध पक्षों का अध्ययन करने के अनन्तर इनके रूपगत वैशिष्ट्य का परिचय भी आवश्यक है।

पजाबी एवं हिन्दी काव्यशास्त्र में काव्यरूप-सम्बन्धी चिन्तन का अभाव सर्वाविदित है। पंजाबी में इस विषय पर सैद्धान्तिक विवेचन के नाम पर पिछले दशक में ही अतिसामान्य कार्य हुआ है। हिन्दी मे रीतिकाल से ही काव्यशास्त्रीय विवेचन होने लगा था परन्तु वह संस्कृत-काव्यशास्त्र का अनुकरण मात्र है, कई अंशो में तो अनुकरण भी ठीक-ठीक नही हो पाया। आधुनिक काल में इस विषय पर जो कुछ लिखा गया है वह भी सस्कृत एव आंगल काव्यशास्त्र का पुनराख्यान ही है।

सस्कृत में भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन, राजशेखर, भोज, अग्निपुराणकार, हेमचन्द्र, विश्वनाथ प्रभृति आचार्यो ने काव्यरूपों पर विचार करते हुए काव्य-विभाजन के लिए बंध, छंद, प्रतिपादन-प्रणाली, आस्वादक इन्द्रियाँ आदि विविध आधार स्वीकार किए है जिनके मूल मे किसी वैज्ञानिक तारतम्य का अन्वेषण लाभदायक प्रतीत नही होता।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी रूप-विधान के आधार पर काव्यरूपों के व्यवस्थित एव नियमित विवेचन का अभाव है। फिर भी पाश्चात्य आचार्यो के द्वारा दिए गए अपने समय के काव्यरूपों के परिचय से उपलब्ध संकेतों के आधार पर उनके विचारों का मनन किया जाता है।[1]

भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों के मतों का विश्लेषण कर बंध के आधार

---

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधाएं, डॉ० निर्मला जैन, पृ० ३१

पर काव्य के प्रबन्ध तथा मुक्तक दो भेद स्वीकार किए गए हैं। प्रबन्ध के पुन. निम्नलिखित भेदों का उल्लेख हुआ है—महाकाव्य, खंडकाव्य, एकार्थकाव्य तथा अन्य लघु प्रवधकाव्य, जिसके अन्तर्गत पद्य-कथा, पद्यात्मक निबंध, पर्यायबंध तथा आख्यान-गीतियां आती है।[1]

काव्यरूपों के सम्बन्ध में संस्कृत-आचार्यों के विचारों का मनन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें महाकाव्य को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। महाकाव्य के रूप-विवेचन में जो अपूर्व उत्साह संस्कृत-काव्यशास्त्र में उपलब्ध होता है वह आचार्य एव कवि समाज में 'महान् कवित्व' के सम्मान का अभिव्यजक है। महाकाव्य के प्रति इस उत्साह के कारण जहा अन्य काव्यरूपों के प्रति उदासीनता भी कम हानिकारक नही रही, वहां दूसरी ओर किसी भी काव्य को खीचतान कर महाकाव्य सिद्ध करने की प्रवृत्ति भी कम खेदजनक नही। कालिदासरचित 'मेघदूत' को आचार्य विश्वनाथ ने स्पष्ट रूप से खंडकाव्य घोषित किया है[2] परन्तु प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने 'नगनगरार्णवादिवर्णनसद्भावान्महाकाव्यत्वम्'[3], इसी प्रकार एक अन्य टीकाकर कल्याणमल्ल यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से मेघदूत को महाकाव्य नही मानते परन्तु महाकवि कालिदास की रचना होने के कारण इसे महाकाव्य कहते है।[4]

कल्याण मल्ल का यह उद्धरण संस्कृत-काव्यशास्त्र के टीकाकारों एवं आचार्यों की एक मुख्य प्रवृत्ति की ओर सकेत करता है। वास्तव में उस युग मे महाकाव्य का अकाट्य लक्षण 'महाकवि-कृतित्व' ही था।

इस प्रकार की प्रवृत्ति आधुनिक आलोचकों एवं अनुसंधित्सुओं में भी परिलक्षित होती है। खंडकाव्य के लक्षणों की स्पष्ट निर्धारणा होते हुए भी डॉ० शकुन्तला दुबे ने हिन्दी के प्रेमाख्यानों को भी खण्डकाव्य स्वीकार किया है।[5] इसी प्रकार प्रबंध-काव्य के अनेक भेद स्वीकार करते हुए डॉ० निर्मला जैन ने खंडकाव्य के दो भेद, 'महाकाव्यात्मक खंडकाव्य' एवं 'लघु प्रबन्धात्मक खडकाव्य', गढ़ लिये। प्रथम भेद का विवेचन करते समय उनका कथन—'वस्तुतः बहुत सी ऐसी अन्य कृतियो की गणना महाकाव्य के अन्तर्गत कर ली गई है।'[6] इस भेद की अव्यावहारिकता एवं अशास्त्रीयता का ही

---

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं, पृ० ३५

२. साहित्यदर्पण (विमला टीका), पृ० २२६

३. मल्लिनाथकृत 'संजीवनी टीका' के अनेक सम्पादकों ने ऊपर उद्धृत अंश को निकाल दिया है परन्तु कई संस्करणों में यह उपलब्ध है। देखें सारदारंजन रे द्वारा सम्पादित एवं लक्ष्मी जनार्दन प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित मेघदूत, प्रथम श्लोक की व्याख्या, पृ० १४-५

४. यद्यत्रानां सर्गबंधाद्यभावाच्च महाकाव्य लक्षणं नास्ति तथापि महाकवि श्री कालिदास विरचितत्वात् इदम् महाकाव्यमुच्यते।

—संस्कृत के संदेश काव्य, डा० रामकुमार आचार्य, पृ० ५

५. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ११७

६. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं, पृ० २०८

द्योतक है। 'साहित्यकोश' में संकलित खण्डकाव्य, कथाकाव्य, प्रेमाख्यान, प्रबन्धकाव्य एवं महाकाव्य के लक्षणों में उपलब्ध अव्याप्ति एव अतिव्याप्ति दोषों से स्पष्ट हो जाता है कि काव्यरूपों का प्रश्न पर्याप्त उलझा हुआ है। व्यावहारिक पक्ष की इन्हीं उलझनों का संकेत करते हुए क्रोचे ने लिखा है कि कलाकार और कवि सदैव शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करते रहते है। प्रत्येक उत्कृष्ट कलात्मक निर्माण में कलाकार पूर्व-स्थिर नियमों की उपेक्षा कर आलोचकों को वाध्य करता है कि वे शास्त्रीय नियमों में परिवर्तन करे।[1] 'अपार काव्य-ससार के ये प्रजापति' अपनी निरकुश प्रवृत्ति के कारण लक्षण-ग्रन्थों की लीक पर रचना को सृष्टि नही करते। उनकी रचना मे विभिन्न लक्षणों का अद्भुत सांकर्य आलोचक को भ्रम मे डाल देता है। यह भ्रम हिन्दी प्रेमाख्यानों के संदर्भ में सर्वाधिक है।[2] अतएव इस भ्रम-निवारण के लिए इन काव्य-रूपो के स्वरूप पर विचार करना अनिवार्य प्रतीत होता है।

महाकाव्य—संस्कृत के आचार्यों ने मुक्तक की अपेक्षा प्रबंध को और प्रबंध में महाकाव्य को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। भामह से लेकर विश्वनाथ पर्यन्त अनेक आचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन किया है। पश्चिम में भी ऐपिक को विशेष महत्त्व प्राप्त रहा है। डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने अपने शोध-प्रबध में भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षणों का सविस्तार विवेचन किया है।[3] उससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों की परिभाषाओं में जहां अनेक समानताएं है वहाँ अनेक असमानताएं भी है। वास्तव में महाकाव्य के महत् विशेषण की सार्थकता इसी मे है कि उसे किसी संकीर्ण परिभाषा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। इस विषय में सदैव नवीन प्रयोग होते रहते है जिनमें प्रचलित लक्षणों से कुछ तत्त्वों का ग्रहण एवं कुछ का त्याग होता रहता है। इसीलिए महाकाव्य को संकीर्ण लक्षणों में बांधने का विरोध भी किया जाता है।[4] सभी लक्षण अपने अपने देश एवं काल की सीमा में आबद्ध होने के कारण 'महतां महत्' की संज्ञा को सार्थक नहीं करते। मैक्निल डिक्सन ने इस सम्बन्ध में यथार्थ वात कही है—"महाकाव्य सब देशों में एक जैसा होता है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा

१. ऐस्थेटिक्स, (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० ३७

२. (क) 'साहित्यकोश' में प्रेमाख्यानो को कहीं कथा-काव्य (पृ० १८३), कहीं चरितकाव्य (पृ० २८७) और कहीं खण्ड काव्य (पृ० २४९) कहा गया है।

(ख) डॉ० शकुन्तला दुबे सभी प्रेमाख्यानों को खंडकाव्य (काव्य रूपो के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ११७) कहती है तो डॉ० सियाराम तिवारी प्रेमाख्यानों एवं खंडकाव्यों का तात्विक अन्तर मानते है (हिन्दी के मध्यकालीन खडकाव्य, पृ० ४३)।

३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४०-१०५

4. The term Epic definite, enough in meaning, can bear no narrow interpretation.

—English Epic and Heroic Poetry, P. 18

दक्षिण का। उसकी आत्मा एवं प्रकृति सर्वत्र एक जैसी होती है। चाहे उसकी रचना कहीं भी हो, सच्चा महाकाव्य कविता ही होगा। उसकी रचना सुसगठित होगी तथा उसका सम्बन्ध महान् घटनाओं एवं पात्रों से होगा। उसकी शैली उद्देश्य की गरिमा के अनुकूल होती है जिसके द्वारा पात्रों और उनके कार्यों को आदर्श-प्रधान बनाने का प्रयास किया जाता है। उपाख्यानों की योजना एवं वर्णन विस्तार से उसके कथानक को समृद्ध बनाया जाता है।[१]

डिक्सन ने महाकाव्य की सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता सम्बन्धी जिन विशेषताओं की ओर सकेत किया है वे महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० नगेन्द्र भी इन्हें स्वीकार करते हुए लिखते हैं—"इसलिए मैं महाकाव्य के उन्ही मूल तत्त्वों को लेकर चलूँगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं है। जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नही बन सकती और जिनके सद्भाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नही किया जा सकता। ये तत्त्व है—

१. उदात्त कथानक, २. उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य, ३. उदात्त चरित्र, ४. उदात्त भाव, ५. उदात्त शैली।

अर्थात् औदात्य ही महाकाव्य का प्राण है।[२]

डिक्सन एवं डॉ० नगेन्द्र के उपरि-उद्धृत कथनों से स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि औदात्य[3] या असाधारणता ही वास्तव मे कवि-कर्म की चरम उपलब्धि है। फिर भी किसी महाकाव्य की गरिमा के विधान मे उसकी सजीवनी शक्ति एवं जन-जीवन को सम्पूर्णता से अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता का योगदान अनिवार्य है। यदि इनके साथ शैली में असाधारणता होगी तो अनेक दोषों के रहते हुए भी लोकमेधा उन्हें महाकाव्य स्वीकार करेगी। महाकाव्य के प्रभाव एवं संदेश के स्थायी होने का रहस्य उसकी शैली एवं जनजीवन की अभिव्यक्ति की समग्रता मे है। इसी कारण आकार भी महाकाव्य का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। और इस महनीयता की पहचान कदाचित् युग के महामना आलोचक और सहृदय सामाजिक ही करते है।

काव्य—आचार्य विश्वनाथ ने प्रबंध-काव्य के तीन भेद किये है—महाकाव्य, काव्य एवं खंडकाव्य। इनसे पूर्व इस सम्बन्ध में काव्य या खंडकाव्य का उल्लेख नहीं मिलता। प्रबन्ध के नाम पर महाकाव्य अथवा कथा, आख्यायिका आदि का भी

---

१. इंगलिश ऐपिक एण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० २४

२. कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृ० १६

३. निश्चय ही डॉ० नगेन्द्र का यह 'उदात्त' लुंजाइनस के 'सब्लाइम' का समानार्थी नही है। यहां उदात्त से उनका अभिप्राय महान् या असाधारण से ही है। कथानक एवं शैली के संदर्भ में उन्होंने वही (पृ० १६ एवं २२) पर इसे स्पष्ट कर दिया है। "पुनः महाकाव्य के सभी महत्तत्व कामायनी में विद्यमान हैं" (वही, पृ० २३) से भी यही प्रकट होता है। 'सुन्दर की पराकोटि' के द्वारा भी वे यही कहना चाहते है (वही, पृ० १६)।

उल्लेख मिलता है। रुद्रट ने इस विभाजन में काव्य, कथा, आख्यायिका को आकार के आधार पर महत् एवं लघु दो भेदो में विभक्त किया।[1] इसी विभाजन को विश्वनाथ ने पल्लवित कर महत् एवं लघु के मध्यवर्ती 'काव्य' रूप की कल्पना की। यह 'काव्य' नामक रूप हिन्दी में अदृश्य ही रहा। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'वाङ्मयविमर्श' में इसे 'एकार्थकाव्य' कहकर स्वीकार किया।[2] साहित्यदर्पण मे 'काव्य' नामक काव्यरूप की परिभाषा इस प्रकार है—

भाषाविभाषानियमात् काव्यं सर्गसमुज्झितम् ।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधि सामग्रयवर्जितम् ॥[3]

इस आधार पर 'काव्य' के लक्षण निम्नलिखित है—

१. भाषा अथवा विभाषा (भाषा सम्बन्धी नियम की शिथिलता सूचित है) में उसकी रचना होती है।
२. कथा में सर्गबद्धता का नियम कवि की इच्छा पर है।[4]
३. पचसधियों मे से सब की योजना आवश्यक नही।
४. एकार्थ सम्बन्धी पद्यों की योजना होती है।

एकार्थ से श्री शालिग्राम शास्त्री ने एक कथा का निरूपक[5] अर्थ लिया है और डा० सत्यव्रतसिंह ने 'एक वृत्त या चरित से संबद्ध'[6] का अर्थ ग्रहण किया है। 'एकार्थ' से पुरुषार्थ चतुष्टय मे से अन्यतम का ग्रहण भी हो सकता है और हमारे विचार मे आचार्यप्रवर को यही अभिप्रेत था। महाकाव्य के लिए परम्परा से चतुर्वर्गफलायत्तता विख्यात है।[7] विश्वनाथ ने यद्यपि इस नियम मे शिथिलता दिखाई है और महाकाव्य में भी किसी एक की प्राप्ति को ही आवश्यक बताया है लेकिन अधिकांश आचार्य चतुर्वर्गफल प्राप्ति पर ही एक मत है। महाकाव्य से अतिरिक्त अन्य काव्यों मे केवल एक वर्ग या पुरुषार्थ चतुष्टय में से एकार्थ की सिद्धि होनी चाहिए। रुद्रट ने इसे स्पष्ट स्वीकार किया है—

ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमोभवेत् चतुर्वर्गात् ।[8]

---

१. सन्ति द्विविधाः प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये ।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महत्वलघुत्वेन भूयोऽपि ॥

—काव्यालंकार, १६।०

२. वाङ्मयविमर्श, पृ० ३१
३. साहित्यदर्पण (विमलाटीका), ६।२२८ पृ० २ ६
४. कई संस्करणों में 'समुत्थितम्' पाठ होने से यह स्पष्ट है कि 'काव्य' में सर्गबद्धता चिरकाल से विवादास्पद है।
५. साहित्यदर्पण, (विमलाटीका), पृ० २२६
६. साहित्यदर्पण, टीकाकार डॉ० सत्यव्रतसिंह, पृ० ५५४
७ काव्यादर्श, अग्निपुराण एवं रुद्रट के काव्यालंकार में क्रमशः 'चतुर्वर्गफलायत्तम', 'चतुर्वर्गफलम्', और 'तत्रमहान्तो येषु विततेषु अभिधीयते चतुर्वर्गं' कहकर इसी का पुष्टि की है।
८. काव्यालंकार, १६।६

इस आधार पर महाकाव्य की अपेक्षा 'लघु काव्य' या 'काव्य' में एक कथा या एक चरित या एक वर्ग का वर्णन होना चाहिए। इस प्रकार 'काव्य' का वर्णन एकार्थापेक्षी होता है। उसमें युग-जीवन के चित्र की वह समग्रता संभव नहीं जो महाकाव्य मे उपलब्ध हो जाती है। महाकाव्य के नायक का व्यक्तित्व बहुमुखी एवं प्रभाव अनेकविध होता है। उसमें समसामयिक राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एव सामाजिक घटनाए प्रतिविबित होती है। परन्तु सभी व्यक्तियों के चरित्र में इस प्रकार का महत्त्व सभव नहीं। अतः यदि किसी का व्यक्तित्व एकदेशीय हो तो उसके आधार पर समग्र चित्रण संभव नहीं हो सकता। सभी कवि भी इस कार्य को पूरा करने मे समर्थ नहीं होते। महाकाव्यापेक्षित अपूर्व प्रतिभा एवं महती प्रेरणा सभी को प्राप्त नही होती। इसीलिए संस्कृत की एक सूक्ति में कालिदास की समता के कवि के अभाव मे अनामिका की सार्थकता[1] बताई गई है। अंगरेजी में प्रसिद्ध आलोचक एबरे क्रौबी ने भी प्रकारान्तर से इसे स्वीकार करते हुए कहा कि 'महाकाव्यकार विरले ही होते हैं।'[2]

अतः वे समस्त कृतियां, जिनमें महाकाव्यापेक्षित महत्त्व की कमी है, जिनकी रचना महाकाव्योन्मुख होते हुए भी महाकाव्य के गौरव को स्पर्श नही कर सकी, 'काव्य' कही जाएगी।

आजकल कविता के अर्थ में काव्य शब्द अत्यन्त प्रचलित है। प्रचलिच अर्थ से पृथक् करने के लिए ही सम्भवतः इसे 'एकार्थकाव्य' नाम दिया गया। परन्तु उस नाम से भी यह अधिक स्पष्ट नहीं हो पाया। अतः कथातत्त्व की प्रधानता के कारण इस विवेचन में 'काव्य' के लिए 'कथाकाव्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने इस रूप में प्रचलित 'काव्य' एवं शास्त्रीय परम्परा-प्राप्त 'कथा' नामक काव्य-रूप से भी यह पृथक् हो जाता है।

खण्डकाव्य 'काव्य' के लक्षण में यह सकेत किया जा चुका है कि खण्डकाव्य नाम का प्रथम प्रयोग यद्यपि विश्वनाथ ने किया परन्तु उनसे पूर्व रुद्रट ने 'महत्-लघुत्वेन' दो प्रकार के प्रबन्धों का सकेत कर उनकी सक्षिप्त परिभाषा भी दे दी थी—

ते लघवो विज्ञेया, येष्वन्यतमोभवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः॥[3]

अर्थात् १. चतुर्वर्ग मे से एक का वर्णन हो।
२. अनेक रस असमग्र रूप में या एक रस समग्र रूप में हो।

---

१. पुरा कवीनां गणना प्रसंगे, कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत् तुल्य कवेरभावादनामिका सार्थवतीबभूव॥

2. Epic Poet is rarest kind of artist.
—The Epic, Lescelles Abercrombie, p.41

३. काव्यालंकार, १६।६

इन दो लक्षणों के द्वारा ही रुद्रट ने लघुकथा का कटा-छंटा रूप उपस्थित कर दिया। इस रूप को अधिक स्पष्ट करते हुए बाद में विश्वनाथ ने इसके दो भेद कर दिए। उन्होंने भाषा या विभाषा में रचित एकाधिक सधियों से युक्त तथा सम्पूर्ण सन्धियों के युगपत् सन्निवेश से रहित एक कथा या वर्ग या चरित के निरूपक पद्यों वाली रचना को 'काव्य' और उसके एक देश का अनुसरण करने वाली रचना को खण्डकाव्य कहा—

> भाषाविभाषानियमात् काव्यं सर्गसमुज्झितम् ।
> एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ।।
> खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च ।।[1]

आचार्य विश्वनाथ के आधार पर खंडकाव्य को महाकाव्य का एकदेशानुसारी नहीं माना जा सकता। उनके कथन का अभिप्राय अत्यन्त स्पष्ट रूप से यह है कि "काव्य" मे जीवन का एक पक्ष विशेष चित्रित होता है और उस विशेष पक्ष का एक अंश या घटना ही 'खंडकाव्य' की वस्तु का आधार बनती है। विश्वनाथ ने खंडकाव्य का उदाहरण 'मेघदूत' दिया है। उससे यह स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता है। यक्ष एवं उसकी प्रिया के प्रेम व्यापार की पूर्ण कथा 'काव्य' की वस्तु बन सकती है जिसमें उनके बाल्यकाल, पूर्वराग, विवाह और पारिवारिक जीवन में प्रेमाकर्षण के चित्र वर्णित होते, परन्तु मेघदूत मे इसके एक अश विदेश-गमन के समय नायिका-विरह का वर्णन है अतः यह न तो 'काव्य' और न 'महाकाव्य' ही रहा, केवल 'खडकाव्य' मात्र बना। खंडकाव्य के स्वरूप का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध मे डॉ० सियाराम तिवारी ने भिन्न-भिन्न विद्वानों के विचारो की असंगतियां एवं भ्रान्तियां स्पष्ट करते हुए[2] खण्डकाव्य की निम्नलिखित परिभाषा निश्चित की है—

१. खण्डकाव्य का नायक सुर, असुर, मनुष्य, इतिहास, प्रसिद्ध अथवा कल्पित तथा शान्त, ललित, उदात्त और उद्धत मे से किसी भी प्रकार का हो सकता है।
२. खण्डकाव्य में नायक के जीवन की एक ही घटना का वर्णन होता है जो जीवन के किसी एक पक्ष की झलक प्रस्तुत करती है।
३. खण्डकाव्य में कथा-संगठन आवश्यक है। कथा-विन्यास में क्रम, आरम्भ, विकास, चरमसीमा और निश्चित उद्देश्य हो।
४. सर्गबद्धता अनिवार्य नहीं।
५. खण्डकाव्य की कथा का ख्यात अथवा इतिहास-प्रसिद्ध होना अनिवार्य नहीं है।
६. खंडकाव्य में प्रासंगिक कथाओं का अभाव होता है।
७. खण्डकाव्य अपने छोटे आकार में ही पूर्ण होता है। नाम के 'खण्ड' शब्द से उसे किसी अन्य काव्यरूप का खण्ड नहीं समझना चाहिए।

---

१. साहित्यदर्पण ६।३२८- २६ (विमला टीका), पृ॰ २२६
२. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, पृ० ४४-५०

८. खण्डकाव्य, जैसे किसी अन्य काव्यरूप का खण्ड नही है। वैसे ही जिस अनुभूति की अभिव्यक्ति उसमे होती है वह भी खंडित न होकर पूर्ण होती है।
९. खण्डकाव्य महाकाव्य के गुणों से शून्य नही होता है।
१०. खण्डकाव्य मे महाकाव्य की भान्ति युग को कोई महत् संदेश नही दिया जाता। उसमें व्यक्ति को कोई उपदेश दिया जाता है।
११. खण्डकाव्य में चतुर्वर्ग-फल में से किसी एक की प्राप्ति उद्देश्य होता है।
१२. खण्डकाव्य में एक रस समग्र अथवा अनेक रस असमग्र रूप मे रहते है।
१३. खण्डकाव्य में सभी सधियां नही होती।
१४ खण्डकाव्य की रचना भाषा या विभाषा में हो सकती है।[१]

पाश्चात्य साहित्य में 'काव्य', खण्डकाव्य का पृथक् उल्लेख नही है। इस प्रकार की परिगणना नैरेटिव पोइट्री के अन्तर्गत कर ली गई। इनकी रचना सम्बन्धी निश्चित नियम भी नही बनाए गए।

महाकाव्य, काव्य एवं खण्डकाव्य का पारस्परिक अन्तर

महाकाव्य, काव्य एवं खण्डकाव्य की त्रयी के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

कथानक—महाकाव्य का कथानक यद्यपि ऐतिहासिक, मिश्र अथवा उत्पाद्य हो सकता है परन्तु उसका प्रख्यात होना अनिवार्य है। कवि उसमें प्रबन्ध-वक्रता एव प्रकरण-वक्रता के द्वारा लावण्य उत्पन्न करता है। काव्य मे कथा किसी भी प्रकार की हो सकती है और खण्डकाव्य में जीवन की एक घटना मात्र का वर्णन होता है। इसमे सदेह नही कि कथानक का आकार एव विस्तार तीनों का मुख्य भेदक है। कथा-भूमि के विस्तार की दृष्टि से महाकाब्य प्रबन्धकाव्य के ज्येष्ठ वर्ग, 'काव्य' मध्यवर्ग एवं खण्डकाव्य कनिष्ठ वर्ग की रचना है। महाकाव्य का वर्ण्य व्यक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण जाति, 'काव्य' का केवल व्यक्ति एवं खण्डकाव्य का वर्ण्य व्यक्ति-जीवन की घटना विशेष होता है।

कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से भी तीनों में स्पष्ट अन्तर है। जीवन के सर्वाग में जातीय जीवन को झंकृत करने के लिए अनेक प्रासगिक कथाओं, प्रकरियों एवं पताकाओं से संयुक्त, सश्लिष्ट कथानक लेकर चलने वाले महाकाव्य के लिए जिस सचेष्ट और सावधान वस्तु-सघटना की आवश्यकता है उतनी एक ही व्यक्ति से सम्बन्धित कथा को लेकर चलने वाले 'काव्य' के लिए नही। महाकाब्य मे नाट्य-सधियो के निर्वाह की अनिवार्यता उसके विशाल रूप को सानुपातिक बनाने एवं उसके महत्व को संरक्षित करने के लिए आवश्यक है। इसमें सदेह नही कि उत्कृष्ट 'काव्य' में भी कथा के तारतम्य के लिए सधि-योजना का निषेध करना अतिचार है परन्तु अधिकांश मे ये रचनाएं अपनी कथावस्तु के संगठन की शिथिलता के कारण प्राय:

---

१. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, पृ० ५१-५२

महाकाव्य के महत्त्व से दूर हो जाती है। अत. इनमें प्राय उस सौष्ठव के दर्शन न होने के कारण सन्धि-नियम को शिथिल किया गया है। अधिकांश 'काव्य' रचनाओं का उद्देश्य मनोरजन, काल-यापन या सिद्धान्त-प्रतिपादन होने कारण इनके आकार को सवृद्ध करने के लिए अनेक ऐसी अन्तर्कथाओ और समस्याओं को भी इनमें सगृहीत कर दिया जाता है जो न तो मुख्य कथा के विकास मे ही सहायक होती है और न चरित्र में कोई विशेष परिवर्तन की सूचक। खण्डकाव्य की कथा मे अपेक्षाकृत लघुत्व होने के कारण अधिक कसावट या अन्विति की आवश्यकता है। इसके अभाव मे रचना शिथिल हो जाएगी और उद्देश्य में असफल रहेगी। आकार लघु होने के कारण खण्ड काव्य का कथाविधान सरल एवं सुगठित होना ही चाहिए।

वर्ण्य-विषयो की जो सूची महाकाव्यो मे प्रयुक्त होती है उसका प्रयोग 'काव्य' मे पूर्ण स्वतत्रता से होता है। इनमे भाव एव घटना-वर्णन दोनों मे ही कोई विशेष अन्तर नही। परन्तु खण्डकाव्य के सीमित कलेवर मे उसका प्रश्न नही उठता। खण्ड-काव्य मे कवि की दृष्टि एकविध ही होगी अनेकविध नहीं। चाहे तो वह कथा-निरूपिणी हो चाहे आत्माभिव्यक्ति-प्रधान परन्तु उसमे अनेकविध वर्णनों का स्थान नही हो सकता।

शिल्प—हिन्दी के महाकाव्यो, काव्यो अथवा खण्डकाव्यो मे सर्ग विभाजन के नियम की उपेक्षा हुई है। विषय की दृष्टि से उसके विस्तार पर भी विशेष अंकुश नही लगाया गया। इस सम्बन्ध में महाकाव्यों एवं काव्यो का श्रेणी-विभाजन हो ही नहीं सकता। हाँ, खण्डकाव्य मे जीवन के किसी एक अश अथवा घटना को आधार बनाने के कारण विस्तार का क्षेत्र अवश्य छोटा होता है।

इस दृष्टि से खण्डकाव्य एवं अन्य दो काव्यरूपों के आकारगत अन्तर का स्थान न्यून नही। आकार के लघुत्व के कारण न तो रचना मे स्फीति ही आती है और न वर्णन-वैविध्य। इनके अभाव में अनेक कथाए द्रुत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है।

छंद-विधान की दृष्टि से भी इनमें कोई मौलिक अन्तर नही। कवि अपने कौशल के आधार पर एक या अनेक छदों का प्रयोग करते हैं। महाकाव्य मे सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही दृष्टियों से इस नियम को अनावश्यक मान लिया गया है। 'काव्य' में भी इस विषय मे कोई नियम लक्षित नही होता। प्रभाव एवं प्रवाह की दृष्टि से खण्डकाव्य के अल्पाकार में एक छंद का निर्वाह व्यावहारिक रूप में भी उचित लगता है।

शैली सम्बन्धी अन्य रूढ़ियों का पालन औपचारिकता का निर्वाह मात्र है। मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा आदि के विषय में कवियों ने अपनी रुचि को ही महत्त्व दिया है. किसी बंधन को स्वीकार नही किया। अतः इनके आधार पर इन तीनों भेदों मे कोई विशेष अन्तर नही खोजा जा सकता।

समग्र रूप से महाकाव्य अपने सन्देश की दिव्यता, चिरन्तन जीवन-शक्ति एवं

जनजीवन की विराट् अभिव्यक्ति एवं शैली की असाधारणता के कारण 'काव्य' से भिन्न हो जाता है तो 'काव्य' अपने आकार, वर्णन-विस्तार, विविध चित्रों एवं घटना-बाहुल्य के कारण केवल एक घटना पर आधारित सुगठित रचना शैली वाले 'खंडकाव्य' से भिन्न हो जाता है।

प्रचलित अर्थ से पृथक् करने के लिए इस 'काव्य' नामक काव्यरूप के लिए इस प्रबन्ध मे 'कथाकाव्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। इनमें कथा के प्राधान्य को स्पष्ट करने के लिए भी यह नाम सटीक है।

पंजाबी मे 'किस्सा' एक 'काव्य-रूप' स्वीकार किया गया है और इसे महाकाव्य एवं मसनवी की सीमाओं को स्पर्श करने वाला माना गया है।[1] इसके सम्बन्ध में पजाबी में कई विद्वानों ने विचार किया है।[2] उन सबके विवेचन के आधार पर यही माना जा सकता है कि 'किस्सा' 'प्रबन्ध-काव्य का समानार्थक है। रचना के विस्तार चरित्र-चित्रण, भावव्यंजना, अभिव्यक्ति-सौंदर्य आदि के आधार पर उसके भी वे सभी भेद किए जा सकते है जो प्रबन्ध-काव्य के। पजाबी में इन्हें इस प्रकार विभाजित भी किया गया है।[3]

विवेच्य सामग्री के अन्तर्गत अधिकांश रचनाएं खंडकाव्य' अथवा 'कथा-काव्य' के अन्तर्गत आती है। अतः खण्डकाव्य से ही यह विवेचन आरम्भ किया जा रहा है।

खण्डकाव्यात्मक प्रेमाख्यान

(क) हिन्दी के खण्डकाव्यात्मक प्रेमाख्यान

हिन्दी मे 'बीसलदेव रासो', 'ढोला मारू' की कथा पर आधारित रचनाएं, 'रूपमंजरी', 'उषा-अनिरुद्ध' और 'रुक्मिणी-कृष्ण' के प्रेम-सम्बन्धी रचनाएं, 'मैनासत', जान कवि-कृति 'कथा कौतुहली', 'कथा सुभटराइ', 'कथा कुलवंती', 'कथा कंवलावती', 'ग्रन्थ लैलै मजनू'', प्रभृति रचनाएं, 'चन्दरबदन महियार', 'मैना सतवंती', आदि रचनाएं खण्डकाव्य है।

'बीसलदेव रासो', 'मैनासत', 'कथा कुलवंती', 'कथा कंवलावी', 'मैनासतवंती' प्रभृति काव्यों में कथा-सूत्र अत्यन्त सूक्ष्म है। इनमें 'बीसलदेव रासो' महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें विवाह एवं षड्ऋतुओं का संक्षिप्त सा वर्णन है। 'मैनासत' में भी एक प्रोषित-पतिका का विरह-निवेदन मात्र है। 'कथा कुलवती', 'कंवलावती', 'मैनासतवंती' आदि में भी कवि का मुख्य वर्ण्य नायिका का विरह अथवा सतीत्व का वर्णन करना ही है। कुट्टनी की योजना से ही कथा में कुछ स्फीति आ पाई है। बीसलदेव की नायिका उपालम्भ-चतुरा है तो 'मैनासत' की विरह-व्याकुल परन्तु निष्ठावती विरहिणी।

१. सस्सी पुन्नूं (हाशम), पृ० ६६-७१

२. 'सूफीवाद ते होर लेख' (दीवानसिंह) 'साहित्त दी रूपरेखा' (गुरचरणसिंह), 'साहित्त परकाश' (परमिन्दरसिह कृपालसिंह); 'साहित्त दी परख' (डॉ० गोपालसिंह) आदि।

३. साहित्त दी रूपरेखा, गुरचरणसिंह, पृ० ८५

वस्तुवर्णन के नाम पर इन रचनाओं में विशेष रूप से कुछ भी वर्णनीय नही। केवल नायिका आत्मसंयम एवं पीड़ा का पुनः-पुनः आख्यान करती है। 'बीसलदेव रासो' की नायिका का 'अमर्ष' अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। 'एक तो वीर राम थे, जिन्होंने स्त्री के लिए समुद्र पर सेतु बांधा था।[1] और एक तुम हो जो नारी को त्याग कर चले गए हो इस भावावेश मे वह पति को बता देती है कि मुझे त्यागने से तुम्हे पल-पल मे पाप लग रहा है। इस जन्म में तो पराई चाकरी कर रहे हो, यदि अब भी मेरी उपेक्षा की तो अगले जन्म मे काले साप बनोगे।[2] नायिका में ऐसा अमर्ष हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। 'मैनासत', 'मैनासतवन्ती' अथवा 'कथा कुलवती' आदि की नायिकाएं भी निरन्तर पीडा एव सयम के महत्व पर बल देती हुई प्रियतम से आकर मिल जाने का अनुरोध भेजती हैं। उसे—

नींद न आवै रैन कौ, दिन बीतत बिन चैन।
बिरहु प्रबल पल पल दहत, सहज रहत हैं नैन।।

× × ×

रितु बसंत मैं फूलि हैं, बन उपवन संसार।।[3]

ऐसे दहन मे कुटनी और अधिक पीड़ित करती है। मैना नित्यप्रति सागर पार गए प्रिय की स्मृति मे ध्यान स्थित बैठी रहती है। सिंगार किसे रिझाने के लिए किया जाए—

मोर पिया हैं सायर पारू। तै गयो सब सिनगार उतारू।।
कहा कर सालिन करहुँ सिंगारा। मोहि परिहर गयौ कंत पियारा।।
बैरी न करै सोइ पिय कीन्हा। बाली बैस मोहि दुख दीन्हा।।
काजर रोरी कुण पर सारूं। पिय कारन तन जोबन गारूं।।[4]

और अन्य पति के प्रस्ताव को वह प्रियतम के प्रति निष्ठा के कारण दुत्कार देती है—

यह झूठो संसार, झूठो नेह न कीजिए।
साधन पिय कै बार, सांचु होइ सिरु दीजिए।।

---

१. जिन बांधिया रावण षिस्यउ।
त्रिय कारणि राम बांधियउ सूरा सेत।।

—बीसलदेव रास, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १६६

२. पगि पगि तो नई पहुंच रे पाप।
इणि भवि उलगाणउ हूउ।
अवर भवि होयउ कालउ साप।।

—वहीं, पृ० १७४

३. जान-कृत कथा कुलवंती
४. मैनासत, पृ० १७८

कंत नेह चित बाँधही और नेह नहिं भाय।
तादिन करहूँ फाग में, जब लालन घर आय ॥[१]

और ऐसा दिन आ ही जाता है जब प्रिय से इनकी भेंट होती है। तब ये नारियां सजी-धजी ठुमक-ठुमक कर प्रियतम की शैया की ओर जाती है—

'ठमकि ठमकि धण मेल्ह तीय पाइ।
मंदिर चाली पिउ कइ।'[२]

'रूपमजरी' में भी कथा-विस्तार नाम मात्र को ही है। नायिका का विवाह छल कपट से एक कुरूप राजकुमार से हो जाता है। सखी के कहने से नायिका कृष्ण के साथ प्रेम करने लगती है। एक दिन स्वप्न में कृष्ण के दर्शन भी हो गए। वह कृष्ण के वियोग में तड़पने लगी और अन्ततः कृष्ण के साथ उसका संयोग हो गया।

नंददास की इस रचना में रीतिकालीन परम्परा के अग्रज अलकारों के लक्षण भी भर्ती कर दिये गए है।[३] वय संधि का वर्णन अत्यन्त वैदग्ध्यपूर्ण है। रूपवर्णन में कवि ने विशेष रुचि ली है या फिर नायिका के वियोग-वर्णन मे। इस रचना में घटनाओं का नितांत अभाव है केवल वर्णन ही प्रधान है।

ढोलामारू पर आधारित रचनाओ में घटना-चक्र ऊपर वर्णित हुई रचनाओं से कुछ अधिक है। यद्यपि कथा इसमें भी विशेष नही परन्तु नायिका का विरह, और उपनायिका की योजना के कारण कथा में रोचकता एवं अपेक्षाकृत अधिक स्फीति आ गई है। वर्णन की दृष्टि से भी पूर्वोक्त रचनाओं से यह रचना अधिक प्राणवती है। राजस्थान देश-वर्णन, नखशिख एव विरह-वर्णन के अतिरिक्त इसमे करहा-वर्णन और ढोला की यात्रा-वर्णन के द्वारा प्रबन्ध का सौदर्य निखर गया है।

'उषा-अनिरुद्ध' पर आधारित रचनाओं में भी कथा-सूत्र विशेष विस्तृत नही। स्वप्न-दर्शन जनित पूर्वराग एवं तदुपरांत नायक-नायिका के प्रेम पर अवलबित इस कथानक में भिन्न-भिन्न कवियों ने कुछ इधर-उधर के प्रसंग जोड़कर 'खण्डकाव्योचित-समग्रता' को खडित कर दिया है। कथा मे कवियों ने रुचि के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन किया है। परन्तु पूर्वराग, सखी-प्रेषण, उषा-अनिरुद्ध-संयोग का वर्णन, कृष्ण-बाणासुर युद्ध एवं युद्धोपरान्त परिणय जैसी मूल घटनाएं सर्वत्र समान ही है। यद्यपि इन कवियों ने कथा पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया है परन्तु कथाविन्यास की दृष्टि से इनमे अनेक त्रुटियां है। परशुराम में पुनरावृत्ति की अधिकता है तो जीवनलाल नागर में अनावश्यक भरती की। 'ग्यारह तरंगों में से पांच तरंगों की कथा का शेष तरंगों की कथा से अविच्छिन्न सम्बन्ध नहीं है। इन तरंगों मे अन्य वस्तुओं के साथ-साथ बाणासुर की वंशावली, उसकी लोक-विजय तथा गणेश की उत्पत्ति भी वर्णित

---

१. मैनासत, पृ० १६६
२. बीसलदेवरासो, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २१२
३. नंददास ग्रन्थावली, पृ० ११४-११५

है। इसके अतिरिक्त इन वर्णनों में तारतम्य का भी अभाव है। दो पंक्तियों में उषा के शैशव की सूचना देकर षष्ठ तरंग में एकाएक वह विरहिणी के रूप में सामने लायी जाती है। कुंजमणि ने वर्णन के लिए बराबर अवसर निकाला है। इसमें वर्णनीय स्थलों को पहचानने की सूझ है। आरम्भ मे उषा एवं अनिरुद्ध का परिचयात्मक वृत्त दिया है। इसके बाद उषा के यौवनागम का विस्तृत वर्णन कर स्वप्न-दर्शन के प्रकरण का समावेश किया है। और इसके अनन्तर विरह का जमकर वर्णन है। इसी तरह उषा की सखी द्वारिका पहुंच कर जो दृश्य देखती है, उसका वर्णन करना भी कवि भूला नही। इस प्रकार, वर्णन के अवसरों को न भूलना कवि की विशेषता है, इसी कारण कथा के मध्य अनेक रिक्त स्थान रह गए हैं। रामदास ने अवान्तर कथाओं की योजना के द्वारा मुख्य कथा में बाधा उत्पन्न कर दी है।[1] अतः कथा-सगठन की दृष्टि-से इनमे से कोई भी रचना उत्कृष्ट कोटि की नही। इनके वर्णनों मे भी अधिकतर परिगणन शैली की सहायता ली गई है। नखशिख-वर्णन, वय.सधि-वर्णन, संयोग-वियोग वर्णन मे इन कवियों ने विशेष रुचि ली है।[2] कवित्व की दृष्टि से ये कवि साधारण प्रतिभा के ही स्वामी हैं। 'इनमे कोई वैसा प्रतिभावान् कवि भी नही हुआ जो विरह के मार्मिक चित्र उरेह सके। इसलिए समग्र रूप से इनका विरह-वर्णन अत्यत साधारण कोटि का है।[3]

कृष्ण-रुक्मिणी प्रेम पर आधारित रचनाओं में भी उषा-अनिरुद्ध की कथा नाम परिवर्तन के अनन्तर स्वीकार की गई है। इस कथा मे रुक्मिणी के पिता का वर्णन, रुक्मिणी का नखशिख वर्णन, पूर्वराग, दूत-प्रेषण, सैन्य-युद्ध एव कृष्ण-रुक्मिणी विवाह की मुख्य घटनाएं सभी मे समान है। परन्तु छुटपुट प्रसगों मे सभी ने थोड़ा-बहुत अन्तर डाला है। संघटन की दृष्टि से नंददासकृत 'रुक्मिणीमगल' एवं आलमकृत 'श्यामस्नेही' अत्यन्त कलात्मक है। इनमे कथा के मध्य कोई बाधक तत्त्व नही आते। वर्णन, संवाद आदि का आधिक्य कथा को बोझिल नहीं बनाता। उचित गति से कथा लक्ष्य की ओर बढ़ती है। उसमे आरभ, विरोध, सघर्ष, चरमसीमा और फलागम का नियमित विधान स्पष्ट झलकता है। यद्यपि पृथ्वीराज की 'वेलि' भी उत्तम रचना है परन्तु उसमें कथा विकास का अनुपात पर्याप्त असन्तुलित लगता है। कवि का उद्देश्य संभवत रुक्मिणी-कृष्ण का सयोग वर्णन ही है इसीलिए आधे से भी अधिक छंदों में उसी का वर्णन है परन्तु घटनाओं के आधिक्य के फलस्वरूप पूर्वार्द्ध अधिक रुचिकर बन पड़ा है।

मेहरचन्द का 'रुक्मिणी मंगल' वर्णनप्रधान है जिसमे पिष्ट-पेषण ही अधिक है। कही-कही पर तो एक ही बात छंद बदल-बदल कर कही गई है। विष्णुदास के 'रुक्मिणी मगल' मे भी अनावश्यक और ऊब पैदा करने वाले वर्णनो की भरमार है।

१. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, पृ० ३९३ से संक्षिप्त।

२. वही, पृ० ३९३

३. वही पृ०, ३९६

शिशुपाल के बारात लेकर आने पर जब रुक्मिणी मूर्च्छित हो जाती है तो उसको चैतन्य करने के लिए ग्यारह सखियां क्रम-क्रम से कृष्ण-लीला सुनाती है । यह लीला-वर्णन अत्यन्त निम्न कोटि का है और पढ़ने मे धैर्य छूटता है । रामलाल तथा रघुराजसिंह के कथासगठन भी त्रुटिपूर्ण है । रघुराजसिह-कृत 'रुक्मिणी परिणय' ऐसे अनेक वर्णनो से भरा है जो नितान्त अनावश्यक है ।[1] गुरुगोविन्दसिह द्वारा रचित प्रेमाख्यान भी सक्षिप्त कथा शैली के कारण खण्डकाव्य ही है । उनमे वर्णनों के प्रति उदासीनता एवं पताका-प्रकरियों का अभाव उन्हें खण्डकाव्य से ऊपर नही उठने देता ।

इस प्रकार इन रचनाओं में खंडकाव्य का मुख्य गुण एक घटना या सवेदना मात्र का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है । अधिकांश कथाएं पौराणिक या लोकविख्यात है । जान कवि ने काल्पनिक कथाओं को भी काव्यबद्ध किया है ।

नायक अथवा नायिका के चरित्र की अनेकांगिता इनमे से किसी में भी नही पाई जाती । अधिकांश रचनाओं में केवल नायिका ही प्रधान पात्र के रूप मे चित्रित हुई है, नायक तो बहुत बाद में आता है । 'बीसलदेव रासो', 'मैनासत' या इस कोटि की अन्य रचनाओ में तो नायक के दर्शन नाम मात्र को ही होते है ।

प्रतिनायक का उत्कर्पपूर्ण वर्णन भी इन रचनाओं मे नही है । यद्यपि उषा-अनिरुद्ध एवं रुक्मिणी-कृष्ण सम्बन्धी रचनाओं मे प्रतिनायक है परन्तु कथा के अत्यन्त संकीर्ण भाग मे ही वह आता है । उसका वर्णन करने मे कवियों ने कोई रुचि नहीं ली ।

इनमें से कुछ रचनाएं सर्गो या अध्यायों में विभाजित है और कुछ नही । जहां बीसलदेव रासो, मैनासत, मैनासतवंती, कथाकुलवती आदि मे कोई विभाजन नहीं वहां उषा-अनिरुद्ध की रचनाओं में अध्याय-विभाजन है । रुक्मिणी-कृष्ण की अधिकांश रचनाओं में भी अध्याय-विभाजन नहीं है । रघुराजसिंह, नददास प्रभृति कवियों में अध्याय-विभाजन होते हुए भी वह विशेष तर्कसगत नही है ।

इनमें प्रायः संयोग एवं वियोग शृंगार वर्णन हुआ है । अन्य रसों के प्रकरण प्रायः नही है, अथवा एकाध पद्य में ही समाविष्ट हो जाते हैं ।

छंद की दृष्टि से इन रचनाओं का वैविध्य उल्लेखनीय है । एक छंदात्मक तथा अनेक छंदात्मक अनेक रचनाएं है । 'बीसलदेवरासो', 'ढोलामारू रा दूहा', 'मैनासत', 'वेलि कृष्ण रुक्मिणी री', 'उषा-अनिरुद्ध का व्याह' (रामचरण) में एक छन्द के माध्यम से ही सम्पूर्ण रचना पूर्ण की गई है, तो 'रुक्मिणी मंगल' (हीरामणि) में ग्यारह और 'रुक्मिणी परिणय' (रघुराजसिंह कृत) में उनतीस प्रकार के छंद हैं । जीवनलाल नागर कृत 'उषा-हरण' में भी अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

---

१. हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य, पृ० २६८

अलंकार की दृष्टि से भी ये रचनाएं कुछ अपवादों को छोड़कर सामान्य कोटि की हैं। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक एवं अत्युक्ति इन कवियों के प्रिय अलंकार रहे है।

इन सब रचनाओं को 'खण्ड-वृत्त' या 'एकदेशीय कथा' लेकर चलने के कारण खण्डकाव्य कहना अधिक तर्कसंगत है। कुछ रचनाओं में वर्णनादि की किंचित् अधिकता देखकर उन्हें 'कथा-काव्य' कहने के लोभ का संवरण ही करना पड़ेगा। केवल प्रबंधोपयुक्त वर्णनों से ही कोई रचना कथा-काव्य या महाकाव्य नही बन जाती उसके लिए अनुकूल घटना विस्तार अत्यन्तावश्यक है।

डॉ० सियाराम तिवारी ने इनमें से अधिकांश का विवेचन अपने शोध-प्रबध 'हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य' में किया है। 'वेलि' के काव्यरूप पर अपनी पुस्तक में विचार करते हुए डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने उसे शृंगार रस प्रधान वर्णनात्मक खण्डकाव्य कहा है।[1] एवं आलमकृत श्यामस्नेही को डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा ने पूर्ण परीक्षा के अनन्तर अनुकूल कथा एव घटनावली के विस्तार के अभाव के कारण 'खण्डकाव्य' कहना ही उचित समझा है।[2]

पंजाबी के खंडकाव्यात्मक प्रेमाख्यान

पजाबी में 'मिरजा साहिबां', 'सस्सी पून्नू', 'सोहणीं महीवाल', 'राजबीबी नामदार', 'चन्दरवदन महियार', 'शीरी फरहाद', 'लैला मजनू' के आख्यान खण्डकाव्य की कोटि के ही है। इन सभी रचनाओ में कवियों का उद्देश्य एक मुख्य घटना का वर्णन कर प्रेम का प्रभाव स्पष्ट करना है।

'मिरज़ा साहिबा' की कथा लिखने वाले पीलू एवं हाफिज बरखुरदार दोनों कवि ही इस कथा को सविस्तार देने में असमर्थ रहे है। नायिका के आमंत्रण पर नायक पारिवारिक सदस्यों की अनुनय-विनय की उपेक्षा कर नायिका के पास पहुंच जाता है और उसके साथ भाग जाता है। मार्ग में पकड़े जाने पर सक्षिप्त-सी मुठभेड़ के अनन्तर मारा जाता है। 'सस्सी पुन्नू' एव 'सोहणीं महीवाल' की रचनाओं में भी मुख्य केन्द्र नायिका का प्रेमभाव ही है। उस तक पहुंचने के लिए संक्षिप्त सा इतिवृत्त मात्र कहा जाता है। हाशम के 'शीरीं फरिहाद' एवं अहमदयार के 'सस्सी पुन्नू' मे नायक-नायिका के पूर्वराग का वर्णन जरा अधिक विस्तार से है। इन सभी रचनाओं की कथा इतनी सक्षिप्त है एवं आकार इतना लघु है कि ये रचनाएं पढ़ते समय अनेक बार कथा की अपेक्षा भाव-प्रधानता ही प्रभावित करती है। हाशम की रचनाओं में कथा की अपेक्षा नायिका की आतुरता ही अधिक प्रभावित करती है।

वर्णन के नाम पर इन रचनाओं में नायिका के सक्षिप्त नखशिख एवं वियोग-पीड़ा का बखान ही है। 'मिरज़ा साहिबां' में इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं, अन्य रचनाओं में यथा-स्थान संक्षिप्त वर्णन मिल जाते है, परन्तु उनका उपयोग आगामी घटना की तीव्रता वर्णन करने में किया जा सकता है। सोहणीं की सभी

१. वेली क्रिसन रूकमणी री, पृ० ४८
२. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० ३५०

रचनाओं में 'प्रयाण-रात्रि' के तूफान की भयानकता एवं नदी के प्रबल प्रवाह का वर्णन मिलता है परन्तु इसका उपयोग नायिका की निष्ठा एव निर्भयता व्यक्त करने के लिए हुआ है। वर्णन की प्रचुरता में केवल अहमदयार की रचनाए ही उल्लेखनीय हैं। सस्सी के बाग के अनेक वृक्षो एवं सखियो का वर्णन कवि ने अन्य पंजाबी कवियों की अपेक्षा विस्तार से किया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यहां भी प्रायः नायिका ही प्रधान है। उसमे सौदर्य के अतिरिक्त दूसरा गुण प्रेम-मार्ग की निष्ठा है, जिस पर उसके सम्पूर्ण कष्टों का उत्तरदायित्व है। नायक का चरित्र मिरज़ा साहिबा मे विशेष रूप से उभरा है। इन नायिकाओं या नायकों में अनेक गुणों की अपेक्षा एक गुण की तीव्रता बताकर इन्हें खड-काव्य के उपयुक्त बनाने में इन कवियो ने सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

इन रचनाओं मे वियोग शृंगार का ही वर्णन है। अन्य भावों का स्पर्श तो कभी-कभार उपलब्ध होता है। सयोग शृंगार का भी प्राय. अभाव है। कवियों का वास्तविक उद्देश्य विरह की व्यथा एव कठिनाइयों का वर्णन करना है। उसमें इन्होंने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। बिना इधर-उलर भटके सीधे लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए हृदय में प्रवेश कर जाते है।

इन रचनाओं के एक ही छंद को अपनाया गया है। अनेक छंदों को अपनाने की प्रवृत्ति पंजाबी साहित्य मे नही है। अलंकरण की दृष्टि से भी इनमे कोई उल्लेखनीय नही।

हीर दमोदर एवं हीर वारिस या हीर अहमदयार जैसी कुछ हीर रचनाओं को छोड़कर अन्य हीर रचनाएं भी खण्डकाव्य ही माननी पड़ती है। इनमे न तो कथा का अपेक्षित विस्तार है न वर्णन का चातुर्य। वास्तव मे हीर की कथा एक खण्डकाव्य का ही विषय है परन्तु दमोदर एवं वारिस ने इसे विशाल पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं विविध वर्णनों से संयुक्त कर खण्डकाव्य के 'सक्षेप प्रधान' घेरे से निकाल लिया। समय के विस्तार को इन दोनों कवियों ने वार्तालाप, वियोग-वर्णन अथवा पत्राचार से भर दिया। जबकि अहमद, मुकबल, हामद प्रभृति कवियो मे यह निपुणता देखने को नही मिलती। आकार की दृष्टि से ये रचनाएं 'कथाकाव्य' के लिए अपेक्षित विस्तार को भी नही पहुंचती। 'हीर अहमद' में सम्बन्ध निर्वाह भी पूर्ण नही, इस बात का संकेत पीछे किया जा चुका है। वियोग के दृश्य-वर्णन करना अथवा समाज के अत्याचार को पृष्ठभूमि में रखकर हीर और काजी के वार्तालाप कावर्ण न करना ही इन रचनाओं का मुख्य वर्ण्य हैं। नायिका के नखशिख-वर्णन तक की प्रवृत्ति इनमें नहीं मिलती। अनेक घटनाओं की सूचना मात्र ही उपलब्ध की गई है। इन रचनाओं की इतिवृत्तात्मकता भी इन्हे 'कथा-काव्य' नहीं बनने देती। कथालोचन के प्रकरण में इन पर विस्तार से विचार किया जा चुका है।

अतः पंजाबी में अधिकांश किस्सा रचनाएं खण्डकाव्य ही कही जा सकती

है ।[1] इनमें सक्षिप्त कथा, वर्णनों के प्रति अरुचि, एकरसात्मकता, चरित्र की एक-पक्षीयता आदि वे सभी गुण मिल जाते हैं जो खण्डकाव्य के लिए आवश्यक समझे जाते हैं ।

खण्डकाव्यों का तुलनात्मक निष्कर्ष

सिद्धान्त-निरूपण में विवेचित गुणों के अनुसार यदि परीक्षा की जाए, तो पंजाबी साहित्य के खण्डकाव्यात्मक प्रेमाख्यानों में खण्डकाव्य के गुणो का समन्वय अधिक मनोहर एव सजीव है । खण्डकाव्य मे कथा के जिस संक्षेप की आवश्यकता है, हिन्दी के कवियों ने अनेकश: विस्तृत वर्णनो के द्वारा उसे बाधित किया है । इसमें सन्देह नहीं कि कथा उनमे भी सक्षिप्त है परन्तु अनपेक्षित वर्णनों के मोह के कारण उनमें अनेक बार स्फीति आ गई है । अनेक बार आरभिक अथवा समाप्तिकालीन अशो के कारण उनमें वृद्धि की गई, इसके विपरीति पजाबी प्रेमाख्यानों मे नखशिख जैसी प्रचलित रूढ़ियों के प्रति भी विशेष आस्था के अभाव में रचना की एकान्विति एवं समग्रता अक्षुण्ण रही है । 'मिरज़ा साहिबां' की कथा में युद्ध वर्णन के द्वारा शृंगार की समग्रता भंग की जा सकती थी । हिन्दी के उषा-अनिरुद्ध अथवा कृष्ण-रुक्मिणी के आख्यानों मे प्रायः ऐसा ही हुआ है परन्तु पंजाबी के खण्डकाव्यात्मक प्रेमाख्यान कथा, घटना-वर्णन, भावान्विति अथवा प्रभावात्मकता की दृष्टि से कहीं भी विशृंखल नही हुए । एक ही खण्डकाव्य में अनेक छन्दो के प्रयोग एव विविध वर्णनो के चमत्कार से प्रभाव की मुख्य धारा छितरा जाती है । हिन्दी की अपेक्षा पजाबी में इस सम्बन्ध में 'एकता' उल्लेखनीय है । यह पृथक् बात है कि छन्दों की अनेकता का यह अभाव कवि के चेतन की अपेक्षा अचेत मन का ही फल है । पंजाबी मे 'बीसलदेव रासो' या 'मैनासत' की कोटि के किसी खण्डकाव्य का अभाव अवश्य खटकता है यद्यपि ऐसे काव्य उन कवियों की प्रवृत्ति एवं रुचि के अधिक अनुकूल थे ।

कथाकाव्यात्मक प्रेमाख्यान

हिन्दी के अनेक प्रेमाख्यानों की गणना 'कथा-काव्य' के अन्तर्गत की जानी चाहिए । पजाबी में भी 'हीर दमोदर' यूसफ जुलेखा के आख्यान पर आधारित रचनाए, 'मालिकजादा शाहपरी', 'शाह बहराम हुस्नबानो' एव 'सैफुलमुलूक' कथाकाव्य ही हैं ।

हिन्दी के कथा-काव्यात्मक प्रेमाख्यान

हिन्दी की रचनाओं को दो भागों में बांट सकते है । एक तो वे जिनका विस्तार महाकाव्यापेक्षित है, परन्तु महाकाव्यापेक्षित उत्कृष्टता या औदात्य उनमें नही और दूसरी वे जो खण्डकाव्य की सीमा मे नही रखी जा सकतीं । 'लखमसेन पद्मावती-कथा', 'छिताई चरित', 'मधुमालती वार्त्ता', 'माधव शर्मा, कुशललाभ, आलम और बोधा रचित 'माधवानल कामकदला' कथा पर आधारित रचनाएं, 'कुतबमुश्तरी',

---

१. साहित्त दी रूपरेखा, गुरचरनसिंह, पृ० ८५

'सूररंभावत', 'नलदमन' एवं 'कथा हीर रांझनि की' प्रभृति रचनाएं इसी कोटि की है। इन रचनाओं में कथा-विस्तार इतना अधिक है कि इन्हें खण्डकाव्य कहना अनुचित है । खण्डकाव्य से इनकी सीमा का विस्तार पर्याप्त अधिक है। इनकी कथा का प्रसार दीर्घ काल तक चलता है और पात्रों का जीवन-वृत्त भी अधिक विस्तृत है। रचना-शैली में भी इन कवियो ने वर्णनों, और मार्मिक प्रसगों को अधिक विस्तार प्रदान किया है। कथा को जिस प्रकार विस्तृत समय एव घटना-क्रम प्रदान किया है उसे देखते हुए ये कदापि खण्डकाव्य नही कही जा सकती। दूसरी ओर न तो इनका उद्देश्य ही उदात्त है और न आकार ही इतना विस्तृत कि इन्हे महाकाव्य कहा जाए। महाकाव्य के समान जीवन को प्रभावित करने की शक्ति इनमे नही है। शैली की दृष्टि से भी ये विशेष उत्कृष्ट रचनाए नहीं है। अत. एक विशेप उद्देश्य को लेकर लिखित विस्तृत कथायुक्त इन रचनाओं को 'कथा-काव्य' कहना ही अधिक तर्कसंगत है।

दूसरे वर्ग में वे रचनाएं हैं जिनका कथा-पटल इन रचनाओं से कही विस्तृत है। वास्तव में अपने आकार एवं अन्य विशेषताओं के कारण पहले वर्ग की रचनाएं खण्डकाव्य के अधिक समीप है और दूसरे वर्ग की ये रचनाए महाकाव्य के। ऐसा अनुमान लगाना उचित प्रतीत होता है कि इस दूसरे वर्ग के कवियों के मन में परम्परामोदित महाकाव्य के लक्षण थे और अपनी रचनाओं को ये लोग उन लक्षणों के 'फ्रेम' में चढ़ा कर महाकाव्य ही बनाना चाहते थे। उन लक्षणों का रूढ़िगत निर्जीव अनुसरण इनमें प्रायः देखा जा सकता है। हिन्दी में 'चन्दायन', 'मृगावती', 'मधुमालती', 'चित्रावली' 'ज्ञानदीप', 'रसरतन', 'सैफुलमुलूक-बदीउल-जमाल', जान कवि की 'कनकावती', 'पुहुपबरिषा', 'कामलता', 'रतनावती' प्रभृति बड़ी-बडी कृतियां तथा 'प्रेम प्रगास', 'हस जवाहर', 'इन्द्रावती' आदि रचनाएं इसी वर्ग की है। इनमे महाकाव्य की कई रूढ़िगत विशेषताओं—नखशिख की अनेक बार वर्णन, नगर, सरोवर, गढ़, यात्रा, युद्ध तथा सूर्योदय आदि के विस्तृत वर्णनों का समावेश हुआ है। कथाएं प्रायः काल्पनिक हैं। शृंगार के संयोग एवं वियोग, उभयपक्षों का विस्तृत एवं मार्मिक वर्णन करने के लिए षड्ऋतु, बारहमासा आदि की योजना की गई है। इसके अतिरिक्त वीर, शान्त आदि अनेक रसों की झलक भी इन रचनाओं में मिलती है। नायक इन रचनाओं में एवं नायिका के लम्बे जीवन संघर्ष को विस्तृत आधारभूमि पर उतारने का यत्न स्पष्ट दिखाई देता है। अलौकिक एवं चमत्कारी कृत्यों की भरमार है। परन्तु महाकाव्य के लिए जिस अदम्य-जीवनी शक्ति एवं उदात्त शैली तथा प्रभावी पात्रों की आवश्यकता होती है, इनमें उसकी खोज करने पर निराश होना पड़ता है। इन कृतियों में ऐसे महान् चरित्रों की सृष्टि नहीं हो सकी, जो अविस्मरणीय हों। निःसन्देह कई नायकों में महाकाव्योचित कुछ गुण वर्तमान हैं परन्तु, ये कवि उनको असाधारणता प्रदान करने में असफल रहे हैं। इनमें अनुकरण अधिक एवं मौलिकता नाममात्र को ही है। अनुकरणशील कवि कभी भी महाकाव्यों की सृष्टि नहीं कर सकते। युगजीवन का सजीव एवं पूर्ण चित्र इनमें से एक रचना में भी उपलब्ध नहीं होता।

महाकाव्य के लक्षण का निर्जीव रूढ़िगत अनुसरण गणपति-कृत 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध' में अत्यन्त मुखरित है। इसके काव्यरूप के विषय में रचना के सम्पादक प्रो० मजूमदार ने लिखा है कि "सोलहवीं शताब्दी के मध्यकालीन भारतीय साहित्य में तत्कालीन प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रबन्धों मे प्रयुक्त संस्कृत महाकाव्य के लक्षण के अनुकरण में गणपति का कृतित्व बेजोड़ है।"[१] इसमें कथासूत्र कवि के ज्ञान-प्रकाशन का साधन-मात्र है। नारी-वर्णन, व्यवसायी-स्वभाव-वर्णन, स्वागत सम्बन्धी विविध शिष्टाचार, सज्जन-प्रशंसा, तीर्थ-नामगणना, अकारादि क्रम से वृक्ष, शाक व्यंजनादि वर्णन के अतिरिक्त शास्त्रीय पद्धति के विरह एवं संयोग के प्रसंग, प्रहेलिका-कथन समस्या-पूर्ति आदि का ऐसा चयन है कि उस युग की काव्य-पद्धति का 'पिरामिड' खड़ा हो जाता है। उस युग के सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए इन वर्णनों का महत्त्व हो सकता है परन्तु परिगणन-शैली के कारण ऐसी ऊबाने वाली निर्जीवता एवं नीरसता अन्यत्र दुर्लभ है।

इससे कुछ परिष्कृत परन्तु न्यूनाधिक मिलती-जुलती शैली में रचित पुहकर का 'रसरतन' है। गणपति से लगभग सौ वर्ष पश्चात् रचित इस रचना मे भी महाकाव्य के लक्षण का रूढ़िबद्ध निर्जीव अनुकरण ही हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ० शिवप्रसाद सिंह का यह कथन उद्धरणीय है "रसरतन पौराणिक महाकाव्यात्मक शैली में लिखा हुआ एक प्रेमाख्यान है। इसे महाकाव्य भी कहा जा सकता है। सिर्फ इसलिए नहीं कि मध्ययुगीन महाकाव्यों का रूप बहुत कुछ विकसित एवं परिवर्तित होकर इतना लचीला हो गया था कि उसकी सीमा में सभी प्रकार की बड़ी काव्यात्मक कृतियां समाहित हो जाती थी, बल्कि इसलिए कि संस्कृत महाकाव्यों के रूढ़ लक्षण भी इसमें काफी हद तक सुरक्षित दिखाई पड़ते है।"[२] उन रूढ़ लक्षणों को सुरक्षित रखने के लिए उसी परिपाटी के नखशिख-वर्णन अनेक बार आए हैं। वियोग-वर्णन, दस अवस्था-वर्णन, सुरतान्त-वर्णन, प्रथम समागम-वर्णन, बारहमासा-वर्णन, मित्र-महोत्सव, मानसरोवर-वर्णन आदि के अतिरिक्त गणित की अद्भुत समस्याएं भी इनमें आ गई है। इन रचनाओं में वर्णन की प्रवृत्ति मुख्य है। फलतः कथा मे वह ओजस्विता एवं मनोहारिता नहीं आ पाई जो महाकाव्य के स्थायित्व के लिए आवश्यक है। ये रचनाएं प्रायः रीतिकालीन लक्षण-ग्रंथों से शासित है। इनके वर्णन-मोह के विषय में डॉ० शिवप्रसादसिंह ने लिखा है कि 'कवि पुहकर इसी परम्परा-विहित परिपाटी के मानस पुत्र थे। इसीलिए उनके वस्तुवर्णन में निश्चित पद्धति या पैटर्न का पूर्णतया परिपालन दिखाई पड़ता है।"[३] ये सब वर्णन कवियो के लिए पूर्व निर्धारित मसालों पर आधारित है। रीतिकाल मे हिन्दी में भी ऐसे अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हो जाते है। इन रचनाओं पर आपात् दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले इनका रूपाकार निश्चित

१. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, भूमिका, पृ० ७

२. रसरतन, भूमिका, पृ० ७४

३. वही, पृ० १०८

किया गया है तत्पश्चात् सामग्री का अनुसंधान कर उसे बिठा दिया गया है। काव्य-सर्जन की सहज अभिव्यंजना इनमें नही है। इन पंक्तियों में रसरतन के विषय मे जो कुछ कहा गया है न्यूनाधिक वह सभी रचनाओं के विषय में सत्य है। मुसलमानो एवं चतुर्भुज, नारायणदास, सूरदास, दुखहरण, गुरदासगुणी, भूपत प्रभृति हिन्दू कवियों की रचनाओ मे वर्णन के मोह के साथ घटनात्मक स्थलों की ओर भी कवियो ने विशेष ध्यान दिया है। सम्पूर्ण इतिवृत्त में जहा कही भी अवसर मिला, कवि ठहर कर प्रकृति-वर्णन, नगर-वर्णन, सैन्य-वर्णन, सरोवर-वर्णन, रूप-वर्णन, विरह-वर्णन, सयोग-वर्णन, अथवा यात्रा-वर्णन का सांगोपांग व्योरा देने मे प्रवृत्त हो जाता है। शृ गार के अतिरिक्त वात्सल्य, वीर, शान्त, करुण के प्रति भी इनमें अरुचि नहीं।

मुख्य कथा के साथ अनेक भूमिका अथवा साक्षी-कथाओं की योजनाकर कथा का आकार बढाने की प्रवृत्ति प्रायः सभी रचनाओ मे प्रबल है। कथा-संगठन और चरित्र-चित्रण के प्रसंग में इन रचनाओं की तत्सबधी प्रवृत्तियों पर विस्तार से विचार किया जा चुका है। इन सबके विस्तार को देखते हुए ये रचनाएं खण्डकाव्य नही मानी जा सकती। इनकी योजना मे खंडकाव्य की मौलिक धारणा का ही बहिष्कार है। इसके विपरीत कथा-काव्य के अनेक लक्षण इनमे मिल जाते है।

इनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। इनके कथानक में प्राय' पौराणिक, काल्पनिक एवं लोककथाओं के मिश्रित रूपों का समावेश हुआ है। इसीलिए उसमे अनेक काव्य-रूढ़ियों एव अलौकिक तत्त्वों के दर्शन हो जाते है।

अयथार्थ में यथार्थ का आभास देने के लिए प्राय. नायक-नायिका का जन्म तप-त्याग के फलस्वरूप बताकर उनमे दैवी अशो की स्थापना का यत्न किया गया है। प्रेमोदय के लिए वही चिरपरिचित पद्धतिया स्वीकार की गई है। अनेक अप्राकृतिक तथा असंभव घटनाओ के समावेश से इन कथाओं मे अलौकिक अंशों की भरमार है।

नायकों के चरित्र का प्रेमी रूप ही विशेष महत्त्व का है। उनमे सामाजिक उत्थान या लोक-कल्याण की भावना का समावेश नही हुआ। अधिकांश में घिसी-पिटी परम्परा का अनुवर्तन करने के कारण प्रभाव एव शैली के तथाविध गाम्भीर्य आदि के अभाव में इन रचनाओं को कथाकाव्य कहना ही तर्कसंगत है। इनमें न तो महाकाव्योचित औदात्त्य है और न वैसा प्रभाव डालने की सामर्थ्य।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने स्वसंपादित 'चांदायन' एव 'मृगावती' को कथा-काव्य कहना ही उचित समझा है।[1] इसी प्रकार आलम एवं बोधा की माधवानल कामकंदला के काव्यरूप पर विचार करते हुए डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा ने इन्हें 'एकार्थ काव्य' कहा है जिससे हमारे मत की ही पुष्टि होती है। उन्होंने विस्तार से यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि ये रचनाएं न तो महाकाव्य है और न खडकाव्य।[2]

---

१. मृगावती, भूमिका, पृ० ६
चांदायन, भूमिका, पृ० १६

२. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० ३२८-३२९

पंजाबी के कथा काव्यात्मक प्रेमाख्यान

पंजाबी में सैफुलमुलूक-बदीउलजमाल की कथा पर आधारित दोनों रचनाएं और 'मलिकाजादा शाहपरी' प्रभृति रचनाएं विस्तृत कथावस्तु के कारण कथा-काव्य की कोटि में आती है। इनमें मुहम्मदबख्श रचित 'सैफुलमुलूक' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि विस्तार की दृष्टि से यह काव्य बृहत्तम है। इस रचना में वर्णनों एवं घटनाओं का विस्तार देखते हुए इसे पजाबी का महत्वपूर्ण किस्सा बताया गया है क्योकि जन्म से मरण तक मनुष्य-जीवन के सारे अंगों एवं पक्षों का विस्तारपूर्वक वास्तविक वर्णन, देवों एवं परियों के आन्तरिक जीवन की झांकियां, पृथ्वी, आकाश एव जल के पृथक्-पृथक् विस्तृत वर्णन सभी कुछ इसमें विद्यमान हैं। ''''सैफुलमुलूक' पंजाबी का शब्दकोश होने के साथ-साथ काव्यकला एवं उच्च कल्पना का उत्तम आदर्श एव भडार है।'[1]

पजाबी के पाठकों के लिए यह अवश्य नई चीज है। 'सैफुलमुलूक' में यह सब कुछ है परन्तु उस में पुनरुक्ति-पूर्ण विस्तार के कारण रचना की स्वाभाविकता पूर्णतः नष्ट हो गई है। कवि का वर्णन प्रायः गणनात्मक शैली का है उसकी विस्तार-बुभुक्षा स्वाभाविकता एवं तार्किकता की हत्या किए बिना शान्त नही होती। वारिस ने नखशिख के वर्णन में बीस-पच्चीस उद्धालियाँ लिखी है तो मुहम्मदबख्श ने कई सौ — बिना किसी क्रम के। इस वर्णन-मोह के अतिरिक्त रचना में नायक अथवा नायिका का चरित्र भी विशेष प्रभावपूर्ण नही बन पाया। पजाबी किस्साकाव्य में यह एक भिन्न प्रवृत्ति का द्योतक होने के कारण ही उल्लेखनीय है अन्यथा अनेक पंजाबी विद्वान् तो इसके नाम से भी परिचित नहीं। इसमे महाकाव्य के लिए आवश्यक संजीवनी शक्ति एवं उदात्त उद्देश्य अथवा सम्मोहक शैली का अभाव है। पजाबी-भाषा का 'शब्द कोश' बनने की शक्ति इसमें अवश्य है परन्तु इससे उसका कुछ काव्यात्मक महत्व सिद्ध नहीं होता। कथा के विस्तार के कारण यह खंडकाव्य नहीं बन सकता एवं निर्जीवता के कारण इसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता।

मुहम्मदबख्श की अपेक्षा मौ० लुत्फअली की रचना पर्याप्त सन्तुलित है। इसमें वैसा निर्बाध विस्तार नही है अपनी प्रकृति के अनुसार यह कृति हिन्दी प्रेमाख्यानों के अधिक समीप है। इसमें कथा-काव्य के गुण उपलब्ध होते हैं। कथा के मध्यभाग में अनेकशः राज-प्रशस्ति के कारण इस काव्य की कथा बाधित हुई है। वास्तव में ये दोनों रचनाएं अपने-अपने क्षेत्र में ही प्रसिद्ध रहीं। मुहम्मदबख्श की रचना 'जेहलम' नदी के आसपास के प्रदेश में एव लुत्फअली की रचना रियासत बहावलपुर में। इनका कथा-विधान एवं वर्णन-पद्धति वही है जो हिन्दी के कथा-काव्यात्मक प्रेमाख्यानों की है। दोनों ही एक छन्दात्मक रचनाएं है। लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक' मुहम्मदबख्श रचित

१. सैफुलमुलूक, अरंभक वचन, पृ० ५

'सैफुलमुलूक' से अधिक परिमार्जित एवं सुगठित कृति होते हुए भी कथाकाव्य के ही अन्तर्गत आ सकती है।

किस्सा 'कामरूप' अथवा 'मलिकजादा शाहपरी', 'शाह बहराम हुस्नबानो' प्रभृति रचनाए भी कथ-विस्तार के कारण इसी कोटि की है। इनमें कथा का विस्तार हिन्दी के कथा-काव्यों के ही समान है। घटनाओं के चमत्कारी वर्णन तथा इतिवृत्तात्मक शैली के कारण इनमें महाकाव्यापेक्षित गुण नहीं आए। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी ये रचनाएं अति सामान्य कोटि की है। इनके नायक भाग्य के बल पर ही कुछ कर पाते है। रचनाओं की कथाएं अपेक्षाकृत संक्षिप्त है। परन्तु इतनी नहीं कि उन्हें खंडकाव्य माना जा सके। इस वर्ग में दमोदर, हामद, अहमदयार आदि कवियों के द्वारा रचित 'हीर राँझा' तथा 'यूसफ जुलेखा' वृत्त पर आधारित रचनाएं भी ग्रहण की जा सकती हैं।

पंजाबी में 'हीर-दमोदर' की तुलना वारिस की हीर से की जाती है। आकार की दृष्टि से अथवा कथा-विस्तार की दृष्टि से भी उस रचना को खंडकाव्य कहना उचित नहीं। कथा में देश-काल का विस्तार पर्याप्त है और उसे विस्तारपूर्वक ही वर्णित किया गया है। हीर के स्वच्छन्द भ्रमण, साहस, विवाह, श्वसुर-गृह-गमन एवं वियोग की सम्पूर्ण गाथा अत्यन्त विस्तार से कही गई है परन्तु दमोदर की रचना में महाकाव्य का स्वरूप नही उभर सका। उसका नायक अलौकिक पात्रों एवं भाग्य के सहारे ही बैठा रहा। महाकाव्य की रचना के लिए आवश्यक प्रतिभा दमोदर में नहीं थी। वर्णन-कौशल में दमोदर साधारण काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन भी नहीं करता। सौन्दर्य-वर्णन के लिए उसके पास शब्दों का अभाव है। रांझा एवं हीर के सौन्दर्य-वर्णन के अनेक अवसर आते है परन्तु सूर्य, चौदस का चांद अथवा स्वर्गिक आभा के अतिरिक्त वह कुछ नही कह पाता।

'हीर दमोदर' में काव्यात्मक सौदर्य का अभाव है। 'सादगी' कह कर इसे छिपाया नही जा सकता। इस प्रकार की सादगी एवं सरलता भी उतनी ही अस्वाभाविक है जितने कि मियां मुहम्मदवख्श के रूढ़िबद्ध लम्बे-लम्बे वर्णन। इसमें ग्रामीणता अधिक तथा साहित्यिकता कम है। 'हीर दमोदर' में काव्य सम्बन्धी अनेक दोषों को देखते हुए उसे केवल पंजाबी का प्रथम प्रेमाख्यान होने का ही गौरव प्रदान किया जा सकता है। इस प्रसंग में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दमोदर की शिक्षा अत्यन्त साधारण थी। उसे न तो भारतीय काव्यशास्त्र का ज्ञान था और न फारसी मसनवी-पद्धति से ही उसका परिचय था। साहित्यिक परम्पराओं की अपेक्षा लोक-परम्पराएँ ही उसका आधार बनी। उसका योगदान इस लोक-ज्ञान को पद्यबद्ध करने में है। काव्य-सौष्ठव के अभाव में उसकी रचना एक सुन्दर कथा-काव्य भी नहीं ठहरती। शैली की ग्राम्यता उसका मुख्य दोष है।

हीर कथा पर आश्रित हामद एवं अहमदयार की रचनाएं भी कथा-काव्य हैं। इनमें यद्यपि विशेष विस्तार नही परन्तु मुकबल एवं अहमद या हाशम जैसा वर्णन-

संकोच भी नही। कथा के स्वाभाविक विस्तार के कारण उसकी देश एवं कालगत सीमा उसे खंडकाव्य की परिधि से ऊपर उठा देती है। अहमदयार ने एक-एक घटना का विस्तार पूर्वक वर्णन कर वारिस को प्रतिहत करने का यत्न किया। परन्तु अपने इस प्रयत्न में उसे सफलता नही मिली। अन्ततः एक अच्छे साहित्यकार के समान स्वयं हार स्वीकार कार ली—

> वारिसशाह जंडियाले वाले वाह वाह हीर बनाई।
> मैं भी रीस ओसे दी करके लिखी तोड़ निभाई।
> जो अक्ल मज़मून बन्हण दी उस, सो मैं नहीं काई।
> वडा तअज्जब आवे यारो, वेख उस दी वडिआई।
> मैं क़िस्से लिखदिआं बरे पजाह सठ आपणी उमर लघाई।
> ते उस किस्सिआं' विचों इहो इक्को हीर बनाई।
> की आखां बोली ताँ लगदी, की गल ढुकदी आई।
> अहिमदयार कहे उस जैसी अटकल मैं नहीं आई।[1]

हाफिज़ बरखुरदार, अहमदयार, अब्दुलहकीम बहावलपुरी आदि कवियों ने यूसफ जुलेखा की कथा के आधार पर जो रचनाएं लिखी है वे भी कथा-काव्य की कोटि की ही है। वास्तव में इन रचनाओं मे फारसी-मसनवियों का अनुकरण करने की बात लेखकों ने स्वयं स्वीकार की है, इनका स्वर इतिवृत्तात्मक ही है। इन रचनाओं में मौलिकता एव जीवन की विविधता का अभाव खटकता है। विदेशी स्रोत से गृहीत होने के कारण जातीय गौरव की अभिव्यक्ति का तो इनमें प्रश्न ही नहीं उठता। अहमदयार कृत 'अहसनुलकस्सिस' में कथा एवं भाव की अभिव्यक्ति में धार्मिक संकेतों के कारण अनेक बार बाधा पड़ती है।

संक्षेप में पंजाबी के प्रेमाख्यानों मे कुछ इनी-गिनी रचनाएं ही ऐसी हैं जिन्हें कथा-काव्य कहा जा सकता है, उनमें भी कथा-काव्य की स्फीति एवं वर्णन-समृद्धि का अभाव है। काव्य की अपेक्षा वे रचनाएं इतिवृत्त-संग्रह मात्र प्रतीत होती है।

तुलनात्मक निष्कर्ष

हिन्दी के अधिकांश प्रेमाख्यानों को कथा-काव्य की कोटि में रखना उचित है परन्तु पजाबी में इस कोटि की रचनाएं गिनी-चुनी है। काव्य-शिल्प, रसाभिव्यक्ति एवं चरित्र-चित्रण के आधार पर पंजाबी की ये रचनाएं साधारण कोटि की ही है।

---

१. अर्थ—जंडियाला निवासी वारिसशाह ने अत्यन्त सुन्दर हीर बनाई। मैंने भी उसी की अनुकृति का सफल यत्न किया है। परन्तु प्रवन्ध-कल्पना की जो सूझ वारिस को है वह मुझे न आ सकी। मित्र, उसका कौशल देख अत्यन्त आश्चर्य होता है। मुझे किस्से लिखते पचास-साठ वर्ष हो चुके हैं और उसने एक मात्र हीर ही लिखी। क्या करूं, लोग सच्चा व्यंग्य करते है, मुझ में उस जैसा कौशल नही है।

—बबीहा बोल, पृ० २४६

इनकी अपेक्षा हिन्दी के कथा-काव्यात्मक प्रेमाख्यानों की श्रेष्ठता अनेक दृष्टियों से आँकी जा सकती है। हिन्दी में विविध कथाओ को आधार बनाया गया है। एक ही कथा को लेकर भी उसे भिन्न-भिन्न पद्धतियों से विकसित किया गया है। ये रचनाए न केवल इतिवृत्त-संग्रह मात्र है और न ही वर्णनो का समूह मात्र। शिथिल होते हुए भी उनकी कथावस्तु मे प्रबन्ध-कल्पना एवं सम्बन्ध-निर्वाह की नितान्त उपेक्षा नहीं हुई। पात्रों का चयन विविध पक्षों से किया गया है। काव्य-सौन्दर्य एवं रमणीय वर्णनो की दृष्टि से भी इनमें अनेक मनोहारी स्थल मिलते है। इनमें अनेकविधि शैलियों का प्रयोग हुआ है। नाना भावों की सुन्दर रसव्यंजना इनके महत्व मे वृद्धि करती है।

पंजाबी कथा-काव्यात्मक प्रेमाख्यानों में कथा-वैविध्य तो अमामवख्श एवं अहमदयार में ही मिलता है। इन कवियों के भी अधिकांश प्रेमाख्यान इतिवृत्तात्मक ही है। काव्य-सौन्दर्य एवं रस-व्यंजना की दृष्टि से इनका स्थान अत्यन्त गौण है। सच्ची बात तो यह है कि 'मजमून बांधने की अटकल' अकेले अहमदयार में ही नहीं, अन्य कवियों में भी दिखाई नही देती। इनमें या तो संवादों की योजना है या फिर इतिवृत्त-कथन। कई बार महत्वहीन पात्रों को व्यर्थ मे ही पुनः पुनः प्रदर्शित किया जाता है। इनमे जीवन के विविध पक्षों की झाँकी खोजने पर निराश ही होना पड़ता है। इनका अलंकरण साधारण कोटि का है और छन्द-वैविध्य नाममात्र को भी नही।

कथाचयन, कथावस्तु-संगठन, काव्य-सौन्दर्य, वर्णन-चातुर्य, भाव-सम्पदा एवं अभिव्यक्ति-कौशल सभी दृष्टियों से हिन्दी की अनेक रचनाएं अधिक उत्कृष्ट हैं। अधिक से अधिक, पंजाबी की इन रचनाओं की तुलना, हिन्दी कथा-काव्यों के उस वर्ग से की जा सकती है जिनकी विवेचना स्फीति एवं विविधता के अभाव में बृहत्-कथा-काव्यों से पृथक् की गई है। नारायणदास, आलम या गुरदासगुणी की रचनाए भी काव्य-सौष्ठव की दृष्टि ने इनकी अपेक्षा अधिक सरस है। इनमें मौ० लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक' अवश्य अपवाद है जो हिन्दी के किसी भी श्रेष्ठ कथा-काव्यात्मक प्रेमाख्यान के समक्ष रखी जा सकती है।

महाकाव्यात्मक प्रेमाख्यान

हिन्दी और पंजाबी के मध्यकालीन प्रेमाख्यानों की विशाल संख्या में केवल दो रचनाए ही ऐसी है जिन्हें विद्वानों ने महाकाव्य कहा है। हिन्दी में यह गौरव 'पदमावत' को एवं पंजाबी में 'हीर वारिस' को प्राप्त है। यद्यपि आचार्य शुक्ल एवं डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'पदमावत' को महाकाव्य न कहकर 'श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य'[1] ही कहा हैं परन्तु डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल,[2] डॉ० शंभूनाथसिंह,[3] डॉ० शकुन्तला दूबे[4] तथा

१. (क) जायसी ग्रन्थावली, भूमिका पृ० ७१
(ख) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३१३
२. पदमावत, प्राक्कथन, पृ० ४
३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४२८
४. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ६७

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत[1] प्रभृति विद्वानो ने इसके महाकाव्यत्व का स्पष्ट आख्यान किया है। महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर जैसे हिन्दी में अनेक विद्वानों ने 'पदमावत' की परीक्षा की है[2] वैसे अभी तक पंजाबी समालोचना-क्षेत्र में 'हीर वारिस' की परीक्षा तो नहीं की गई परन्तु डॉ० जीतसिह सीतल एवं डॉ० सुरिंदरसिंह कोहली ने इसे 'शाहकार'[3] की संज्ञा दी है। डॉ० गोपालसिंह दरदी ने भी अपने इतिहास में 'हीर-वारिस' की जो आलोचना प्रस्तुत की है[4] उससे यह निष्कर्ष सहज में ही निकाला जा सकता है कि वे 'हीर वारिस' को महाकाव्य मानते है। इसके अतिरिक्त पंजाबी के अन्य अनेक आलोचकों ने 'हीर वारिस' को स्पष्ट रूप से महाकाव्य घोषित किया है।[5] अतः इन दोनों रचनाओं के महाकाव्यत्व का परीक्षण अवश्य है। यह परीक्षण परम्परा-प्राप्त शास्त्रीय लक्षणों की अपेक्षा महाकाव्य के सम्बन्ध में निश्चित की गई उन विशेशताओं के आधार पर ही किया जाएगा जो इसी अध्याय में पूर्व-विवेचित है।

पदमावत

(क) कथानक

'पदमावत' में चित्तौड़ के राजा रतनसेन एवं सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम-कथा काव्यबद्ध की गई है। पद्मावती भारतीय साहित्य में बहुत पुराना नाम है[6] और यह कथा भी अपने जिस किसी रूप में जायसी के समय लोक-प्रसिद्ध थी। जिसका सकेत कवि ने रचना के आरम्भ में ही किया है--

आदि अन्त जसि कथ्था अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै॥[7]

इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि जायसी ने एक लोककथा को अपने काव्य का आधार बनाया। इस लोककथा में कविसुलभ स्वातन्त्र्य का उपयोग करते हुए कवि ने अपने समय की कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं, कथानक-रूढ़ियों एवं काव्य-रूढ़ियों का ऐसा सुन्दर मिश्रण किया है कि सहृदय के मन में अनायास ही उसकी काव्य-प्रतिभा के प्रति अपार श्रद्धा एव विस्मय का जागरण होने लगता है। 'प्रेम की पीर'

---

१. जायसी का पदमावत काव्य और दर्शन, पृ० ३५३

२. (क) हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, डॉ० गोविन्दराम, पृ० ७३-८४
   (ख) जायसी का पदमावत काव्य : और दर्शन, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ३५३-४४२
   (ग) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डॉ० शंभूनाथसिंह, पृ० ३९७-४८०
   (घ) मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, डॉ० शिवसहाय पाठक, पृ० १९३-२१०

३. (क) हीर वारिस, डॉ० जीतसिह सीतल, प्रवेशिका, पृ० १९
   (ख) पंजाबी साहित्त दा इतिहास, पृ० १९७-१९८

४. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, पृ० २४८

५. पंजाबी दुनिया, जनवरी-फरवरी १९६४ में सर्वश्री किशनसिंह (पृष्ठ १७२), गुरदीपकौर (पृष्ठ२७४), ईश्वरसिह तांघ (पृ० २६३), जोगिन्दरसिह (पृष्ठ २१३) के लेख एवं साहित्त दी रूपरेखा, गुरचरणसिंह, पृ० ८५।

६. विस्तार के लिए देखें हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४२३

७. पदमावत, पृ० २४

जगाने के लिए उसने इस कथा को जोड़ने में विशेष परिश्रम किया था यह भी उसने अन्त मे स्पष्ट कर दिया है।[1]

'पदमावत' में नायक-नायिका के प्रेम और मिलन की ही नहीं सम्पूर्ण जीवन की विस्तृत कथा है जिसमें उनके जीवन को एक पृष्ठभूमि-विशेष मे कौशलपूर्वक प्रस्तुत कर ऐहिक एवं पारलौकिक मिलन का विधान किया है। प्रबन्ध-निर्वाह में रिक्तता उपस्थित करने वाली घटना-विरलता इसमें नहीं है और न ही इसमें घटना-बाहुल्य के कारण उत्पन्न अस्वाभाविकता ही आ पाई है। घटनाएं स्वाभाविक रूप से अपनी पूर्व घटनाओं के परिणाम-स्वरूप घटित होती है। सभी प्रासंगिक कथाएं नायक-नायिका के प्रेम की मुख्य कथा के साथ अंगागिभाव से सम्बद्ध है। सिंहलगढ़ मे हीरामन तोते का पद्मावती से सम्पर्क, उसका गढ़ से प्रस्थान, ब्राह्मण के द्वारा रतनसेन के पास पहुंचना एवं उसके सम्मुख पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन नायिक को नायिका के प्रति आकृष्ट करने में सहायक होता है तो राघवचेतन की कथा से ही मुख्य कथा का विस्तार होता है और वह कथा में मुख्य पात्र के रूप मे सामने आकर अलाउद्दीन जैसे खलपात्र से हमारा सम्पर्क स्थापित करवाता है। राघवचेतन-कांड की नियोजना से अलाउद्दीन से सम्बन्धित विस्तृत घटना-समूह अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'देवपाल-दूती' प्रकरण की योजना से कथा को एक स्वाभाविक अन्त मिलने में सहायता मिलती है। रतनसेन को सूली मिलने के समय कथा में अवरोध आने की आशका अवश्य बलवती हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथा यहीं समाप्त हो जाएगी परन्तु वहीं पर भाट की अवतारणा द्वारा सम्पूर्ण घटना-प्रवाह को वाँछित दिशा में मोड़कर अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। इसी प्रकार पद्मावती को प्राप्त कर सिंहल द्वीप मे ही नायक को भोगानुलिप्त देखकर एक बार पुनः कथा के अवसान की आशंका हो जाती है। परन्तु यहां भी ग्रंथन-कौशल-निपुण कवि सन्देश-कथन द्वारा नायक को उद्बोधित कर कथा को गति देता है। प्रायः सभी घटनाएं आगामी घटनाओं का कारण बनकर अपनी सार्थकता प्रमाणित करती है। राघवचेतन का देश-निकाला एवं कंकण-दान के प्रसंग पद्मावती के दर्शन फलतः अलाउद्दीन के आक्रमण का कारण हैं। अलाउद्दीन के आक्रमण की असफलता एव अधिक देर तक युद्ध को चलाए रखने में राजा की असामथ्र्य दोनों के बीच सन्धि को अनिवार्य बनाती है। सन्धि के परिणाम स्वरूप राजा अलाउद्दीन को आमत्रित करता है। वहाँ चौपड़ के खेल के प्रसग में पद्मावती का रूप-सौदर्य राजा को छल द्वारा बन्दी बनाने का कारण है। राजा के बन्दी हो जाने पर देवपाल और अलाउद्दीन का दूती-प्रेषण भी स्वाभाविक ही है। ये दोनों दूतियाँ ही भविष्य की घटनाओं को आमंत्रित करती है। अतः कथानक-सगठन में आवश्यक शृंखलाबद्धता और स्वाभाविकता है।

इसमें महाकाव्यापेक्षित कार्यावस्थाओं, पंचसंधियों एवं अर्थप्रकृतियों की योजना

---

१. पदमावत, पृ० ७१३

प्रभावपूर्ण ढंग से हुई है। राजा के मन में पद्मावती के प्रति प्रेम उत्पन्न होने तक कथा का भाग आरम्भ है। योगी बनकर प्रस्थान करने से लेकर चित्तौड़ प्रत्यावर्तन तक का भाग प्रयत्न है, राघवचेतन के निष्कासन से नागमती पद्मावती विलाप तक का भाग प्रत्याशा, रतनसेन् की मृत्यु तक का भाग नियताप्ति एवं पद्मावती-नागमती के सती होने पर बादशाह के हाथ में चित्तौड़ के इस्लामाधीन होने पर भी मुट्ठी भर धूल हाथ लगने से उत्पन्न निर्वेद फलागम है। कार्यावस्थाओं के ही समान कथा-संगठन में नाटकीय सन्धियों एव अर्थप्रकृतियों का भी अद्भुत परिपालन हुआ है। जन्मखंड[1] से लेकर नखशिख-खंड तक मुखसंधि है। इस भाग में वातावरण की सृष्टि के कारण बीज नामक अर्थप्रकृति स्पष्ट होती है। प्रेम-खंड से कथा फैलनी आरम्भ होती है, यही 'बिन्दु' नामक अर्थप्रकृति का क्षेत्र है। नागमती-पद्मावती-विवाद खंड तक कथा विस्तार अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त हो जाता है, यहां प्रतिमुख संधि समाप्त होती है। राघवचेतन-देशनिकाला खंड से राघवचेतन की कथा पताका रूप में आ जाती है यह गर्भसंधि है। तदनन्तर गोरा-बादल-कथा, देवपाल-दूती-कथा, देवपाल-युद्ध आदि प्रकरियों के समावेश के कारण, निमर्श सन्धि औरअन्तिम घटना में 'निर्वहण' सन्धि है।

कार्यान्विति की दृष्टि से 'पदमावत' की कथा पूर्ण रूप से सुगठित है। अरस्तू ने कथा में पूर्ण एक्य के लिए आदि, मध्य एवं अवसान की आवश्यकता प्रतिपादित की है। 'पदमावत' में ये तीनों दशाए अत्यन्त स्वाभाविक रूप में विद्यमान हैं। पद्मावती के विवाह तक की घटनाएं आदि भाग के अन्तर्गत आती हैं, राघवचेतन के चित्तौड़ निष्कासन तक मध्य एवं तदन्तर कथा का अवसान है।

कथानक की रोचकता बनाए रखने के लिए कवि अनेक छोटे-छोटे प्रसंगों एवं सरस संवादों की योजना करना भी नही भूला। इन प्रसंगों का काव्यात्मक महत्व तो निर्विवाद है ही कथा को गति एवं रोचकता प्रदान करने में भी ये महत्वपूर्ण है। इनके अभाव में यह प्रबन्ध काव्य-सीमा के भीतर प्रवेश ही प्राप्त नही कर सकता। सिंहल द्वीप-वर्णन, मानसरोदक पर जलक्रीड़ा-वर्णन आदि ऐसे ही सरस प्रसंग है। सम्वादों की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ अत्यन्त समृद्ध है। राजा-सुआ संवाद, राजा-गजपति संवाद नागमती-सुआ सम्वाद एवं दूतियो के साथ पद्मावती के सम्वादों के द्वारा कथानक में रोचकता का समावेश हुआ है। परन्तु ऐसे स्थानों की भी कमी नहीं जहां इनके द्वारा कथा-गति में बाधा उपस्थिति हुई है। जायसी की बहुज्ञता-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने कई स्थानों पर कथा-प्रवाह में बाधा पहुंचाई है। अनेक स्थानों पर योग-पद्धति और सिद्धान्त-निरूपण, स्वप्न-विचार, शकुन-विचार, वृक्ष, फल-फूल, पक्षी आदि के वर्णन, पान-सामग्री आदि के परिगणन, स्त्री-भेद वर्णन और नृत्य-वाद्य-संगीत आदि के वर्णन ऐसे ही है। कथा में अलौकिक तत्वों का समावेश बहुत अधिक हैं और उन्ही के द्वारा कई महत्वपूर्ण

---

१. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित पदमावत के आधार पर।

घटनाएँ सम्पादित होती हैं । भीषण झंझावात में बिछड़े नायक-नायिका का मिलन समुद्र एव लक्ष्मी की कृपा से ही हो पाता है । इन सबके पक्ष में यही कहा जा सकता है कि इस रचना मे ये तत्त्व अपने युग की साहित्यिक परम्पराओं के पालन के लिए अनिवार्य थे । उस युग का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने के लिए भी इनका सन्निवेश आवश्यक था ।

आचार्य शुक्ल ने 'पदमावत' के कथानक में दो भागों की ओर सकेत किया । "सिंहल द्वीप यात्रा से लेकर पद्मिनी को लेकर चित्तौड़ लौटने तक हम कथा का पूर्वार्द्ध मान सकते हैं और राघवचेतन के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक उत्तरार्द्ध । ध्यान देने की बात यह है कि पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है ।"[1]

शुक्ल जी ने पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का यह विभाजन केवल कल्पना एवं इतिहास के आश्रय की दृष्टि से ही किया था अन्यथा उनके अनुसार "जायसी का सम्बन्ध-निर्वाह अच्छा है । एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की शृंखला बराबर लगी हुई है, कथाप्रवाह खंडित नहीं है ।[2] परन्तु कुछ विद्वानों ने इन दोनों 'अर्द्धों' में अलग-अलग सन्धि व्यवस्था भी देख ली ।[3] इस भ्रम का कारण स्वाभाविक कथा-विकास का अस्वाभाविक विभाजन ही है । आचार्य शुक्ल ने पद्मावती के सती होने को महत्कार्य माना[4] परन्तु उसके महत्त्व की व्याख्या नहीं की । नायिका की मृत्यु से सम्बन्धित घटना को महत्कार्य मानने में भारतीय संस्कारी सहृदयों को हिचकिचाहट होनी स्वाभाविक ही है । इसमें सन्देह नहीं कि 'पदमावत' का फलागम कुछ भिन्न कोटि का है और उसको ध्यान में रखते हुए इसे दो कथाओं वाला प्रबन्ध काव्य मानना असगत है । प्रेम के महत्त्व की स्थापना कवि का उद्देश्य है । उसकी अनश्वरता का प्रतिपादन करने वाली इस रचना का कथानक-संगठन कौशलपूर्ण है । कुछेक स्थानों को छोड़कर प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से यह एकात्मक है ।

प्रसंगवश, 'पदमावत' में इतिहास एवं कल्पना के मिश्रण पर भी विचार कर लेना चाहिए । इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों के अध्ययन के अनन्तर प० परशुराम चतुर्वेदी के ये निष्कर्षात्मक विचार अत्यन्त सटीक है—"जहां तक पद्मावत की कहानी के ऐतिहासिक होने का प्रश्न है, इस बात का निर्णय केवल असम्भावना के रूप में ही दिया जा सकता है । इस सम्बन्ध में जो सबसे प्रमुख बात है वह यह है कि इस रचना के पहले, एवं इसमें वर्णित तथाकथित रतनसेन की सिंहल-यात्रा व पद्मावती के उस द्वीप में अस्तित्व के होने के अनन्तर वाली अवधि में, लिखे गए किसी भी प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ में इसकी ओर संकेत भी किया गया नहीं जान पड़ता । उस काल

---

१. जायसी ग्रन्थावली, पृ० २२

२. वही, पृ० ७२

३. हिन्दी काव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४५८

४. जायसी ग्रंथावली, पृ० ७३-७४

के किसी ऐसे सिंहल-द्वीप का भी पता नहीं जिसका राज़ा कोई गन्धर्वसेन रहा हो और न चित्तौड़ गढ़ के ही किसी रतनसेन की पद्मावती नामक रानी का कहीं उल्लेख मिलता है। राजस्थान के प्रसिद्ध वीर गोरा एवं बादल की युद्ध क़थाओं के साथ जहाँ इस पद्मावती की भी कथा के प्रसंग मिलते है, उनका निर्माण काल जायसी की इस प्रेमगाथा के पीछे ही ठहरता है जिसके आधार पर यह कथन अधिक युक्ति-संगत हो सकता है कि इनके रचयिताओं ने भी जायसी का ही अनुकरण किया होगा। इस सम्बन्ध में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि सिंहल द्वीप, पद्मिनी नारी, प्रेमी का जोगी बन जाना वा किसी जोगी से सहायता लेना, शिव, पार्वती एवं दुर्गा जैसी दैवी शक्तियों की कृपा से सफलता उपलब्ध करना और अपने प्रयत्नों मे सुए जैसे पक्षियों का सहयोग प्राप्त करना आदि बातें केवल किसी विशिष्ट प्रेमगाथा के ही प्रसंग में आती नही पाई जातीं, प्रत्युत् इनके विविध प्रयोग एक से अधिक ऐसी रचनाओं में आप से मिल जाया करते हैं। इतिहासज्ञों ने इसी कारण बहुत छानबीन करने के उपरान्त 'पद्मावत' के कथानक को प्रधानतः कल्पनिक ही ठहराया है। अतएव जान पड़ता है कि जायसी ने भी इसकी कथा का ढाँचा खड़ा करते समय कदाचित् उसी मार्ग का अनुकरण किया है जिसे उनके दो सौ वर्ष पहले अमीर खुसरो ने देवलदेवी के विषय में अपनाया था।[1] जायसी ने अपने समय की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को अपने नायक और नायिका से सम्बद्ध कर दिया[2] और अपने काव्य मे अपन समय का चित्र प्रस्तुत करने का यत्न किया। अतः 'पदमावत' में इतिहास का कल्पना-समन्वित प्रयोग है। इसमें शुद्ध इतिहास को खोजना लाभप्रद नहीं। कथा की गति को आगे बढ़ाने के लिए कवि-परम्परा में प्रसिद्ध अनेक रूढ़ियों का प्रयोग तथा उसमें रोचकता लाने के लिए समकालीन इतिहास की छाया से जायसी ने अपने काव्य को महान् बनाने का यत्न किया है।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार उदात्त या महान् कथानक का अभिप्रेतार्थ महती घटनाओं के समन्वय से है तथा घटनाओं की महत्ता का मापक उसका प्रबल प्रभाव और देश-कालगत विस्तार होता है।[3] इस मन्तव्य के प्रकाश में 'पदमावत' के कथानक को 'उदात्त' कहा जा सकता है। उसका प्रभाव एवं विस्तार-क्षेत्र बाह्य एव आन्तरिक दृष्टियों से अद्भुत है। शताब्दियों तक इतिहासकार उससे प्रभावित होते रहे। टॉड के 'राजस्थान', 'आइने अकबरी' तथा 'तारीखे फरिश्ता' में इसे इतिहास का प्रमाणिक स्रोत

---

१. हिन्दी साहित्य, द्वितीय भाग, सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं ब्रजेश्वर वर्मा, पृ० २५६

२. (क) श्री इन्द्रचन्द्र नारग ने अपनी पुस्तक 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार' (हिन्दी भवन, इलाहाबाद) में कथा के अनेक प्रसंगों पर समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं की छाया का विवेचन किया है।

(ख) सैयद कल्ब 'मुस्तफा ने भी 'मलिक मुहम्मद जायसी' (अंजुमन तरक्की उर्दू, देहली), में इस विषय पर विस्तार से (देखें पृष्ठ १००-१२८) प्रकाश डाला है।

३. कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृ० १६

मान लिया गया ।[1] उसकी कथा ने अनेक प्रबन्ध-काव्यों को सामग्री प्रदान की। लोकप्रियता की दृष्टि से भी हिन्दी में 'रामचरितमानस' के बाद इसी का स्थान है। 'पदमावत' की बहुत सी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। रचना के प्रायः सौ साल पश्चात् सन् १६५० ई० में उसका बगला भाषा मे अराकान जैसे दूरवर्ती प्रान्त में अनुवाद हो गया।

आन्तरिक प्रभाव की दृष्टि से भी 'पदमावत' के कथानक की उदात्तता असदिग्ध है। उसमें कवि के उदार एवं सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है। कवि के मन में अवस्थित अद्वैत-चेतना ने एक ऐसे तार को झंकृत किया है जो 'मनुष्यमात्र के हृदयों से होता हुआ गया है। जिसे छूते ही सारे रूप रग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव होने लगता है।[2]

(ख) कार्य या उद्देश्य

जायसी ने ग्रन्थ के आरम्भ एवं समाप्ति में अपने उद्देश्य का सकेत किया है। उसने अपने आपको प्रेम का कवि कहा है।[3] एक रसपूर्ण कथा की रचना करना उनका उद्देश्य था।[4] जायसी की दृष्टि में महान् कवि को झूठ सत्य से पृथक् रहकर प्रेम-तत्वपूर्ण कविता की रचना करनी चाहिए।[5] कृति के अन्त में भी कवि ने रचना में प्रेमकथा के सुन्दर एवं सफल नियोजन पर सन्तोष व्यक्त करते इस आधार पर अमरता की कामना की है।[6] अतः रतनसेन एवं पदमावती की प्रेम-कथा के माध्यम से इस संसार मे मात्र प्रेम की नित्यता एवं अनश्वरता का वर्णन करना कवि का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की सिद्धि जिस कार्य से होती है वही रचना का फलागम या कार्य है।

प्रेम की इस यात्रा को कवि ने केवल इहलोक तक ही सीमित नही रखा। पद्मावती एवं नागमती के सती होने की घटना के द्वारा प्रेमी एवं प्रेमिका को दोनों जग के साथी बताकर प्रेम तत्व की अमरता का प्रतिपादन किया है इस प्रकार इस संसार में मोक्ष प्राप्त करने का उपाय भी सुझाया गया है। परन्तु इस सत्य को जैन चरित-काव्यों के समान स्थूल रूप से नही कहा गया। काव्य मे अभिधा के द्वारा उपदेश-

---

१. इस प्रसंग के विस्तार के लिए देखें 'मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य', डॉ० शिवसहाय पाठक, पृ० १५७-१७३

२. जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० २

३. मुहम्मद कवि जों प्रेम का न तन रकत न मॉसु।
जेइ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु ॥

—पदमावत, पृ० २३

४. कवि बिआस रस कौला पूरी

—वही, पृ० २४

५. कबि सो पेम तंत कबि राजा। झूठ साँच जेहि कहत न साजा ॥

—वही, पृ० ६६३

६. वही, पृ० ७१३

विधान सामान्य कवि ही करते हैं। जायसी ने मनोवैज्ञानिक ढंग से ससार के राग-द्वेष, मान-अपमान, हार-जीत, वैर-विरोध सभी की असारता दिखाकर 'कान्ता-सम्मित उपदेश' पद्धति पर ही अपने उद्देश्य को व्यक्त किया है। मानवता के सच्चे रूप का उद्घाटन करते हुए प्रेम की उच्चता का प्रतिपादन करने में कवि ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। नायक-नायिका की मृत्यु से कथा के अन्त मे दुःख का वातावरण ही स्वाभाविक था परन्तु कवि ने अपने कौशल से उस वातावरण में अपूर्व शान्ति एवं सन्तोष का प्रसार किया है, फलतः कथा का पर्यवासन शान्त रस में हुआ है। शान्त में पर्यवसान के अभाव में कथा एक हल्की प्रेम कथा मात्र रह जाती। जायसी की दृष्टि में प्रेम का स्थान महत्वपूर्ण है। तुलसी के मन में जो स्थान भक्ति-तत्व का था वही स्थान जायसी प्रेम-तत्व को देते है और उसके विस्तार से मानव हृदय का संस्कार एवं परिष्कार कर मनुष्यमात्र में उदारता, त्याग, सहिष्णुता, और भ्रातृत्व का संचार करना चाहते है।' पदमावत' में अनेक स्थानों पर सन्निविष्ट नाथ-सिद्ध सम्प्रदायों से गृहीत प्रतीकों, अलौकिक संकेतों, उपदेशात्मक प्रसंगों तथा सम्प्रदाय विशेष से कवि के सम्बन्ध के कारण इसे आध्यात्मिक काव्य माना जाता है परन्तु यह अत्यन्त स्पष्ट है कि कवि ने अपनी आध्यात्मिकता और मतवाद को पाठकों पर बलात् लादने का प्रयत्न नहीं किया। अपनी बात उन्होंने ऐसी मार्मिक पद्धति से कही है कि उनका उद्देश्य भी सिद्ध हो जाता है और पाठकों को इस बात का पता भी नही चलता कि उनका हृदय-परिवर्तन किया जा रहा है। हृदय परिवर्तन की इस प्रक्रिया में हिन्दू-मुसलमान, सूफी-सिद्ध, योगी-भोगी का भेद समाप्त हो जाता है। सभी इस काव्यामृत का पान कर नश्वर संसार मे प्रेम की अनश्वरता से अभिभूत हो जाते है।

संसार की नश्वरता एवं प्रेम की अनश्वरता का यह संदेश पद्मावती के सती होने की घटना से स्पष्ट होता है अतः 'पदमावत' का महत्कार्य पद्मावती का सती होना है। सम्पूर्ण कथा इसी एक बिन्दु की ओर अग्रसर होती है। लौकिक बाधाओं से तो लौकिक प्राप्ति की रक्षा हो सकती है परन्तु अलौकिक बाधा 'काल' से उसकी रक्षा तभी हो सकती है जबकि मनुष्य के मन में अलौकिक भाव हों। समुद्र के भयंकर झंझावात, स्थानीय दूरी, अलाउद्दीन या देवपाल कोई भी पद्मावती को रतनसेन से पृथक् नहीं कर सका परन्तु काल की अलौकिक शक्ति के आगे मनुष्य असहाय है। जब काल आया तभी वह 'देवपाल' के दुर्भेद्य दुर्ग की ओर चला और जब काल ने अपना चाबुक दिया तो जीव निकल कर चल दिया।[1] ऐसी स्थिति में इस नश्वर संसार मे प्रेम की अलौकिक भावना ही अनश्वर है। अलौकिक प्रेम जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर नही समझता। आग भी उसके लिए शीतल हो जाती है। तभी तो पद्मावती अपूर्व उत्साह के साथ समारोहपूर्वक चिता पर बैठ जाती है।[2]

---

१. काल आइ देखराई साँटी। उठि जिउ चला छाँड़ि कै माँटी॥

—पदमावत, पृ० ७०८

२, पदमावत, पृ० ७१०

थी। इसका महत्व विवाह से कम न था, कवि ने इसे स्पष्ट भी किया है[1] इसी उत्सव एवं अनन्यता के कारण दुख:पूर्ण वातावरण के स्थान पर शान्त वातावरण की सृष्टि होती है। वह भौतिक जगत के बन्धनों से मुक्त होकर प्रिय के साथ निर्बाध मिलन में सफल हो जाती है। वहां उसे न तो झंझावात का भय है, न अलाउद्दीन और का ? न ही गोरा-बादल की सहायता की आवश्यकता है। कथा के नायिका प्रधान होने के कारण महत्कार्य का नायिकाश्रित होना अधिक उपयुक्त भी है।

ससार की असारता में सार तत्व की खोज भारतीय कवि की महत्वपूर्ण समस्या है। इतना समय बीत जाने पर आज भी भारतीय कवि इसी से सत्रस्त हो कर चिन्ता-ग्रस्त है। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' में विजयी युधिष्ठिर को भी यही चिन्ता है। विजयी के हाथ केवल व्यंग्य, पश्चात्ताप एवं दाह ही बचता है।[2] अत:, 'पदमावत' में युद्ध को महत्कार्य नहीं माना जा सकता।

संक्षेप में संसार की नश्वरता के प्रति सजग कर निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख करना इस रचना का उद्देश्य है। भारतीय आचार्यों की दृष्टि से इसे धर्माविरुद्ध काम एवं मोक्ष की प्राप्ति कह सकते है। मानव-मन में निरन्तर संघर्ष करने वाली कुत्सित काम-वृत्ति के उन्नयन द्वारा हृदय-परिवर्तन का यह महान् प्रयत्न है। जायसी का वैराग्य निराशा-जनित नही है, वह शान्ति-प्रद है। जाति एव व्यक्ति के स्वार्थ की कृत्रिम सीमाओं से ऊपर उठकर मानवमात्र के हृदय में औदात्य के उद्‌बोधन का यह महान् सदेश है। कवि का उद्देश्य और उसको अभिव्यक्ति देने वाला कार्य दोनों ही महत्वपूर्ण हैं, महान् हैं।

(ग) चरित्र-चित्रण

'पदमावत' के चरित्रों में आरम्भ से अन्त तक चलने वाले तीन चरित्र हैं। रतनसेन आदर्श प्रेमी है, पद्‌मावती आदर्श प्रेमिका एव नागमती आदर्श पत्नी। महा-काव्य का नायक सामान्य काव्यों के नायकों से महत्वपूर्ण होना चाहिए। नायक का जो उच्च संकल्प भारतीय आलंकारिकों ने निश्चित किया है वह तो **रतनसेन** में नहीं मिल सकता परन्तु उसके अनेक गुण इसमें अवश्य मिल जाते है, रतनसेन न तो राम, युधिष्ठिर या विक्रमादित्य के समान धीरोदात्त ही है और न पश्चिमी नायकों मजनू या फरहाद के समान विक्षिप्त ही। वह यूसफ के समान नायिका के प्रति उपेक्षा भाव पालने वाला सदाचारी भी नही। रतनसेन एकमात्र प्रेमी हैं और इस पंथ में चलने के लिए जितने गुण आवश्यक हैं वे सभी उसमें हैं।

---

१. सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भांवरि दीन्हा॥
एक भँवरि भै जो रे बियाही। अब दोसरि दै गोहन जाही॥

—पदमावत, पृ० ७११

२. सत्य ही तो मुष्टि गत करना जिसे,
चाहता था शत्रुओं के साथ ही।
उड़ गए- वे तत्व, मेरे हाथ में,
व्यंग्य पश्चात्ताप केवल छोड़ कर।

—कुरुक्षेत्र, प्रथम सर्ग

शास्त्रीय दृष्टि से वह न तो धीरोदात्त है और न ही धीरललित। धीरोदात्त नायक के अनेक गुण उसमे विद्यमान है। वह दृढ़ प्रतिज्ञ, त्यागी, विनयी, गम्भीर और स्थिर स्वभाव वाला है। परन्तु लोकमंगल की भावना से युक्त होकर इन गुणों का विकास उसमें नही हो सका। धीरोदात्त नायक का भारतीय आदर्शवाद रतनसेन में विकसित नही हुआ। वह प्रेम-मार्ग का पथिक है और उसके सभी गुण उसी एक संदर्भ में विकसित होते है। अनेक गुणो के साथ-साथ उसमें मानव सुलभ द्रव्य-लोभ, धन का गर्व, उतावली आदि दोष भी है जिनके कारण उसे कष्ट सहन करने पड़ते है। परन्तु इन्ही के कारण उसका व्यक्तित्व नितान्त अपरिचित भी नही रहता।

वह प्रेम के लिए सर्वस्व त्याग कर योगी बनता है, अपने साथियों के कहने पर प्रेम में हिंसा या युद्ध का मार्ग नही अपनाता। उस मार्ग में बलिदान होने मे ही गौरव का अनुभव करता है।[1] परन्तु यह अहिंसा-वृत्ति प्रेम-मार्ग में ही है। अन्यत्र वह युद्ध से नहीं घबराता। अलाउद्दीन का घृणित प्रस्ताव ठुकरा कर उसने युद्ध किया, दुष्ट देवपाल की भी उपेक्षा नही की। उसका हृदय जहाँ प्रेमिका के लिए कुसुमादपि मृदु है वहाँ प्रेममार्ग मे बाधा पहुंचाने वालों के लिए वज्रादपि कठोर भी।

प्रेम के क्षेत्र से बाहिर वह नितान्त असफल प्राणी है। अलाउद्दीन से सन्धि-वार्ता में उसकी अपरिपक्वता स्पष्ट झलकती है। फलत: बदी बन कर अपने राज्य और प्रेमिका को और भी अधिक विपत्ति मे डालता है।

अत: कहा जा सकता है कि रतनसेन आदर्श प्रेमी तो है परन्तु उसके व्यक्तित्व मे असामान्य औदात्त्य नहीं आ सका। जायसी को इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। निरर्थक प्रयास से क्या लाभ ?

पद्मावती आदर्श प्रेमिका है। इसका चरित्र भी विशद रूप से चित्रित किया गया है। वह राजकुमारी है। मायके में स्वच्छन्द विहार, सखियों के साथ क्रीड़ा एवं जल-केलि आदि से उसके चरित्र को महान् भूमिका मैं चित्रित करने का यत्न किया गया है। उसके नखशिख-वर्णन में अलौकिकता का समावेश है परन्तु एक बार नायक की ओर आकर्षित हो जाने पर उसका सम्पूर्ण चाँचल्य एवं अलौकिकता तिरोहित हो जाती है। उसमें पूर्वराग का उदय हो जाता है और नायक के मिलन की उत्कण्ठा उसे प्रतिपल सताती है। इस रूप में वह फारसी मसनवियों की नायिकाओं से नितान्त भिन्न है। उसका यह रूप भारतीय नायिकाओं के ही अनुरूप है। विवाह के पश्चात् वह अपने सौभाग्य से सन्तुष्ट आनन्दमग्न हो जाती है। विवाह के उपरान्त वर्ष भर आनन्दोपभोग के अनन्तर जब नायक लौटने के लिए उद्यत होता है तब और उसके अनन्तर उसके चरित्र में कुछ अन्य विशेषताओं के भी दर्शन होते हैं। उसमें व्यवहार-कुशलता दान-पुण्य उत्साह, और विनय आदि गुणों के साथ-साथ सपत्नी-ईर्ष्या भी देखी जा सकती है। परन्तु इस सम्पूर्ण अवधि में कहीं भी उसका प्रेमिका-रूप तिरोहित नही होता।

---

१. जौ करवत सिर सारे मरत न मोरौं अंग।

—पदमावत, पृ० २३५

नायक के बन्दी बन जाने पर, कुछ क्षणों के लिए अलाउद्दीन की दूती उसे विचलित कर देती है। परन्तु यह प्रभाव क्षणिक ही है। राजमहिषी की मर्यादा की उपेक्षा कर वह गोरा-बादल के घर गई और अपने पति को बन्धन-मुक्त करवाने की प्रार्थना की। अन्त में पति के साथ चिता में जल कर प्रेम की एकनिष्ठता एवं आत्म-सम्मान की रक्षा करती है। देह-विसर्जन के समय भी उसके हृदय में पति-प्रेम का अटूट विश्वास है। इस नश्वर संसार की उपेक्षा कर 'दोनों जग के साथी' इकट्ठे हो जाते है। इसी विश्वास के कारण पति-मृत्यु पर किसी प्रकार का विलाप या चीत्कार सुनने को नहीं मिलता।

नागमती का चित्रण आदर्श पत्नी के रूप में हुआ है। वह रूपगर्विता है, अपने पति के प्रति उसके हृदय में अपार प्रेम है। 'सुए की घटना' से जहाँ उसका गर्व खंडित होता है वहां उसके प्रेम में किंचिन्मात्र भी अन्तर नही आता। वह अपने स्वामी की श्रेष्ठता स्वीकार कर अपने को उसमें मिला देने का संकल्प करती है। इस स्थल पर उसके शब्दों मे पति को परमेश्वर से भी ऊपर मानने की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है—

मैं जाना तुम्ह मोहीं माहाँ। देखौं ताकि तौ हहु सब पाहां॥
का रानी का चेरी कोई। जा कहां मया करहु भलि सोई॥
तुम्ह सों कोई न जीता हारे बररुचि भोज।
पहिलें आपु जो खोवे करै तुम्हारा खोज॥[1]

भारतीय नारी का यह विश्वास युगानुयुग से चला आ रहा है। वह पति के वियोग में अत्यन्त व्याकुल होती है। उसके विरह-निवेदन में उसके उज्ज्वल पातिव्रत्य, और निःस्वार्थ चारित्र्य-गौरव के दर्शन होते है। नारीत्व की सात्त्विक एवं शाश्वत प्रवृत्तियां उसके रूप में साकार हो उठी हैं। पद्मावती जैसी मनचाही अलौकिक सुन्दरी के प्रेम एवं उपभोग मे व्यस्त रतनसेन के लिए भी अधिक देर तक उसकी उपेक्षा संभव नहीं हो सकी। उसने अपनी वियोग-व्यथा से समग्र प्रकृति को प्रभावित कर दिया। पति की मृत्यु के समय उसका आचरण पद्मावती के ही समान है। उस समय जितनी महत्ता पद्मावती के चरित्र मे है उतनी ही नागमती मे भी देखी जा सकती है।

इन तीन प्रधान पात्रों के अतिरिक्त अलाउद्दीन, राघवचेतन, देवपाल, गोरा, बादल आदि और कई पात्र है। इनमें कुछ असत् पक्ष के प्रतिनिधि हैं और कुछ सत् पक्ष के इनके चरित्रों का विकास उसी सीमा तक है जहाँ तक कि ये कथा के प्रधान पात्रों के जीवन को प्रभावित करते है। कवि ने किसी प्रकार के 'साहित्यिक न्याय' के आग्रह से शुभ अथवा अशुभ कर्मों का शुभ अथवा अशुभ फल इन पर थोपने का यत्न नहीं किया। इस पक्ष की ओर कवि ने कोई उत्साह ही नही दिखाया। उसका सम्पूर्ण कौशल प्रधान

---

१. पद्मावत, पृ० ८६

पात्रों को प्रेम-मार्ग की विविध परिस्थितियों में प्रतिष्ठित कर उज्ज्वलता प्रदान करने में ही लक्षित होता है।

(घ) भाव-व्यंजना

प्रबन्धकाव्य मे भावव्यंजना का महत्वपूर्ण स्थान है। शास्त्रीय शब्दावली में इसे रस-योजना कह सकते है।

रस-योजना की दृष्टि से 'पदमावत' में शृंगार का स्थान सर्वोच्च है। वीर, बीभत्स, शाँत आदि अन्य रसों का समावेश भी इसमें पाया जाता है परन्तु जैसा परिपाक शृंगार रस का हुआ है वैसा किसी अन्य रस का नहीं। कवि ने इसके दोनों पक्षों, सयोंग एवं वियोग के चित्र खीचे है। परन्तु उसने सयोग की अपेक्षा वियोग-वर्णन में अधिक रुचि ली है। जायसी का हृदय प्रेम की पीर से परिपूर्ण था और इस पीड़ा को उसने अपने प्रधान पात्रों के द्वारा स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त किया है। इनमें से नागमती का विरह-वर्णन सर्वाधिक मनोहारी है। इस वर्णन में अत्युक्तियाँ तो है परन्तु गम्भीरता एवं सच्ची अनुभूति के कारण वे अलक्षित ही रह जाती हैं। रतनसेन के राजपाट छोड़कर और योगी बन कर चले जाने पर नागमती विरह की आग में सुलगने लगी। उसका विरह उसी तक सीमित नही रहता। सारा जड़-चेतन जगत उसकी विरहाग्नि मे झुलसता दिखाई देता है। पेड़, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, पर्वत, समुद्र सभी को उसकी विरह-वेदना का अनुभव होता है। वह सबसे अपनी व्यथा सुनाती है और अपना हृदय खोलकर रख देती है। भौरे एवं काग से प्रियतम के पास संदेश ले जाने का आग्रह करती है।[1] जायसी ने इस नारी को विरह की उस उच्च भूमि पर लाकर उपस्थित किया है जहां जड़-चेतन सृष्टि में भेद नही होता। सभी उस को अपने दिखाई देते है। उसका रूप-गर्व एवं सौभाग्य का अभिमान समाप्त हो गया। विरह की जलधारा से मन का कलुष धुल गया। एक अद्‌भुद औदात्य आ गया—

यह तन जारौं छार के कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरैं जह पाउ॥[2]

नागमती के विरह-वर्णन में कवि ने अधिकतर विरहताप-जन्य वेदना की ही व्यंजना की है। यह वर्णन अत्यन्त सरस एवं मर्मस्पर्शी है। प्रियतम की सन्तुष्टि ही एक मात्र लक्ष्य बन गई—

जौं पै पियहि जरत अस भावा। जरत परत मोहि रोस न आवा।
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंत थार जेउँ तोरें॥[3]

पदमावती का वियोग विशेष रूप से मायके में तथा रतनसेन के बन्धन के समय व्यंजित होता है इसी प्रकार नख-शिख वर्णन सुनकर शिवमंदिर में तथा समुद्र में झंझावात से पृथक् हो जाने पर रतनसेन का वियोग व्यक्त हुआ है। परन्तु इन दोनों के वियोग-वर्णन

१. पिय सौं कहेहु संदेसरा ऐ भंवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआं हम लाग॥
—पदमावत पृ० ३४६

२-३. वही, पृ० ३५१

कवि ने वैसा 'रस कौंला' नहीं छलकाया जैसा कि नागमती के वियोग में।

रतनसेन पद्मावती को आलम्बन बनाकर तो संयोग शृंगार के चित्र उपस्थित करने में ही कवि ने अधिक रुचि ली है। यह संयोग-वर्णन कई स्थलों पर हुआ है। इनमे सर्वथा उच्छलित वर्णन विवाह के बाद का है। इस प्रसंग में वाक्चातुर्य और मधुर परिहास की अति सुन्दर योजना हुई है। इस परिहास से संयोग के लिये अधिक अनुकूल वातावरण की सृष्टि हो गई है। षड्ऋतु वर्णन भी इसी प्रसंग में हुआ है। जिनका स्वरूप उद्दीपन विभाव का ही है। अन्य स्थलों पर रस की अपेक्षा वर्णन ही प्रधान रहा है। सिहल से लौटने पर नागमती को आलंबन बनाकर भी एक छोटा सा चित्र अंकित किया गया है। इसमें नागमती के मान एवं रतनसेन की मीठी भर्त्सना के द्वारा संयोग शृंगार की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

युद्ध-वर्णन में कवि ने **वीर रस** के कुछ सुन्दर प्रसंग दिए है। इस प्रकार **वत्सल** एवं **शांत रस** की झलक भी मिल जाती है। 'पदमावत' का अन्त **शान्त रस** में होता है। नागमती और पद्मावती के सती होने का सम्पूर्ण प्रसंग शान्त-स्नात है। वहाँ संसार की असारता एवं नश्वरता जन्य निर्वेद स्थायी भाव है। राजा का मृत शरीर एवं चिता उद्दीपन है। दोनों जगत में साथ रहने की प्रतिज्ञा चिता-प्रदक्षिणा और प्रियतम को कण्ठ से लगाना अनुभाव। इस सम्पूर्ण वातावरण मे धृति, गर्व, उत्सुकता, स्मृति प्रभृति संचारी भाव है। इस प्रसंग के अतिरिक्त कथा के बीच बीच में भी कवि ने संसार की नश्वरता असारता आदि की अभिव्यक्ति द्वारा निर्वेद भाव की व्यंजना की है।

इस प्रकार 'पदमावत' में मुख्य मुख्य रसों की अभिव्यक्ति हुई है। परन्तु बहुव्याप्ति के आधार पर शृंगार को ही अंगिरस मानना चाहिए। अन्तिम दृश्य के आधार पर अथवा आध्यात्मिक अर्थ की दृष्टि से इसमें शान्त रस की प्रधानता स्वीकार करना[1] उपयुक्त नहीं है। क्योंकि सम्पूर्ण प्रसंगों में रति स्थायी भाव इतना धनीभूत है कि इसकी लालिमा के समक्ष शान्त की श्वेतिमा टिक नही सकती। कथा मे आध्यात्मिक संकेतों की अपेक्षा लौकिक तत्व अधिक मुखर हैं। कवि ने इस जीवन को 'प्रेम का खेल'[2] ही माना है। परन्तु यह प्रेम शान्तिमूलक है, उद्वेगमूलक नहीं, इसमें सदाचरण है दुराचरण नहीं, यह धर्मोज्जवल है विलास-पंकिल नही।

(ङ) शैली

महाकाव्य की शैली का प्रमुख गुण उसकी असाधारणता होता है। 'पदमावत'

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४७७

२. (क) मुहम्मद बारि परेम की जेउं भावैं तेउं खेल।
तेलहि फूलहि संग जेऊँ होइ फुलाएल तेल॥

—पदमावत, पृ० ६३

(ख) मुहम्मद खेल पिरेम का घरी कठिन चौगान।

—वही, पृ० ६८३

में शैली की यह असाधारणता विद्यमान है। उसका प्रणयन न तो शास्त्रीय महाकाव्यों के आदर्श पर हुआ है और न फारसी मसनवियों के ही अनुसार। इन दोनों से अधिक यह रचना प्राकृत एवं अपभ्रंश की काव्य-शैली का अनुसरण करती है। उसके स्तुति-खंड में मंगलाचरण की परम्परागत रूढि का निर्वाह किया गया है। संस्कृत के महा-काव्यों के समान सर्ग-विभाजन या फारसी मसनवियों के अनुसार खंड-विभाजन भी इसमें उपलब्ध नहीं होता। कुछ प्रतियों में जो खंड-विभाजन प्राप्त होता है उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध होने के कारण डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने स्वसंपादित संस्करण में उसे स्वीकार नहीं किया। परन्तु, इस प्रकार के किसी लक्षण का अभाव काव्य की महत्ता में बाधक नहीं बन सकता।

'पदमावत' का कथानक, कार्य, चरित्र एवं भाव-व्यंजना सभी में असाधारणता है और इस असाधारणता की रक्षा इसकी असाधारण शैली करती है। 'पदमावत' की शैली की असाधारणता उसके सुन्दर अलंकार-विधान, भव्य भाषा-प्रयोग तथा उत्कृष्ट वर्णनों में है। शैली की उत्कृष्टता के ही कारण रचना के स्वरूप के विषय में अनेक मत मिलते हैं। यह रचना अन्योक्ति है या समासोक्ति, पूरी कथा प्रतीकात्मक है या काव्यरूपक—इस सम्बन्ध में विद्वानों ने विविध मत प्रकट किये हैं। इन मतवादों के मूल में कुछ प्रतियों में उपलब्ध होने वाली वे प्रसिद्ध पंक्तियां हैं जिनमें 'तन को चित्तौड़ और मन को राजा, बुद्धि को पद्मावती' आदि बताया गया है। आज इन पंक्तियों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। वैसे भी पद्मावती को बुद्धि बताना सर्वथा अव्यावहारिक है। प्रेम-मार्ग में बुद्धि का कोई स्थान नहीं हो सकता। परन्तु इस सारे विवाद के आधार पर जो तथ्य उपलब्ध होते हैं, उनके अनुसार जायसी के 'पदमावत' में डॉ० शंभूनाथसिंह ने चार प्रकार की अभिव्यक्तियों का विवेचन किया है[1]—

१. अन्योक्तिमूलक अभिव्यक्ति, जिसमें प्रस्तुत महत्त्वहीन है, अप्रस्तुत आध्यात्मिक अर्थ ही कवि को अभिप्रेत है।

२. समासोक्तिमूलक अभिव्यक्तियां, जिनमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का वर्णन कवि को अभिप्रेत है।

३. केवल लौकिक पक्ष का अभिधामूलक वर्णन, जिसमें कोई दूसरा अर्थ नहीं।

४. केवल आध्यात्मिक पक्ष का अभिधामूलक वर्णन जिसकी प्रस्तुत कथा के प्रसंग में कोई उपयोगिता या अर्थ नहीं है।

इन चारों प्रकार की अभिव्यक्तियों में दूसरे प्रकार अर्थात् समासोक्तिमूलक अभिव्यक्ति के प्रति कवि अधिक प्रयत्नशील रहा है। उसने आरंभ में ही इसका संकेत भी किया है—

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४७२

कवि बिआस रस कौंला पूरी। दूरिहि निग्रर निग्रर भा दूरी ।।
निअर हि दूरि फूल सँग काँटा। दूरी जो निग्ररै जस गुर चाँटा ।।[1]

यह वह रस है जिसके माधुर्य का नहीं, सुगंध का आस्वादन किया जाता है, भ्रमर आता तो है रस लेने के लिए परन्तु उसकी तृप्ति 'वास' के ग्रहण से ही हो जाती है—

भंवर आइ बनखंड हुति लेहि कँवल के वास।[2]

कवि एक साथ दोनों संकेत कर अन्त में उद्देश्य को प्रकट करता है। सारी कथा को द्वयर्थक या प्रतीक बनाना तो उसके उद्देश्य की पूर्ति में बाधक हो जाता है। इसमें कोई भी पात्र सम्पूर्ण कथा-भाग में प्रतीकात्मकता का निर्वाह नहीं करता। इसमें एक प्रेमकथा का वर्णन ऐसी चमत्कारपूर्ण शैली में किया गया है कि किसी को उसमें समासोक्ति का आभास होता है और किसी को अन्योक्ति का परन्तु समग्रतः न तो यह समासोक्ति ही है और न अन्योक्ति ही, यह एक प्रेमकथा है। स्थल विशेष में इस प्रकार के संकेत हैं, जिनके द्वारा कवि के कौशल एवं अद्‌भुत वर्णन-शक्ति का परिचय मिलता है।

'पदमावत' में साहसिक कार्यों एवं अलौकिक तत्त्वों के समावेश से शैली में रोमांचक अंश आ गए हैं। इस प्रकार के अंशों से नायक के महत्त्व का प्रतिपादन तो हुआ ही है साथ ही साथ पाठकों की कौतुहल-भावना भी आद्योपान्त बनी रही है। शुक की 'गुरु-रूप' में कल्पना जायसी की अपनी सूझ है जो सदेश कहने वाले सुए की रूढ़ि का विकास है, किसी मतवाद का आग्रह नही। वह केवल नायक का ही मार्ग-दर्शक नही नायिका का भी पथ-प्रदर्शक है। पद्‌मावती उससे प्रार्थना करती है—

पदुमावती उठि टेकै पाया। तुम्ह हुंत होइ प्रीतम कै छाया ।।
कहत लाज औरहे न जीऊ। एक दिसि आगि दोसर दिसि सीऊ ।।

× × ×

घट महँ निकट बिकट भा मेरू। मिलेहुं न मिलै परा तस फेरू ।।

× × ×

दमनहि नल जस हँस मेरावा। तुम्ह हीरामनि नाउँ कहावा ।।
मूरि संजीवनि दूरि इमि सालै सकती बान।
प्रान मुकुत अब होत हैं, बेगि देखावहु भान ।।[3]

'पदमावत' की रचना अपभ्रंश-काव्यों की कड़-वकबद्ध शैली में हुई है। इसमें छंदों के लक्षणों का अनेक बार उल्लंघन हुआ है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता उस युग के सभी कवियों में उपलब्ध होती है। जायसी ने सात अर्द्धालियों के अनन्तर दोहे का प्रयोग किया है, जोकि जायसी की निजी शैली है। जायसी से पूर्व उपलब्ध होने वाले

१-२. पदमावत, पृ० २४
३. वही, पृ० २४३

'चंदायन' एवं 'मृगावती' नामक प्रेमाख्यानों में पाँच अर्द्धालियों के बाद घत्ते की योजना है।

भाषा-वैभव की दृष्टि से 'पदमावत' अति उच्च कोटि का काव्य है। इस सम्बन्ध में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का यह मत उद्धरणीय है— "कवि की तत्कालीन लोक-जीवन, साहित्य और संस्कृति के उदार अन्तराल में भरे हुए शब्दों तक अव्याहत गति है। समकालीन संस्कृति के नाम और रूपों का उसे सूक्ष्म परिचय है।"[1] इस विषय में डॉ० दर्शनलाल सेठी ने विस्तृत अध्ययन एवं विवेचन के आधार पर जो निष्कर्ष निकाला है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

'इस प्रकार जायसी का भाषा-शिल्प, भाषा वैज्ञानिक तथा काव्यशास्त्रीय दोनों दृष्टियों से अत्यधिक समर्थ एवं सौदर्यपूर्ण है। इसमें शिल्प के परम्परागत तथा मौलिक प्रसाधनों के सजीव एवं सुष्ठु प्रयोग हुए है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से चित्रात्मकता तथा सूक्ष्म ऐन्द्रिय बोध जायसी के भाषा-शिल्प की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है।'[2] उन्होंने इसमें वक्रोक्ति के सभी भेदों को सिद्ध किया है। शब्द-शक्तियों और अलंकारों के सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य हैं। जान-बूझ कर अलंकार-प्रदर्शन की चेष्टा जायसी में अधिक नहीं है। "वे अलंकार को अलंकार ही मानते थे, अलंकार्य नहीं।"[3]

शैली को औदात्त्य प्रदान करने में वर्णन-शिल्प का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इन वर्णनों के औदात्त्य के कारण वह सामान्य कथाओं से भिन्न कोटि का काव्य बनता है। 'पदमावत' में कवि की अद्भुत वर्णन-शक्ति के दर्शन होते हैं। सिंहल द्वीप-वर्णन, मानसरोदक जल-क्रीड़ा-वर्णन, यात्रा-वर्णन, समुद्र-वर्णन, दुर्ग-वर्णन, विवाह-वर्णन, भोज-वर्णन, नखशिख-वर्णन, युद्ध-वर्णन सर्वत्र कवि की अद्भुत कल्पना एवं वर्णन-सामर्थ्य का परिचय मिलता है। इन वर्णनों के द्वारा कवि ने अपने समय के समाज के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की स्पष्ट झांकी प्रस्तुत की है। कवि ने उदात्त एवं अत्युक्ति अलकारों के प्रयोग से अपनी रचना में ऐसा चाकचक्य भर दिया है कि स्थान-स्थान पर श्रद्धालु अलौकिकता एवं दार्शनिकता के दर्शन करने लगते हैं।[4] परन्तु अधिकांश में इस रचना में लौकिक पक्ष ही प्रधान है।

जायसी के काव्य-शिल्प के अनेकविध अध्ययन हो चुके हैं[5] और उनके आधार पर जायसी की काव्य-शक्ति का वास्तविक परिचय मिल रहा है।

१. पदमावत, प्राक्कथन, पृ० ६

२. जायसी का काव्य शिल्प, पृ० ३८६

३. जायसी का पदमावत : काव्य और दर्शन, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४६१

४. इस सम्बन्ध में डॉ० जयदेव ने बिहारी के प्रसिद्ध दोहो 'पत्राही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास, को उद्धृत कर यह स्पष्ट किया है कि ऐसे प्रसंगों के मूल में कवि का अत्युक्ति एवं हेतूत्प्रेक्षा के प्रति आकर्षण ही अवस्थित है।

—सूफी महाकवि जायसी, पृ० १००

५. उदाहरणार्थ 'जायसी की बिम्ब योजना' (सुधा सक्सेना), जायसी की भाषा (प्रभाकर शुक्ल), जायसी का काव्य शिल्प (दर्शनलाल सेठी), जायसी साहित्य में अप्रस्तुत योजना (विद्याधर)

अत: काव्यशैली की दृष्टि से 'पदमावत' एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है। निस्संदेह उसे 'अलंकृत महाकाव्य'[1] मानने में शैली का चमत्कार मुख्य है। साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से अथवा लोकप्रियता को दृष्टि से मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में 'रामचरित-मानस' के बाद उसी का स्थान है।

हीर वारिस

(क) कथानक

आधार—महाकाव्य का कथानक वैसे तो कल्पित, ऐतिहासिक या मिश्रित कोटि का हो सकता है परन्तु जनरुचि के साथ वास्तविक सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से लोकप्रसिद्ध या मिश्रित कथानक अधिक उपयोगी होता है। 'हीर वारिस' की कथा भी मिश्र कोटि की है। आज से कुछ वर्ष पूर्व ऐसा समझा जाता था कि हीर संभवत: हीरोइन का सक्षिप्त रूप हो और यह कथा 'हीरो एण्ड लिआंडर' नामक यूनानी कथा के अनुसरण पर गढ़ ली गई होगी।[2] परन्तु उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार यह मन्तव्य कपोलकल्पित सिद्ध हो चुका है। हीर कथा के ऐतिहासिक आधार पर डॉ० जीतसिह सीतल ने सविस्तार विचार किया है और भिन्न-भिन्न प्रमाणों[3] के आधार पर इस प्रेमी-युगल की ऐतिहासिक स्थिति सिद्ध कर दी है। अपने विस्तृत विवेचन का सार उन्होने इन शब्दों में दिया है—

१. घटना पंद्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध की है।
२. घटना-स्थल चूचकाना है, झंग नहीं। (क्योंकि झंग तब तक बसा नही था।)
३. चूचक (हीर का पिता) १४६२ ई० के लगभग स्वर्गवासी हुआ।
४. झग का पुराना नगर मल्लखां ने १४६२ ई० में बसाया। मल्लखां चूचक का भतीजा था।
५. सियाल राजपूत थे और इनका सम्बन्ध राज्य-वंश से था जबकि रांझे जमींदार थे। हीर औ रांझे के संयोग मे यह जातीय प्रश्न एक बहुत बड़ी बाधा थी।

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४७८
२. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, डॉ० गोपालसिह दरदी, पृ० १५६ एवं सुरिन्दरसिंह कोहली, पृ० २८४
३. (क) रिवाइज़्ड सैटलमेंट रिपोर्ट ऑव् झंग डिस्ट्रिक्क, मांकटन, १८७४-८०
(ख) नूरमुहम्मद चेला कृत तारीख झंग सियाल (फारसी)
(ग) तारिखे फरिश्ता
(घ) गुरु शब्दरत्नाकर महान् कोश, कान्हसिंह।
(ङ) सैटलमेंट रिपोर्ट ऑव् मुज़फ्फर गढ डिस्ट्रिक्ट १८७९-८०
(च) ग्लासरी ऑव् दि ट्राइब्ज एण्ड कास्टस् ऑव् पंजाब एण्ड एन. डबल्यू. एफ. पी. भाग २ आदि।

६. हीर की मृत्यु १४५१-५२ या १४५२-५४ ई० में हुई।

७. हीर और रांझे की घटना सैयदों एवं लोधियो के राज्य-काल में हुई।

८. मुअजज्जदीन, अबुलफतह मुबारकशाह (१४१२-३३) ही अबुलफतह था जोकि सैयद वंश के पूर्वज खिजरखां का पुत्र था।

९. चूचक एवं मौजू (मुअजजदीन) अपने-अपने परगनो के शासक थे।

१०. हीर का मकबरा सोलहवी शती के मध्य तक बन चुका था।

११. लछमनदास बालगुदाई उस समप बालनाथ के टिल्ले का योगी गुरु था। रांझे ने इसी से योग दीक्षा ली थी। वह पद्रहवी शती के उत्तरार्द्ध में भी जीवित था। उसने गुरुनानक साहब से अपने स्थान पर ही भेंट की थी।[1]

सियालों के पूर्वपुरुष परमारवंशी थे। शत्रुओं के व्यवहार से दुखी होकर १२३० ई० के आसपास धारा नगर छोड़कर, वे पंजाब में आ बसे। राय सियाल से सातवीं पीढ़ी मे हीर के पिता चूचक का जन्म हुआ। इसी समय के आसपास इन लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया। हीर की माता का नाम कुंदी (कुन्ती ?) था। जब हीर युवती हुई तो उसका प्रेम धीदो से हो गया जोकि उसके पिता का सामान्य सेवक था यह प्रेम अति शीघ्र लोकापवाद का विषय बन गया। इस अपवाद के कारण हीर का सम्बन्ध किसी उच्च कुल में न किया जा सका। अन्त में चूचक ने तंग आकर 'खेड़ा' जाति में उसका वाग्दान कर दिया। हीर का पति कुरूप, क्षीणकाय और एकाक्षी था अतः हीर उसके साथ न रही और कुछ समय पश्चात् रांझे के साथ निकल गई। खेड़ा सरदारों ने दोनों को मार्ग मे पकड़ लिया परन्तु जब राजा अदली ने रांझे के पक्ष में निर्णय दिया तो हीर पितृ-कुल में आई। चूचक ने रांझे को तो यह कहकर तख्त हज़ारा भेज दिया कि वहां से बारात सजाकर आओ और पीछे से हीर को जहर देकर समाप्त कर दिया। हीर की मृत्यु की बात सुनकर वियोग के कारण रांझा भी मर गया।[2]

हीर और राँझे की इस ऐतिहासिक कथा को सज्जनाश्रय भी बहुत अधिक प्राप्त हुआ। वास्तविक घटना के लगभग सौ साल बाद ही यह कथा साहित्यिकों एवं सूफी फकीरों के लिए शाद्वल बन गई। इसको आधार बनाकर लिखी गई एक अरबी रचना का भी उल्लेख मिलता है, अभी तक यह रचना अप्राप्य ही है।[3] परन्तु उसके बाद १५७५-७९ ई० के आसपास फारसी में मौलाना बाकी कोलाबी रचित 'मसनवी हीर' उपलब्ध हो चुकी है।[4] जिस प्रकार दमोदर ने कथा की घटनाओं को आंखों देखने का

१. हीर वारिस भूमिका, पृ० ५३

२. मौलवी नूर अहमद चेला तारीखे झंग सियाल, पृ० १३-१४

—'हीर वारिस भूमिका' से उद्धृत

३. हीर वारिस, सम्पादक डॉ० मोहनसिंह, पृ० ३८-३९

४. पंजाबी दुनिया, जनवरी-फरवरी १९६४, पृ० ३०५

दावा किया है उसी प्रकार सईदसईद्दी ने (स्थिति १६२८-१६५८ई०) अपने काव्य 'अफ़साना दिलपज़ीर' (फ़ारसी) में इस कथा को सर्वप्रथम काव्यबद्ध करने का दावा किया है। उसने यह भी कहा है कि उसी के प्रयत्नों के फलस्वरूप यह कथा प्रसिद्ध हुई है। रात-दिन लगा कर उसने छः मास मे इसे समाप्त किया।[1] इनके अतिरिक्त वारिस से पहले फारसी,पंजाबी एवं हिन्दी में रची गई अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती है।[2]

इस प्रकार हीर-कथा वारिस से पूर्व पजाबी साहित्य-गगन में पूर्ण चन्द्र की भाँति चमक रही थी। तभी तो वारिस को इस कथा के पुनराख्यान के लिए अनुपम काव्य शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। ग्रंथ के आरम्भ मे उन्होंने इसका सकेत करते हुए लिखा है कि मैंने मन मे पूर्ण योजना बनाकर ऐसा कार्य किया है जैसा फरहाद ने पहाड़ को तोड़कर नहर लाने में किया था। मैंने सभी कुछ चुनकर ऐसा सौदर्य उपस्थित किया है मानों गुलाब का इतर निचोड़ दिया हो।[3]

साहित्यिक स्तर पर ही नही, धार्मिक स्तर पर भी वारिस के समय तक हीर राँझे की कथा पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुकी थी। पंजाबी साहित्य के कबीर शाह हुसैन (१५३८-१५९९ ई०) की कविता मे हीर, राँझा, खेड़ा, सियाल, तख्त हजारा सभी का प्रतिकात्मक प्रयोग मिलता है। बुल्हेशाह (१६८०-१७५२ ई०) ने भी हीर कथानक को ईश्वरीय प्रेम के प्रतीक रूप में स्वीकार किया है। मुसलमान ही नहीं हिन्दू कवियों एवं महात्माओं ने भी उनके प्रेम को अलौकिक एवं पूज्य माना है। भाई गुरदास, (१५५८-१६३७ई०)की सत्ताईसवी वार में इस प्रेमी युगल के यश को अगीकार किया गया है। पुनः गुरु गोविन्दसिह ने हीर-राँझे को मेनका एवं इन्द्र का अवतार कहा है। वास्तव में यह कथा पंजाब के लोक-जीवन की अत्यधिक प्रिय कथा है। उस युग में और बाद में भी इस कथा को अनेक कवियों ने अपनाया। इसमें विशेषता लाने के लिए कवि को अत्यन्त परिश्रम करने की आवश्यकता है—कवि वारिस को इस तथ्य का ज्ञान था। इसमें सन्देह नहीं कि वारिस ने अपने से पहले कवियों द्वारा रचित हीर-काव्य का भली भाँति अध्ययन किया था। आलोचकों ने हीर वारिस, हीर मुकबल, हीर अहमद मे अनेक समान पद्यों को उद्धृत कर इसे प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है।[4] वारिस पर किस-किस का प्रभाव है उस विषय में कोई निर्णय लेना

---

१. पंजाबी किस्से फारसी ज़बान में, डॉ० मुहम्मद बाक़र, पृ० ८२

२. डॉ० बाकर की उपरि उद्धृत रचना मे मीर मुहम्मद मुराद लाइक, मीता चनाबी, फकीर उल्ला आफ़ीन, अहमदयार खां यक्ता, मुंशी सुन्दरदास आराम रचित हीर-रांझा पर आधृत फारसी कृतियों का विवेचन है। ये सभी रचनाएं १७७१ हि० से पूर्व की है। हिन्दी एवं पंजाबी की रचनाओं का परिचय इसी प्रबन्ध के 'सामग्री सर्वेक्षण' अध्याय में दिया गया है।

३. हीर वारिस, पृ० २

४. हीर वारिस, जाग-पछाग, पृष्ठ ञ से ण।
हीर रांझा (मुकबल), पृ० १२२-२८
हीर अहमद, पृ० १३४-३८

हमारे क्षेत्र से बाहर है। यहां केवल इतना स्वीकार्य है कि वारिस ने जो कथा ग्रहण की वह एक विकासशील लोक-गाथा का रूप ग्रहण कर चुकी थी। ये मुसलमान कवि दमोदर की कथा से परिचित नहीं थे, इस बात को स्वीकार करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि हामद ने अपनी रचना 'हीर' (१८०४ई०) में गुरदास की हीर (१७०३ई०) का उल्लेख किया है और गुरदास की रचना (व्रजभाषा) में दमोदर की अनुकृति की बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है।[1]

परन्तु यह निर्विवाद है कि दमोदर की कथा को इन कवियों ने स्वीकार नहीं और इन्होंने कथा का विकास अपने ही ढंग से किया है।

विश्लेषण - शास्त्रीय दृष्टि से फलागम के प्रति भिन्न धारणा होने के कारण वारिस की रचना में पाँच संधियों अर्थ-प्रकृतियों एवं कार्यावस्थाओं को ढूंढ़ना व्यर्थ है। पश्चिमी ढंग की कार्यान्विति की दृष्टि से भी यह कथा निर्दोष नहीं कही जा सकती। अरस्तू के अनुसार कथानक एक शृंखलित और जीवंत समन्वित इकाई के समान होना चाहिए। इसके लिए घटनाओं का चुनाव एवं संयोजन कलात्मक होना चाहिए। प्रत्येक घटना अगली घटना के कारण रूप मे दिखाई पड़नी चाहिए। परन्तु वारिस की हीर में इस प्रकार का कलात्मक संयोजन दिखाई नही देता। उसमे कई घटनाएं ऐसी है जिनका मुख्य कथानक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए मुल्ला के साथ मस्जिद में लंबा-चौड़ा वादविवाद, योगी बनकर रंगपुर आते समय मार्ग मे एक चरवाहे से मिलना, दूध दोहते समय एक गौ का राँझे को देखकर उछलना तथा उसके स्वामी के साथ लम्बा विवाद और हाथापाई सहती के साथ तर्क-वितर्क और मार-पिटाई आदि सभी ऐसी घटनाएँ है जिनके कारण काव्य का आयाम तो अत्यन्त विस्तृत हो गया परन्तु कथानक की भावी घटनाओ पर उनका कोई प्रभाव नही पड़ा। वारिस कही भी दो व्यक्तियों को देख उनके मध्य विवाद के लोभ का संवरण नही कर सकता। इस विवाद में जनसामान्य एवं सामयिक परिस्थितियों पर तो व्यंग्यात्मक टिप्पणियां होती है परन्तु प्रबंध में सम्बन्ध-निर्वाह की दृष्टि से वह किंचित् भी उपयोगी नही होती। अरस्तू के अनुसार कथा में आदि, मध्य एवं अन्त का समानुपातिक विभाजन होना चाहिए। यहाँ वह भी नहीं है। कथा की मुख्य घटनाएं तीन स्थानों पर घटित होती है। तख्तहज़ारा, चूचकाना या झंग एवं रंगपुर। तखत-हज़ारा नायक का जन्म तथा मरण का स्थान है। कथा वही से आरम्भ होती है और वहीं समाप्त भी होता है परन्तु उस स्थान से हमारा सम्पर्क नौ पृष्ठों[2] से अधिक नहीं ठहरता। झंग नायिका का जन्म एवं मरण का स्थान है। नायक एवं नायिका के प्रेम का आरंभ वही पर होता है और वही पर वह पुष्ट भी होता है। परन्तु इस स्थान से

१. करौ कथा जो पाछे सुनी। जिउं बरनी दामोदर गुनी॥

—कथा हीर रांझनि की, पृ० ३८

२. यह पृष्ठ संख्या भाषा-विभाग द्वारा मुद्रित संस्करण के अनुसार है।

भी पाठक का सम्बन्ध चौसठ पृष्ठों तक ही है। रंगपुर में हीर की ससुराल है इसके साथ पाठक का सम्बन्ध लगभग सौ पृष्ठों तक रहता है। परन्तु यहां अधिक समय व्यर्थ के वादविवाद में ही व्यतीत होता है। कथानक में कोई विशेष मोड नहीं। अतः रचना में स्वाभाविक विकास के दर्शन नहीं होते। नायिका एव नायक के प्रथम दर्शन तक कथा का 'आरम्भ' और नायिका के विवाह के उपरान्त दोनों का वियोग मध्य मान लिया जाए तो भी कथा का विभाजन स्वाभाविक नहीं बनता क्योंकि इस प्रकार से आदि भाग सम्पूर्ण कथानक का आठवाँ अंश, मध्य भाग लगभग पांचवाँ अंश एवं अन्तिम भाग कुल कथानक का दो तिहाई के लगभग है। अतः किसी भी दृष्टि से रचना में कथा के वर्णन को आनुपातिक नहीं कहा जा सकता।

इस कथा में पाश्चात्य ढंग की पाँचों अवस्थाएं प्रारम्भ, संघर्ष, उत्कर्ष, निगति एवं अवसान भी स्वाभाविक रूप से नियोजित नही हो सकीं। हीर एवं राँझे के प्रथम मिलन तक का कथानक प्रारम्भ है उसके बाद संघर्ष का श्री गणेश हो जाता है। इस संघर्ष का उत्कर्ष (climax) कहाँ है तथा निगति का आरम्भ कहाँ से है यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। हीर के विवाह को इसका उत्कर्ष मानना युक्ति-संगत नही क्योंकि राँझा वहाँ साथ जाता है, यदि राँझे के रंगपुर से प्रस्थान को उत्कर्ष मानकर वहां से निगति का आरंभ मानें तो भी अस्वाभाविक है क्योंकि इसके बाद तो वह पुनः योगी बनकर नये सिरे से संघर्ष प्रारम्भ करता है। संघर्ष की वास्तविक स्थिति तो उसके योगी बनने के बाद ही मानी जानी चाहिए। अदली राजे के काज़ी के निर्णय तक कही भी निगति की स्थिति नहीं है यह संघर्ष अन्तिम समय तब चरमोत्कर्ष को पहुंचता है जबकि राँझा 'आह' मारकर अदली राजे के नगर में आग लगा देता है। विचारा अदली राजा अपने नगर की रक्षा के लिए खेड़ा योद्धाओं को पकड़कर मंगवाता है और वास्तविक स्वामी रांझे को हीर सौंप देता है। यदि इस स्थान पर चरमोत्कर्ष मानें तो निगति एवं अवसान ऐसे अव्यवस्थित हो जाते हैं कि उनको पृथक् नहीं किया जा सकता क्योकि इसके अनन्तर लगभग सौ पंक्तियों में कथा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार भारतीय अथवा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार वारिस के कथानक को सुशृंखलित अथवा समानुपातिक नहीं कहा जा सकता। यह न्यूनता तब और भी खटकती है जब देखते है कि इसमें मात्र एक कथा है। आधिकारिक कथा के साथ किसी प्रकार की गौण कथा अथवा पताका या प्रकरियों की योजना की ओर वारिस ने कोई ध्यान नही दिया। दमोदर ने हीर की निर्भयता एवं स्वैरता-स्वच्छन्दता प्रकट करने के लिए लुड्डन एवं नूरे चंधल की कथा, मार्ग में मस्जिद में मिलने वाली धीवरी और उसकी कन्या का रांझे के रूप से सम्मोहन की कथा द्वारा नायक एवं नायिका के गुणों का जो अन्तर स्पष्ट किया था वह भी वारिस में अदृश्य हो गया। सहती एवं मुराद बलोच के प्रसंग को उपकथा के रूप में अत्यन्त स्वाभाविक रूप से विकसित कर आकर्षक बनाना भी सम्भवतः वारिस को स्वीकार नहीं था।

कथानक की संगठन-सम्बन्धी इन सभी न्यूनताओं को देखते हुए वारिस के पक्ष में एक तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि वारिस के समय तक यह कथा प्रसिद्ध हो चुकी थी और उसमें अधिक छेड़-छाड़ करना वे उचित नही समझते थे । परन्तु इसमें विशेष सत्त्व नही । इस कथा में हेर-फेर होता ही रहा है । दमोदर की कथा सुखान्त थी, अहमद ने उसे दु खान्त बनाया । अहमद के अनन्तर मुकबल ने इसे पुनः सुखान्त बना दिया, जब कि वारिस की कथा दुःखान्त है । गुरु गोविन्दसिह ने तो इसमे एक सक्षिप्त कथान्तर भी जोड़ दिया और कथा को पौराणिक शैली के अनुकूल ढालने का साहस किया । अत, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वारिस की 'हीर' कथानक के संगठन एव विकास-सम्बन्धी दोषों से मुक्त नहीं है ।

अन्य रोमांचक काव्यों के समान इस कथा में भी अलौकिक घटनाओं की योजना है परन्तु वे घटनाएं अन्तिम दृश्य मे ही मुख्य कथा को प्रभावित करती हैं । अन्यत्र कथा को प्रभावपूर्ण मोड़ देने मे इनका योगदान नगण्य है । वारिस ने पांच पीरों के दर्शन हीर के मिलने के उपरान्त करवाए है जोकि अत्यन्त मनोवैज्ञानिक संयोजना है । उसके पश्चात् कठिन समय में रांझा उनका स्मरण भी करता है । कहीं वे सहायक हुए है और कही नही भी । उदाहरण के लिए हीर के विवाह को पीर नही रोकते, सहती अच्छी प्रकार उसकी मार-पिटाई करती है, रांझा पीरों को पुकार-पुकार कर उसे शाप देता है परन्तु उसका कुछ नही बिगड़ा । एक स्थान पर रांझा अपनी अलौकिक शक्ति से थाल मे रखे पांच रुपयों एवं खांड-मलाई से भरे थाल को पाँच पैसो एवं खांड-चावल में परिवर्तित कर देता है । परन्तु इस करामात का कोई विशेष प्रभाव मुख्य कथानक पर पड़ता दिखाई नही देता । यह अलौकिकता न भी होती तो भी सहती हीर के कथनानुसार योगी को मनाने ही गई थी । ऐसी परिस्थिति में इस करामात या अलौकिकता की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । इस अलौकिक घटना के संयोजन के विषय में एक तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि उसी से प्रभावित होकर सहती ने मुराद बलोच का सान्निध्य प्राप्त करने की प्रार्थना की और राँझे ने अलौकिक शक्ति के द्वारा उन दोनों को मिला दिया । उत्तर में उतने ही प्रबल वेग से पूछा जा सकता है कि इस सारी घटना का नायक एवं नायिका के आगामी जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ? क्या इन दोनों के भागने से या मिलने से इनके जीवन में कोई विशेष परिवर्तन हुआ ? और जब यह सब कुछ नहीं हुआ तो यह विस्तार या अलौकिकता व्यर्थ ही है । सर्वथा अनावश्यक है जो इस कथा में सन्निविष्ट एक रूढ़ि का पालन मात्र है ।

कथानक-रूढ़ियों की दृष्टि से यह रचना विशेष समृद्ध नहीं । प्रारम्भ में यूसफ जुलेखा की कथा का कुछ प्रभाव इस पर झलकता है । यूसफ के सामान राँझे के भी आठ भाई हैं, और सबसे छोटा होने के कारण पिता को वह विशेष प्रिय है । परन्तु इस के अनन्तर इस कथा का विस्तार, जो कुछ भी है, वह सर्वत्र स्वतंत्र है । उस

पर न तो फारसी मसनवियों का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है और न भारतीय प्रेमाख्यानों का। कथा-गठन भी दोनों परम्पराओं से भिन्न है। फारसी प्रेम-कथाओं के समान इसमें नायक या नायिका का विषम प्रेम नहीं है, परन्तु दु:खान्त होने के कारण इसे उनसे प्रभावित माना जाता है। इसके विपरीत रांझे का योग-धारण इसे अन्य भारतीय प्रेम-कथाओं की परम्परा मे ले आता है। यह कथा प्रेम को अत्यन्त वास्तविक रूप में पल्लवित करने के कारण ही इतनी प्रसिद्ध हुई और जहाँ तक कथा-गठन का सम्बन्ध है वारिस ने इसमें कोई विशेष योगदान नहीं दिया। इस रचना की लोकप्रियता अवश्य निर्विवाद है परन्तु उसका कारण कथा-संगठन कदापि कदापि नहीं। कथा-संगठन की दृष्टि से वारिस के इस काव्य मे दोष ही अधिक है।

(ख) कार्य उद्देश्य

हीर वारिस का उद्देश्य रचना के बाद एवं अन्त से स्पष्ट हो जाता है। वारिस ने कथा के आदि मे इश्क की महिमा का गायन किया है। उनके अनुसार इश्क ईश्वरीय वरदान है। स्वयं ईश्वर ने भी इश्क किया। ऐसी 'पवित्र वस्तु का वर्णन वारिस के अनुसार पुण्य-कार्य था। अतः उन्होंने अपने मित्रों के आग्रह पर हीर एवं रांझे के इश्क का वर्णन किया है। कथा के अन्त में कवि कहते हैं—

एह रूह कलबूत दा जिकर सारा नाल अकल दे मेल मिलाइआ ई।
अग्गे हीर न किसे कही ऐसी शेअर बहुत मरगूब बणाइआ ई।
वारिसशाह मीआँ लोका सिआणिआं नूं किस्सा जोड़ हुशिआर सुणाइआ ई।[1]

इन पद्यों के अनुसार इस रचना में कवि ने निम्नलिखित उद्देश्य-पूर्ण किए हैं—

१. यह आत्मा एवं शरीर की कथा अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से कही गई है।

२. इसके पद्य अत्यन्त आकर्षक है, पहिले किसी ने इस प्रकार का वर्णन नही किया।

३. कौशलपूर्वक एक कथा की रचना कर बुद्धिमान् व्यक्तियों को सुनाई गई।

इसका अर्थ यह है कि कवि इस रचना में आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता, अद्भुत काव्य-वैभव एवं कुशल संयोजन के लिए प्रयत्नशील था। कथा के आरम्भ में उसने जो प्रतीज्ञा की थी वह भी इसी के अनुसार थी। अपनी इन सिद्धियों की सफलता का अनुमोदन करते हुए अन्त में कवि ने पुनः कुछ पद्य लिखे है।

प्रथम प्राप्ति या सिद्धि कथा की आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता का लाभ ईश्वर की प्रसन्नता है अतः वारिस ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि इस कथा को लिखने वाले, पढ़ने वाले तथा सुनने वालों को मुट्ठी बंद कर पार लगा देना। ताकि इन

---

१. अर्थ—यह आत्मा और शरीर का सम्पूर्ण वर्णन मैने बुद्धिमत्ता पूर्वक किया है। इससे पहले किसी ने इस प्रकार की हीर नहीं कही। मैने बहुत मनोरंजक पद्य बनाए है। वारिसशाह ने बुद्धिमान् लोगों को सुनाने के लिए चतुरतापूर्वक इस किस्से को जोड़ा है।

—हीर वारिस, पृ० २०७

वाक्यों की लज्जा रह जाए। जनता में इसे पढ़ने की रुचि उत्पन्न करना।[1]

दूसरी प्राप्ति कथा के अद्भुत काव्य-वैभव एवं तीसरी कुशल सयोजना की है। कवि को इन दोनों सिद्धियों पर गर्व है। वह कहता है कि मैने सरे बाजार घोड़ा दोड़ाया है, कविगण स्वयं मेरे छन्दों को परखें। देश में युवक-जन इसे प्रसन्नतापूर्वक पढ़ें, मैने सुगन्ध के लिए एक फूल बो दिया है। मैने अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है, इस वर्णन में बसंत का वैभव आ गया है, सारा संसार इसे पढ़कर वाह्-वाह कह रहा है।[2]

कथा के प्रारम्भ में कवि ने जो प्रतिज्ञा की थी या उद्देश्य स्थिर किया था अन्त में उसकी प्राप्ति पर अपूर्व गर्व सन्तोष का भी अनुभव किया है।

इस कथा में महत् कार्य को ढूंढ़ना जटिल कार्य है। ऐसी घटना जिसका नायक एवं नायिका के जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान होने के अतिरिक्त कला की दृष्टि तथा कवि के उद्देश्य की दृष्टि से भी महत्त्व हो महत्कार्य कहला सकती है। इन सब दृष्टियों से इसमे हीर एव रांझे का रहस्यपूर्ण ढंग से भाग जाना ही कथा का महत्कार्य है। शास्त्रीय दृष्टि से इसमें औदात्त्य का अभाव खटकता है और इस प्रकार भागना एक घृणित कार्य भी माना जाता है। परन्तु ये सब बातें यहां इस घटना के महत्त्व को न्यून करने में असमर्थ है। प्रतीक रूप में रांझे एवं हीर का प्रेम ईश्वर एवं व्यक्ति का प्रेम माना जा चुका था अतः दोनों के मिलन में सदाचार के स्तर पर कोई बाधा या गर्हणा नहीं मानी जानी चाहिए। ये हीनताएं लौकिक स्तर से देखने पर ही अखरती है मीराँ का गृह-त्याग भी तो घृणित नहीं माना जाता। कथा के नायक एव नायिका, उभय प्रधान होने के कारण दोनों के जीवन में यह अत्यधिक उत्साहपूर्ण कार्य था जिसके लिए वे विवश हो चुके थे। शुद्ध प्रेम-कथा की दृष्टि से भी नायक-नायिका के एकमत होने पर यह कार्य निन्दित नहीं माना जाना चाहिए। अत्याचार से मुक्ति सभी का जन्मसिद्ध अधिकार माना गया है। इन घटनाओं पर ध्यान देने से पहले उन परिस्थितियों को भी समझ लेना चाहिए जिनमें बलपूर्वक हीर

---

१. बखशी लिखणे वालिआं जुमलिआं नूं पढ़न वालिआं करीं अताइ मीआं।
सुणन वालिआं नूं बखशी रब्ब सच्चा मुट्ठी मीट के देईं लंघाइ मीआं।
रखी शरम हिआउ नूं जुमलिआंदी देईं जौक ते शौक दा चाइ मीआं।
—हीर वारिस, पृ० २०६

२. परख शिअर दी आप कर लैण शाइर, घोड़ा फेरिआ विच्च नखास दे मैं।
पढ़न गभरू देस विच खुशी होके, फुल्ल बीजिआ वासते बास दे मैं।
× × ×
तूल खोल्ह के जिकर बिआन कहिआ, जिहा रंग दे खूब बहार दी सी।
जो कोई पढ़े सो बहुत प्रसन्न होवे, वाह वाह सभ खलक पुकारदी सी।
—वही, पृ० २०८

को काज़ी ने रिश्वत लेकर खेड़े को सौंप दिया था। आचार-कथा के रूप में हीर कथा का महत्त्व न कभी था और न मानना चाहिए। यह घटना या कार्य अगले पृष्ठों में निरूपित कथा के व्यंग्यप्रधान रूप के भी नितान्त अनुकूल है।

हम पीछे संकेत कर आए हैं कि वारिस की रचना की आध्यात्मिकता के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। वास्तव में आध्यात्मिकता हीर कथा का अंग बन गई थी, वह वारिस का गुण नहीं है। क्योंकि हीर और वारिस कालान्तर में एकाकार हो गए, अतः इसे भ्रमवश वारिस का गुण मान लिया जाता है परन्तु बावा बुधसिंह अन्तिम प्रतीकात्मक पंक्तियों को बाद की सूझ बताते हुए लिखते हैं कि इनकी रचना को बुल्हेशाह के काव्य के समान 'इश्क हकीकी' की कविता मानना अनुचित है। उनके अनुसार बुल्हेशाह की काफियों में जिस सच्चे प्रेमास्पद के दर्शन होते हैं वह वारिस में अदृश्य है।[1] इसमें सन्देह नहीं कि वारिस की रचना मे कई स्थानों पर अश्लील पद्यों के कारण आध्यात्मिक रचना की पवित्रता भंग हुई है। यत्र तत्र आध्यात्मिक उपदेश कथा में अवश्य उपलब्ध हो जाते है। परन्तु समग्रतः लौकिक पक्ष अधिक मुखर है। अतः वारिस जैसे महाककवि के काव्य में इन परस्पर विरोधी चित्रों को हल्के ढंग से उपेक्षित नहीं किया जा सकता। इनके मूल में कवि के किसी विशेष उद्देश्य की खोज करने का यत्न किया गया है।

इस उद्देश्य की खोज के लिए हमें रचना में बिखरे हुए संकेतों एवं कथा के अन्त में तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक अव्यवस्था के प्रति कवि की गहरी वेदना का अनुभव करना पड़ेगा। संबंधित वाक्यावली इस प्रकार है—

जदों देस ते जट्ट सरदार आए घरों घरी जां नवीं सरकार होई।
अशराफ खराब कमीण ताजे जमीदार नूं खूब बहार होई।
चोर चौधरी यारनी पाक दामन, भूत मंडली इक दूं चार होई।

× × ×

सारे देस खराब पंजाब विच्चों सानूं वड्डा अफसोस कसूर दा ई।
ऐन्हां गाजिआं करम बहिशत होवे, ते शहीदां नूं वाइदा हूर दा ई।
ऐवें बाहरों शान खराब विचों, अते ढोल सुहावणां दूर दाई।[2]

---

१. प्रेम कहानी, पृ० ३०८

१. अर्थ—जब देश में जाटों का प्रभुत्व हो गया और घर घर में सरकार की स्थापना होने लगी, सज्जनों को दुष्ट एवं कुलीनों को नीच कहा जाने लगा। जमीदारों की मौज हो गई, चोर चौधरी बन बैठे, दुष्टाएं सती कहलाने लगी, दुर्जनों का महत्व और प्रसार बढने लगा—

(ऐस अव्यवस्था में) सम्पूर्ण पंजाब में मुझे कसूर नगर की विशेष चिन्ता है। यद्यपि धर्म-योद्धाओं के भाग्य में स्वर्ग एवं शहीदों के लिए हूरें (अप्सराएं) लिखी हैं परन्तु यहां तो केवल बाहरी शान मात्र है, बीच से सब खोखले हैं। ये तो ढोल के समान दूर से ही सुहावने लगते है।

—हीर वारिस, पृ० २०८

अन्तिम पंक्ति में अपने समय के समाज के दुहरे व्यक्तित्व—बाहरी शान तथा भीतरी खराबी—का जो उल्लेख किया है इसको कवि ने अपनी कविता में स्थान-स्थान पर प्रदर्शित कर अपने समय के समाज एवं धर्म पर प्रहार किया है। इसको अधिक स्पष्ट करने के लिए एक दो उदाहरण देना अनुचित न होगा। कथारभ में नायक के जन्मस्थान तख्तहजारे का चित्र अत्यंत समृद्धिपूर्ण है। वहाँ के लोग सुन्दर जवान एवं धनवान् है मानो स्वर्ग भूमि पर उतर आया हो।[1] वहाँ पर मौजू चौधरी का धनाढ्य परिवार सुखपूर्वक रहता है, भाइयों में उसका आदर सम्मान है।[2] परन्तु, यह दिखावा मात्र है। समीप जाने पर पता चलता है कि उसी चौधरी के पुत्र अपने छोटे भाई से कितने ईर्ष्या दग्ध हैं। वे व्यंग्य-बाणों से उसे सांप के समान डसते है, उनका कोई बस नही चलता अन्यथा उसे गाँव से निकाल दें। वास्तव में इन लोगों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं, केवल एक ही सम्बन्ध है स्वार्थ।[3]

अन्तर्बाह्य का यह भेद तख्तहज़ारे का ही नहीं, उस समय सारे पंजाब का स्वभाव बन चुका था। रांझा घर से निकल कर रात ठहरने के लिए एक मस्जिद के सामने खड़ा होता है। वारिस ने मस्जिद का वर्णन करते समय उसे एक आदर्श एवं पवित्र संस्था बताने में कोई कमी नहीं छोड़ी।[4] परन्तु उस मस्जिद के अन्तस् को जानने के लिए मुल्ला एवं रांझे के विवाद का अध्ययन करना पड़ता है जिसमें वारिस ने अत्यन्त कठोर बनकर उन लोगों को अनावृत किया है जो दीन-अमान के बाह्याडम्बर का निर्वाह करते हुए सभी पापों एवं दुष्कर्मों के अधिष्ठता बने हुए हैं।[5]

राझे का चरित्र कथारंभ के इन भागों में लोगों की वास्तविकता प्रदर्शित करता है, लोगों के मुंह से आडम्बर के घूंघट उतारता है परन्तु हीर से मिलने के उपरान्त वह स्वयं उसी जन-प्रचलित रीति को अपनाता है और स्वयं आडम्बर का घूंघट धारण कर लेता है, कभी चरवाहा बनकर और कभी योगी बन कर। इस नये रूप में वह अपने समाज के आडम्बर को नग्न करने के बजाए उसकी नकल उतारता है। विद्रूप व्यंग्य! स्वांग रचाता है। अब उसके दोषों को निकालने का काम समाज के हाथ मे चला जाता है। कपटी अपने कपटों को भूल कर, दूसरे के कपटों का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है—कितना भयंकर व्यग्य है।[6]

---

१. किहडी सिफत हजारे दी आख सक्कां गोया बहिशत जमीन ते आइआ ई।
—हीर वारिस पृ० ३

२. भली भाईयां विच परतीत ओहदी बखिआं चौधरी ते सरदार आहा।
—वही, पृ० ३

३. कोई वस न चलनै कढ़ छड्डण दैंदे मिहणे रंग बरंग दे नी।
वारिस शाह इह गरज़ है बहुत पिआरी होर साक, ते सैन ना अंग दे नी।
—वही, पृ० ३

४-५. हीर वारिस पृ० ६, १०-११

६. विस्तार के लिए देखें—पंजाबी दुनिया, जनवरी-फरवरी १९६४, में श्री नाज़महुसैन का लेख—'हीर वारिस इक नकल दा रूप'

इस द्वैध व्यक्तित्व का प्रसार व्यक्ति, समाज, धर्म एवं शासन सभी पर है और वारिस ने इन सब पर कठोर व्यंग्य किए हैं। अतः वारिस की 'हीर' के 'कार्य' को किसी एक बिन्दु तक सीमित नहीं किया जा सकता । उसने हीर-लेखन मे अनेक उद्देश्यों को सामने रखा और यथाशक्ति सभी को प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की—

१. अपनी धार्मिक मान्यताओं के अनुसार इश्क का यशोगान किया है।
२. युवकों तथा वृद्धों (बुद्धिमानों) के लिए मनोरंजन एवं चिन्तन की सामग्री उपस्थित की।
३. उत्तम कला का प्रदर्शन किया।
४. अपने समीप के व्यक्ति, समाज, धर्म एवं शासन के चरित्र को यथार्थ रूपों में अंकित किया।

अपने विश्वास के अनुसार वह सभी में सफल हुआ। अनेक विद्वानों ने उसकी सिद्धि को स्वीकार किया है।[1]

भारतीय आचार्यो की दृष्टि से विचार करें तो 'हीर वारिस' का उद्देश्य काम-प्राप्ति है। प्रेम-स्वातिन्त्र्य का यह संघर्ष आदिकालीन है। इस अपूर्ण संघर्ष में वारिस ने भी भाग लिया है। यह भावना किसी देश या काल विशेष तक ही सीमित नहीं। इसका सम्बन्ध समग्र मानव जाति से है।

(ग) चरित्र-चित्रण

हीर वारिस के चरित्रों में आरंभ से अन्त तक चलने वाले दो ही चरित्र है—हीर और रांझा।

रांझा -- कथा का नायक है । उसके जन्म से कथा का आरभ होता है और उसकी मृत्यु पर समाप्ति। शास्त्रीय दृष्टि से 'रांझा' महाकाव्य की गरिमा से शून्य है। उसमें आरंभ से ही पलायनवादी प्रकृति के दर्शन होते हैं। पिता की मृत्यु के उपरान्त लाड-प्यार की वह निर्झरी सूख गई जो अब तक निरन्तर मधु-सिंचन द्वारा उसके जीवन को सरस एवं सुखमय बनाए हुए थी। यथार्थ से जूझना उसने सीखा ही नहीं था और न वह कभी सीख ही सका । उससे किसी महान् कार्य की आशा

---

१. (क) आध्यात्मिकता—शेरां वांग मैंदान तौहीद अंदर, वारिस रज्ज के चंगीआं लाइयां नी।
गल्लां रब्ब रसूल दे भेद दीआं, रांझे हीर दे विच्च छिपाइयां नी।
—मुहम्दबख्श

(ख) मनोरंजन—वारिसशाह हसाइआ जग सारा।
—फजलशाह

(ग) काव्य-कौशल—वारिश शाह सुखन दा वारिस निंदे कौण उन्हां नूँ।
शिअर ओहदे ते उंगली धरनी नाही कदर असानूं।
—मुहम्दबख्श

(घ) यथार्थांकन—जो अटकल मजमून बन्हण दी उस सों में नाही काई।
—अहमदयार

नहीं की जा सकती। सौंदर्य के अतिरिक्त उसमें कोई अन्य गुण नही है। वह झगड़ालू स्वभाव का है। उसमें कही भी नम्रता, शालीनता एवं सहिष्णुता जैसे उदात्त गुण नही मिलते। घर में भाइयो भाभियों से, मार्ग में मस्जिद के मुल्ला से, नदी किनारे लुड्डन से, हीर के सुसराल में अयाली, दूध दोहते जाट, सहती एवं सैंदे सभी से वह अकारण झगड़ता है। वह स्त्रैण स्वभाव का है। एक साधारण चरवाहे (अयाली) पर भी अपने महत्त्व की छाप नही डाल सकता। उसकी वीरता का प्रदर्शन स्त्रियों तक ही सीमित है। प्रत्येक सकट के समय वह परमुखापेक्षी है। प्रयत्न करने की इच्छा भी उसमें दिखाई नही देती। यह सच है कि वारिस को यह 'नपुंसक' नायक परम्परा से प्राप्त हुआ था परन्तु उसका काव्य-कौशल भी उसे वाक्चातुर्य के अतिरिक्त कोई अन्य गुण प्रदान न कर सका।

रांझे का व्यक्तित्व अद्भुत विरोधाभासों का संग्रह है। आरंभ में वह 'मुल्ला' को वचन एवं कर्म मे भेद के लिए फटकारता है परन्तु बाद में वह स्वयं धोखे से योग की दीक्षा लेता है और हीर को छल से निकाल ले जाता है। वह निरंतर स्त्रियों की निंदा करता है परन्तु स्वयं स्त्री के लिए मारा-मारा फिरता है। वह नमाज एवं शरह का उपहास करता है परन्तु अन्त में प्रेम को शरह के अनुसार धार्मिक बंधन से युक्त करने में सहमत हो जाता है। उसके अनुसार इश्क का आनंद चोरी अथवा भगाने से नहीं प्राप्त होता परन्तु यथावसर चोरी से हीर को भगा ले जाता है।

उसमें अलौकिक शक्ति अवश्य है। पाँच पीरों का वरद हस्त उसके सिर पर है। उसका कंठ भी मधुर है और वह बांसुरी से बड़ी मोहक धुनें निकालता है। परन्तु न तो वह अलौकिक शक्ति ही उसको प्रेम-मार्ग में कुछ सहायता पहुंचाती है और न सुमधुर कंठ या संगीत-निपुणता। कथा के अन्त में इन अलौकिक शक्तियों के प्रभाव से उसे हीर की प्राप्ति अवश्य होती है परन्तु तब भी वह उसे अपने पास रख नही सका।

हीर के प्रथम मिलन से पूर्व वारिस के नायक में यत्किंचित् स्वतन्त्र विचार-शक्ति दृष्टिगोचर होती है परन्तु प्रथम परिचय के पश्चात् वह उसके इशारों पर नाचने लगता है। वास्तव में जिस सौंदर्य की उसे अभिलाषा थी, वह उसे मिल गया और उसने उस सौंदर्य के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया—

तुसां जेहे माशूक जो होण राजी
मंगू नैणा दी धार विच चारीए नी।
नैणा तेरिआं दे असां चाक होए
जिवें जीओ मंन्नी तिवें सारीए नी॥[1]

---

१ अर्थ—यदि तुम जैसे प्रेमास्पद मान जाएं तो पशु समूह तुम्हारी आँखों की धारा रूपी पर्वत में चराया जा सकता है। हम तो तुम्हारे नेत्रों से घायल हो गए है। उन्ही के चरवाहे बन गए हैं, जैसे चाहो वैसे आज्ञा करो।

हीर वारिस, पृ० २०

और इसके अनन्तर हीर ने जो कुछ कहा उसने स्वीकार किया। इस स्वीकृति में उसने आत्मसम्मान, व्यक्तित्व, आदर्श, धर्म सभी को एक ओर रख दिया।

अतः वारिस का रांझा शास्त्रीय दृष्टि से न तो धीरोदात्त है, न धीरललित, न धीरप्रशान्त और न शठ ही। वह केवल एक प्रेमी है और वह भी अपनी प्रेमिका का वशंवद, इससे अधिक कुछ नहीं।

हीर—'हीरवारिस' की नायिका हीर आदर्श प्रेमिका है। वास्तव में सारी कथा पर वह आकाशवेल के समान छाई हुई है। उसके रूप का एक ही पक्ष है—लौकिक उसमें अलौकिक सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने पर भी वारिस ने उसे ईश्वर या आराध्य का प्रतिरूप नहीं माना। अपने प्रेमी से उसे एकनिष्ठ प्रेम है। रांझे पर उसने ऐसा जादू कर दिया है कि वह सभी कार्य उसकी इच्छानुसार सेवक के समान करता है। धृष्टता एवं उद्दण्डता, जो आरंभ मे उसमे दिखाई देती है, आजीवन बनी रही। धर्म एवं समाज को उसने कभी क्षमा नही किया। जब भी अवसर मिलता वह इन दोनों पर अत्यन्त क्रूर प्रहार करती है। वह किसी के सम्मुख सिर नीचा नही करती। वह 'प्रेम करना' अधिकार समझती है और इस अधिकार की रक्षा के लिए परिवार, समाज, धर्म एवं शासन सभी से जूझती है। इस संघर्ष मे वह अकेली है। उसका प्रेमी तो अशक्त एवं साधनहीन है। अदम्य उत्साह से वह इस पूर्ण संघर्ष में जूझती हुई बलिदान हो जाती है। उसका बलिदान ऐसे विजयी का बलिदान है जो विजयी होकर भी पराजित हो गया। परन्तु उसको पराजित करने वाले स्वयं भी पराजित है। अतः प्रेम की इस कथा में कोई भी विजयी नही हुआ। सर्वत्र पराजय-जन्य निराशा छा जाती है।

विवाह के अनन्तर पति से हीर का व्यवहार सामाजिक सदाचार तथा शास्त्रीय दृष्टि से अभद्र एवं निंदनीय है परन्तु इसके लिए हीर को दोषी नही ठहराया जा सकता। जब धर्म का प्रयोग अधार्मिक कार्यो के लिए किया जाए तब उसका विरोध ही शास्त्र-सम्मत है। हीर के चरित्र में सबसे अधिक खटकने वाली बातें है सुसराल में पहुंचने पर उसका व्यवहार। झंग में सर्वत्र सुनाई देने वाली उसके चरित्र की खनक रंगपुर पहुंचते ही अदृश्य हो जाती है। अब वह राँझे के साथ अपने प्रेम की स्पष्ट घोषणाएं नही करती। सभवतः, उसने कपटी समाज को उसी की भाषा में उत्तर देने का निश्चय कर लिया है।

नायक एवं नायिका दोनों के चरित्र में महाकाव्योचित वे गुण दिखाई नहीं देते जो शास्त्रीय दृष्टि से आवश्यक है। परन्तु, वारिस के इन दोनों चरित्रों का महत्व अन्य दृष्टि से ही आंकना चाहिए। पीछे कहा जा चुका है कि वारिस का नायक अपने समाज का 'व्यग्य-चित्र' है। पहले वह अपने समय के समाज को अनावृत करता है और पीछे उसी के शस्त्र द्वारा उसको पराजित करने का यत्न करता है। उसमें नायिका भी उसकी सहायता करती है। परन्तु, नायिका का चरित्र व्यंग्य या स्वांग नहीं, यथार्थ है और किसी प्रकार की कल्पना से विहीन है। वह अपने युग की

नारी की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो प्रेम-स्वातंत्र्य एवं पुरुषों के समान अधिकारों के लिए संघर्षरत है। इस दृष्टि से ये दोनों चरित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इनके अतिरिक्त लुड्डन, कैदों, हीर के माता-पिता, काज़ी, हीर के सुसर एवं सास के चरित्र तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक अराजकता को स्पष्ट करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ये एक ऐसे समाज के सदस्य हैं जो आर्थिक लाभ को सर्वोच्च स्थान दे देता है। आर्थिक लाभ के अतिरिक्त इस समाज का दूसरा नियम है बल-प्रयोग। जिससे अपना लाभ हो वही नियम ठीक है। झूठ, छल, कपट सभी का प्रयोग उचित है। सहती भी इसी समाज की सदस्या है और स्वार्थ के लिए अपने माता, पिता, भाई और परिवार सब के साथ छल करती है; केवल अपनी वासना-तृप्ति के लिए। उसके प्रेम को कभी भी उच्च कोटि का नही कहा जा सकता क्योंकि उसने एक बार भी उसके लिए मुंह नहीं खोला। वह तो रांझे की अलौकिक शक्ति देखकर बहती गंगा में हाथ धोने का लोभ संवरण न कर सकी।

अतः, वारिस की रचना में चरित्रों का विकास आध्यात्मिक या प्रेम-कथा की अपेक्षा व्यंग्य-प्रधान है। समाज के प्रति अपने आक्रोश को कवि रोक न सका। राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था के प्रति अपने हृदय की पीड़ा को वह संभाल न सका और इन चरित्रों के माध्यम से उसने अत्यन्त निर्ममता से उस समाज का चीर हरण किया है। इस चीर-हरण में वह दुःशासन से कम क्रूर नहीं। उस समाज में द्रौपदी का सदाचार नहीं था, अतः चीर-हरण लीला को रोकने के लिए किसी कृष्ण की आवश्यकता भी नहीं थी।

(घ) भाव-व्यंजना

काव्य के चार प्रमुख तत्वों में भाव का स्थान महत्वपूर्ण है। बाह्य जगत् की संवेदनाओं के कारण हृदय में उठने वाली ऊष्मा को भी कवि सहन नहीं कर पाता तो वह काव्य-निर्माण मे संलग्न होता है। कवि स्वयं जिस भाव से अभिभूत होता है अपने पात्रों एवं पाठकों को उसी से अनुप्राणित कर देता है। यदि वह इस कार्य में सफल है तभी उसका कवि-कर्म सार्थक है।

वारिस ने अपने काव्य के प्रधान 'भाव' के विषय में आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है। उसके अनेक उद्देश्यों में प्रमुख है इश्क की महिमा का वर्णन। अतः 'रति' इस रचना का मुख्य भाव है और शृंगार इसका प्रधान रस। शृंगार के दोनों भेदों का कवि ने स्पर्श किया है, परन्तु उसकी वृत्ति विशेष रूप से वियोग-वर्णन में ही रमी है।

संयोग-वर्णन के लिए कवि के पास पर्याप्त समय एवं स्थान था परन्तु उसका वर्णन उसे अभीष्ट नहीं था, इसके विपरीत वारिस के पाठक संभवतः इसके लिए अधिक इच्छुक रहे हैं। फलतः तत्संबंधी समस्त सामग्री उपस्थित करने के अनन्तर कवि विषयान्तर में प्रवेश कर जाता है। संयोग का सर्वोत्तम वर्णन नायक और नायिका के प्रथम मिलन के समय है। प्रथम दर्शन से पूर्व ही कवि ने दोनों के

नख-शिख का आकर्षक वर्णन कर अपने पाठकों पर उनके अलौकिक सौंदर्य की छाप लगा दी है। अतः दोनों के प्रथम दर्शन और एक दूसरे पर मोहित होने का वर्णन उसकी काव्य-प्रतिभा का निकष बन जाता है। कवि ने इस निकष पर अपने आपको उत्तम सिद्ध किया—

रांझे उठ के आखिआ वाह सजन।
हीर हस्स के ते मिहरबान होई।[1]

इस मेहरबानी का कारण नायक का एकमात्र गुण 'सौन्दर्य' ही है जिसे उसके आकर्षक पहिरावे ने अधिक मोहक बना दिया था—

कछे वझली कन्नां दे विच वाले, जुलफ मुखड़े ते परेशान होई।
सूरत यूसफ दी वेख तैमूस बेटी, सणे मालके बहुत हैरान होई।
नैण मसत कलेजड़े विच्च धाणे, हीर घोल घत्ती कुरबान होई।[2]

इस विवशता एवं सम्मोहन को वह गुप्त न रख सकी। हृदय की आसक्ति वाणी-द्वार से मुखर हो उठी—

भला होइआ मैं तैनूं न मार बैठी, कोई नहीं ऊ गल्ल बेशान होई।[3]

वह प्रथम दर्शन इतना प्रबल था कि रांझा भी अपने आवेश को न छिपा सका और उसने स्वीकार किया कि वह बिना ही छुरी के जिबह हो गया है—

वारिसशाह बिन कारदों जिबह करके बोल नाल जबान रसीलिए नी।[4]

इसके अनन्तर एक दूसरे का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर हीर ने अपनी योजना उसे बता दी और रांझे ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। यहीं पर आजीवन एक दूसरे के हो रहने का प्रण ले लिया और इश्क गुरु के चेले बन गये।

'हीर वारिस' में संयोग-चित्रण का यही अपूर्व दृश्य है। अन्यत्र कवि ने कहीं

---

१. अर्थ—रांझे ने उठ कर कहा, वाह सजन! और हीर हँस कर उस पर रीझ गई।
—हीर वारिस, पृ० १८

२. अर्थ—उसकी कांख में बांसुरी एवं कानों में बालियां थी। उसके मुख पर जुलफें शोभायमान थीं। इस यूसफ के सौन्दर्य को देख कर तैमूस की बेटी सहेलियों सहित आश्चर्यचकित रह गई। उसके नयनों का सौन्दर्य हृदय में समा गया। हीर सुध-बुध खोकर उसी पर बलिदान हो गई।
—हीर वारिस, पृ० १८-१९

३. अर्थ—अच्छा ही हुआ, तुम्हें न मार बैठी और तुम्हारे सम्मान के विरुद्ध कोई बात न हुई।
—हीर वारिस, पृ० १९

४. अर्थ—अरी मोहिनी, मुझे बिना छुरी के घायल कर दिया। अपनी मधुर वाणी से कुछ बोलो।
—हीर वारिस, पृ० १९

भी इसमे रुचि का प्रदर्शन नहीं किया। एक दो स्थानों पर सुरतान्त-चिह्नों का वर्णन है। अभिसार एवं पलायन के चित्र कई बार आए है परन्तु उनमे कही भी मुग्ध करने की शक्ति नही है। सर्वत्र व्यंग्य, क्रोध, तथा भय के सांकर्य द्वारा रस-भंग हुआ है। कुछ स्थलो पर अश्लील कथन भी है परन्तु उनमे रस की अपेक्षा व्यग्य प्रधान है। व्यंग्य के मोह ने सर्वत्र रसास्वाद को कसैला कर दिया है।

वियोग शृंगार के वर्णन में कवि ने अधिक रुचि ली है। शास्त्रीय दृष्टि से तो उसमें पूर्वराग की स्थिति नही है। मान एवं करुण के भी दर्शन नही होते। प्रवास की अवस्था अवश्य है जिसमें कवि ने नायिका एवं नायक दोनों की विरह-दशा का वर्णन किया है। अनुभावो की दृष्टि से उसमें सात्विक एवं आहार्य की अपेक्षा कायिक एवं वाचिक अनुभावों के दर्शन अधिक होते है। विरह दशाओं मे भी सभी का चित्रण नहीं हो सका। उद्वेग, प्रलाप एवं उन्माद के चित्र कम ही मिलते है। कारण यह है कि इस कथा में विरह की अपेक्षा सघर्ष ही प्रधान है। नायक तथा नायिका के सम्मुख एक दूसरे की प्राप्ति की अपेक्षा अपने मिलन को सामाजिक स्वीकृति प्रदान करवाने का विकट प्रश्न था। दोनो ही एक दूसरे को चाहते है, इकट्ठे उठते बैठते है। अतः मिलन की आतुरता, जो कि विरह की तीव्रता का मुख्य आधार है, यहाँ अदृश्य है। उसकी अपेक्षा समाज के प्रति आक्रोश, क्रोध, भर्त्सना तथा परस्पर के अविश्वास ने इन विरह-वर्णनों को ग्रहण लगा दिया है। सघर्ष की प्रमुखता के कारण संघर्ष-प्रधान फारसी मसनवियों की शैली का विरह-वर्णन वारिस में अवश्य मिलता है। उसमें फारसी काव्य-शास्त्र में प्रचलित दशाएं—आहेसरद, रगेजरद, चश्मेतर, इन्तजारी, बेकरारी, बेसब्री, कमखुर्दनी, कमगुफतनी, नीदेहराम स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

शृंगार के अतिरिक्त काव्य मे हास्य, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि एवं निर्वेद भावों की भी व्यजना हुई है परन्तु उनमें रस-परिपाक का यत्न कही दिखाई नही देता। कवि व्यभिचारियों की योजना से ऊपर उठता ही नही। रस-सिद्धि में सर्वत्र कवि के नीति-वाक्य एवं व्यवहार-कथन सम्बन्धी उक्तियाँ बाधक होती हैं। वह न तो स्वयं रस-मग्न होता है और न पाठक को रस-सिक्त करना ही चाहता है। नीतिकार या व्यंग्यकार वारिस सर्वत्र कवि वारिस के व्यक्तित्व को दबा लेता है।

हीर अदली राजा के निर्णय के अनुसार रांझे को मिल गई। उस समय दोनों प्रेमियों को अपनी विजय का उत्साह तथा उल्लास होना चाहिए परन्तु यहाँ यह सब दिखाई नही देता—

लै के चल्लिआ आपणे देस ताईं, चल्ल नढीए रब्ब दिवाईए नीं।
चौधराणीए तखत हजारे दीए, पंजाँ पीराँ ने आण फहाईए नीं।
कढ खेड़िआँ थीं रब्ब दित्तीएं तूं, अते मुलक पहाड़ पहुंचाईएं नीं।
हीर आखिआ ऐंवे जे जाइ वड़सां, रन्नाँ कहिण उधाल ही आईएं नीं।

पेके साहुरे डोबके गालिश्रो नीं, खोहि कोण निवालिआं श्राईए नीं।
वारिसशाह प्रेम दी जड़ी घत्ती, मसतानड़ी चाए बणाईएं नीं।[1]

इन पक्तियों में नायिका भावी जीवन से त्रस्त है और नायक ईश्वर कृपा के अनुरूप प्रति कृतज्ञ। यह स्थिति जन साधारण अनुरूप तो है परन्तु जिन लोगों ने जीवन भर इसके लिए प्रयत्न किया उनके मुख से इस प्रकार के वचन अत्यन्त अस्वाभाविक लगते है। रांझे के हृदय में हर्ष, दैन्य, गर्व नामक संचारी भाव प्रकट होते है, वहाँ हीर में चिन्ता, त्रास, शंका, ग्लानि, व्रीड़ा आदि। ये परस्पर विरोधी संचारी किसी भी रस की सृष्टि में सहायक कैसे हो सकते हैं ?

रचना उद्वेगमूलक है और कवि का वर्ण्य है शृंगार—दोनों परस्पर विरोधी है। अतः रचना मे उत्तम कोटि का रस परिपाक संभव नहीं हो सका। भावो के वर्णन से ही कवि सन्तुष्ट हो गया है।

(ङ) शैली

'हीर वारिस' की रचना मसनवियो की पद्धति की है। उसमें मसनवियों के ढंग पर ईश्वर की स्तुति का वर्णन किया गया है, परन्तु वह अत्यन्त सक्षिप्त है। कवि ने शाहेवक्त की स्तुति नहीं की। सभी प्रकार के अधिकारी वर्ग के प्रति वारिस के हृदय मे वर्तमान अपूर्व आक्रोश ही इसका कारण हो सकता है। स्तुति-खण्ड का अत्यन्त सक्षिप्त होना इस बात का प्रमाण है कि वारिस बाह्याडम्बर के विरोधी थे। डॉ० जीतसिंह सीतल ने अनेक हस्तलिखित प्रतियों के अध्ययन के अनन्तर यह मत स्थापित किया है कि मसनवियों की पद्धति पर इस काव्य मे खंड-विभाजन या शीर्षक देने की परम्परा का भी निर्वाह नही किया गया।[2]

'हीर वारिस' में कथानक, भाव, कार्य एवं चरित्र-चत्रिण सम्बन्धी जो कमियाँ दिखाई देती है उन सबको कवि ने उदात्त शैली के आवरण से ढक दिया है। पिछले डेढ़ सौ वर्षो से 'हीरवारिस' के सम्बन्ध में साहित्यकारों एवं आलोचकों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए हैं। किसी को इसमे सूफी मान्यताओं का भडार दिखाई देता है तो दूसरा इसमें अश्लीलता के दर्शन कर इसे लौकिक काम-कथा कहता है। किसी के लिए इसके चरित्र साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाले आदर्श-प्रिय वीर हैं तो

---

१. अर्थ—रांझा उसे अपने देश की ओर लेकर चला। अरी मुग्धे। चल, ईश्वर ने तुम्हें मेरे हवाले किया है। ऐ तख्त हजारे की स्वामिनी, पांच पीरो ने तुम्हें मुझे प्रदान किया है। ईश्वर ने तुम्हें खेड़ों से निकाल कर मुझे दिया है और इन पर्वतीय प्रदेश में (सकुशल) पहुंचाया है। हीर ने कहा, यदि ऐसे ही गांव में जा पहुँची तो ग्रामीण नारियां 'भगाई गई' कहेंगी। मायके एवं श्वसुरालय को कलंक लग गया है। किस किस के ग्रास चुरा लाई हो। अरी सुन्दरी तू लावां फेरे (अष्टपदी आदि कृत्य) एवं निकाह की क्रिया के बिना ही पुरुष के साथ हो ली।

—हीर वारिस, पृ० २०४

२. हीर वारिस, परवेशिका, पृ० १२

कोई उन्हें यथार्थवाद के पोषक मानता है। एक वर्ग इसे आध्यात्मिक प्रतीक-कथा मानता है तो दूसरा अपने समय की व्यंग्यानुकृति।[1] कोई इसकी भाषा को दोषपूर्ण कहता है तो कोई शुद्ध भाषा का आदर्श मानता है। वास्तव में बारिस का महत्व इसी में है कि उसकी रचना की शैली उसे तुलसी के राम के समान भक्त की रुचि के अनुकूल रूप प्रदान करती है —'जाकी रही भावना जैसी प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी।'

वारिस ने अपनी रचना में हर स्वभाव की आवश्यकता पूर्ति के लिए यत्न किया है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने समाज का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें अपने अन्तः एवं बाह्य के दोषों के प्रति सचेत करना था। आन्तरिक दोषों का उद्घाटन करने के लिए नीति-उपदेश है और बाह्य दोषों को दूर करने के लिए उनकी व्यंग्यानुकृति के साथ-साथ कटु आलोचना भी। उसकी रचना में उसके समाज की हीन अवस्था, उसके प्रति कवि का आक्रोश, धर्म का मनमाना अर्थ लगाने वालों का विरोध, स्वतन्त्रता के लिए पंख फटफटाने वाले असहाय लोगों के प्रयत्न और रजवाड़ाशाही के अन्याय सभी को स्थान मिला है। इन सबके साथ-साथ कवि ने पंजाब के ग्रामीण जीवन को इस प्रकार चित्रित किया कि है अनेक दोषों के रहते हुए भी, काव्य का महत्व दिनों दिन बढ़ता गया। वारिस से पूर्व और पश्चात् लिखी गई हीर रचनाओं को वह लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी जो वारिस की हीर को प्राप्त हुई। वारिस की हीर के मूल पाठ में उत्तरोत्तर होने वाले प्रक्षेपों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि विकासशील महाकाव्यों की अनुकृति पर उसका परिवर्द्धन आरम्भ हो चुका था। उसके मूल रूप में प्राप्त ६१२ बंद एवं ४१२७ बैत[2] बढ़ते-बढ़ते क्रमशः १२०० एवं १२००० की संख्या तक पहुंच गए।[3] आधुनिक आलोचकों ने वैज्ञानिक ढंग पर मूल पाठ के आग्रह की जिज्ञासा उत्पन्न कर इस प्रवृति पर अंकुश लगा दिया है अन्यथा 'अल्ला जाने क्या होता!' वैसे भी ज्ञान के प्रसार एवं औद्योगिक विकास की लहर के कारण आधुनिक युग में इस साहित्य की लोकप्रियता उत्तरोत्तर कम होती जा रही है।

'हीर वारिस' में रोमांचक एवं अलौकिक तत्वों का समावेश किया गया है। परन्तु, उनसे न तो नायक के महत्व में विशेष वृद्धि हुई है और न ही कथानक का कुछ उल्लेखनीय उपकार हुआ है। वास्तव में इस कथा के साथ सम्बद्ध परम्परागत अलौकिकता को कवि अस्वीकार नहीं कर सका। इसमें संदेह नहीं कि अपने पूर्ववर्ती कवियों से वारिस ने उन तत्वों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली एवं संगत रूप में किया है। नायक एवं नायिका के परस्पर आकृष्ट हो जाने के अनन्तर ही पांच पीर कथानक में प्रवेश करते है। जब कि मुकबल एवं अहमद में वे पहले ही आकर उसे हीर की प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं। कवि की योजना इस प्रकार की है कि इन अलौकिक

१. पंजाबी दुनिया, जनवरी-फरवरी १६६४, पृ० २०३-४, ११४

२. हीर वारिस भूमिका, पृ० १०२

३. हीर वारिस, डॉ० जीतसिंह सीतल, परवेशिका, पृ० १३

शक्तियों का नैतिक समर्थन ही नायक-नायिका को प्राप्त होता है। कथानक पर इनका थोड़ा बहुत प्रभाव केवल दो स्थलों पर देखा जा सकता है। पहले सहती के थाल में खांड, मलाई एवं पांच रुपयों को खांड, चावल एवं पांच पैसों में बदल देने पर और दूसरे नायक की आह से अदली राजे के नगर को आग लगने पर। इनमें दूसरा प्रभाव ही महत्वपूर्ण है। परन्तु, यह घटना सभी पूर्ववर्ती कृतियों मे इसी प्रकार है और सच्चे प्रेम की शक्ति प्रदर्शित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी। अत: इस रचना में अलौकिक तत्व किसी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं करते।

'हीर वारिस' की रचना फारसी मसनवियो की पद्धति पर है। इसमें मसनवी के समकक्ष एकमात्र बैत छंद का प्रयोग किया गया है। पंजाबी किस्सा-काव्य में बैत छंद को सबसे पहले अहमद ने प्रयुक्त किया। अहमद में बैत के 'चरणों' की संख्या निश्चित नही थी, मुकबल ने इसे चार चरणों के सममात्रिक छंद के रूप में अपनाया। इसके प्रत्येक चरण में चालीस मात्राएं और बीस पर यति का विधान प्रचलित भी हुआ। प्रत्येक चरण मे अन्त्यानुप्रास आवश्यक बन गया। यह गुण उसे फारसी के मसनवी छंद एवं हिन्दी के चौपाई छंद के समीप ले जाता है। वारिस ने अहमद के अनुसार अपने बेतो में चरणों की संख्या का वर्णन स्वीकार नही किया। प्रसंगानुसार इनकी सख्या चार से बीस तक भी पहुंच जाती है। इन बैतों की सख्या किसी बद में सम या विषम कुछ भी हो सकती है। छंद के विषय में कवि ने न तो मात्राओं की संख्या का बंधन ही स्वीकार किया है और न प्रतिबद पंक्तियों का ही। जब विचारों का वेग तीव्र हो जाता है या वर्णन का विस्तार बढ़ जाता है तो वारिस के बंदों मे तुकों की गणना सीमित नहीं रहती और विचार आगामी बंद में भी उसी प्रकार जारी रहता है। न उनकी बहर में और न वजन में कोई अन्तर आता है। कई बार तो काफिया और रदीफ भी पहले बंद के ही रहते हैं।

भाषा पर वारिस का अधिकार अद्भुत है। उसके प्रबंध की नींव शक्तिशाली भाषा ही है। उसने फारसी और अरबी शब्दों के तद्भव रूप ही प्रयुक्त किये है। उसमें सधुक्कड़ी का अश भी यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाता है। उसके शब्द-निर्माण के विषय में डॉ० सीतल ने कहा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुम्हार की भांति पहले शब्द-मिट्टी को गूंथ लेता है और अपने काव्य-चाक पर चढ़ाकर नये-नये शब्द-पात्रों को बनाता जाता है।[1] वार्त्तालाप-प्रधान रचना होने के कारण 'हीर वारिस' की भाषा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा के अधिक समीप है। उसमे अपूर्व प्रवाह संभवत: इसीलिए है। आज उसके कई वाक्य लोकोक्तियों के रूप मे प्रचलित हो चुके है। भाषा के इसी गुण के कारण कवि मुहम्मदबख्श ने उसे 'सुखन का वारिस' कहा है।

शब्द-शक्तियों एवं अलंकारों के प्रयोग से भाषा मे अद्भुत प्रवाह आ गया है। विषय

१. हीर वारिस भूमिका, पृ० १२२

वारिस रूपक, उपमा, दृष्टान्त और तुल्ययोगिता का अधिक प्रयोग करता है। एक विषय के सम्बन्ध में अनेक दृष्टान्त एव उपमाए देकर उसे विस्तार प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त अन्योक्ति, समासोक्ति, लोकोक्ति एव उल्लेख अलंकार भी कवि को विशेष रूप से प्रिय है। कवि सादृश्यमूलक अलंकारो का ही अधिक प्रयोग करता है। विरोध-मूलक अलकारों के प्रति उसने रुचि नही दिखाई। भाषा की व्यंजना-शक्ति का प्रयोग वारिस ने कम किया है। लक्षणा एव अभिधा को ही उसने अधिक महत्व दिया है। व्यजना का प्रयोग सम्भवतः, उस समय के और आज के भी, पंजाब के पाठकों को अधिक आकृष्ट नही करता, इसलिए कवि ने उसकी ओर रुचि प्रदर्शित नही की।

वर्णन-शिल्प के द्वारा प्रबन्ध-काव्य मे तात्कालिक देशकाल का परिचय मिलता है। इसी के द्वारा काव्य को जातीय आधार प्राप्त होता है। 'हीर-वारिस' मे हमें दृश्य अथवा प्रकृति या नगर आदि के लम्बे-लम्बे वर्णन नही मिलते। परन्तु, वारिस की विशेषता यह है कि स्वतन्त्र रूप से वर्णनो का अभाव होते हुए भी हीर वारिस मे पजाब का ग्रामीण जीवन और संस्कृति अपनी समग्रता के साथ चित्रित हुई है। आलबन-रूप मे प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी पक्तियाँ 'हीर वारिस' में गिनती की है। ।ामाजिक प्रथाओं में भी एक विवाह का ही विस्तृत वर्णन है। वहां भी परिगण-नात्मक शैली के प्रयोग से नीरसता आ गई है। स्त्रियों की जातियों, वस्त्रों, अलकारों अरबी, फारसी की पुस्तकों, चावलों के भेदों, मिठाइयों एवं राग रागनियों के नामों की कई सूचिया वारिस में मिलती है परन्तु किसी भी दृश्य को चित्रित कर मोहित करने में कवि प्रयत्नशील दिखाई नही देता। इतना होने पर भी तत्कालीन पंजाबी जीवन की जो 'वृहद् झांकी' इस काव्य में मिलती है उसका श्रेय कवि की संवादात्मक शैली एवं नीति-कथन को है। भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग परस्पर वार्तालाप के द्वारा जीवन के सामान्यतम कार्य-कलापों एवं मान्यताओं को चित्रित करते है। जो स्पष्ट चित्र उनके कथन से बनते है वे उस समय के भिन्न।भिन्न व्यवसायों और जातियों के स्वभाव, कार्य, मनोरंजन, राजनीतिक एवं धार्मिक विचारों, और साहित्यिक रुचि को स्पष्ट करते चलते है।

रूप-वर्णन में वारिस पर फारसी काव्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उसने नायक एवं नायिका के अतिरिक्त अन्य युवक-युवतियों का भी नखशिख-वर्णन किया है। वह परम्परा-पालन के साथ-साथ पंजाबी पहनावे को भी साकार करता है। उसके नखशिख के आधार पर जो चित्र बनता है वह अलौकिक होता हुआ भी पजाबी ही रहता है।

अतः, कहा जा सकता है कि वारिस का वर्णन-शिल्प अपने ढंग का है। उसमें परम्परा-पालन की इच्छा बहुत कम है। उसमें बारह मासे या षड्ऋतु-वर्णन नहीं। उसमें कामासक्त होकर हाय-तोबा मचाने की प्रवृत्ति नही है। परन्तु, इस सब के अभाव में भी न तो प्रेम का रंग हल्का होता है और न काव्य में देशकाल का चित्र फीका पड़ता है।

'हीर वारिस' की शैली में पात्रों के वार्तालाप के द्वारा अद्‌भुत नाटकीयता आ गई है। कुछ लोगों ने तो अलग-अलग अंकों सम्बन्धी रंगमच संकेत भी इसमें देखे हैं[1]। परन्तु फिर भी यह रचना नाटक की अपेक्षा काव्य के अधिक समीप है। समाज के व्यंग्यानुकरण एवं नाटकीयता के कारण इस रचना की शैली में असाधारणता आ गई है। शैली की इस असाधारणता के कारण ही वारिस की हीर पंजाब में हिन्दू एवं मुसलमानों में समान रूप से प्रिय रही।

पदमावत और हीर वारिस

महाकाव्य के स्थायी तत्वों की दृष्टि से 'हीर वारिस' एवं जायसी के 'पदमावत' की परीक्षा की गई है। दोनों काव्यो के आलोचनात्मक परीक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि कथानक की दृष्टि से जायसी के 'पदमावत' में महाकाव्यापेक्षित अनेक गुण विद्यमान है। उसमें कार्यान्विति एवं सम्बन्ध-निर्वाह सुन्दर है। शास्त्रीय दृष्टि से भी उसमें पचसंधियों एवं कार्यावस्थाओं की योजना अधिक कुशलता से की गई है। वर्णनों के मोह के कारण कहीं-कही उसमें शिथिलता एवं विशृंखलता आ जाती है परन्तु समग्र रूप से कथानक में वह औदात्त्य वर्तमान है जो एक महाकाव्य का प्रथम एवं आवश्यक तत्व है।

'हीर वारिस' का कथानक जायसी के कथानक की तुलना में अत्यन्त शिथिल एवं असम्बद्ध है। उसमें घटनाओं का विकास बुद्धिसंगत नही। कथा में प्रतीकात्मकता का निर्वाह भी आरोपित सा लगता है। उसके कथा-संगठन में न तो कार्यान्विति है न ही सम्बन्ध-निर्वाह। अनावश्यक या गौण घटनाओं का वर्णन अत्यन्त विस्तृत है जबकि आवश्यक घटनाओं को स्पर्श मात्र के अनन्तर छोड़ दिया गया है। फलस्वरूप इस कथा में वह औदात्त्य नहीं आ सका जो महाकाव्य के कथानक का महत्वपूर्ण अंग है।

कार्य अथवा उद्देश्य की दृष्टि से भी दोनों रचनाओं में अन्तर स्पष्ट है। जायसी ने आरम्भ से अन्त तक प्रेम का वर्णन किया है और इस नश्वर ससार में एक मात्र उसी की अनश्वरता को सिद्ध करते हुए प्रेम के महत्व को प्रतिष्ठित किया है। जायसी की रचना में एक अपूर्व उल्लास एवं उत्साह है। वारिस की रचना का वर्ण्य विषय भी वही है। वहां भी प्रेम के महत्व का प्रतिपादन है। अन्त में संसार की नश्वरता / एवं प्रेम की अनश्वरता का संकेत भी है।[2] परन्तु उद्देश्य की भिन्नता अथवा विविधता के कारण रचना के अन्त में कवि उस सन्तोष एवं शान्ति की प्राप्ति नही करवा सका जो एक महाकाव्य के लिए आवश्यक है। महाकाव्य का अन्त आशायुक्त एवं उत्साहवर्द्धक होना चाहिए। परन्तु, वारिस की रचना में शान्ति के स्थान पर उद्वेग और आशा के स्थान पर निराशा है। उसका निर्वेद दुःख-जनित है। एक निराश एवं पराजित व्यक्ति

---

२. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, सुरिन्दरसिंह नरूला, पृ० १६२-६६

१. हीर वारिस, पृ० २०७

का निर्वेद है जिसे कदापि स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं माना जा सकता। उसमें साधारण व्यक्ति की साधारणता का समर्थन मात्र है उसके उन्नयन या प्रोत्साहन का प्रयत्न नहीं।

वारिस की कथा उस अपूर्ण संघर्ष का एक भाग मात्र है जो स्त्री एवं पुरुष के प्रेम स्वातंत्र्य के लिए आदिकाल से किया जा रहा है।

अतः कार्य की दृष्टि से यद्यपि दोनों ही रचनाओं में औदात्य है परन्तु अपनी सम्पूर्णता या सफलता के कारण जायसी की रचना में जो उच्चता है वह अपूर्णता या असफलता के कारण वारिस की रचना में नहीं आ पाई। इसमें संदेह नहीं कि अपने समाज के साथ सशक्त परन्तु असफल विरोध के कारण उसके औदात्य की पूर्णता खंडित हुई है।

चरित्र-सम्बन्धी विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी के चरित्रों का विकास महाकाव्य के आदर्शों के अनुकूल है। व्यक्तिगत दोष होते हुए भी वे चरित्र समग्र विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उसमें रचना के महान् कार्य को बल प्रदान करने की शक्ति है। अनेक पात्रों की भूमिका मुख्य पात्रों के चरित्र सम्बन्धी गुण-दोषों को परखने में सहायक होती है। वारिस की रचना इस दृष्टि से भी शक्ति-हीन है। कवि ने राझे को कमजोर, लड़ाका, क्रोधी, रोषपूर्ण परन्तु सुन्दर चित्रित किया है। हीर के प्रेम के अतिरिक्त उसकी दृष्टि में सभी वस्तुओं का महत्व शून्य से अधिक नहीं। उसका चरित्र अद्भुत विरोधाभासों का समूह बन गया है जिसमें अन्त तक कोई विकास दिखाई नहीं देता। हीर अवश्य स्वस्थ, सुन्दर एकनिष्ठ और दृढ़ चरित्र के रूप में पाठकों के समक्ष आती है परन्तु उसके चरित्र में दूसरे प्रकार की अस्वाभाविकता है। रांझा उसके घर बारह वर्ष तक रहा और राझे से मिलन के समय वह पूर्ण युवती थी ऐसी दशा में तीस वर्ष के वय तक उसका अविवाहित रहना अस्वाभाविक सा लगता है। इस दोष के अतिरिक्त माता पिता एवं काज़ी के साथ उसके लबे-लंबे वार्तालाप उसकी विवाद-शक्ति को तो सूचित करते हैं परन्तु, नारी सुलभ मृदुता, विनय, लज्जा एवं शील उसके चरित्र में कहीं दिखाई नहीं देते। हीर के चरित्र का विकास पुरुष-चरित्र के विकास से मिलता जुलता है। अतः यह कहना उचित है कि इस कथा का वास्तविक 'नायक' हीर है, रांझा नहीं। सम्पूर्ण रचना में एक भी आदर्श पात्र नहीं। वातावरण छल, कपट एवं आडम्बर-पूर्ण है। अतः, नैतिकता एवं सदाचार से शून्य ऐसे पात्रों के द्वारा किसी महान् या उदात्त कार्य की सिद्धि की कल्पना आज भी अस्वाभाविक लगती है। 'पदमावत' के पात्र महाकाव्य के परंपरागत उदात्तगुण से युक्त है परन्तु 'हीर वारिस' के पात्र अपनी स्वच्छता के कारण भिन्न कोटि के हैं। वे आदर्श की अपेक्षा यथार्थ के अधिक निकट हैं।

रस-व्यंजना की दृष्टि से 'पदमावत' में अद्भुत गंभीरता है। वह पाठकों के हृदय को स्थायी रूप से स्पर्श करती है। मार्मिक स्थलों का चुनाव एवं उनका हृदय स्पर्शी वर्णन करने में कवि ने असामान्य काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है परन्तु

वारिस की हीर में न तो मार्मिक स्थलों का विशेष अवकाश ही था और न कवि ने उनके बर्णन में रुचि दिखाई। सर्वत्र संघर्ष की प्रमुखता होने के कारण उनमें भारतीय ढंग की रस निष्पति की अपेक्षा पाश्चात्य नाटकों के ढंग की प्रभावान्विति मिलती है, जिसमें उद्वेग और अशान्तिमूलक तीव्रता और निराश कर देने वाली वेदना है। इसका यह अर्थ नही कि काव्य मे रस-योजना का प्रयत्न नहीं। रस योजना है अवश्य परन्तु, उसमें स्थायी प्रभाव छोड़ने की शक्ति नहीं है। रसमय प्रकरणों में पात्रों के चरित्र की संघर्ष प्रधानता बाधा प्रस्तुत कर देती है। उदाहरणार्थ हीर के विवाह एवं सुसराल जाने के दृश्य लिये जा सकते है।

शैली की दृष्टि से दोनों ही रचनाएं उत्कृष्ट है। शास्त्रीय लक्षणों के पूर्ण निर्वाह के अभाव मे भी इनकी शैली में असाधारणता है। अपनी शैली की सुकुमारता एवं भाषा के प्रयोग-कौशल के कारण दोनों ही काव्य प्रगीतात्मक प्रबन्ध-काव्यों का आभास देते हैं। इनमें ततकालीन समाज के चित्र है और है काव्यास्वाद का माधुर्य।

शैली के औदात्य के कारण 'पदमावत' में अलौकिकता का आभास होने लगता है परन्तु 'हीर वारिस' मे ऐसे औदात्य की सृष्टि नही हो सकी। वारिस में इसकी अपेक्षा अपने समय के व्यक्ति, समाज, धर्म एवं राजतन्त्र के नग्न चित्र हैं जिनमें यथार्थ है। ऐसे स्पष्ट चित्र, व्यग्य एवं नाटकीयता 'वारिस' की शैली के वैशिष्ट्य हैं।

'पदमावत' का महाकाव्यत्व

इस समस्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'पदमावत' अधिकाँशतः परम्परागत महाकाव्य के गुणों से विभूषित है। साहित्यिक प्रतिमानों एव लोकप्रियता की दृष्टि से भी देखा जाए तो भी हिन्दी के अलंकृत महाकाव्यों में 'रामचरितमानस' के बाद 'पदमावत' का ही स्थान है।[1] उसमें शास्त्रीय महाकाव्यों के अनेक नियमों का पालन न होते हुए भी उसकी आत्मा महाकाव्यों के आदर्शों से अनुप्राणित है।

'हीर वारिस' में औदात्य का अभाव—इस दृष्टि से 'हीर वारिस' को महाकाव्य कहना दुस्साहस है। तथाकथित 'उदात्त तत्व' को महाकाव्य का अनिवार्य लक्षण मानने पर यह रचना महाकाव्य की कसौटी पर खरी नही बैठती। इस प्रकार के महाकाव्यों का निर्माण परम्पराओं को स्वीकार करने से होता है। जबकि वारिस की कृति में परम्पराओ का विरोध है, सामंतवादी उच्चादर्शों की उपेक्षा है। परम्पराओं को मोड़ने का ही नही उन्हे तड़ोने का आग्रह है।

'हीर वारिस' की विशेषता--यह सब होते हुए भी इस रचना की लोकप्रियता उसकी अनवरुद्ध जीवनी शक्ति एवं आकार को देखते हुए उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कथानक एवं चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी अनेक दोषों के रहते हुए भी इस रचना

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४७६

को इतना महत्व क्यों प्राप्त है यह विषय अत्यन्त जटिल है। अब पंजाबी के विद्वान् इस ओर सोचने लगे है।

'हीर वारिस' के विशेष लोकप्रिय होने के जो कारण खोजे गए है उनमें से निम्नलिखित[1] उल्लेखनीय है—

१. वारिस का व्यक्तित्व और गुरु-शिष्य परम्परा मे उसका उच्च स्थान।

२. वारिस का मधुर कण्ठ, सुरीली-तरज़, एवं रचना मे गीति-तत्व की आद्यत योजना।

३. संवाद बहुलता और संवादों मे उत्तर प्रत्युत्तर का वह कौशल जिसमें लोक मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर व्यक्ति एव समाज पर व्यंग्य की प्रधानता है।

४. अपने समय का (तथा वर्तमान समय के पंजाब का भी) यथातथ्य वर्णन।

इनमें प्रथम कारण तो किसी परम्परा-विशेष के लिए ही उपयोगी हो सकता है परन्तु सामान्य जनता एवं काव्य-मर्मज्ञों मे शेष तीन कारणों से ही इसे अधिक मान्यता प्राप्त है। वारिस की रचना एक विशेष स्वर से गाई जाती है। उस स्वर की भनक कानों में पड़ते ही लोग अज्ञात आकर्षण-शक्ति से उस ओर को मुंह कर चल पड़ते है। बंदो में तुकों (अर्द्धालियों) की सख्या-सम्बन्धी कोई नियम न होने के कारण और अन्तिम तुको मे अनुप्रास ही नही, दो तीन शब्दो की समानता (रदीफ और काफिया साम्य) होने के कारण उपस्थित समुदाय उस गायन मे सहयोगी भी हो जाता है। वारिस के सवाद अधिकतर धर्म बनाम साधारण मनुष्य, आदर्श बनाम व्यवहारिकता, शासन बनाम व्यक्ति है। जिनमें सामतीय उच्च आदर्शों का उपहास है। अतः, प्रताड़ित एवं उपेक्षित जनसामान्य उसमें अधिक रस लेता है। उन्हे उसमें अपनी आत्मा झलकती दिखाई देती है। जिस वातावरण मे वारिस पैदा हुआ और जो पात्र उसने हीर मे चित्रित किये है, वे हमे अपने दाएं-बाएं दिखाई देते हैं। पास-पड़ोस, झगड़े, दूसरे के कार्य में टांग अड़ाना, उसे दुःखी करना, ईर्ष्या, वैर-विरोध, पंचायतें एवं समूह-सवाद (परहे), बारात-विवाह, सालियों की छेड़छाड़, दाज-दान, डोली के दृश्य, चौधरियों एवं अधिकारियों का अभिमान सब कुछ आज भी वैसा ही है। यद्यपि उसमे युग-परिवर्तन से कुछ अन्तर आ गया है।[2] आज भी कैंदों दूसरे के कार्य में टाग अड़ाने से नही झिझकता। वारिस की हीर मे यह सब कुछ सविस्तार है। उसको पढ़ने एव सुनने मे जन साधारण को जो अनुपम आनन्द मिलता है वही वारिस की हीर को लोकप्रिय और महान् बनाने का कारण है।

हीर वारिस का महाकाव्यत्व

'उदात्त' या आदर्श का अपना महत्व है परन्तु अनघड़ और भदेस की

---

१. पंजाबी साहित्त दा इतिहास (मध्यकाल) पृ० ११० १११

२. हीर वारिस, भूमिका, पृ० १०९

बास्तविकता और यथार्थता का निषेध कैसे किया जा सकता है ? वही यथार्थ यदि महिमा-मंडित होकर काव्य में स्थान प्राप्त कर ले तो उसे अंगीकार करना ही पड़ेगा। 'हीर वारिस' में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की जो अदम्य भावना है उसके कारण उस यथार्थ को और अधिक सौंदर्य प्राप्त हो गया है। मध्यकाल के समाज में व्याप्त नारी के प्रति उपेक्षाभाव का इतना सबल विरोध अन्यत्र दुर्लभ है। वारिस की हीर मे नारी एवं पुरुष के स्वतन्त्र प्रेम के अधिकार के लिए महान् संघर्ष है। इस संघर्ष में नारी प्रधान है। वह परिवार, समाज, धर्म तथा शासन सभी से जूझती है और अन्त में सफल होती है। परन्तु, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का यह संग्राम व्यक्तिगत ही रहा समाजगत न हो सका। इस समस्या का समाधान हीर या सहती के स्वातंत्र्य से ही संभव नहीं हो सकता। समाज की कारा में अनेक हीरें कैद है और वे बलात् खेड़ों को सौंप दी जाती है। हीर उन सबको मुक्त करवाना चाहती है। इसीलिए वह अपनी इस विजय को समाज से अंगीकार करवाने के लिए कृतसकल्प है। परन्तु, यह समाज अत्यन्त निष्ठुर है, हार कर भी पराजय स्वीकार नहीं करता। अपने वश में आए किसी विरोधी को क्षमा करना नही जानता। परिणाभस्वरूप हीर की हत्या कर दी जाती है और वह महान् संकल्प कल्पना[1] मात्र रह जाता है।

वारिस की हीर आलंकारिक या पौराणिक ढंग का महाकाव्य नही। इसमें उसी प्रकार का औदात्य खोजना बेकार है। यह विकासशील महाकाव्य या विकासशील लोक महाकाव्य[2] के अधिक निकट है। कम से कम इसकी लोकप्रियता उसी पद्धति के काव्यों की लोकप्रियता के समान है। इसके आकार की उत्तरोत्तर वृद्धि इसका प्रमाण है। आज इसके जो तीन सर्वाधिक प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध होते है[3] उनमें भी पाठ-भेद एवं प्रकरण-भेद अत्यन्त स्पष्ट है। लोककाव्यों के ही समान इसका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है।

इसमें लोक-हृदय में मानस सुप्त प्रेम और स्वातंत्र्य-अभिलाषा की प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति मिली है। वारिस का महत्व यही है कि उसने ग्राम्य भदेसता के साथ-साथ पांडित्य-प्रदर्शन तथा शब्द-कौशल के द्वारा बाह्याडम्बर का खण्डन एव उपहास किया। स्वातंत्र्य की अभिलाषा सर्वत्र मानव-मन में व्याप्त है। हीर एवं रांझा इस स्वातत्र्य के लिए छल-कपट तक का आश्रय लेते है। जब सीधी अंगुलियों घी नहीं निकलता तो उन्हें टेढ़ा करना ही पड़ता है। इस दृष्टि से उसका प्रभाव सर्वत्र है। उसे किसी एक देश या एक काल तक सीमित नही रखा जा सकता। वारिस ने अपने

---

१ पंजाबी में कल्पना का अर्थ पाश्चात्ताप भी है।

२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २४०

३. (क) भाषा विभाग पटियाला का संस्करण, सम्पादक शमशेरसिंह अशोक
(ख) नवयुग पब्लिशर्ज, दिल्ली का संस्करण, सम्पादक डॉ० जीतसिह सीतल।
(ग) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली का संस्करण, सम्पादक संतसिह सेखों।

समय की उथल-पुथल, अराजकता, नृशंसता का तटस्थभाव से वर्णन किया है। उसे न सिखों से सहानुभूति है न मुसल मानों से । वह मानवता का पुजारी है और मानवता का विरोध करने वाले सभी का शत्रु ।

इसमें सदेह नहीं कि हीर एवं रांझे का चरित्र-चित्रण आदर्श नही परन्तु उनकी जीवन-गाथा को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि पाठकों और श्रोताओं के हृदय को वे आद्यन्त आकर्षित करते है तथा उनसे सहानुभूति एवं प्रशंसा प्राप्त करते हैं। जब समाज में चारों ओर अनैतिकता का राज्य हो तो नैतिकता का आदर्श किसे आकृष्ट करेगा। उसे ध्वस्त किये बिना नैतिकता की प्रतिष्ठा असंभव है।

'हीर वारिस' में समाज की अनैतिकता एवं छल-कपट को ध्वस्त करने के लिए अनैतिक एवं छलकपट पूर्ण उपायों को प्रयोग में लाया गया है परन्तु, अन्त में पुन: विवाह के लिए उनका प्रयत्न इस तथ्य का प्रमाण है कि कवि अनैतिकता के विनाश के उपरान्त नैतिक मूल्यों की स्थापना का समर्थक है। अपने विस्तृत अध्ययन, मनन और चिन्तन[1] के फलस्वरूप वारिस यह निर्णय कर चुका था कि समाज के हृदय में चुभे इस कांटे को निकालने के लिये कांटे का प्रयोग अनिवार्य है। इसके अनन्तर नैतिकता एवं आदर्श की स्थापना करनी पड़ेगी—

लांवां फेरिआं अकद निकाह् बाझों, हूर आदमी दे हत्थ आईए' नीं।[2]

इस पंक्ति में लाँवां फेरे अकद और निकाह, नैतिकता एवं आदर्श के प्रतीक है जिनके अभाव में जीवन की कल्पना वारिस या उसकी हीर को स्वीकार्य नहीं।

पंजाब वासियों के चरित्र का विद्रोही भाव, जिसके दर्शन गुरु नानक के काव्य में ही होने लगते है, हीर वारिस में अत्यन्त मुखर है। पंजाब सदा से ही शासन के प्रति निष्ठावान् नहीं रहा, चाहे वह नैतिक हो चाहे राजनैतिक अथवा धार्मिक। पंजाब के चरित्र का यह पक्ष 'हीर वारिस' में अत्यन्त ज्वलन्त रूप धारण कर स्पष्ट हुआ है।

अत: पंजाबी जीवन की साकार प्रतिमा 'हीर वारिस' को ऐपिक, शाहकार या महाकाव्य की पदवी तो देनी ही पड़ेगी चाहे वह 'महाकाव्यत्व' आलकारिकों का दृष्टि में अनुचित ही हो। युग-वाणी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सर वाल्टेयर को उद्धृत करते हुए मैक्नल डिक्सन ने लिखा है[3] कि 'व्यवहार के आधार पर विशेषत:

---

१. वारिस की रचना में ऐसे कई संकेत है जिनसे पता चलता है कि उन्होंने घोर परिश्रम कर अनेक ग्रंथों का अध्ययन एवं चिन्तन किया था और इसके अनन्तर हीर की रचना की।

२. हीर वारिस, पृ० २०४

3. "Use alone has prefixed the name of epic particularly to those poems which relate some great action. Let the action be simple or complex, the poem will equally deserve the name of epic, unless you have a mind to honour it with another title proportionate to its merit.

—English Epic and Heroic poetry page 9.

कुछ ऐसे काव्य-ग्रंथों को, जिनमें किसी महान् घटना का वर्णन होता है महाकाव्य की सज्ञा प्रदान की गई है। यह काव्य तब तक महाकाव्य कहलाने का अधिकारी होगा जब तक उसके गुणों के अनुरूप आप उसका कोई दूसरा नामकरण नहीं करते।

पंजाबी साहित्य में वारिस का वही स्थान है जो संस्कृत में कालिदास का अंग्रेजी में शैक्सपियर का और हिन्दी में तुलसीदास का है। उसकी रचना का प्रत्येक वाक्य पंजाब के लोक-मानस की प्रतिध्वनि है—'निस्सन्देह वारिस का जीवन पंजाबी का जीवन है, पंजाबी भाषा का जीवन है।

'पदमावत' एवं 'हीर वारिस' दोनों ही महाकाव्य हैं। परन्तु दोनों को महाकाव्य मानने के कारण भिन्न-भिन्न हैं, मानदंड भिन्न है।

: ८ :

अभिव्यक्ति-कौशल

पिछले अध्यायों में दोनों भाषाओं के प्रेमाख्यानों के विविध पक्षों का विश्लेषण किया गया है, इनके कलापक्ष पर प्रकाश डाले बिना यह तुलना अधूरी रहेगी। कवियों ने अपने कथानक को किस कौशल से अभिव्यक्त किया है, इसकी परीक्षा करने के लिए इनकी भाषा, शब्द-भण्डार, पद-संघटना, अलंकार, छन्द आदि पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए।

भाषा

हिन्दी और पंजाबी प्रेमाख्यानों की भाषा के स्वरूप के विषय में विद्वानों के विचार—हिन्दी प्रेमाख्यानों की रचना के दिक्कालगत आयाम पर्याप्त विस्तृत है अतः इनमें भाषा के अनेकविध प्रयोग मिलते है। मुसलमान कवियों की भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ० सरला शुक्ल ने लिखा है "लगभग सभी प्रेमाख्यान जनभाषा अवधी के ठेठ बोली रूप या ब्रजभाषा मिश्रित स्वरूप मे लिखे गए है। 'कथा कामरूप' की रचना अवश्य खड़ी बोली में की गई है जिसका स्वरूप भी लोकभाषा का है।[1] हिन्दू कवियों के विषय में डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव ने लिखा है "जो सामग्री अब तक प्राप्त है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये रचनाएं संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित भाषा, शुद्ध अपभ्रंश, साहित्यिक डिंगल, साधारण बोल-चाल की राजस्थानी, अवधी, ब्रज एवं अवधी, ब्रजमिश्रित खड़ी बोली में पाई जाती है।"[2] इन दोनों के मतों का अनुमोदन करते हुए डॉ० श्याममनोहर पाँडेय ने लिखा है "सूफी प्रेमाख्यानों में उत्तरी भारत के हिन्दी प्रेमाख्यानों में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ, दक्षिण के प्रेमाख्यानों की भाषा दक्खिनी है जिस पर अरबी-फारसी का प्रभाव गहरा है। असूफी प्रेमाख्यानों में राजस्थानी, अवधी, ब्रज का प्रयोग हुआ है। अवधी क्षेत्र के सूफी कवियों ने फारसी-अरबी शब्दों की अपेक्षाकृत कम प्रयोग किया है। असूफी प्रेमाख्यानकारों नेस्वतन्त्रतापूर्वक अरबी-फारसी के शब्दों को ग्रहण किया है।[3]

---

१. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० २६०

२. भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० ११६

३, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २६६।

मध्यकालीन पंजाबी किस्सा-काव्य का क्षेत्र अत्यन्त संकीर्ण है। उसकी भाषा लहंदा (पश्चिमी पजाबी) या माझी (केन्द्रीय पंजाबी) ही है। मालवी (पूर्वी पजाबी) को क़िस्सा-काव्य के लिए आधुनिक काल मे ही अपनाया गया है। इस कार्य में भगवानसिंह एव ज्ञानी दित्तसिंह ने विशेष योग दिया है। पंजावी किस्सा-काव्य में फारसी भाषा के मूल एव विकृत रूपों के प्रयोग का श्रीगणेश तो दमोदर के समय से ही हो गया था। दमोदर के प्रथम पद्य में ही उसकी झलक अत्यन्त स्पष्ट है।[1] इस अनुपात मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

हिन्दी प्रेमाख्यानों की भाषा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न शोध-प्रबन्धों तथा सुसंपादित रचनाओं की भूमिकाओं में कही संक्षेप और कहीं विस्तार से विचार किया गया है। 'बीसलदेवरासो', 'छिताई चरित', 'छिताई वार्ता', 'चंदायन,' 'मृगावती,' 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री,' 'रसतन,' 'पद्मावत,' 'मधुमालती' आदि की भूमिकाओं में विज्ञ संपादकों ने इनकी भाषा पर विचार किया है। इसके अतिरिक्त, 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य', 'हिन्दी सूफी कवि और काव्य' 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य' 'हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य,' 'सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य', 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', 'रीति स्वच्छन्द काव्यधारा'[2], आदि शोध-प्रबन्धों में भी इस प्रसग पर विचार किया गया है। जायसी की भाषा पर तो पृथक् रूप से शोध-प्रबन्ध[3] भी प्रकाशित हो चुका है।

पंजाबी में 'हीर वारिस' की भाषा पर डॉ० जीतसिंह सीतल ने अपने शोध-प्रबन्ध एवं 'सस्सी-हाशम' पर श्री हरनामसिह शान ने कुछ विस्तार से प्रकाश डाला है। हाशम की भाषा पर स० स० अमोल तथा रोशनलाल आहूजा, दीवानसिह ने, अहमद की भाषा पर स० स० पद्म ने, फज़ल शाह की 'सोहणी' पर श्री रोशनलाल आहूजा एवं दीवानसिंह ने, मुकबल की 'हीर' एव अहमदयार की 'सस्सी' पर उजागरसिंह ने तत्-तत् संपादनो की भूमिकाओं में अत्यन्त संक्षेप से विचार किया है। ये यत्न नितान्त प्रारम्भिक है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अभी तक इन रचनाओं को नहीं आँका गया। इसका मुख्य कारण तो यह है कि आज तक यह साहित्य उपेक्षित ही रहा। हाल में ही इस ओर विद्वानों की दृष्टि गई है। स्वतन्त्रता से पूर्व तो पंजाबी किस्सा-काव्य को मात्र ग्रामीण लोगों के मनोरंजन की वस्तु समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। हिन्दी में प्रेमाख्यान-साहित्य को विद्वानों के विनोद एवं

---

१. अव्वल नाम साहिब दा लईए जिन एहु जगत उपाया।
जिमी असमान पलक दुरुसीती कुदरतनाल टिकाया।
दौर कमर खुरशैदो सीते के हर जा इकु साइआ।
नाउं दमोदर जात गुलाटी जै इहु किस्सा चाइआ॥

—हीर दमोदर, पृ० १

२. इन रचनाओं के लेखकों, सम्पादकों एवं प्रकाशकों सम्बन्धी विवरण परिशिष्ट में देखें।

३. जायसी की भाषा, डॉ० प्रभाकर शुक्ल, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ।

हरिकान्त श्रीवास्तव ने भी इसे चलती हुई अवधी कहा है[1] परन्तु डा० शिवप्रसादसिह ने उसकी भाषा का विशिष्ट अध्ययन कर उसे पांचाली ब्रज भाषा की संज्ञा दी है।[2]

भाषा के बारे में यह मतवैभिन्नय पजाबी के विद्वानों में भी है। दमोदर कृत 'हीर रांझा' की भाषा के विषय में यह प्रचलित मत है कि वह लहदा है जिसमें बार (स्थान विशेष) के जंगली शब्द भी प्रायः प्रयुक्त हुए है,[3] जबकि स० स० अमोल के अनुसार दमोदर ने समग्र रूप से केन्द्रीय बोली का प्रयोग किया है परन्तु जहाँ उसके पात्र बोलते है वहाँ उसे उनके इलाके की बोली का रंग दे दिया है।[4] श्री सीताराम बाहरी के अनुसार जेहलम से लेकर मुलतान तक के इलाकों की साहित्यिक भाषा के प्रयोग का प्रयत्न दमोदर ने किया है। इसीलिए इसमें कई शब्दों के रूप अस्थिर है।[5] अहमद रचित हीर की भाषा को डॉ० गोपालसिह दरदी बड़ी 'मिट्ठी केन्द्रीय (माझी) पंजाबी' कहते है।[6] परन्तु शमशेरसिह अशोक इसे 'सांदल बार की जाँगली' बोली मानते है।[7] बावा बुधसिह ने मध्यमार्ग अपनाते हुए लिखा था कि यह न तो वारिस के समान 'जटकी भाषा' है और न मौलवियों के समान फारसी प्रधान।[8] प्रसगतः वारिस के प्रति बावा बुधसिह की यह टिप्पणी भी उपेक्षणीय नही। जबकि वारिस का भाषा पर अनुपम अधिकार था और उसे 'सुखन का विरिस, कहा जाता रहा है। वारिस की भाषा को डॉ० जीतसिह सीतल लहिंदी[9] कहते है तो जगजीतसिह छाबड़ा माझे की ठेठ बोली[10] मानते है। इस मतभेद के कारणों पर विचार करना अप्रासगिक न होगा।

इन प्राचीन रचनाओं की भाषा के संबध में विचार करते समय प्रामाणिक पाठ की समस्या सामने आती है। इन काव्यो की उपलब्ध प्रतियों मे भाषा की एकरूपता नही है। प्रतिलिपियों की बात करते समय लिपिकारों की ओर ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक है। हिन्दी के लिपिकारों मे जैन लिपिकार विशेष रूप से विश्वस्त माने जाते है, ये लोग प्राचीन साहित्य की रक्षा करने में सफल हुए है। परन्तु अनेक बार "आलेख्य कृति की भाषा को पुरानी आर्ष या जैनादर्श की भाषा बनाने के मोह से भी वे छूट न सके।"[11] हिन्दी की नागरी एवं कैथी प्रतियो के लिपिकों ने भी भाषा

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २०५
२. रसरतन, भूमिका, पृ० १३५
३. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, दरदी, पृ० १४२
४. पुरातन पंजाबी कावि दा विकाश, पृ० २६२
५. पंजाबी दुनियां, मार्च १६५१
६. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, पृ० १७६
७. आलोचना (पंजाबी), फरवरी १६५६
८. प्रेम कहानी, पृ० २७३
९. हीर वारिस, भूमिका, पृ० १८
१०. कवि वारिस शाह, पृ० ८४
११. सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ८६

के साथ पूरी मनमानी की है। उनके सामने फारसी लिपि के पाठ को पढ़ने की जो कठिनाई थी, उसके कारण या अज्ञान से उत्पन्न पाठ दोष तो आए ही, जानबूझ कर भी खीचतान की गई। कदाचित् काव्य की भाषा को अपनी बोलचाल की भाषा की दृष्टि से अटपटी या अजबनी पाकर उसे अपनी भाषा के अधिक समीप लाने के लिए ही यह किया गया। डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त ने स्वसंपादित 'मिरगावती' की भूमिका में एडकला एवं बीकानेर प्रतियों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर इस तथ्य को प्रमाणित किया है।[1] मूल प्रति किसी लिपि में भी लिखी गई हो।इतना तो स्पष्ट एव निर्विवाद है कि उपलब्ध प्रतियो में फारसी की नस्ख एवं नस्तालीक लिपियों की प्रतियों के कारण अनेक पाठान्तर एव क्लिष्ट पाठ आए।

पंजाबी में तो निर्विवाद रूप से ये रचनाएं फारसी लिपि में ही लिखी जाती रहीं। किसी भी भाषा को फारसी लिपि में लिखना उतना कठिन नही जितना कि पुन: पढ़ना। यही कारण है कि पाठ भेद की समस्या पंजाबी रचनाओं में भी सामने आती है। स० स० पद्म ने अहमद की 'हीर' की भाषा पर विचार करते समय ऐसे कई उदाहरण दिये है जिसके कारण भाषा का स्वरूप ही बदल जाता है।[2] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी इस विषय पर विचार करते हुए पाठ-परिवर्तन के कारणों में से दो पर विशेष बल दिया है।[3]

१. क्लिष्ट भाषा और गूढ़ अर्थो के कारण होने वाली परेशानी को दूर करने के लिए मूल शब्दों में फेर-फार कर उनकी जगह सरल शब्द रखने की प्रवृत्ति।

२. मात्राएं पूरी करने के लिए शब्दों का रूप परिवर्तन

डॉ० अग्रवाल ने इन दोनों को पुष्ट करने के लिए अनेक उदाहरण दिए है। लगभग ये ही कारण डॉ० जीतसिंह सीतल ने 'हीरवारिस' का प्रामाणिक पाठ उपस्थित करते समय अनुभव किए एवं उसके उन्होंने अनेक उदाहरण दिए है।[4] 'सस्सी हाशम' की भूमिका में हरनामसिंह शान ने पाठान्तर प्राप्त होने के ग्यारह कारण दिए है।[5] इनमे से अधिकतर लगभग एक ही प्रकार के है। लोकप्रियता, श्रुतिपरम्परा, मूल प्रति का अभाव, स्थानीय भेद, लिपि-परिवर्तन आदि से हिन्दी रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियों पर परिश्रम करने वाले अनुसंधित्सु एवं विद्वान् परिचित ही है। शान महोदय ने अनेक पाडुलिपियों पर अथक परिश्रम द्वारा हाशम रचित 'सस्सी' जैसी लघु कृति का जो पाठ तैयार किया उसमें भी दीवानसिंह एवं डॉ० रोशनलाल

१. मिरगावती, पृ० ४२
२. हीरअहमद, भूमिका, पृ० १७४
३. पदमावत, प्राक्कथन, पृ० ११-१३
४. हीर वारिस, प्रवेशिका, पृ० २०-२३
५. सस्सी हाशम, पृ० ५१४-५१८

आहूजा ने लगभग दो सौ परिवर्तनों का औचित्य सिद्ध किया है।[१] 'हीर वारिस' के उपलब्ध अनेक बाजारी संस्करणों एवं तीन (भाषा-विज्ञान, डॉ० सीतल एवं डॉ० मोहनसिह द्वारा) सुसंपादित संस्करणों के परस्पर पाठ भेद भी इन तथ्यों को ही प्रमाणित करते है। हिन्दी मे 'चंदायन' एव 'मृगावती' के डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त के संस्करणों में भी पर्याप्त पाठ भेद है।[२]

आधुनिक समय में इन कृतियों का सम्पादक वर्ग मुख्यत: नागर संस्कृति से प्रभावित है। सैकडों वर्ष पूर्व ग्रामीण वातावरण मे लिखी इन रचनाओं में प्रयुक्त शब्दों, सूक्तियों एवं मुहावरों का रूप निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। पुन: यह सम्पादक वर्ग भाषा के सम्बन्ध में एक निश्चित धारणा बनाकर ही सम्पादन कार्य में जुटता है।[३] फलत: इनकी प्रामाणिकता सदिग्ध बनी ही रहेगी। इस सम्बन्ध में दो उदाहरण आपातत. सामने आए है।

जायसी का 'पद्मावत' एक, लोकप्रिय रचना है और उसकी अनेक सुलिखित प्रतियां नागरी एवं फारसी लिपियों में उपलब्ध भी हो चुकी है। सुविख्यात विद्वान् आचार्य शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पर्याप्त खोजबीन एवं परिश्रम से अलग-अलग इसका सम्पादन भी किया परन्तु फिर भी जायसी का मूल पाठ प्राप्त नहीं हुआ, यह कम आश्चर्य का विषय नहीं। जायसी ने एक शब्द 'दंगवै'[४] का प्रयोग किया है। आचार्य शुक्ल ने इसे तीन बार 'डुंगवै'[५] एवं एक बार 'अंगवै' पढ़ा।[६] डॉ० माताप्रसाद ने इसे एक बार 'अंगवै',[७] दो बार 'दिन कोई'[८] और एक बार 'दंगवै' पढ़ा[९]। इसी प्रकार 'अहुठ वज्र' को शुक्ल जी ने 'आठो बज्र' पढा।[१०] 'मृगावती' में भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है।[११] एक लोककथा के नायक दंगवै एवं उसके सहायक पांडुपुत्र भीम की ओर इनमें सकेत किया गया है।[१२]

---

१. किरसा सस्सी पुन्नू 'मुखशबद १०७ और पाठ दे संकेत' पृ० १२१-१३६

२. डॉ० श्याममनोहर पांडेय ने तो इस विषय पर अपनी कृति 'सूफी काव्य विमर्श, में दो स्वतन्त्र लेख ही लिख डाले है।

३. इसका प्रमुख उदाहरण डॉ० जीतसिंह द्वारा सम्पादित हीर है जिसमें लहिंदे के आधार पर ही शब्दों का ग्रहण एवं त्याग किया गया है।

—हीर वारिस भूमिका, पृ० ११५ पर इसे स्वीकार किया गया है।

४ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के पदमावत में दोहा नं० ३६१।२, ५०८।९, ५२६।८, ६२९।६

५-६. जायसी ग्रंथावली, सं० आचार्य शुक्ल, पृ० २२६ दोहा २, पृ० २३४ दो० ११, पृ० २२९, दो० ९।६, पृ० १५९ दो० २।२

७-९. जायसी ग्रंथावली, सं० माताप्रसाद गुप्त, दोहा सं० ३६१।२ दोहा सं० ५०८।९, दोहा सं० ५२६।८ दोहा सं० ६२९।६। पदमावत में यह पाठ ठीक कर लिए गए हैं।

१० जायसी ग्रंथावली, सं० आचार्य शुक्ल, पृ० २३० दो० ३; पृ० २३४ दो० ११।

११. मृगावती, सं० माताप्रसाद गुप्त ३४०, १०४

१२. विस्तार के लिए देखें डॉ० शिवगोपाल मिश्र सम्पादित भीम कवि कृत 'दंगवै कथा एवं चक्रव्यूह कथा।'

इसके साथ ही 'दगवै' की व्युत्पति के लिए डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जो खीचतान[1] की, वह सब निष्प्रयोजन की गई। यह प्रसंग केवल इसलिए विस्तार से दिया गया है कि प्रमाणिक पाठ के प्रति इतने भागीरथ प्रयत्नों के बाद भी स्थिति निरापद नही।[2]

ऐसी स्थिति में विविध क्षेत्रों में लिखे गए इन अनेक प्रेमाख्यानों की भाषा के विषय में किसी विशेष प्रकार के वर्गीकरण से पृथक् रहकर यहाँ केवल यही देखने का यत्न किया गया है कि इन कवियों मे साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रति कितनी जागरूकता थी। क्या इन्होंने अपनी अभिव्यजना को सजाने सवारने का यत्न किया? अथवा सामान्य रूप से कथा मात्र कहकर ही कवि-धर्म की इतिश्री समझ ली। दो भिन्न-भिन्न भाषाओं एव इतने अधिक कवियों की व्यक्तिगत रुचि की अपेक्षा यहाँ सामान्य रुचि का विवेचन ही अभीष्ट है। इस कार्य के लिए इन कवियों का शब्द-चयन, मुहावरे-लोकोक्तियों का प्रयोग, वर्ण-योजना, अलंकार-प्रयोग एव छन्द-ग्रहण को आधार मानकर किसी निर्णय पर पहुंचने का यत्न किया गया है।

शब्दावली

(क) हिन्दी के कवियों में परम्परा-प्राप्त साहित्यिक एवं लोक-भाषा के प्रति रुचि

हिन्दी प्रेमाख्यानों मे लोक व्यवहृत शब्द-कोष के अतिरिक्त तत्कालीन अपभ्रंश साहित्य मे प्रयुक्त शब्द-भण्डार, भिन्न-भिन्न बोलियों एवं फारसी के प्रचलित शब्द समूह का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग किया गया है। जिन कृतियों (पदमावत, मृगावती आदि) की भाषा लोकभाषा कही जाती है उनमें भी सामयिक काव्यरूढ़ियों का प्रयोग करते समय कवियों ने निर्बाध रूप से परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। उसके बिना नखशिख-वर्णन, दुर्ग-वर्णन, भयंकर युद्ध आदि से सम्बन्धित वर्णन असभव थे। इन कवियों की भाषा में 'सस्कृत कवि-परम्परा द्वारा प्राप्त चाशनी' न सही वे शब्द तो प्रयुक्त हुए ही जिन्हे पूर्ववती अपभ्रंश के कवि एव तत्कालीन भाषा कवि अपनी रचानाओं में प्रयुक्त कर रहे थे। सिगार, प्रथमहि, सीस, केस, बलि, बासुकी, नरेसा, बिसहर, बेनी, कोंवल, कुटिल, नग, भुअग, मलैगिरि, अलकैं, गियं, अस्टौ कुरी नाग,[3] (हस्ती, परबत, गरुअ, गयद, सुंड, भूइं, दर, हनिमस्तक, गरब, रुहिर, मैमंत पंक[4] आदि के अतिरिक्त लिनअर, ससहर, भुवाल, आछूरी, उदयान, कमठ, अकसमाद, दिब्ब, पट्टन, पूब्ब, बनिजु, सबूंह, सहसहुकरा, छतीसों जाति आदि अनेकानेक शब्दों का प्रयोग उसी

---

१. पदमावत, पृ० ३६३-६४, ५४०-४१, ५६२, ६८८

२. चार्लसनेपियर ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में शिकायत की है कि नागरी अक्षरों में लिखने के कारण डॉ० माताप्रसाद के अनेक शब्दों के रूप फारसी अक्षरों में लिखे गए शब्दों से भिन्न हो गए है।

—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००६ पृ० ३३२

३. ये शब्द 'पदमावत' के नखशिख-वर्णन के प्रथम कड़वक (पृ० ६६) के हैं।

४. वे सब शब्द 'पदमावत' के राजा बादशाह युद्ध के प्रथम कड़वक (पृ० ५५०) के है।

स्रोत से ग्रहण किया गया। जिन कवियों का परिचय उस भाषा से घनिष्ठ था उनके समुम्ख तो भाषा के परिष्कार का प्रश्न था और अन्य कवि भाषा को आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील थे। यह समस्या जायसी एवं तुलसी की ही नही थी, दाऊद एव ईश्वरदास की भी थी। दाऊद जैसे कवियों की समस्या अपने काव्य को विस्तृत क्षेत्र मे स्वीकृति प्रदान करवाना था। भाषा को सकीर्ण क्षेत्र की बन्दिनी बनाकर यह काम चल ही नही सकता था। डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' के अवधी के उद्धरणो से 'चदायन' की भाषा की तुलना कर यह निष्कर्ष निकाला है कि अवध के सीमित प्रदेश मे बोली जाने वाली बोली या भाषा को ही अवधी मानकर चन्दायन की भाषा को अवधी नही कहा जा सकता।[1] उसका स्वरूप विशाल हिन्दी प्रदेश में समझा जा सकने वाला था। 'चन्दायन' की भूमिका मे इसी से मिलते जुलते विचार प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने प्रकट किए है। "भाषा का एक सर्वजन सुलभ और सुबोध रूप खड़ा करने के लिए इसमें विभिन्न भाषा क्षेत्रो में प्रचलित रूपों के मिश्रण का कुछ ऐसा ही आदर्श अपनाया गया है, जैसाकि कबीर आदि सन्त कवियों की परम्परा मे हमे मिलता है।"[2] प्रो० अस्करी ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए है।[3] यही बात अन्य तथाकथित सूफी कवियो के बारे में भी कही जा सकती है। श्री शिवगोपाल मिश्र ने कुतबन कृत 'मृगावती' की भूमिका में लिखा है "अवधी के विकासकाल में जौनपुर से दिल्ली तक की भाषा मे एकरूपता थी। अभी तक कुतबन अथवा ईश्वरदास के निवासस्थानों का ठीक पता नही चल पाया किन्तु जायसी तथा शेखनिसार के जन्मस्थान क्रमशः जायस तथा शेखपुर (फैज़ाबाद के पास) सिद्ध हो चुके है। यदि इन सबकी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि सबने समान रूप से एक ही भाषा का प्रयोग किया जो अत्यन्त ठेठ शब्दों को प्रश्रय देती हे। इस प्रकार पूर्व में गाजीपुर तथा जौनपुर से पश्चिम मे दिल्ली, उत्तर में पूरा अवध प्रान्त तथा दक्षिण में मध्य प्रदेश तक में अवधी का यही रूप बोला और समझा जाता था। यह अवधी उस काल की जनता की भाषा थी।[4]

षट् भाषा का आदर्श—हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हिन्दी पूर्वमध्यकालीन कवियो में अनेक चारण, भाट, भक्त एवं कथावाचक व्यास थे। इनके मन में मूल संस्कृत एव अपभ्रंश के ज्ञान भंडार को लोकभाषा में प्रस्तुत करने की इच्छा एव आवश्यकता थी। प्रारभिक कवि विष्णुदास, ईश्वरदास, थेघनाथ आदि ने महाभारत, गीता तथा पौराणिक कथाओं को तात्कालीन लोकभाषा में प्रस्तुत कर इसी आवश्यकता की पूर्ति की। संस्कृत के प्रति अपार सम्मान होते हुए भी तत्कालीन रईस, व्यापारी एव जन-साधारण उसे समझने मे असमर्थ थे। अतः उनके ज्ञान-वर्धन, प्रोत्साहन एवं मनोरजन के लिए

---

१. चंदायन, पृ० ३२।
२. चंदायन, सं० विश्वनाथ प्रसाद, पृ० १४
३. हिन्दी साहित्य कोश, सं० धीरेन्द्र वर्मा एवं सहयोगी, द्वितीय भाग, पृ० १६०
४. मृगावती, पृ० ३५

पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं के अतिरिक्त 'बीसलदेव रासो', 'लखमसेन पद्मावती रास,' 'छिताई चरित,' 'मधुमालती' जैसी रचनाए भी लिखी गईं। ये सभी कवि एक साहित्यिक परम्परा के कूलों के मध्य चलते रहे। इनकी रचनाएं प्रायः जन-सामान्य के लिए लिखी गई परन्तु साहित्य की दीर्घपरम्परा से बाहर निकल कर ये लोग न तो कवि समाज में ही सम्मान पा सकते थे और न लोक में। जनसामान्य पर अपना प्रभाव डालने के लिए चिराचरित काव्यरूढ़ियों एवं साहित्यिक आदर्शों का यथास्थान प्रयोग करना इनके लिए अनिवार्य था। भाषा को परिमार्जित करने एव सामयिक आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने के लिए आवश्यकतानुसार संस्कृत एव फारसी के शब्द लेने से भी इन्हे कोई झिझक नही थी। कउल (कौल), प्यादा, हरम, जहमत, कैफयत, गर्द, गर्दन, गुनाह, दरवेश, इरसाल, दोजक, भिस्त, मइदान, मंजल, फुरमाण, आलम[1] जैसे तद्भव फारसी शब्दों के प्रयोग एवं संस्कृत के तत्सम शब्दों का निर्वाध प्रयोग होता था। परन्तु सब कुछ मिलाकर प्रेमाख्यान रचयिता हिन्दू कवियों एव मुसलमानकवियों के शब्द भंडार में कोई बहुत बड़ा अन्तर नही है। इसके मूल मे उस समय काव्य की भाषा का 'षट्भाषा' आदर्श था। रासोकार ने षट्भाषा के अन्तर्गत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिशाचिका, मागधी, एवं सूर सेनी को गिना है।[2] रासोकार ने अपनी रचना का षट्भाषात्व स्वीकार किया है।[3] अल्बदाऊनी के अनुसार 'चदायन' भारतीय गायकों की भाषा में है।[4] संभवतः उनका सकेत भाटो की भाषा से है। यदि यह अनुमान ठीक है तो निश्चय ही मुसलमानो द्वारा लिखे गए इस प्रथम प्रेमाख्यान की भाषा भी षट्भाषा आदर्श की अनुसारिणी बना कर लिपिबद्ध की गई। 'वर्णरत्नाकर' में भाटवर्णना के अन्तर्गत भाट के लिए छः भाषाओं का ज्ञान होने की आवश्यकता बताई गई है।[5] उत्तरमध्यकाल में भिखारीदास (१७४६ ई०) ने भी काव्य के लिए इसकी पुष्टि की है।[6] भाषा का यह आदर्श नवीं शताब्दी में आचार्य रूद्रट के समय से

---

१. छिताई चरित, सं० हरिहरनिवास द्विवेदी, प्रस्तावना पृ० ८०-८१

२. संस्कृत प्राकृतचैव, अपभ्रंशः पिशाचिका।
मागधी सूरसेनी च षट् भाषा चैव ज्ञायते॥

—पृथ्वीराज रासो (प्रथम भाग) पृ० २९

३. उक्ति धर्मविशालस्य, राजनीति नवंरसम्।
षट्भाषा पुराणंच कुराणं कथितं मया॥

—वही, पृ० १२

४. मुंतखब-उत्-तवारीख, पृ० ३३३

५. पुनु कइसन भाट, संस्कृत, प्राकृत, अवहट्ठ, पैशाची, सौरसेनी, मागधी छहु भाषा का तत्वज्ञ। ज्योतिरीश्वरकृत वर्णरत्नाकर, पृ० ५५ ख. सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, पृ० ७५ से उद्धृत।

६. भिखारीदास (द्वितीय खण्ड), सं० विश्वनाथ मिश्र, पृ० ५

ही कवि वर्ग में स्थान पा चुका था[१] और आठ नौ सौ साल तक इसे मान्यता प्राप्त रही। कुतबन ने तो स्पष्ट रूप से 'षट्भाषा' मार्ग पर चलने की घोषणा की है —

खट भाखा आहहि एहि मांझा। पंडित बिनु बूझत होइ सांझा ।।[२]

लोकभाषा एव साहित्यभाषा—कुतबन ने शास्त्रीय आखरों में चुन-चुन कर देसी शब्द इस लिए लगाए कि पढ़ने में सुन्दर लगे और इसके सिवा अन्य रचना अच्छी न लगे।[3] इन सकेतों से इन कवियों का आदर्श स्पष्ट हो जाता है। अतः इन रचनाओ में प्रयुक्त शब्द भंडार साहित्यिक भाषा से बहुत दूर नहीं ले जाया जा सकता। किसी प्रतिभाशाली साहित्यकार की कृति की भाषा के सदर्भ में जब हम 'ठेठ बोली रूप' या 'लोकभाषा' के रूप की चर्चा करते है तो हमें साहित्य में व्यवहृत लोकभाषा एव लोक व्यवहृत लोकभाषा का अन्तर स्पष्ट समझ लेना चाहिए। साहित्य एव बोलचाल की भाषा में समानता होते हुए भी एक रूपता नहीं हो सकती। इसमें सदेह नहीं कि समय समय पर अनेक मेधावी कवि लोकभाषा की नीव पर ही साहित्यिक भाषा का भवन खड़ा करते है परन्तु साहित्यगत विचार एव भावों की सूक्ष्मता को अभिव्यक्ति देने के लिए कोई भी साहित्यकार अपने समय की प्रधान साहित्यिक भाषा की उपेक्षा नहीं कर सकता। चौदहवीं शताब्दी में 'देसिलबअना' का गुणगान[४] करने वाले विद्यापति अपनी कीर्तिलता एव कीर्तिपताका की भाषा को साहित्यिक रूप दिए बिना न रह सके। अतः लोकभाषा एव साहित्यिक भाषा मे अन्तर होते हुए भी साहित्यगत लोकभाषा समसामयिक साहित्यिक भाषा से बहुत दूर नही जा सकनी। हिन्दी के प्रेमाख्यानक कवियों की भाषा मे 'चुन-चुन कर' अक्षर रखने की प्रवृत्ति आरम्भ में ही थी। ये कवि भाषा एवं साहित्यिक सौष्ठव के प्रति जागरूक थे। शेखनबी ने तो यह भी लिखा है कि उसने ललित शब्दों की योजना के लिए अमरकोष से सहायता ली है।[५]

इन रचनाओं की भाषा को 'जनभाषा' घोषित करने से पूर्व तथ्यों का अवलोकन कर लेना चाहिए। इन रचनाओं में नायिका भेद की शब्दावली का मुक्त प्रयोग हुआ है। कई कवियों ने नो इनके लक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं। इनमें जायसी

१. प्राकृत सस्कृतं मागधं पिशाचभाषाश्च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषाद् अपभ्रंशः।

—काव्यालंकार २।१

२. मृगावती, पृ० ३६९

३. सासत्रीय आखर बहु आए। औ देसी चुनि चुनि सब लाए।।
पढ़त सुहावन दीजइ कानूं। यहि कै सुनत न भावइ आनूं।।

—वही, पृ० ८

४ देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तैं तैसन जंपओ अवहट्टा।।

—कीर्तिलता, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १५

५. ललित रूप जो आखर गढे। चुनि चुनि अमर कोस से काढे।।

—ज्ञानदीप

('पदमावत' पृ० ४६३-४८४) उसमान (चित्रावली,कामशास्त्रीय खंड पृ० ५५१-५६६) एवं नूरमुहम्मद (इन्द्रावती पृ० १७४) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दाऊद, कुतबन, मंझन, कासिमशाह, शेखनिसार ने भी सबन्धित शब्दावली का प्रयोग निःसंग स्वाभाविकता से किया है।

'चंदायन' और चित्रावली के इन दो छंदों की शब्दावली का भी अवलोकन करना उपयुक्त होगा —

क—मगरू बुद्धु बिरसपति सुकरु सनीचरु काहु।
चांद सुरिज लइ अथवा बारह घरहि उतिराहु॥[1]
ख—ससि सूरज कुट दोउ गुरू, राहु बुद्ध सनि केतु।
कहहि कि अब लहुँ भूमिमहँ, अस न कीन्ह कोउ हेत॥[2]

यह जन भाषा नहीं शुद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति है। परम्पराचरित लीक पर चलने वाले कवियों की अभिव्यक्ति पद्धति !

कवि के ज्ञान, रूचि एवं परिवेष के अनुसार भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों का अनुपात प्रति कवि घटता बढ़ता रहा है। 'ढोला मारू रा दूहा' जैसी ठेठ ग्रामीण जीवन में पल्लवित होने वालीच एकाध रचना की भाषा भी साहित्यिक सौदर्य को ग्रहण करती हुई चली है। मुसलमान कवियों की भाषा में भी असख्य तत्सम, तद्भव एवं अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग हुआ है। कई स्थानों पर तो इनकी शब्दावली सस्कृत की ही लगती है बानगी के लिए उपरि-उद्धृत पक्तियों के साथ इन पक्तियों में भी संस्कृत प्रयोग द्रष्टव्य है—

(क) 'भरि हेवंत भोर अंक लाइउ' अथवा हेवंत मोहि बिसारि मेछ (म्लेच्छ) पर कामिनी रांवई।' चांदायन, पृ० ३४७

(ख) 'लंक सिंघ कै लहिसी चुराई' अथवा 'चाल गयंद मराल कै लीन्ही'।
मृगावती, पृ० १८४

(ग) लक सिंधिनी सारंग नैनी। हंस गामिनी कौकिल बैनी॥
पद्मावत पृ० ३२

(घ) 'सुभ्र नितंब नितंबिनी केरे' अथवा 'सोभित किंकिनी निकट कटि, मान उपम जी आई। चित्रावली, पृ० ७७

(ङ) 'उश्नरसम कह देखतनियरे। रहसा नीरज अपने हियरें॥'
इन्द्रावती, पृ० १७४

(च) 'गींव सुहावना सुभग अनूपा'। जातरूप डरि जाइ सुरूपा॥
यूसूफ जुलेखा, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-सग्रह, पृ० ३६०

दक्खिनी का भिन्न आदर्श

हिन्दी प्रेमाख्यानों में संस्कृत के प्रचलित अप्रचलित शब्दों का प्रयोग स्पष्ट

१. चांदायन, पृ० ३७६
२. चित्रावली, पृ० २३२

देखा जा सकता है। केवल दक्खिनी की रचनाएं अपवाद हैं, जिनमें फारसी का अनुपात उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इसका कारण यह है कि दक्खिनी की अधिकतर प्रेम-गाथाएं फारसी मसनवियों को आदर्श मान कर चली है और कवियों ने इन रचनाओं में फारसी गद्य अथवा पद्य की कृतियों को दक्खिनी में प्रस्तुत करने की अपनी भावना पर भी प्रकाश ढाला है—'सर्वसाधारण के लिए ही वे इन रचनाओं को दक्खिनी में लिख रहे हैं"[1]। ये सर्वसाधारण उनके आश्रयदाताओं के सिपाही थे। वास्तव में ये रचनाए न तो दक्षिणी प्रांतों की लोकभाषाओं में लिखी गईं और न ही इनके लेखकों का जनसामान्य से विशेष संपर्क था, अतः इन पर भारतीय साहित्य अथवा लोकरुचि का अंकुश नहीं रहा। सच कहा जाए तो कि यह दरबारी काव्य था। कुछ कवि या उनके आश्रयदाता ही इन लोगों की दृष्टि में रहे फलतः, लोक या इस भूमि की साहित्यिक परम्परा से सम्बन्ध-विच्छेद होने के कारण वे शीघ्र ही अन्यत्र पहुच गए। इन रचनाओं में अरबी और फारसी शब्दों का अनुपात उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अतः वजही, गवासी, हाशमी, मुकीमी आदि गिनती के कुछ कवि ही हिन्दी साहित्य में गिने जा सकते है। इन लोगों को हिन्दी की अपेक्षा उर्दू के ही प्रारम्भिक कवि मानना अधिक समीचीन है। इनकी रचनाओं के कुछ पृष्ठ पढने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती। प्रारम्भिक कवियों ने भाषा के क्षेत्र मे कुछ प्रयोग किए और उनके आधार पर परवर्ती उस दिशा में बढ़ते गए जिसे आज उर्दू का नाम दिया जाता है। पंजाबी में दरबारी वातावरण मे लिखी गई एक मात्र लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमुलूक' की स्थिति भी इसी प्रकार की है। उसमे फारसी और अरबी शब्दों के भार से मूल भाषा का स्वरूप ही तिरोहित हो गया है। अतः इन रचनाओं का लोक अथवा इस भूमि की साहित्यिक भाषा से पृथक् होने का कारण इनका दरबारी वातावरण और प्रयोजन विशेष है।

इसके विपरीत उत्तरी भारत मे लिखे जाने वाले हिन्दी प्रेमाख्यानों की भाषा का रूप लोकाश्रित साहित्यिक भाषा का था। इसमे कोई सदेह नही कि किसी भी रचना की भाषा का प्रासाद कवि के व्यवहार या कार्य-क्षेत्र की भाषा पर ही निर्मित होता है परन्तु उसकी शब्द-ईंटे अधिकतर केन्द्रोन्मुख साहित्यिक भाषा से ही ली जाती है। हिन्दी प्रेमाख्यानों का शब्द-भडार अधिकतर उसी भाषा से गृहीत हुआ है जो उस समय की साहित्य-परम्परा मे स्वीकृत थी। स्थानीय बोली का पुट मात्र उनमें अवश्य आया है। पजाब में लिखी गई गुरदासगुणी कृत 'कथा हीर राझनि की', सभाचंद सोधी की 'कथा कामरूप' अथवा भूपत के 'सूर रभावत' से यह स्पष्ट हो जाता है—

सुंदर सुगढ़ महा उजियारे। सो ढिग आई तिह बचन उचारे॥
कह्यो नाउ बनी अति नीकीं। तौ पै कही आपने जीअ की॥
या पर जो टुक चढ़ने देही। तौ प्रसाद जल बेलि करेही॥[2]

१. दक्खिनी हिन्दी का प्रेम-गाथा काव्य, पृ० १८५
२. कथा हीर रांझनि की, पृ० ४६

अथवा

इंद्रासनी की अपछर आवै। पग चांपन वाके नहीं पावे ॥
परसे पवन उडे बहु गोरी। ज्यों सिर सूखन धरे न डोरी ॥
जब नैनन में अंजन चाँपे। लंका छोड़ विलंका कांपे ॥
जबै ध्यान धर धरत निहारी। फूल फूल फूले फूलवारी ॥[1]
जो अकास दिस देखैं नैना। रसक मरै सूआ अरु मैना ॥
क्या कोकिल कूकहि अधरैनी। उस बोले तू वायस बैनी ॥[2]

इन रचनाओं का शब्द-भडार किसी भी अन्य प्रेमाख्यान से भिन्न नहीं। अत: निस्संकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रेमाख्यानों की रचना संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य की परम्परा में हुई और उनका शब्द-भंडार उसी परम्परा मे विकसित रचनाओं के ही समान तत्सम, तद्भव एवं देशी-विदेशी शब्दों से भरपूर है। इनमें प्रथम दो स्रोतों के शब्द अधिक है। कवियों ने स्पष्टत: साहित्यिक भाषा के अनुसरण की बात स्वीकार की है और उसे प्रयोग मे अंगीकार भी किया।

(घ) पंजाबी कवियों में फारसी शब्दों के प्रयोग की रुचि

पजाबी प्रेमोख्यानों की रचना का मुख्य उद्देश्य लोक-रुचि को सन्तुष्ट करना था अत: उनकी भाषा लोकभाषा ही होनी चाहिए। ग्रामीण जनसमूह को सन्तुष्ट करने के लिए उन्हीं की भाषा का प्रयोग आवश्यक है। इस तथ्य की परीक्षा कर लेनी चाहिए।

दमोदर एवं पीलू की भाषा का मुख्य गुण सादगी अर्थात् अनगढता है। ये दोनों सही अर्थों में लोक-कवि थे। वरखुरदार के अनन्तर भाषा को सजाने-संवारने की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है, लोकभाषा को साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित करने के यत्न आरम्भ हो गए। दमोदर एवं पीलू में भी फारसी के अनेक शब्द अपने मूलरूप में प्रयुक्त हुए हैं—महताव, अजमत, तरदद, नजर, कौल-करार प्रभृति कुछ शब्द सरलता से मिल जाते है। इनके विकृत (तद्भव) रूप भी मिलते है, जैसे—खुशाली, खिजमत, जहीफ, तहब्बल, मसलत आदि। सरल शब्दों के तत्सम एवं अपेक्षाकृत कठिन शब्दों के तद्भव रूपों का प्रयोग हुआ है। अनुमानत: उस समय इन रूपों में वे बोले भी जाते होंगे। क्योंकि दमोदर से कई शताब्दी पूर्व इस क्षेत्र में मुसलमानों का शासन स्थापित हो चुका था। जनता एवं शासकों में राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा

---

१. इस पंक्ति पर जायसी के 'नयन जो देखे कंवल भए' की झलक देखी जा सकती है।

२. सुररंभ.वत, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ४०६ पर उद्धृत।

धार्मिक सम्पर्क उत्तरोत्तर दृढ़ हो रहे थे। फारसी के इन तत्सम-तद्भव रूपों के अतिरिक्त इन दोनों कवियों की भाषा में कटक, सीस, परबत, कुल, लाज, अकाश, पताल, वीर, तजिआ आदि संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्द भी मिल जाते है। परन्तु इस तथ्य को स्वीकार करने में संकोच नही हो सकता कि इन कवियों में भी फारसी मूल के शब्द संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्दों की अपेक्षा कही अधिक है। इस काल का पंजाब अशान्ति, अराजकता एवं अव्यवस्था से ग्रस्त था। जनसामान्य प्रायः अशिक्षित था। पढ़े-लिखे लोगों मे संस्कृतज्ञ वर्ग का सम्पर्क या तो गुरू परम्परा से था या फिर लाहौर, पटियाला, नाभा और जीद के दरबारों से था। इनके आश्रय मे पंजाब में वीर काव्य, रीतिबद्ध काव्य, रीतिमुक्त काव्य, भक्तिकाव्य (रामभक्ति एवं कृष्ण भक्तिकाव्य) लिखा गया। स्वतन्त्र रूप से भी इनमें से कुछ कवियों ने लिखा। प्रेमाख्यानकों में 'सूररंभावत', 'नलदमयंती', 'कथा हीर रांझनि की' एवं 'कथा कामरूप' तो उपलब्ध हो चुके है।[1] इनकी भाषा ब्रजोन्मुख ही है। फारसी पढ़े लिखे लोग सेना या किसी अन्य माध्यम से मुसलमान मनसबदारों एवं सामन्तों के साथ हो लेते थे और फारसी अथवा उर्दू में रचनाएं करते रहे। यह तथ्य विशेष रूप से अवधारणीय है कि पंजाबी के प्रेमाख्यानों में स्वीकृत कथाओं को फारसी में ही पहले रचनाबद्ध किया गया। दमोदर से भी पूर्व हीर कथा पर आधारित बाकी को लानी और सईद सइदी द्वारा रचित दो फारसी रचनाएं उपलब्ध होती हैं।[2] अतः जनसामान्य में अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित लोग ही थे और उनको मनोरंजन उपलब्ध करने का कार्य उन कवियों पर था जिन्हें कोई आश्रय प्राप्त न था।[3] आरम्भ में संस्कृत एवं फारसी के किसी विशिष्ट ज्ञान के अभाव में दमोदर एवं पीलू की रचनाओं मे नितांत ग्रामीणता के दर्शन होते है। उनकी रचनाओं में भी कुछ संस्कृत के तद्भव एव फारसी के शब्द मिल जाते है परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शासन प्रणाली में फारसी के प्रचलन के कारण इतने शब्द तो उस समय लोक में व्यवहृत होते ही होंगे। संस्कृत वर्ग से अलग होने के कारण तथा फारसी काव्य के अनुकूल वातावरण के अभाव में यह काव्य निराश्रित अवस्था में आरम्भ हुआ। अभिजात-साहित्य का परम्पराश्रित परिपार्श्व इसे प्राप्त न हुआ परन्तु सामान्य से सामान्य रचना मे भी उसकी आवश्यकता का अनुभव होता है। जिसकी पूर्ति के लिए कवि समुदाय अपने व्यक्तित्व एवं समाज के अनुकूल आश्रय की खोज करता है। पंजाबी में बरखुरदार ने इस बोलचाल की भाषा को परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा की ओर मोड़ने का कार्य आरम्भ कर दिया। बरखुरदार हाफिज था। कुरान के अतिरिक्त उसने फारसी मसनवियों का अध्ययन भी किया था। 'यूसफ जुलेखा' में उसने जामी की कृति के अनुकरण की बात स्वीकार

---

१. विस्तार के लिए देखे—पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चन्द्रकांत बाली।

२. प्रस्तुत प्रबन्ध, पृ० ५४८

३. ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ६४

भी की है।[१] इससे पहले लिखी गई उनकी दोनों रचनाओं 'सस्सी' एवं 'मिरजा साहिबा' से 'यूसफ जुलेखा' अधिक फारसीमय है। प्रथम दो रचनाओं की शब्दावली का स्वरूप दमोदर एवं पीलू के ही समान है। 'यूसफ जुलेखा' से पूर्व अनेक फारसी रचनाओं के अध्ययन[२] का यह परिणाम होना स्वाभाविक ही था।

हाफिज बरखुरदार ने पंजाबी किस्सा-काव्य के लिए फारसी का द्वार खोल दिया और साहित्य की धारा को फारसी की ओर मोड़ दिया। परवर्ती कवियों ने फारसी के तत्सम शब्दो का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया। कई शताब्दियों से राजभाषा होने के कारण फारसी से जनता के परिचय को इन कवियों ने प्रगाढ़ किया और अपना प्रभाव जमाया। अहमद, मुकबल, अब्दुल हकीम बहावलपुरी, हामद, अहमदयार, अमामबख्श आदि सभी कवियों ने फारसी शब्दों को प्राय: तत्सम रूप में और कही-कहीं तद्भव रूप में प्रयुक्त किया। इनमें एकाकी वारिस शाह ही ऐसा है जिसने लोक भाषा का आंचल नही छोड़ा। वारिस ने भी अरबी फारसी के शब्दों को अपनाया है परन्तु उसने उनको पहले पजाबी उच्चारण की छलनी में छानकर शुद्ध किया है। उसने मूल उच्चारण को त्याग दिया क्योंकि "वह पजाबी उच्चारण के अनुकूल नही बैठता।"[३] उदाहरणार्थ मखबली, असवार, मदत, खशामत, शगिरद, ततबीर, मिजमान आदि प्रस्तुत किये जा सकते है। वारिस ने अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय संस्कृत के शब्दों के परिवर्तन के समय भी दिया। वेसवा, धिआउ (अध्याय) निरघंट (निघंटु), नित्त, सूल, वैर विरोध, नलयेर, रैन, पखंड, नैण, भेत, हंकार, सुभाओ, छिद्र आदि ऐसे शब्द है जो पजाबीकरण के बाद स्वीकार किए गए। अन्य भाषाओं से गृहीत शब्दों को पंजाबी के अनुकूल बनाकर प्रयोग करने की प्रवृत्ति बाद मे केवल हाशम मे ही कुछ-कुछ दिखाई देती है। मुमारख, तबीत, खिजमत, बुजरक आदि के प्रयोग से तो सर्वसाधारण परिचित थे परन्तु इस प्रवाह में उन्होने कई बार ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया जिनमें अर्थ को पकड़ पाना कठिन हो गया। 'जिन' के बहुवचन 'जन्नात' के स्थान पर जनाइत, एव 'बराएखुदा' के स्थान पर 'बराखूद.' 'मसलहत' से 'मसलाहित' आदि। इसमें सदेह का अवकाश नही कि हाशम का झुकाव भी फारसी की ओर ही रहा। हाशम की कुछ रचनाएं हिन्दी मे भी मिलती है परन्तु उसके चारों प्रेमाख्यानों मे हिन्दी अथवा तत्सम, तद्भव संस्कृत शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। सज्जन, कुटीआ, पंथ, नदी, नैण, मिरग, नाग, औषध, नगर, नित, अकाशी, जगत, आदि कुछ एक लोक प्रचलित शब्द ही आ पाए है जबकि फारसी के वाक्याश तक मिल जाते है जैसे—

---

१. मुल्जा जामी दीआं तफसीरों आहसी नाविल होई।

—यूसफ जुलेखा पृ० ४८

२. कुल शाइरां दीआं सुण तकरीरों कीता नकल किताबों।

—वही पृ० ४७

३. हीर वारिस भूमिका, पृ० १२१

क. नाजक नाज पवरदा सुखीआ मेही चार न जाणे ।[1]
ख. चश्म पुर आब जिगर पुर आतिश ।[2]
ग. हिकमत नाल हकीम अजल दे ।[3]
घ. दाइम चरख फ़लक दा ।[4]

यह प्रवृत्ति अपने से पहले कवियों के अनुकरण के फल से ही आई माननी चाहिए । अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भाषा के मार्ग मे हाशम भी अन्य कवियों का ही अनुगामी रहा । वारिस का अनुगमन तो यदा-कदा ही किया गया ।

फारसी शब्दावली में प्रायः व्याकरण भी फारसी का ही प्रयुक्त किया गया । बहुवचन बनाने के लिए अनेक बार फारसी पद्धति को अपनाकर किए गये 'रूह से अरवाह', 'ताइर से तययूर,, 'सिर से इसरार' जैसे प्रयोग मिल जाते है । फारसी व्याकरण का जमाउलजमा (बहुवचन का बहुवचन) जैसे—'शुअरावां', 'उलमांवां' 'फुकरावां', 'मजालसां', 'दानांवो' । 'हुकमावां' के प्रयोग भी वारिस, हाशम, अहमदयार आदि में मिल जाते है । कई बार तो फारसी समासों को मूल रूप में ही स्वीकार कर लिया गया है परन्तु अधिकार इनको थोड़ा बहुत बदल कर या समास के कारण आए परिवर्तन को हटाकर पंजाबी भाषा के अनुकूल बनाकर प्रयोग किया गया है, जैसे 'हकीमे अजल' से 'हकीम अजल दे' , 'किताबे नजूम' से 'किताब नजूमे, 'जोबे जीनत' से 'ज़ीनत ज़ोब' आदि । इस प्रसंग में तीन रचनाए तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है । प्रथम दोनों रचनाए बहावलपुर रियासत के निवासी लुत्फअली कृत 'मसनवी सैफुलमलूक' एवं अब्दुल हकीम बहावलपुरी कृत 'यूसफ जुलेखा' है । ये दोनो एक समय मे हुए, दोनों ने अपनी रचनाओं मे नवाब बहावल खां की प्रशंसा की है, दोनों ने अपने पीर का नाम नूर मुहम्मद लिखा है परन्तु दोनों ने कही भी एक दूसरे का नामोल्लेख नही किया । इन दोनों रचनाओं में फारसी अरबी शब्दों की भरमार के कारण इनका आस्वादन सामान्य फारसी ज्ञाता पाठक के लिए भी असभव है । यूसफ जुलेखा तो जामी की रचना का फारसी प्रधान अनुवाद ही है । पजाबी के विद्वानों के अनुसार उसमें छंद भी जामी वाला ही स्वीकार किया गया है ।[5] इसी प्रकार अहमदयार रचित 'अहसनुल कस्सिस' में भी विदेशी शब्दों का अनुपात मूलभाषा की अपेक्षा कहीं अधिक है, बीच बीच में 'अरबी' वाक्यावली भी आ जाती है ।

इन विशेष अपवादों को यदि छोड़ दें तो भी पटाबी किस्सा-काव्य की भाषा में फारसी शब्दावली का बाहुल्य दृष्टि-पथ से ओझल नही होता । इन शब्दों का अनुपात इतना अधिक है कि 'शब्दावली' के कारण इ लोक-साहित्य' के क्षेत्र में नहीं समा सकते । अनेक बार फारसी का सामान्य ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी अर्थ ग्रहण में सफल नही हो पाते । इस स्थिति ने देश-विभाजन के पश्चात् तो पजाबी विद्वानों

१-४. हाशम रचनावली, स० प्यारासिंह पद्म, पृ० ५५, एवं ८०
५. पंजाबी शाइरांदा तजकरा, पृ० १३७ एवं कोइलकू पृ० २१२ ।

के समक्ष समस्या उत्पन्न कर दी है और इस दिशा को अपनी पहुंच से दूर होता देखलर वे विशेष चिन्तित हैं। इस 'फारसी बाहुल्य' के निम्नलिखित कारण माने जा सकते है[1]—

(क) इनके लेखक वे मुसलमान थे जिनका फारसी अरबी का ज्ञान सामान्य से अधिक था। वे दैनिक बोलचाल मे भी इनमें से अधिकांश शब्दों का प्रयोग करते थे।

(ख) मुसलमान साम्राज्य की लम्बी परम्परा के कारण जनसाधारण की भाषा मे अनेक फारसी शब्द प्रवेश कर गए थे, उनका प्रयोग रचना का श्रृंगार समझा जाता था।

(ग) बहुत से किस्से मुसलमानों के जीवन से गृहीत थे।

कारण कुछ भी रहे हों, परन्तु वास्तविकता ने आज के फारसी विद्वानों को परेशान कर रखा है।

ऐसी अवस्था मे 'किस्सा-काव्य' की लोकप्रियता एक पहेली बन जाती है। हमारे विचार मे जनता के आकर्षण का कारण इनकी 'स्वरभंगिमा'[2] है। पुनः अधिकतर सुपरिचित कथाओं को ही बारम्बार ग्रहण करने के कारण साधारण पाठक या श्रोता भाव ग्रहण करने में कठिनाई का अनुभव नही करता था। प्रवन्धान्तर्गत आने वाले स्थानीय प्रयोग, लोकजीवन से लिये ठेठ उपमान, लोकोक्तियां तथा मुहावरे, एवं लोक आशाओं, आकांक्षाओं की मूर्त अभिव्यक्ति इन रचनाओं को लोकप्रिय बनाती रही है। यह भी उल्लेखनीय है कि यह लोकप्रियता सभी पंजाबी किस्सा-कवियों को नही मिली। किस्साकाव्य रचयिताओं मे से अभी तक वारिसशाह, हाशम या कादिरयार जैसे तीन-चार कवि ही इस क्षेत्र मे चमक सके है। इन कवियो की रचनाओं के वाक्यांश प्रायः मजलिसों में, गर्मियों में दोपहर की धूप से थके हारे युवक अथवा प्रौढ़ किसी वृक्ष के नीचे, कुएं के किनारे अथवा सर्दियो मे लम्बी रात काटने के लिए अलाव के सहारे बैठकर सुनते थे। बीच-बीच मे उर्दू-मुशाइरों की पद्धति पर निजी भावाभिव्यक्तियां भी होती रहती थी। फलतः परिचित कथा के भावग्रहण में कठिनाई का अनुभव नही होता था। परन्तु इतना निस्सकोच कहा जा सकता है कि पंजाबी के किस्साकाव्य में 'फारसी की चाश्नी' की अधिकता से निपटने के लिए फारसी का ज्ञान अनिवार्य है।

फारसी काव्य का यह आश्रय किन्हीं काव्य-रूढ़ियों या साहित्यिक परम्पराओं के कारण नहीं लिया गया। इसको प्रायः अपना वैदुष्य प्रकट करने के लिए ही लिया गया। काव्य-रूढ़ियों की दृष्टि से तो यह काव्य निर्धन ही है।

पद-संघटना एवं वर्ण-योजना

काव्य-भाषा को साहित्यिक सौदर्य प्रदान करने की अभिलाषा बरखुरदार,

---

१. हाशमशाह ते किस्सा सर्सी पुन्नूं, पृष्ठ ३२, ३३

२. 'मसनवी सैफुलमलूक, पृष्ठ ३४

मुकबल, वारिस, लुत्फअली, अहमदयार, फजलशाह तथा मुहम्मद बख्श में अति मुखर है। परन्तु इनमें वारिस अवश्य ऐसा कवि है जो अपनी भाषा को काव्य-सौंदर्य प्रदान करने के साथ-साथ अनेक स्थानों पर लोकभाषा के इतना समीप ठहरा हुआ है कि उससे सरल भाषा की कल्पना भी नही की जा सकती। शब्द-चयन का यह गुण हिन्दी के कई कवियो मे मिल सकता है, जायसी तो इसमे प्रवीण है। भाषा के क्षेत्र में शब्द-चयन का जो कौशल जायसी में देखने को मिलता है पजाबी में उसकी झलकमात्र वारिस में ही मिल सकती है। रांझा प्रातःकाल उठकर चला प्रातःकाल के उस दृश्य में भाषा की स्वाभाविकता के साथ-साथ पंजाब के गांवों का प्रातःकालीन चित्र मूर्तिमान हो जाता है —

"चिड़ी चूहकदी नाल जां तुरे पांधी, पईआं दुध दे विच्च मधाणीआं नीं।
उठन्हावणे वास्ते जुआन दौड़े, सेजां जिन्हां ने रात नूं माणीआं नीं॥"[1]

अथवा जोगी रांझे को देख मूर्च्छित एवं उन्मत ग्राम-कन्याओं का यह चित्र कितनी स्वाभाविक एवं सरल भाषा में अभिव्यक्त हुआ है। फारसी की अपेक्षा तद्भव-संस्कृत शब्दावली का प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

"पिछों होर आईआं मुटिआर कुड़ीआं, रांझा देख के मूरछागत होईआं।
अक्खीं टड्डीआं रहीओ ने मुख बन्ने, टगा बाहां विकाइ बेसत्त होईआं।
आओ वेख के पुच्छीए नड्ढडे नूं धिआन वेख के जोगी उदमत्त होईआं।
धुप्पे आणि खड़ोतीआं वेखदीआं नीं मुड़के न्हातीआं ते रत्तो रत्त होईआं।"[2]

शब्द-चयन की ऐसी स्वाभाविक सिद्धि हिन्दी में जायसी को थी। सरोवर के किनारे खेलने को आई हुई कन्याओं का कैसा स्वाभाविक वार्तालाप है। न शब्दों का समस्त रूप न कठिन अप्रचलित या कर्णकटु शब्द—

"ऐ रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिनचारी॥
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जौ खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गौनव काली। कित हम कित एह सरबर पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथाँ। कित मिलि कै खेलब एक साथा॥
सासु ननँद बोलिन्ह जिउ लेही। दारुन ससुर न आवै देहीं॥"[3]

प्रसंगतः इन दोनों दृश्यों में प्रयुक्त वर्ण-योजना पर भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा। वास्तव में यहीं से दोनों भाषाओं के कवियो के अभिव्यक्ति-कौशल का सकेत मिल जाता है। जायसी ने अत्यन्त कोमल एवं मधुर शब्दावली का प्रयोग किया है। उसमें सयुक्त एवं द्वित्व वर्णो का अभाव है। जबकि वारिस की शब्दावली में टवर्ग के अनेक प्रयोगों से शृंगार रस विरोधी ओजगुण की झलक मिलती है। प्रसंगानुसार वर्णयोजना एवं दृश्यानुसार शब्द-चयन की जैसी सूझ हिन्दी के कवियों में देखने को

१. हीर वारिस, पृ० १२
२. वही, पृ० १०५
३. पदमावत, पृ० ६१

मिलती है वैसी पंजाबी में नही । इतने विशाल साहित्य में से अच्छे बुरे दोनों ही प्रकार के कुछ उदाहरण जुटा पाना कुछ कठिन कार्य नही परन्तु तथ्य यही है कि पंजाबी का कवि कथा को या घटना को वर्णन करने में ही रुचि लेता है। भाषा के परिष्कार, वर्णों की योजना, भावानुसार शब्दचयन के प्रति वह सदैव उपेक्षापूर्ण रहा ।

काव्य-रचना में वर्णयोजना का स्थान महत्वपूर्ण है । प्रत्येक वर्ण की अपनी ध्वनि है और समुचित वर्णो के प्रयोग से शब्दों का सौदर्य निखरता है। वर्णो का अनुकूल सामंजस्य होने पर ही कविता का मनोवांछित प्रभाव उत्पन्न होता है । यदि किसी कोमल तथा सुकुमार भाव के वर्णन मे कर्णकटु वर्णो का आधिक्य हो जाए तो वर्ण-विन्यास सदोष होने के कारण प्रभावहीन हो जाएगा । आचार्यो ने साहित्य में रीतियों तथा गुणों के विधान द्वारा वर्णयोजना के औचित्य का ही प्रतिपादन किया है । हिन्दी के प्रेमाख्यानों में प्राय: इस दिशा में कवि जागरूक रहे हैं ।

(क) माधुर्य गुण में वर्ण-योजना

माधुर्यगुण में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली के अन्तर्गत ट, ठ, ड, ढ का प्रयोग वर्जित है । इस रचनावली में समासरहित अथवा अल्प समासयुक्त कोमलकान्त पदावली तथा मधुर-ललित-वर्ण योजना के द्वारा कवि मार्मिक प्रसंगों को प्रभावपूर्ण बनाते है । शृंगार, करुण अथवा शान्त रसों या सामान्य वर्णनों में इस प्रकार की योजना विशेष रूप से समादृत होती है । चंदा का रूप वर्णन करते समय दाऊद का यह शब्द-चयन दर्शनीय है कहीं भी तो चार अक्षरों वाले शब्द का प्रयोग नही । नायिका के शरीर की सुगंध से सुवासित इस शब्दावली का लालित्य अनुपम है—

"करी पुहप तस अंग गंधाई । रितु बसंत चुहुँ दिसि फिरि आई ।।
अंगु बासु नौ खंड गंधाने । कुसम केतकी भंवर लुभाने ।।
इंदु गोइंदु चंदु अरु दिनियरु बरंमा बिसनु मुरारि ।
गन गंध्रप रिखि देवता देखि बिमोहे नारि ।।"[1]

इस प्रकार की पदावली हिन्दी में प्राय: प्रयुक्त हुई है । रूपमंजरी कृष्ण को स्मरण करती रहती है ! उसका वर्णन करते समय नंददास की वर्ण-योजना का एक भी शब्द कर्णकटु या समस्त नहीं —

"निसि दिन तिय बिनती करति और न कछू सुहाय ।
मन के हाथनि नाथ के पुनि पुनि पकरति पाय ।।"[2]

'जान' जैसा साधारण कवि भी शब्द-योजना एवं वर्ण-योजना के प्रति असावधान नही—

"नैक नैन करि मैन जनावहु । दै दै लाई कहा जरावहु ।।
जो तुम पग धारे धर मेरै । खेलहु हंसहु नैकु ह्वै मेरै ।।

---

१. चांदायन पृ० ८०

२. नंददास ग्रंथावली, पृ० १२६

काम लता नित करत बिलाप। जारत तनहि पैमु की ताप ।।"[1]

अथवा—

अजहूं कली फूल न भई, रूप वास तौऊ जग छई।
सादे बसन सेत ही अंग, तामें बदन कंवल मधि गग ।।"[2]

एक उदाहरण कवि नूरमुहम्मद कृत इन्द्रावती से भी प्रस्तुत है—विवाह के समय का यह दृश्य कैसी सगीतपूर्ण शब्दावली में प्रस्तुत हुआ है—

बाजन बाजै साजन साजै,
लाजन लाजै काजन गाजै ।।
संग न सौहैं अंग न मोहैं।
अंगन गोहैं भंग न होहैं ।।
सबै रीझ देखैं बर प्यारा।
दिष्ट बिद्रावन मगु पर डारा ।।
बर कै अधर पान रँग राता।
लखि मनिक औ लाल लजाता ।।
रहसि कहैं आगमपुर लोगू।
धन धन बर इन्द्रावति जोगू ।।
जो देखा सोइ रीझा, धन धन सब मुख होइ।
बिनु मोहें बिनु रीझे, एको रहा न कोई ।।

इन्द्रावती, १७०

परन्तु पंजाबी में इस प्रकार की वर्ण योजना एवं शब्द-चयन अति कठिनता से ही मिलेगा। रसमग्न करने वाले स्थलों की न्यूनता के कारण माधुर्यपूर्ण प्रसग यहां कठिनाई से मिलते है। यूसफ को स्वप्न में देख जुलेखा की व्याकुलता का वर्णन करते पर्याप्त संयत रहते भी बरखुदार के वर्णन में वैसा सौष्ठव नही आ पाया—

न उस सबर न करार न नींदर न रोवे न हस्से।
जिस दा नाम निशान होवे, आख वेखां की दस्से ।।
जित्थे तीर बिरहों दा लग्गे, घाउ न नजरीं आवे।
जलता जरा न छोड़े अंगा, गुजर दुसल्लू जावे ।।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में सबर, करार, नीदर, रोवे, हस्से आदि शब्दों में यद्यपि कर्ण कटु वर्णो का अभाव है परन्तु योजना मे वह लालित्य नही जो मधुर गुण या वैदर्भी रीति के लिए अपेक्षित है। नाद-सौदर्य का अभाव इनमें खटकता है। इसी प्रकार सोहणीं का यह चित्र भी माधुर्य एव लालित्य की भावना से शून्य ही है—

१-२. सूफी-काव्य-संग्रह, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १४६, १५३
३. यूसफ जुलेखा, पृ० ४६

जिउं जिउं गोते खाँवदी सोहणीं विच्च नजूल ।
बद दुआइ मूंह थीं देंदी हो मशगूल ।
घड़ा वटावण वालीए भला ना होवी मूल ।
विच यराने क़ादरा पाइश्रा ओस फतूल ।।[1]

ऐसी वर्ण-योजना माधुर्य की अपेक्षा प्रसाद के अन्तर्गत ही मानी जाएगी ।

(ख) प्रसाद गुण में वर्ण-योजना

प्रसादगुण, में श्रवण मात्र से अर्थबोध कराने वाले सरल एव सुबोध शब्दो का प्रयोग होता है । इस वर्ण-योजना में माधुर्य गुण सा लालित्य एवं माधुर्य तो नहीं होता परन्तु रूक्षता अथवा कर्ण कटुता भी नहीं होती । अधिकतर वर्णनात्मक काव्यो में इसी का प्रयोग होना चाहिए । इन प्रसंगों में सयुक्ताक्षरों का अभाव और शब्द स्वाभाविक बोलचाल के अधिक समीप होते है । हिन्दी मे माधुर्य के बाद इसी का प्रयोग हुआ है और पंजाबी में इसी का ही अधिक प्रयोग है । परन्तु पंजाबी में बीच-बीच में कर्ण कटु शब्दों का प्रयोगाधिक्य प्रसाद के सौंदर्य को खंडित कर देता है । मायके से जाती हीर का विदाई दृश्य कण्व ऋषि के आश्रम से जाती शकुन्तला की याद दिलाता है । इस प्रकार के वर्णन पंजाबी साहित्य में गिने चुने है परन्तु वर्ण-चयन में माधुर्य का अभाव खटकता है । कण्व के आश्रम का सौंदर्य तो यहां नहीं परन्तु जो कुछ है उसका यथार्थ एवं व्यथापूर्ण वर्णन इस प्रकार है—

रोंदे आतण ते रोंदे विहड़े जिउं जिउं विदा करेंदी ।
रोवण बिरख बबूल पखेरू सहीआं वारे देंदी ।
रोवे माऊ न मूहों अलाए फिरदी पेट खुहेंदी ।
आख दमोदर आखे महिरी मैं रांझे ताई देंदी ।
रोवण पत्तर दरखतां सदे रोवण बूटे काहीं ।
रोवे बुड्ढी नड्ढी लोका रोवण सत्ते पाहीं ।
जुलिआ कटक मही सिलेटी वंजण जोगी नाहीं ।
इसदे राज सिआलां देविच सितम कहीं सिर नाहीं ।[2]

---

१. कादर यार, पृ० ८६

२. अर्थ—हीर की विदा के समय सम्पूर्ण ग्राम बालाएं रो रही थी । जैसे-जैसे वह विदा हो रही थी ग्राम प्रांगण रो रहे थे । वृक्ष, बबूल, पशु पक्षी सभी उसकी विदा पर अश्रु बहा रहे थे । माता रो रही थी, वह मुंह से कुछ न बोलती हुई भी अपना पेट बार-बार नोचती थी, वह कहती यदि यही होना था तो मै इसे रांझे को ही दे देती । उस समय वृक्षों के पत्ते एवं जल की काई घास भी रो रही थी । वृद्धा एवं बालिकाएं ही नही सप्तलोक रो रहे थे । सारा दल चल पड़ा परन्तु सलेटी जाने में असमर्थ है । इस सियाला राज्य में किसके सिर अत्याचार का दोष नही ?

—हीर दमोदर पृ० १५१

सिवाए टवर्ग की योजना के इस वर्णन में प्राय: सर्वत्र माधुर्यापेक्षित वर्णो का ही प्रयोग है परन्तु वातावरण में निश्चय ही माधुर्य का अभाव है। उस गाँव की ललित वस्तुओं का संभवत: हीर से सम्बन्ध ही नहीं था। रूक्षता मुख्य हो गई है, पेट खुहेदी, नड्ढी-बुड्ढी आदि के प्रयोग मधुर की अपेक्षा सरलता के कारण प्रसाद गुण के ही अनुकूल माने जा सकते है। मुकबल में भी प्रसाद गुण का ही सौंदर्य है। माधुर्य वहाँ भी कम ही है। कामलता को स्वप्न में देख कामकंवर की व्याकुलता सम्पूर्ण अवध में व्याप्त हो गई। माता एवं नगरवासियों के विरह का वर्णन करते अहमदयार माधुर्य की सृष्टि नही कर पाते --

मुट्ठीं नीं मैं ऐस विछोड़े काम कंवर लद्द चलिआ ।
अक्खीं वेखदी आंई बेटा मां पिउ पासों हल्लिआ ।।
अवध नगर विच पिआ ककारा रोवण लोक वचारे ।
थर थर कोट शहर दा कबे बागां दे रुख सारे ।।
माईआं दाईआं सदके जावन लै लै कवर कलावे ।
इक पल किसे आराम न आवे नैनीं नींद न आवे ।।
पकड़ मुहारां रोन असीलां कहे असाडे लग्गो ।
काम कवर जिद जान असाडी ठग्ग न खड़िओ ठग्गो ।।[1]

पहली ही पक्ति में मुट्ठी, एवं विछोड़े और 'लद्दचलिआ' के प्रयोग पुन: 'हाल्लिआ' जैसे शब्दो में माधुर्य का अभाव है 'माईआं' 'दाईया' वाली पक्ति के अतिरिक्त सम्पूर्ण पक्तियों में प्रसाद का ही विस्तार है। 'पकड़ मुहारा रोन असीलां' में भी काव्यात्मक सौंदर्य की अपेक्षा ग्राम्यता ही प्रधान है। फजलशाह की करुण रस प्रधान इन पंक्तियों में शब्द-चयन एवं वर्ण-योजना कर्ण कटु है। प्रारम्भिक प्रसाद योजना अन्तिम चरणों में टकार के प्रयोग से दूषित हो गई है—

आप आइ के मुख विखा सोहणां, मरदी वार ता शुकर गुजार मैंनूं ।
मोई मोई वी पई पुकारसांगी, कीकर भुल्ल वैसी तेरा पिआर मैंनूं ।
पई धाड़ अजगैब दी ताड़ के ते राहों लुट्टिआ ई मेरे यार मैंनूं ।
फजल मार पिआरिआ ला छाती, गमखार मेरे दिलदार मैंनूं ।।[2]

इन कवियों का सौदर्य बोध इस ओर से अवरूद्ध है। वर्ण-योजना के महत्व के प्रति उनका दृष्टिकोण नितान्त उपेक्षापूर्ण है—

"हीर आखिआ बैठके उमर सारी, मैं ताँ आपणे आपनूँ साड़नी हां ।
मता बाग गइआं मेंरा जीउ खुल्हे, अंत एह भी पाड़ना पाड़नी हां ।
पई रोनी हां करम मैं आपणे नूं, कुझ किसे दा नहीं बिगाड़नी हाँ ।
वारिसशाह मीआं तकदीर आखे, वेख नवां मैं खेड पसारनी हां ।[3]

---

१. किस्साकामरूप (अहमदयार) पृ० १६
२. सोहणी महीवाल (फजलशाह) पृ० ४२
३. हीर वारिस, पृ० १८१ ।

इन पंक्तियों में 'रदीफ' ही माधुर्य विरोधी है।

मुहम्मदबख्श ने भी सजी-धजी नारियों का वर्णन करते समय इसी प्रकार की वर्णयोजना की है --

हिकना दे सिरि सावी चादर गल विच्च कुड़ते काले ।
सुत्थन जटकी सिर पर मटकी टुरन कबूतर चाले ॥
मोढे मारन बाहां उलारन गरदन लक्क मरोडन ।
हुसन मरोड़ा करन अजोड़ा तरोड़ा देइ तरोड़न ॥
नैण कटारां, भवां कमानां नक्क खंजर बेदसते ।
नाल सईआं दे खह गईआं दे कोठे मिलण चौरसते ।
कुंडलदार दो जुलफां लटकण भिन्नीआं नाल फुलेलां ।
चल्लण बण के, झांजर छणके, मनके हार हुमेलां ।[1]

टवर्ग के इस प्रयोग बाहुल्य के कारण विषय एव प्रसग की कोमला बाधित हुई है।

(ग) हिन्दी प्रमाख्यानों में ओजगुण में उपयुक्त वर्ण-योजना का अभाव

ओजगुण में द्वित्व वर्णो, सयुक्त वर्णों एव टवर्ग के प्रयोग के द्वारा ओज एवं पारुष्य की अभिव्यक्ति की जाती है। यह गुण वीर अथवा रौद्ररसों के अनुकूल है। प्रेमाख्यान-काव्यों में इसका प्रयोग बहुत कम स्थलों पर ही हुआ है। हिन्दी में तो युद्ध के प्रसंगों में भी इसका समुचित उपयोग नही किया गया। बहुत कम स्थल ऐसे हैं जहाँ पर इस प्रकार की वर्णयोजना की गई हो—

लई हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा । जैसें सिंध बिडारै घटा ।
जेहि सिर देइ कोपि करवारू । सिउँ घोरा टूटे असवारू ॥
टूटहिं कंध कबंध निनारे । माँठ-मँजीठ जानु रन डारे ।
खेलि फागु सेंदूर छिरिआवे । चाँचरि खेलि आगि रन धावै ॥[2]

यदि देखा जाए तो इन पक्तियों में कुछ टवर्ग वर्णो की योजना मात्र है। ओजगुण सम्बन्धी अन्य योजनाएं, जिनमें द्वित्व वर्ण एवं रकार अथ च समासबहुल पदावली का महत्वपूर्ण स्थान है, इनमें नही है। जायसी के ही समान अन्य कवियों में भी यही प्रवृति पाई जाती है। हिन्दी प्रेमाख्यानों में माधुर्य एवं प्रसाद गुणों के ही पुनः पुनः दर्शन होते हैं। ओजगुण अथवा परूषा वृत्ति तो प्रेमाख्यानों की भावना के ही विरूद्ध है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है।

दामो कृत लखमसेन पद्मावती कथा मे युद्ध वर्णन में टवर्ग की योजना मात्र है अन्यथा वहाँ प्रसाद गुण युक्त शब्दावली की ही बहुलता है—

भिड़इ राय बहुल प्रचंड । लखमसेन तोलइ भुवदड ॥
रगत धार नदी घण बहइ । लखमसेन रिण आगमि रहइ ॥

---

१. सैफुलमलूक, पृ० ३२६

२. पद्मावत, पृ० ६६३

तुटइ कमल धड़ उपरि पड़इ। मांहो माँहि सूर इमि भिड़इ ।
धड़ सु धड़ जुड़इ रिण जोर । हा सबद हुऔ जग सोर ।।
रगत प्रवाह नदी अति बहइ। अश्व गज-मछ कछ सम रहइ ।।
सुकवि दामो कहइ बखाण । हू औचका हो गिध मसाण ।।[1]

कवि नूर मुहम्मद का युद्ध वर्णन तो और भी कोमल पदावली से युक्त है —

भयेउ घटा ढालन सों कारी । खरगन भये बीज चमकारी ।
गेदां सीस खरग चौगानू खेलहिं बीरहिं चढ़ि मैदानू ।।
× × ×
गगन खरग सों ठन ठन गयेउ। हिन हिन औ घुन हन हन भयउ।
वोनई घटा घूर सों, दिन मनि रहा छिपाय ।
तहां महाभारत भी, सबद परेउ हू हाय ।।[2]

(घ) पंजाबी भाषा का वैशिष्ट्य

स्वभावतः पंजाबी भाषा की प्रवृत्ति ओजोन्मुख है अतः इसमें माधुर्यगुणयुक्त प्रसंगों की योजना दुर्लभ है। प्रेमाख्यान-साहित्य में वर्णन के अनुरोध से अधिकांश में प्रसादगुण एवँ पाचाली रीति के ही दर्शन होते है। 'परूषावृत्ति' के अनुकूल प्रसंग तो वहां भी बहुत थोड़े है परन्तु प्रसादगुण बहुला शब्द-योजना में प्रायः द्वित्व वर्णो एवं टवर्ग के दर्शन हो जाते है। वर्ण-योजना के प्रति जागरूकता इन कवियों में प्रायः नहीं मिलती। वर्ण एवं शब्द-चयन के प्रति किसी जागरूकता का अभाव, होते हुए भी चरण के अन्त मे रदीफ एवं काफिए के प्रयोग के लिए इनमें कुछ आग्रह है सामान्यतः इनका वर्ण-चयन एवं शब्दावली इस कोटि की है —

जिहड़े कदर न समझण आदमीदा,
उन्हां आदम खोरां थी नस्सीए नी ।
रल सट्ठ सहेलीआं खेड़दीआं सां,
हुण चल्लीए छड्ड बें वस्सीए नी ।
उत्थे रेत जिवें मारू भट्ठ लू दे,
त्रेह नाल मर जावसे तस्सीए नी ।
सेआं कोहां दे पंडे ते कीचमिकरान
अहमदयार आखे तैनूं सस्सीए नी ।[3]

इसमें टवर्ग के अतिरिक्त सामान्य द्विवित्व वर्णो का भी गुम्फन है। यह ओजोन्मुख प्रसाद-पूर्ण वर्ण-योजना हिन्दी की माधुर्योन्मुख प्रसादमयी वर्ण-योजना से स्पष्टतः भिन्न दिखाई देती है। यह दो भाषाओं की प्रवृत्ति का भेद तो है ही कवियों के सौदर्य-बोध का भी इसमें विशेष योगदान है।

---

१. लखमसेन पद्मावती कथा, पृ० ३४
२. इन्द्रावती, पृ० ६८
३. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृ० १०७

मुहावरे—भाषा की कसावट, शक्तिमत्ता, लाक्षणिकता एवं प्रभावपूर्णता के लिए मुहावरों एव लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से उक्ति में प्रौढ़ता एवं सजीवता तथा प्रवाहशीलता आ जाती है। यह एक माना हुआ तथ्य है कि हिन्दी में इनका प्रयोग बहुत कम हुआ है। सूर, तुलसी, बिहारी और घनानंद के अतिरिक्त शायद और कोई इस दशा मे सफल नही हुआ।[1] दोनों भाषाओं के प्रेमाख्यानों में मुहावरों के प्रयोग की स्थिति जाँचने के लिए दस-दस कवियो की लगभग बीस-बीस पक्तियों से मुहावरे छांट कर हम इस निश्चय पर पहुचे है कि पंजाबी के प्रेमाख्यानों में मुहावरो का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत अधिक हुआ है।[2] हिन्दी के मंझन एवं जायसी में ही मुहावरों के प्रयोग की रुचि है जबकि पजाबी में प्राय: सभी कवियों ने अधिकाधिक मुहावरे प्रयुक्त किए है। इसका एक कारण तो यह है कि पंजाबी की रचनाओं में कथोपकथन की योजना बहुत अधिक है। अधिकाश रचनाओं में संवादों के प्रसंग मूल रचना के आधे से भी अधिक भाग मे फैले हुए है ऐसी अवस्था मे बोलचाल की भाषा की स्वाभाविकता के लिए यह अनिवार्य-सा हो जाता है कि वार्तालाप में मुहावरों का प्रयोग हो। दूसरा कारण, जैसा कि प्राय: स्पष्ट किया जा चुका है कि इन कवियों की रुचि किसी अभिजात साहित्य की पृष्ठभूमि में परिमार्जित नही हो पाई। मुहावरों का आधिक्य इस बात का प्रमाण है कि ये रचनाएं गभीर या प्रौढ़ साहित्य की कोटि में नही आती। हिन्दी के रीतिकालीन कृष्ण कवियों में गोपी उद्धव सवाद के प्रसंग मे मुहावरों का प्रयोग हुआ है। उस वाग्वैदग्ध्य में निश्चय ही गंभीरता एवं आभिजात्य की न्यूनता है। अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति बोलचाल में मुहावरों का जैसा प्रयोग करता है वैसा पढ़ा लिखा गभीर व्यक्ति नही।

लोकोक्तियों या मुहावरों का सानुपातिक प्रयोग यदि भाषा की कसावट का द्योतक है तो इनका प्रयोगाधिक्य यह प्रकट करता है कि रचयिता मे अभी तक अभिजात एवं प्रौढ़ साहित्य-रचनापेक्षित प्रतिभा नही आ पाई। पजाबी के कवियों ने फारसी शब्दावली मात्र के प्रयोग से अपनी वरिष्ठता का आभास देने का यत्न किया है अन्यथा उनमें लगभग सभी सामान्य प्रतिभा के कवि है। पुनः, यारों के सवाल का जवाब भी तो यारों की समझ के अनुकूल भाषा में ही होना चाहिए। यही कारण है कि अपना श्रोतृवर्ग कभी भी इनकी दृष्टि से ओझल नही होता। पंजाबी के प्रेमाख्यानों में वर्णन का आग्रह है, दृश्य या भाव वर्णन का नहीं; घटना या कहानी वर्णन का। उसे सजाने, संवारने के लिए न तो प्रांजल भाषा का प्रयोग हुआ न ही कहने की सुन्दर शैलियों का प्रचलन। इन कवियों के विषय में डॉ० मोहनसिह का यह कथन सर्वथा उचित है कि इस काल की रचनाओं का आकलन करते समय यह स्पष्ट

---

१. मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डॉ० उमाकान्त गोयल, पृ० ३११

२. देखिये परिशिष्ट

हो जाता है कि इस साहित्य गगन में छोटे-छोटे नक्षत्र समूह तो अनेक है परन्तु मुख्य नक्षत्र बहुत थोड़े। इनके सामूहिक प्रकाश ने प्रेमाख्यान और गीति की दो भिन्न-भिन्न छवियों से उस रुग्ण युग के विकृत मस्तिष्क को शान्त करने का यत्न किया।[1]

उन्होंने यह बात उत्तर मुगल काल के साहित्य के प्रसंग में कही है परन्तु यह सम्पूर्ण मध्यकालीन पजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य पर लागू होती है। पजाबी प्रेमाख्यान साहित्य की यह विडम्बना है कि उसे आरम्भ में ही न कोई जायसी मिला और न अलाओल।[2] बगला के कवि अलाओल ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा के द्वारा मुसलमान बंगाली कवियों के लिए ऐसा राजमार्ग तैयार कर दिया जिस पर चलकर वे प्राचीन भारतीय साहित्य का कोना-कोना देख सकते थे। अलाओल के योगदान की प्रशंसा करते हुए प्रोफेसर दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है कि "एक मुसलमान लेखक के लिए यह गौरव का विषय है कि उसने बंगला में संस्कृत शब्दों का विशाल भण्डार प्रचलित कर बंगला साहित्य में प्राचीन शास्त्रीय परम्पराओं का पुनरुत्थान किया। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय का कोई भी हिन्दू कवि उससे समता नहीं कर सकता।"[3] बंगला को अलाओल मिल गया, हिन्दी को दाऊद, जायसी एव मंझन जैसे कवि मिल गए। जिन्होने नवीन लेखकों को इस भूमि की साहित्यिक परम्पराओं से सबद्ध कर दिया परन्तु पंजाबी भाषा को एक भी ऐसा कवि न मिला जो इस धारा को विशाल भारतीय रिक्थ से सबद्ध करता। फलतः ये रचनाएं साहित्यिक मानदण्डों से सामान्य कोटि की ही ठहरती है। इनमे प्रयुक्त अलकार-विधान एवं छंद-विधान के सामान्य विवेचन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

इसके विपरीत हिन्दी प्रेमाख्यान साहित्य में सामान्य से सामान्य रचना भी परम्परागत साहित्यिक सौष्ठव की धारणाओ की नितान्त उपेक्षा नहीं कर सकती। यह सोचना अयुक्त है कि हिन्दी के कवियों को कोई विशेष राज्याश्रय प्राप्त था। राज्याश्रय में या राजपुरुषों के मनोरंजन के लिए लिखे गये प्रेमाख्यानों की संख्या बहुत थोड़ी है, उनमें सर्वत्र एक साहित्यिक अनुशासन को पालन करने की प्रवृत्ति अवश्य है, जो किसी भी परम्परागत अनुशासन की उपेक्षा करने वाले पजाबी स्वभाव के सर्वथा विपरीत होने के कारण पजाबी की रचनाओं मे दुर्लभ है। साहित्यिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से दरबारी कवि लुत्फअली की रचना विशेष महत्व की है।

शब्दालंकार—अभिव्यक्ति-सौष्ठव का प्रमुख साधन शब्दालंकार है। इसमें

---

१ ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर, डॉ० मोहनसिंह, पृ० ७

२. अलाओल (सत्रहवीं शती ईसवी उत्तराई) इस कवि ने दौलतकाजी की प्रसिद्ध रचना सती मयनावती के अन्तिम अंश को पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त पद्मावती, सैफुल मुलूक, सप्तपयकर (हफ्तपैकर का अनुवाद), तोहफा, सिकन्दरनामा, यूसुफ जुलैखा, लायला मजनूं, खोसरोनामा तथा अजिज़ कुमार रसवन्ती आदि रचनाएं लिखी है।

—बंगला साहित्येर इतिहास, कुमारसेन पृ० ६१२

३. हिस्ट्री आव् बंगाली लैंगुएज एण्ड लिट्रेचर, पृ० ५२८

सन्देह नही कि शब्दालंकारों का मुख्य क्षेत्र मुक्तक है परन्तु माधुर्य, सगीत एवं बौद्धिक विस्मय की सृष्टि करने वाले कुछ शब्दालंकार आख्यान-काव्यों में भी प्रयुक्त होते है, यदि उनमें चमत्कार का अश प्रधान हो जाये तो ये कथा-प्रवाह एवं रसास्वादन में अवश्य बाधक हो जाते है। परन्तु सीमा के भीतर प्रयुक्त अनुप्रास, यमक, वीप्सा, पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलकारों के द्वारा भाषा का स्वरूप शोभन एव मनोज्ञ बनता है।

अनुप्रास—ध्वनिसाम्य पर आधारित अनुप्रास का क्षेत्र वर्णगत है । वर्णो की समानता को अनुप्रास कहते है। छेकानुप्रास (अनेक वर्णो की एक बार आवृत्ति), वृत्यनुप्रास (एक या अनेक व्यंजनों की वृत्ति एव क्रमानुसार अनेक बार आवृत्ति), श्रुत्यनुप्रास (एक उच्चारणस्थानीय वर्णो की आवृत्ति), अन्त्यानुप्रास (छद के अन्तिम वर्णों का समान तुकान्त होना) ये चार ही प्रमुख भेद है। एक ही पद्य मे वर्ण विशेष का दो तीन बार आजाना कोई असाधारण बात नही अतः यह समझना उचित नही कि सभी पद्यों में अनुप्रास उपलब्ध हो जाता है। अनुप्रास अलंकार की स्थिति तभी होगी जब उनमें अधिक व्यवधान न हो। हिन्दी एवं पजाबी में इसके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं—

हिन्दी (छेकानुप्रास)—

१. अस सुनि राईहि बीरा दीन्हा, सीसु नाइ कइ लोरहि लीन्हा।

—चांदायन, पृष्ठ ३०४.

२. रहत तऊ मन मधुकर भूल। —(जान) कथा छीता, छिताई चरित, १४१.

३. चंदन चित्र भए बहु भांति, मेघ घटा जानहु बग पांति
टूटहिं कंध कबंध निनारे, माठं मजीठ जानु रन डारे।

—पदमावत, पृष्ठ ६६३.

४. भा भिनुसार चला उठि राउ पिरम पंथ सिर दै कै पाउ।

—मधुमालती, पृ० १५३.

५. हौं अबला कोमल सुकुमारी। सो सठ मदन पचसर मारी।

—रसरतन, पृष्ठ ४८.

६. अधर मधुर मधि देख सुढारी। अरुन पाट जनु पुई पवारी।

—रूप मंजरी, नंददास ग्रंथावली पृ० १२३.

वृत्यनुप्रास—

१. सेंदुर सम सुन्दरि के नैना, बिदुरे होए न बोलइ बइना।

—छिताई चरित पृष्ठ १००.

२. चारु चंद अरु चाँदनि चंदन चर्चित अंग। —रसरतन, पृष्ठ ३०.

३. भर भादों दूभर अति भारी। — पद्मावत, पृष्ठ ३४६.

४. चौका की चमक चक चौंधतु चतुर चित। —माधवानल नाटक, पृष्ठ १०.

श्रुत्यनुप्रास—

१. बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर। —पद्मावत, पृष्ठ ३४७.

२. सुलतानि बदिन कइ खैली ॥ —छिताई चरित, पृष्ठ ३३.

३. रतिनाथ देषि तहा धवल धाम। —रसरतन, पृष्ठ ३१.

पंजाबी—छेकानुप्रास—

१. तां मसलत मिल बैठे साऊ। —हीर दमोदर पृष्ठ ८७.

२. मन मन्ने दा वैद हुण आइआ नी। —हीर वारिस, पृष्ठ १९३.

३. नेहुं नाल बेकदरदे ला बैठी। —सस्सी अहमदयार, पृष्ठ ९६.

४. घर घुमिआरां जाइ के कीता उस सदा। —सोहणीकादर, पृष्ठ ७८.

वृत्यनुप्रास—

१. नाकस नीच नफस दे तालिब। —हाशम रचनावली, पृष्ठ १२४.

२. जत्त कत्त में मित्त दे हित्त मरसा,
ऐस चित्त नूं नित्त अवल्लीआंनी।
—हीर (अहमदयार), गुलदस्ताहीर पृष्ठ १३६.

३. सबजा देखि होंदा दिल ताजा बोल सुणांदी दिल दे।
—सैफुलमलूक, पृष्ठ २१३.

४. कीती मरद मुराद मुयस्सर छोड़ खुदी खुद बीनी।
—मसनवी सैफुलमलूक, पृष्ठ ३४८.

श्रुत्यनुप्रास—

१. धन्न यूसफ नूं सिरजन हारा, जिस इह सूरत साजी।
—यूसफ जुलेखा, पृष्ठ ४५.

२. उसदी धुन्नी तुंग शराब दी आशक घुट्ट पीवन्न।
—मिरजा साहिबां, बरखुरदार, कोइलकू, पृष्ठ ११५.

३. तदों रब्ब दा नाम धि आईए नी।
—सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), पृष्ठ १०५.

४. चीजां चार खुदा ने दित्तीआं ओस नूं दौलत भारी।
—शहबहराम हुसन बानो, (अमामबख्श) पृष्ठ ४३.

अन्त्यानुप्रास के उदाहरण तो इन रचनाओं में प्रति पंक्ति उपलब्ध होते हैं। हिन्दी में 'बीसलदेव रासो', 'मृगावती' एवं 'छिताई चरित' की कुछ पंक्तियां ऐसी मिल जाएगी जिनमें अन्त्यानुप्रास न हो परन्तु पंजाबी में तो इसके अतिरिक्त अनेक वार रदीफ की एवं काफिये की लम्वी समानता मिल जाती है।

अनुप्रास के ही समान यमक, वीप्सा, पुनरुक्ति के भी उदाहरणों की कमी नहीं—

हिन्दी—यमक—

१. नीसान बाजिउ सइन साजिउ चली फौज असंख।
गज घटा दीसहि, तुरीय हीसहि उड़ति गही यइ पंख।

दल चलति धूरी गगन पूरी, रहिउ सूर लुकाई।
कबि दास जंपइ धरनि कंपइ गनति का पहिं जाई।
—छिताई चरित, पृष्ठ ६.

२. तू हरि लंक हराए के हरि। —पद्मावत, पृष्ठ, २३६.
३. रथ केहि अरथ झूझ कहां कीन्हां। —चांदायन, पृष्ठ ११४.
४. दल बरनन बहुविधि कियौ अदल न बरन्यो जाइ। —रसरतन, पृष्ठ १०.
५. बैर कहै यह बैर न पावहु।
× × ×
गलगल कहै जो पिउ बिरह गल गल गालै देह। —नलदमन, पृष्ठ ३२.
६. अनल बरन नल बरन लग, बरन लगै होइ आग ॥ —वही, पृष्ठ २१.

पंजाबी —

१. रांझा हाल थी बहुत बेहाल होइआ। —हीरमुकबल, पृष्ठ २.
२. रंगा रग दा दाज रंगाइआ मे। —हीरमुकबल, पृष्ठ १६.
३. हाशम घाउ इशक दा जालम।
मिलिआं बाझ न मिलदा। —हाशम रचनावली, पृष्ठ ६२.
४. मालक मुलक मलक दा। —वही पृष्ठ ८०.
५. मरदा हिम्मत हार न मूले मत कोई कहे नामरदा।
हिम्मत नाल लग्गे जिस लोडे पाए बाझ न मरदा।
—सैफुलमुलूक, पृष्ठ ६८.
६. होण नित्त बहारां ते रंग घणे विच्च बेलिआं दे नाल बेलीआं दे।
सानूं रब्ब ने यार मिलाइ दित्ता भुल गए पिआर अलबेलीआं दे।
—हीर वारिस, पृष्ठ २०.
७. वलां वालीआं उसदी वालीआं ने।
बाजू बंद आदे बंद आशकां दे।
लक्खा बदिआं नूं बंदीवान कीता।
मोहन माला ने मोह जहान लिआ।
कठ माला कीतां कठन जान जानी।
—सोहणी महीवाल, (फज़लशाह) पृष्ठ ८.

वीप्सा में आदर या भावावेश को प्रकट करने के लिए एक ही शब्द की अनेक बार आवृत्ति होती है। उसमें शब्द अपने मूल अर्थ में दुहराया जाता है।

हिन्दी—

१. हा हा करे हाथ पुनि तोरे। पाथर लै कर सीस चहोरे॥
× × ×
फुरकि फुरकि पुनि मीचै नैना। तरफि तरफि तरफाए बैना॥
गिरि गिरि परै जरै तन राधे। मुख परि झाग बुदबुदे बाधे॥
× × ×

थर थर कांपे डर डर चमकै । मुर मुर सुलग जर जर तमकै ।।

—सूर रंभावत.

२. संवर संवर मन झुरवइ, रोइ रोइ मिलै धाहि ।।

—मृगावती, पृष्ठ १७१.

३. चलिउ सुलतान, चलिउ सुलतान, करवि अति कोहू ।

—छिताई चरित, पृष्ठ ३१.

पंजाबी—

१. हुल्ली हीरे, हुल्ली भैणे, गल तुसाडी हुल्ली ।

—हीर दमोदर, पृष्ठ ७२.

२. सुणि हो यारो, सुणि हो भिराओ, मैं चाक नवेला पईआ ।

—वही, पृष्ठ ६७.

चमत्कारमूलक श्लेष अलंकार हिन्दी में अनेक बार प्रयोग हुआ है । पजाबी में इसके उदाहरण अत्यन्त कष्टपूर्वक मिलेंगे ।

तुलना

शब्दालंकारों में अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग ही प्रबन्धकाव्यों में प्रायः होता है । अनुप्रास के प्रयोग से संगीत तत्व का जो माधुर्य हिन्दी के उदाहरणो मे स्वभावतः प्राप्त होता है, वह पंजाबी में नही मिलता । अनुप्रास का वृत्यनुकूल प्रयोग करने में हिन्दी कवियों की तुलना में पंजाबी के कवि बहुत पीछे है । यमक के प्रयोग में हिन्दी में 'नलदमन' के कर्ता सूरदास (लखनवी) एवं पंजाबी में फज़लशाह ने विशेष आग्रह का परिचय दिया है । इन रचनाओं में अनेकशः एक ही प्रकार की शब्दक्रीड़ा से अलंकरण का स्वाभाविक सौंदर्य तो नष्ट हुआ ही है कथा की स्वाभाविकता भी बाधित हुई है ।

शब्दालंकारों का चमत्कार दिखाने में जायसी जैसा सिद्धहस्त कवि दोनों ही भाषाओं में दूसरा नही है । जिस श्लेष के उदाहरण पंजाबी में कष्ट-लभ्य है और हिन्दी में भी अनेक कवियों में उसका प्रयोग नही है ।[1] उसी के बल पर जायसी ने अनेक स्थलों पर चमत्कार की योजना की है ।[2] भाषा की प्रकृति एवं शब्दों की शक्ति की जैसी पहचान जायसी को थी वैसी बहुत थोड़े कवियों को होती है । शब्दो का जैसा चमत्कार उनके 'पद्मावत' में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । मानसरोदक खंड, बसंत खंड, चित्तौड़ आगमन खंड, पद्मावती रतनसेन भेट खंड में कई कड़वक ऐसे हैं जिनके दो-दो तीन-तीन अर्थ निकलते है । जायसी के अनन्तर हिन्दी में मझन, पुहकर, तथा पंजाबी में वारिस एवं हाशम में भी शब्दालंकारों का सुन्दर प्रयोग देखा जा

१. छिताई चरित में शब्द श्लेष का एक मात्र उदाहरण नारायणदास है ।

—छिताईचरित, भूमिका, पृ० ६१

२. जायसी का पद्मावतः काव्य और दर्शन, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ४६६

सकता है, परन्तु उसके आधार पर चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति एक दो कवियों में ही प्रधान हो पाई है।

पंजाबी में अन्य शब्दालंकारों की अपेक्षा अनुप्रास एवं यमक के उदाहरण अधिक है परन्तु हिन्दी में अनुप्रास, यमक, वीप्सा, पुनरुक्तवदाभास, श्लेष आदि के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। पंजाबी में उन्ही दो तीन अलंकारो का प्रयोग बहुलता का कारण उन कवियों की नाद-प्रियता ही है। अनुप्रास, यमक जैसे अलकारों का मूल अनुरणनात्मकता ही तो है।

अर्थालंकार

वर्ण्य विषय को सुबोध एवं आकर्षक बनाने के लिए कविगण अलंकारों का विधान करते है। प्रस्तुत को अप्रस्तुत के द्वारा अभिव्यक्त करने का मुख्य आधार साम्य है। किसी भी भाषा के साहित्य की अप्रस्तुत योजना के मूल में अधिकांशत: किसी न किसी प्रकार की समता मिलेगी। इस साम्य के आधार पर अप्रस्तुत चयन मे कई तत्व कवि के सहायक सिद्ध होते है। इनमें कवि-परम्परा से प्राप्त उपमानों का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य में बारम्बार प्रयुक्त होने वाले उपमानों की परम्परा सभी साहित्यकारों को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त लोक-साहित्य की परम्पराएं भी कवियों पर प्रभाव डालती है। कवियों द्वारा प्रयुक्त अनेक उपमान उन पर पड़े इन परम्परागत प्रभावों को प्रकट करते है। इनके साथ-साथ कवि की प्रतिभा एव निजी निरीक्षण-परीक्षण द्वारा जिन उपमानों की सृष्टि हो पाती है, उनका अम्लान लावण्य एव सौरभ अभिव्यक्ति को आकर्षक एव मादक बना देता है।

अलकारों का प्रयोग-कौशल

पंजाबी के कवियों में उपमानों की सुन्दर योजना एवं अलकार-विधान का उत्कर्ष प्राय: नहीं मिलता। कुछ साम्य मूलक एवं अतिशय मूलक अलकारों के प्रयोग-कौशल के तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा इसको प्रमाणित किया जा सकता है।

साम्यमूलक अलंकार

हिन्दी प्रेमाख्यानों मे नखशिख के लिए प्राय: अनेक परम्परागत उपमानों का प्रयोग हुआ है। केशो के लिए सर्प, मुख के लिए चद्र, नासिका के लिए खड्ग, भौहं के लिए धनुष, ग्रीवा के लिए शंख या सुराही, दांतो के लिए दाड़िम या मोती, अधरों के लिए बिबफल, कमर के लिए भृंगी या केहरी, गति के लिए हस आदि उपमान अधिकाँश हिन्दी कवियों ने समान रूप से प्रयुक्त किये है परन्तु इनका प्रयोग सभी ने भिन्न-भिन्न शैलियो में किया है। पद्मावती के काले केशों को केवल सांप के समान कहने से ही जायसी की कवि प्रतिभा को सन्तोष नही होता। जायसी के वर्णन में पद्मावती के बालों का रंग, सुगन्ध, आकार और शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, उपमा, जैसे अनेक अलकारों की योजना की गई है—

"प्रथमहि सीस कस्तुरी केसा। बलि बासुकी को औरु नरेसा॥
भंवर केस वह मालती रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरधानी॥

बेनी छोरि, झारू जौं बारा। सरग पतार होइ अंधियारा॥
कोवंल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे॥
बेधे जानु मलै गिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुं पासा॥
घुंघर वारि अलकै बिखभरी। सिकरी प्रेम चहहीं गिय परीं॥
अस फंद वारे केस वै राजा, परा सीस गियं फांदू।
अस्टौ कुरी नाग ओरगाने भै केसन्ह के बांद॥[1]

इसकी तुलना के लिए पंजाबी साहित्य में एक भी अलंकारपूर्ण वर्णन उपलब्ध नही होता। जुल्फ को 'खज्जाने की बार का नाग'[2] भर कहने वाले वारिस से इस प्रकार की अभिव्यक्ति की आशा करना भी व्यर्थ है। वारिस ही नहीं, अन्य कवियों ने भी इतना मात्र कहा है। बरखुरदार "जुलफां पेज पाइआ रुख उत्ते वांग अवानियां नागां"[3] मात्र कहता है। मस्त नागों के समान गालों पर पेच डालने वाले जुलेखा के केश पद्मावती के लहरों से भरे भुजगों की तुलना में कैसे ठहर सकते है। 'सोहणी' के काले बालों को लोग नाग कहकर पुकारे[4] तो क्या लाभ ? उनमें कस्तूरी की सुगन्ध, भंवरो के आकर्षण की शक्ति, मलयगिरि की सुवास, स्वर्ग पाताल में अधकार करने की योग्यता कहां है।

हिन्दी मे अभिव्यक्ति की यह विशिष्टता केवल जायसी में ही नही अन्य कवियों में भी देखी जा सकती है। दाऊद ने भी केशों का वर्णन करते समय उनके रंग, लम्बाई, एवं मादकता की अभिव्यक्ति के लिए उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, पर्यायोक्त प्रभृति अलकारों का आश्रय लिया है—

भंवर बरन भइं देखे बारा। जनु बिसहर लुरि परे भंडारा॥
लांब केस सिर पा घुरि आय। जानु सेंदुरे नाग सुहाए॥
बेनी गूंदि जउहि ओरमावइ। लहरि चढ़हि बिसु मसतगि धावइ॥
देखत बिसु चढ़ मत्र न मानइ। गारुरि तासु उतारु न जानइ॥
जूरा छोरि झार सो नारी। दिवसेहिं राति होइ अंधियारी॥[5]

"उनको देखने से ऐसा विष चढ़ता है कि मंत्रों द्वारा भी गारुड़ी उसे दूर करने में असमर्थ रहता है" सीधे ढग से बालों की मादकता न कहकर प्रकान्तर से उसे स्पष्ट कर दिया गया है। अतः पर्यायोक्त के द्वारा प्रभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है। 'मृगावती' मे वेणी को ऐसी सर्पिणी बताया है जो दर्शकों को डस लेती है और गारुड़ी भी उसका इलाज नही कर सकता।

---

१ पद्मावत, पृ० ९६
२. हीर वारिस, पृ० १६
३ यूसफ जुलेखा, पृ० ४७
४. सोहणी महीवाल, (फजलशाह) पृ० ८
५. चांदायन, पृ० ६३

जो रे देख बिस लागै ताही । ओखद मूरि न गारुरि आही ।।
सिर पा लहि आए घुंघुरारे । लहरन्हि भरे भुअंगम कारे ।।[1]

कवि मुहम्मदबख्श पंजाबी के कवियों के नखशिख वर्णन से असतुष्ट है । अत: शाहपरी की सुन्दरता का सविस्तार वर्णन करने की लालसा को रोक न सका । उसका अलौकिक सौदर्य संक्षिप्त वर्णन से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता इसलिए पाठकों के सम्मुख अपनी सफाई देते हुए वह कहता है—

जिउं शाइर पंजाबी करदे उह कंम तुरत करींदा ।
पर उह सिफत ना लाइक इथे उच्चा रूप परीदा ।
उजला रूप परीदा भाई, फेरि तबीअत मेरी ।
पढ़ने वाले करन न तअ़ना होग कलामउचेरी ।[2]

इस प्रसंग में केशपाश का लम्बा वर्णन कर कवि भटक गया । कभी कोई अंग कभी कोई फिर वही । अलको के वर्णन में भी अरबी अक्षरो के चक्कर में पड गया और अभिव्यक्ति का सौंदर्य क्षत विक्षत हो गया—

मत्था साफ रूपहिरी तखती रखण पकड़ि किनारे ।
उस तखतीपर लिखे आहे नाल सिआही काली ।
खुशखत अरबी नून दो पासे, कानी कुदरत वाली ।[3]

उस मस्तक-फलक पर केवल नून ही नही, सवाद, जीभ, मीम, आदि कई अक्षर लिखे गए है । संभवत· कवि पुस्तक भरने की ही ललक में उस तखती पर भी सम्पूर्ण अरवी वर्णमाला लिखने के मोह में फंस गया । अरबी अक्षरों के आकार पर सौदर्य वर्णन अहमदयार ने भी किया है परन्तु उसमें इस प्रकार का दुराग्रह नही है—

खाचे पेच रुखां ते जुलफां, अरबी जीम कुरानी ।
मोतीआं दां याकूती डब्बा दो लब मीम निशानी ।।[4]

इस प्रसंग में मुहम्मदबख्शख्ने उत्प्रेक्षा का कई बार आकर्षक प्रयोग अवश्य किया है —

पाड़ सुट्टे पैराहन गल दे, चिहरा देख गुलावां ।।
गलदे गलदे अरक सदाए, रल गए विच्च आबां ।।[5]

---

१. मृगावती, पृ० ४१ ।

२. अर्थ—जिस प्रकार पंजाबी कवि (नख शिख-वर्णन) करते हैं, वह कार्य तुरन्त किया जा सकता है । परन्तु परी का रूप अत्युच्च होने के करण वह पद्धति उपयुक्त नही है । परी के उजले रूप ने मेरी रुचि बदल दी है । अतः वर्णन "उच्च (उत्तम) ' कोटि का हुआ है । पाठक उपालंभ न दें ।

—सैफुलमलूक पृ० ३३१

३. सैफुलमलूक, पृ० ३३२

४. अहसनुलकसिस पृ० १९

५. सैफुलमलूक पृ० ३३३

अथवा—

जोर बुखारि इशक दे चढ़दे जां नैनां वल तकदा ।।
नरगस नूं सिर दरदी लग्गे आख उघाड़ न सकदा ।।
ठोडी वेखि खुबानी ताईं लीक पए विचकारों ।।
पिसतानांदी गैरत ताईं, विकिआ रंग अनारों ।।[१]

इनमें गुलाब और नरगस के परम्परा प्राप्त उपमानों में हेतूत्प्रेक्षा के प्रयोग द्वारा मुख एवं नेत्रों की कोमलता, गोलाई एवं सौंदर्य का बोध हो जाता है।

साम्य के तीन प्रमुख प्रकार होते हैं। रूपसाम्य अर्थात् प्रस्तुत के रूप एवं आकार को स्पष्ट करने के लिए सदृश प्रस्तुत का प्रयोग किया जाता है। धर्मसाम्य-धर्म अर्थात् गुणों की समानता का बोध कराना तथा प्रभावसाम्य समान प्रभाव की। रूपसाम्य की दृष्टि से हिन्दी में अनेक परम्परा प्राप्त उपमानों का प्रयोग प्राप्त होता है —

'लंक सिंघनी सारँग नैनी। हँसगामिनी कोकिल बैनी ।।'[२]

प्रथम दो में रूपसाम्य के आधार पर कटि की कृशता एवं नेत्रों की आकर्षण-पूर्णता एवं श्यामलता का वर्णन है तो दूसरे दो उपमानों में गुण साम्य के द्वारा नायिका की गति की मंथरता एवं वाणी के माधुर्य की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार के वर्णन पंजाबी में भी प्रायः मिलते हैं—

"नाजुक लक्क सुराही गरदन, अंगुलिआं मुंगफलीआं"[३]

अथवा —

"गरदन कूंजदी अंगुलीआं रवांह फलीआं
हत्थ कूलड़े बरग चिनार विच्चों"[४]

गरदन का सादृश्य सुराही से, अंगुलियों का मूंग या रवांह की फलियों से है। इसमें रूप सादृश्य के अतिरिक्त गुण साम्य की भी अभिव्यक्ति स्वतः हो जाती है। अंगुलियों के आकार एवं गुण को मूंग की फलियों के अप्रस्तुत द्वारा स्पष्ट करते हुए कुतबन की यह पंक्तियां भी उद्धरणीय है—

कर पालौ जनु मूंग की छीमी[५]

दोनों ही ओर कवियों ने सामान्य कथन मात्र से आकार एवं कोमलता का आभास करवाया है।

नलदमन के कर्ता सूरदास लखनवी ने भी गरदन के लिए सुराही का उपमान

---

१. सैफुलमुलूक, पृ० ३३३-३३४
२. पदमावत, पृ० ३२
३. यूसफ जुलेखा, पृ० ४७
४. हीर वारिस, पृ० १७
५. मृगावती, पृ० ५०

प्रयुक्त किया है परन्तु उत्प्रेक्षा के प्रयोग द्वारा आकार के साथ-साथ गुण का आभास भी उसमें सन्निविष्ट है

'जनो प्रेम मद भरी सुराही। गहि नवाइ रस लै सो चाही ।।'[1]

रूपसाम्य की अपेक्षा गुण-सादृश्य के आधार पर आयोजित उपमान एवं इसकी अपेक्षा प्रभाव साम्य पर आधारित उपमानों के आयोजन में अधिक कौशल प्रतिभासित होता है।

प्रियतम के मिलन से होने वाले अपूर्व आनंद को फूल के खिलने से प्रकट करने में न रूप की समानता का बोध होता है न गुण की समानता का। केवल प्रभाव की समानता पर मुकबल का यह वर्णन अति उत्तम बन पड़ा है—

"मुकबल यार मिल दा, खिले बाग दिल दा
दुख दरद दा रुख उखाड़ीए जी।"[2]

इसी प्रकार आशिकों की अमूर्त माला को समूर्त करने में भी मुकबल ने अद्भुत उपमानों की योजना की है—

"तसबीह आशकां दी मोती हंजूग्रां दे।
धागे आहां दे नाल परोंवदी ए।"[3]

अमूर्त को उसके गुणों एवं प्रभाव के कारण मूर्त उपमानों के द्वारा अभिव्यक्त करने की कला में यद्यपि पंजाबी कवि सिद्धहस्त नहीं परन्तु कहीं-कहीं पर बड़े ही सुन्दर वर्णन बन पड़े हैं—

"खरा कठन दरयाओ है इशक वाला,
दरद तुल्लड़ा बन्ह के पार तरीए।।"[4]

अथवा—

"अहमदयार इशकीया इशक साइआ,
जिस रुख लपेट सुकाइग्रा।।"[5]

अथवा—

"चढ़ चन्ना तेकर रुशनाईं काली रात हिजर दी।
शमा जमाल कमाल सजण दी ग्रा घर बाल ग्रसाडे।।"[6]

प्रेम की यात्रा में वेदना सहने से ही सिद्धि प्राप्त होती है। कवि ने प्रेम को नदी एवं वेदना को डोंगी कहकर अति सुन्दर एवं सार्थक रूपक की योजना की है। प्रेम को इश्किया बेल (आकाश बेल) कहना भी सटीक है। जिस प्रकार वह बेल वृक्ष

---

१. नलदमन, पृ० ६६
२. हीर मुकबल, पृ० ६
३. हीर मुकबल, पृ० ११
४. हीर ग्रहमद, पृ० २५७
५. सस्सी पुन्नूं (ग्रहमद यार) पृ० ३७
६. सैफुलमुलूक, पृ० ३६७

को सुखा देती है, उसी प्रकार प्रेम मनुष्य को निस्तेज कर देता है। इसमें उपमा एवं समासोक्ति की सुन्दर संसृष्टि है। अन्तिम उदाहरण में प्रियतम को "चन्द्र" कहकर वियोग की काली रात्रि में प्रकाश करने अथवा सौंदर्य के प्रकाश से युक्त दीपशिखा के द्वारा प्रकाशित करने का निवेदन रूपकातिशयोक्ति एवं रूपक अलंकारों की योजना से किया गया है। इनमें सर्वत्र गुण एवं प्रभावसाम्य के आधार पर ही उपमानों का चयन किया गया है। परन्तु अनेक बार इस आयोजन में इन्हीं कवियों ने अत्यन्त प्रभावहीन उपमानों की योजना की है। ऐसे प्रसंगों मे कथन का चमत्कार मात्र है, सौंदर्य नहीं। जैसे 'जट्टी जमीं ते पटड़े वांङ ढट्ठी'[1] अथवा 'कर बिस्मिल्ला मारिआ भौंदा वाङ् भंभीर'[2] अथवा 'ज्यों सूरज तेज दुपहरां वेले ओह चेहरा पेशानी'[3] में काष्ठफल के समान गिरना अथवा फिरकी के समान घूमना अथवा मध्याह्न के सूर्य के समान चमकदार मस्तक कहने में चमत्कार तो आ गया परन्तु सौदर्य-बोध कुछ भी न रहा। इसी प्रकार—

'जिवें शम्हां ते डिगण पतंग धड़-धड़ लंघ नदी मुहाइणां आउंदाई ।।'[4]

इस पंक्ति में नदी-धारा को पार करने वाले नायक की 'शमा' पर धड़ाधड़ गिरने वाले पतंगे से तुलना करने में कोई साम्य प्रतीत नहीं होता। 'धड़ाधड़' शब्द तो व्यर्थ की भरती ही प्रतीत होता है।

कई बार इस अप्रस्तुत विधान में कवि का ज्ञान-गौरव एवं नैपुण्य झलकता है। गांव की मस्जिद को वारिस ने "गोया अकसा दे नाल दी भैण दूजी" कहा है।[5] इस उत्प्रेक्षा द्वारा मस्जिद की प्राचीनता एवं पवित्रता अभिव्यजित होती है। 'अकसा' यूरोशलम में स्थित यहूदियों का प्राचीन पूजा-स्थान है। यह अलग बात है कि इस उत्प्रेक्षा से अभिव्यक्त व्यंजना कोई सुन्दर बिम्ब उपस्थित नहीं कर सकी। इसका यह अर्थ नही कि परम्परामुक्त अथवा गंभीर उपमानों के द्वारा पंजाबी प्रेमाख्यानों में सर्वत्र ही अभिव्यक्ति सौंदर्य बाधित हुआ है। अनेकशः हिन्दी के ही समान पंजाबी में भी इन परम्परा-प्राप्त उपमानों की अत्यन्त आह्लादकारी योजना हुई है। प्रेमी एवं प्रेमिका के लिए चकोर एवं चन्द्र के प्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग कर कवि हाशम ने प्रेम विह्वल प्रेमी की उत्तरोत्तर कृशता एवं अज्ञात-यौवना नायिका के शरीर सौदर्य की सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

"मेहींवाल तिवे तिव आजिज़ रोज़ वधे गमझोरा।
हाशम चंद पइआ नित वाधे घटदा नित चकोरा।"[6]

---

१. हीर वारिस, पृ० १११
२. बबीहा बोल, पृ० १११
३. गुलदस्ता हीर, पृ० ६०
४. हीर वारिस, पृ० १४
५ वही, पृ० १६
६. अर्थ—मींहवाल अधिकाधिक दुखी हो रहा था। विरह व्याकुलता नित्य प्रति बढ़ती जा रही थी। हाशम कवि कहता है कि चन्द्रमा तो प्रतिदिन बढ़ रहा था और चकोर घटता जा रहा था।
—हाशम रचनावली, पृ० ५७

इसी अप्रस्तुत योजना के आधार पर कवि नूर मुहम्मद की यह उक्ति भी कम आह्लादकारी नहीं –

सूरज उआ आकासही, चन्द्र उआ जल मांह।
कुमुद तामरस फूले, दोउ मित्र के पांह।[1]

इसमें सन्देह नही कि हाशम की तुलना में नूर मुहम्मद के उदाहरण में परम्परागत कवि-समय का प्रयोग अधिक परिचय सापेक्ष्य एवं चमत्कारी है।

अतिशयमूलक अलंकार

साम्यमूलक अलंकारों के ही समान अतिशयमूलक अलंकारों में भी पंजाबी के कवियों में हिन्दी कवियों जैसा सुन्दर विधान नहीं मिलता, इन अलंकारों का प्रयोग भी ये अत्यन्त सामान्य रूप से ही कर पाए है।

वियोगावस्था में 'रुदन' सामान्य व्यापार है। पंजाबी प्रेमाख्यानों में इसका कथन मात्र है —

'तां रोंदी हीर न बोले वातों, जरा बुलेंदी नाहीं।'[2]

× × ×

रोंदे नैन करेंदी जारी। आदि

अथवा हाफज़ बरखुरदार की भाषा में—

'अक्खी' नीर हमेशा चल्ले, दिल थीं आहीं मारे।'[3]

इसी प्रकार मुकबल[4] और अहमदयार[5] में भी सामान्य कथन मात्र है। फज़लशाह में नेत्रों को पानी का चश्मा कहकर हल्का सा अतिशयता का स्पर्श दिया।[6] ऐसे ही 'सैफुलमुलूक' के कर्ता ने भी सामान्य कथन में किंचिन्मात्र अतिशय्य का संचार किया—

हंजू दे दरिया बहाए, आहीं ढाहीं मारे।'[7]

---

१. इन्द्रावती, पृ० ६०

२. हीर दमोदर पृ० ६०

३. यूसफ जुलेखा, पृ० ५०

४. क—रांझा हीर सिआल तों विदा होइआ, जारी रोवंदा उठ के गिआ बेले।

—हीर रांझा मुकबल, पृ० २६

ख—हीर मेढीआं पुट के वाल खोह, रोंदी विच्च सिआलां दे धुम्म पाई।

—वही, पृ० ४०

५. ना ओह सैयां न ओह राणीं न ओह मस्त पिआले।
रोवे अते जमीं ते लेटे वालां नूं पट्टे सटटे।

—किस्सा कामरूप पृ० १२

६. चशमां हीर दोवें चश्मा नीर होईआं।

—गुलदस्ता हीर, पृ० १३७

७. सैफुलमुलूक, पृ० १४३

'आखें चश्मां हुई' या 'आँसुओं के दरिया' बहाए। इसकी तुलना में हिन्दी प्रेमाख्यानों में ऐसे प्रसंगों में कभी तो आंखों से 'गंगा बहती है'[1] तो कभी 'गंगा और यमुना दोनों'[2]। कभी 'नैनों के नीर से सागर पट जाते हैं'[3] और कभी सम्पूर्ण संसार उस जल-प्रवाह में डूब जाता है।[4] इन कवियों ने अश्रु बहाते नयनों के लिए वर्षा ऋतु में पानी बहाती ओलतियों को भी उपमान बनाया है —

'सिंध मघा पावस झकझोरी। पेम सलिल दुहूं लोयन ओरी ॥[5]

दोनों नेत्र ओलती बन गए थे, चंदा के तो हार की डोरी भी उस ओलती के पानी में सड़ गई—

'इहिं पर नैन चुवहिं ओखानी। सरि गइ हार डोरी तेहिं पानी ॥[6]

और रतनसेन का यह रुदन तो संभवतः अनुपम ही माना जाएगा। पार्वती शिव के सम्मुख रोते रतनसेन का यह वर्णन जायसी की अपूर्व कवि-सामर्थ्य का द्योतक है —

'पदिक पदारथ कर हुँति खोवा। टूटहिं रतन रतन तस रोवा।
गगन मेघ जस बरिसहिं भले। पुहुमि अपूरि सलिल होइ चले ॥
साएर उपटि सिखर गा पाटी। जरै पानी पाहन हिय फाटी।
पवन पाना होइ होइ सब गिरई। प्रेम के फांद कोऊ जनि परई ॥
तस रोवे जस जरै जिउ, गरै रकत औ मांसु।
रोवें रोवें सब रोवहिं सोत सोत भरि आँसु ॥[7]

अश्रुओं के ही समान प्रेम की दाहक ज्वाला का वर्णन भी लिया जा सकता है। प्रेमोदय के अनन्तर की व्याकुलता को प्रायः ज्वाला के समान दाहक बताकर उसकी तीव्रता का वर्णन दोनों ही भाषाओं में मिलता है। परन्तु पंजाबी में इस दहन का सामान्य कथन मात्र है—

---

१. बहहिं नैन गांगहि असरारा।

—चांदायन, पृ० १५०

२. मंझन—लोयन गांग जौन होई बाढ़े।

—मधुमालती, पृ० ३५१

अथवा—

गणपति—गंग यमुन परि नयनड़ा बहइ निरन्तर पूरि।

—माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध, पृ० २१०

३. नैन नीर भरि सायर पाटी। नाउ चढ़ाइ चांद गुन काटी॥

—चांदायन, पृ० ३१३

४. रोवत बूडि उठा संसारू।

—पदमावत, पृ० २०४

५. मधुमालती, पृ० ३५२
६. चांदायन, पृ० ३४१
७. पदमावत, पृ० २०३

सुलके, सुलक फिर बुझे, मूहा न बोलन हारा।[1]

या—

कीकर जालीं नाल खेडिआं दे आतश रूई न्याई।[2]

एवं मुकबल भी केवल ज्वाला के जलन का कथन मात्र करता है—

'**इशक हीर दा नित रंझोटड़े नूं, सीने विच अलंबड़े बालदा ए।**'[3]

और—

'**हीरे माह लाईआ तन मेंरड़े नूं, तैनूं आख खां हत्थ की आइआई।**'[4]

हाशम शाह इस अग्नि को किंचित् तीव्र कर देते है—

'**भांबड़ शौक तिवें तिउं भड़के, वसलों तेल पवेंदा।**[5]

सस्सी के दिल में तप्त मरुस्थल की गरमी की भी कल्पना कर ली गई।[6] मुहम्मदबख्श इस अग्नि का विस्तार करता है परन्तु इसमें संक्षेप दर्शनीय है—

'**चारे तरफां खावण लग्गीआं अग लग्गी जग सारे।**[7]

सारे संसार में विरहाग्नि के विस्तार की बात जायसी ने भी कही है। अतिशयोक्ति का ऐसा विस्तार पंजाबी में दुर्लभ है। नागमती के विरह-ताप का वर्णन करता हुआ हीरामन कहता है—

'**अस पर जरा बिरह कर कठा। मेघ स्याम भै धुआं जो उठा।**
दाधे राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चांद जरि आधा॥
औ सब नखत तराई जरहीं। टूटहिं लूक धरनि महं परहीं।
जरी सो धरती ठांवहि ठांवा। ढंक परास जरे तेहि दावां॥
विरह सांस तस निकसे झारा। धिकि धिकि परबत होंहि अगारा।
भंवर पतंग जरे औ नागा। कोइल भुंजइल ओ सब कागा॥
बन पंछी सब जिउ लै उड़े। जल पंछी जरि जल मइं बुड़े।
हूं हूं जरत तहं निकसा, समुन्द बुझाएउं आइ।
समुदौं जरा खार भी पानी, धूम रहा जग छाइ॥[8]

अतिशयोक्ति ही नहीं, इसमें हेतूत्प्रेक्षा की भी सुन्दर योजना हुई है। 'तारों को विरहाग्निजन्य दमोदर ने भी बताया है परन्तु वहाँ वैसा कौशल कहाँ।

---

१. हीर दमोदर, पृ० १३६
२. वही, पृ० १४१
३. हीर मुकबल, पृ० ४७
४. वही, पृ० ५१
५. हाशम रचनावली, पृ० ११८
६. दिल विच्च तपत थलांदी गरमी।

—वही पृ० ६६

७. सैफुलमुलूक, पृ० ३८४
८. पदमावत, पृ० ३७१

अंबर काला इत बिध होइआ असां दरदवंदा दीआ आहीं ।
तारे चिणगां जुस्से विच्चों अंबर गईआं तदाहीं ।।[1]

पंजाबी मे लुत्फअली की रचना इस दृष्टि से समृद्ध है । दरबारी वातावरण के कारण यह रचना पूर्णतया फारसी काव्य की परम्परा में है । चित्रदर्शन से आसक्त नायक सुदीर्घ यात्रा के कष्टों को सहता हुआ चौदह वर्ष के पश्चात् जब भाग्यवश प्रेमिका के सामने पहुंचता है तो उस समय का 'प्रथम दर्शन-वर्णन'[2] भारतीय वातावरण के सर्वथा विपरीत है । इस संदर्भ में आंखों का घनघोर युद्ध, तलवारें, धनुष, फौजे सभी कुछ आ गया है । नायक की अनुनय-विनय एवं नायिका की फटकार सभी कुछ अभारतीय लगता है । मुहम्मद बखश ने अपनी इसी कथा पर आधारित रचना में इस प्रकार की योजना नही की ।

इस सम्पूर्ण विवेचन का यह अर्थ कदापि नहीं कि पंजाबी प्रेमाख्यानों में अलंकार-विधान है ही नही । उसमें प्रायः सभी अलंकारों के दर्शन हो जाते है परन्तु उनमें वैसा विस्तार एवं प्रयोग की मार्मिकता नही जैसी हिन्दी में मिलती है ।

दोनों ही भाषाओं की रचनाओं से कुछ अर्थालंकारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं —

हिन्दी

उपमा—१. मृग सावक सम सोहहि लोला । ओप्यौ कंचन इसउ कपोला ।।

छिताई चरित, पृष्ठ २२

२. देखत रूप जीउ भरमाना । बेकहल पात जिमि प्रान उड़ाना ।।

मधुमालती, पृष्ठ ६३

रूपक—१. तन दीपक बुध बाती डारै । तापर हुई पतंग जिउ जारे ।।

सूररंभावत, पृष्ठ १३०

२. बिरह हस्ती तन साले खाइ करै तन चूर ।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ संदूर ।।

पदमावत, पृष्ठ ३४७

रूपकातिशयोक्ति—पन्नग पंकज अमुख गहे खंजन तहाँ बईठ ।
छात सिंघासन राजधन ता कहँ होइ जो डीठ ।।

वही, पृष्ठ १११

उत्प्रेक्षा—१. अन्तर नीलाम्बर अबल आभरण अंगि अंगि नग नग उदित ।
जाणे सदनि सदनि संजोई मदन दीपमाला मुदित ।।

वेलि क्रिसन रुकमणी री, पृष्ठ १६०

२. एही लाज लजाइ मनु, भा पून्यो ससि छीन ।
जे ताके दुख दाय रिपु, ते याके आधीन ।

नलदमन, पृष्ठ ५४

---

१. हीर दमोदर, रस, पृ० १७०

२. मसनवी, सैफुलमुलूक, पृ० २९४-३०१

उपमयोपमा—यह सुरुज वह ससिहर । यह ससिहर वह सूर ।।

मधुमालती, पृष्ठ ५६

दीपक—जिमि मधुकर नई कमलिनी, गंगा सागर वेलि ।
तेण विधि माधव रमइ, काम कुतूहल केलि ।।

माधवानल कामकदला प्रबध, पृष्ठ ४०४

पंजाबी

उपमा—१. जली बाँग बद्दल विच दिसदी शीरी कदे कदाई ।

हाशम रचनावली, पृष्ठ ११८

२. अज्ज तक सिन्ने गोहे वांगू विच्चो विच्च पई धुक्खां ।

हीर (अहमदयार) गुलदस्ताहीर, पृष्ठ ६६

रूपक—१. घोड़े शौक दे तुरत असवार होइआ ।
दित्ती बिरहुं दे हत्थ लगाम भाई ।

हीर अहमद, पृष्ठ १६२

२. ऐस जुलफ जजीर महबूब दीने ।
वारिस शाह जेहे मजजूब कीते ।।

हीर वारिस, पृष्ठ ६२

रूपकातिशयोक्ति—गुल नरगस फरमाया तूं डे गोश सुणीं गुल लाला ।

मसनवी सैफुलमुलूक, पृष्ठ २२८

उत्प्रेक्षा—दिल विच तपत थलां दी गरमी आण फिराक रंवाणी ।
किचरक नैण देण दिलबरियां चोण लबां विच पाणी ।

हाशम रचनावली, पृष्ठ ६६

व्यतिरेक—शीरीं नाम फरिशते कोलों, साफ तबीअत नूरों ।
परीआं वेख लजाउण उस नूं हुसन जिआदा हूरों ।

वही, पृष्ठ ११२

तद्गुण—साहिबां रंग मजीठ दा जिउं जिउं धरत रंगन ।

कोइल कू, पृष्ठ ११४

विभावना—१. अंदर सुलके जामकी लाट बले बिन तेल ।

हीर दमोदर, पृष्ठ ११६

२. कोई पढ़े जे लिखिआ आशकां दा,
होंदा मसत बगर शराब मींम्रा ।

हीर रांझा (मुकबल), पृष्ठ ५०

असम—ना कोई हूर परी रब्ब सिरजी, इस दी डोल शकल विच ।
न एह सूरत मिसर शहर विच, न कोई चीन जंगल विच ।।

हीर अहमदयार, गुलदस्ता हीर, पृष्ठ ६०

काव्यलिंग—आशक अंगन साक किसेदे, लोक इन्हां नित गाउण ।
सिदक उन्हां दे जोरो जोरी, अपणा नाम जगाउण ।।
हाशम रचनावली, पृष्ठ १५२

अपह्नुति—पेट नही दरिया हुसन दा, वट्ट पवन ज्यों तूसा ।
कामरूप, (अहमदयार) पृष्ठ ११

सन्देह—लंका बाग दी परी कि इन्द्राणी, हूर निक्कली चंद दी धार विच्चों ।
हीर वारिस, पृष्ठ १७

एकावली—औरत सोई जो रूप अनूप होवे, रूप सोई जो बाजहिना हीरे ।
हीर (अहमदयार), गुलदस्ताहीर, पृष्ठ १४१

उल्लेख—यारो पलंघ केहा, सोहणीं सेज उत्ते, लोकां आखिया हीर जटेटड़ीदा ।
बादशाह सिआलां दे त्रिझणां दी, महिर चूचके खां दी बेटड़ीदा ।।
हीरवारिस, पृष्ठ १४

दृष्टान्त—आतश तेज तिवें तिउं हुंदी, वाउ लगी उह रमके ।
हाशम जाण इशक दा जौहर, खुआर होइ तिउ झमके ।।
हाशम रचनावली, पृष्ठ ६१

अत्युक्ति—तूं कर फरिआद खुदाइ नूं मेरे वस न कुझ ।
मेरा आप कलेजा बलिआ, बालण होइआ भुज ।।
कादरयार, पृष्ठ ७६

दीपक—माण मत्तीए रूप गुमान भरीए अठखेलिए रंग रंगीलीए नी ।
आशक भौर फकीर ते नाग काले बाझ मंतरां मूल न की लीए नीं ।।
हीरवारिस, पृष्ठ १६

परिसंख्या—ज़ालम होर न आहा कोई, गिरदे ओस शहर दे ।
दीपक नाल पतंगां ज़ालम जुलम हमेशां कर दे ।
दरद वंदा दे नैण शहर विच आहे चुगल वसेंदे ।
लुकिआ दरद दिलां दा रो रो ज़ाहिर चाहे करेंदे ।।
हाशम रचनावली, पृष्ठ ११२

तुलना

इन प्रेमाख्यानों की अलंकार-योजना मुख्यत: सादृश्य-विधान पर आधारित है । अलंकरण का मूल उद्देश्य भावोत्कर्ष अथवा विषय-वैषद्य साम्य के द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है । साम्य में भी उपमा एवं रूपक के प्रति इनकी ममता अधिक है । इनके अतिरिक्त रूपकातिशयोक्ति, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, सन्देह, अपन्हुति अलंकारों के अनेक सुन्दर-सुन्दर प्रयोग हिन्दी प्रेमाख्यानों में मिलते है । पंजाबी में भी इन अलंकारों के प्रयोग मिल जाते हैं, परन्तु एक तो वे प्रयोग संख्या में अधिक नहीं; दूसरा उनके द्वारा भाव अथवा विषय का वैसा उत्कर्ष भी नहीं हो पाता जैसा हिन्दी की रचनाओं में अनेकशः उपलब्ध होता है । इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी कवियों का अलंकार-प्रयोग अनेक बार अत्यन्त गूढ़ एवं क्लिष्ट कल्पना पर आधारित होता है —

नासा निकट अधर मधु राषे । चाहत कीर बिंब फल चाषे ॥[1]

तक तो काम चल जाएगा । नासिका को 'कीर' एवं अधरों को बिम्ब कहना कवियों की प्रवृत्ति बन गई है परन्तु यदि यह कहा जाए कि

"अमी स्वाद मनु ससि कुतुर कीर निकासी ठौर"[2]

तो यह उन प्रसिद्ध उपमानों का भी क्लिष्टता-क्लिन्न प्रयोग है, जिसमें दूर की सूझ से कोई विशेष लाभ नही हो पाया । हिन्दी मे शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर भी कई बार अलंकारों की योजना मिलती है जिनका आनन्द उस शास्त्र-ज्ञाता तक ही सीमित हो जाता है । जैसे रुक्मिणी की कटि को सिंह की उपमा देते हुए उसकी करधनी में लगे नौरंगे रत्नों को नवग्रह मान कर कवि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी के सौभाग्य की सूचना प्राप्त की है—

"स्यामा कटि कटिमेखला समरपित क्रिसा अंग मापित करल ।
भावी सूचक थिया कि भेला सिंघरासि ग्रहगण सकल ।।"[3]

पंजाबी में इस प्रकार की क्लिष्ट कल्पनाएं नही हैं । वहाँ कवि समाख्याना-त्मकता में या कथोपकथन योजना में ही अपने कवि-कर्म की इतिश्री समझता है । कथोपकथन को लम्बा करने के लिए कई बार अनेक अप्रस्तुतों को समान धर्म से संबंधित कर तुल्योगिता की योजना इन कवियों में मिल जाती है—

"दोसती सोई जोबिपत विच्च कम्म आवे
यार सोई जो जान कुरबान होवे ।
शांह सोई जो काल विच्च भीड़ कट्टे
गल्ल बात दा जो निगह बान होवे ।
गां सोई जो सिआल विच्च दुध देवे
बादशाह सोई जो शहबान होवे ।
नार सोई जो माल बिन बैठ जाले
पिआदा सोई जो बहुत सुजान होवे ।
× × ×
सोई रोग जो नाल इलाज होवे
तीर सोई जो नाल कमान होवे ।
कंजर सोई जो गैरतों बाझ होवे
जिबें भावड़ा बिन अशनान होवे ।
× × ×
परांह जाह तूं जोगीआ चोबरा वे
मतां मगणों कोई वघान होवे ।
वारिस शाह फकीर बिन हिरस गफलत
याद रब्ब दी विच्च मसतान होवे ।[4]

१. रसरतन, पृ० २८
२. नलदमन, पृ० ६२
३. बेलि क्रिसन रुकमणी री पृ० १५६
४. हीर वारिस, पृ० १२३

१४ बैतों के इस लम्बे बंद में इसी प्रकार के विधान है । मूल बात अन्तिम बंद में है कि फकीर तो बिना लोभ एवं आलस्य के होते हैं और ईश्वर के स्मरण में आत्म-विस्मृत रहते है । अतः तुम भी ऊपर कहे गए अनेक व्यक्तियो के समान सच्चे फकीर नही हो । सहती का यह कथन काव्य के भाव या प्रकरण की अपेक्षा उसके वाग्वैदग्ध्य का ही उत्कर्ष प्रकट करता है । इसी प्रकार का वाग्वैदग्ध्य हीर की इस उक्ति में भी देखा जा सकता है—

रब्ब झूठ न करे जे होवे रांझा, तो मैं चौड़ होई मैनूं पट्टिआ सू ।
अगे अग्ग फिराक दी साड़ सुट्टी, सड़ी बली नूं मोड़ के पट्टिआ सू ।
नाले रन्न खुत्थी, नाले कन्न पाटे, आख इशक थीं नफा की खट्टिआ सू ।
मेरे वास्ते दुक्खड़े फिरे करदा, लोहा ताइ जीभे नाल चट्टिआ सू ।
होइआ चाक पिंडे मली खाक रांझे, लाह नंग नमूस नूं सट्टिआ सू ।
बुक्कल विच्च चोरी चोरी हीर रोवे, घड़ा नीर दा चाइ पलट्टि आसू ।
वारिस शाह इस इशक दे वणज विच्चों, जफर नाल की खट्टिआ वट्टिआ सू ।[1]

इसमें अग्ग फिराक (वियोगाग्नि), 'घड़ा नीर दा पलट्टिया' (जल का घड़ा उडेल दिया) में सामान्य कोटि का रूपक या अतिशयोक्ति देखी जा सकती है । अन्यथा मुख्यतः इसमें भी हीर की वाग्विदग्धता ही झलकती है, जो मुहावरो के प्रयोग से अधिक प्रभावकारी हो गई है ।

अत· यह निष्कर्ष निकलना उचित ही है कि पंजाबी के प्रेमाख्यानक कवियों में अलकरण की प्रवृत्ति प्रधान नहीं है । प्रेमाख्यानक कवियों की यह प्रवृत्ति अन्य पंजाबी कवियों के ही समानान्तर है । पंजाबी काव्य की इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए डॉ० मोहनसिंह ने लिखा है कि आलंकारिक चमत्कार, अतिशयोक्तियाँ अथवा अननुभूत एवं विदेशी कल्पनाएँ इस साहित्य मे स्थान प्राप्त नही कर सकी ।[2]

पंजाबी की अधिकांश रचनाएँ 'लखनसेन पदमावती कथा,' 'छिताई चरित,' 'मधुमालती वार्ता' या जान कवि की अनेक रचनाओं की कोटि की है । इन रचनाओं में भी कवियों का मुख्य उद्देश्य कथा-वर्णन ही है । पंजाबी के ही समान हिन्दी के दक्खिनी प्रेमगाथाकारों में भी 'इने गिने कवियों को छोड़कर, शेष की भाषा अनलंकृत रही है ।' इन प्रेम गाथाकारों का भी प्रधान आकर्षण केवल कहानी का ही है शैली का नही है ।[3] इसके विपरीत उत्तरी क्षेत्र के हिन्दी कवि इस विषय में अत्यन्त जागरूक थे । जायसी की अप्रस्तुत योजना पर विस्तार से विचार करने के अनन्तर डॉ० विद्याधर ने सन्निष्कर्ष रूप में लिखा है, "इस प्रकार सहज में ही कहा जा सकता है कि जायसी साहित्य में अधिकतर पूर्ववर्ती साहित्य से गृहीत उपमानों का ही प्रयोग हुआ है । जायसी के व्यक्तित्व की यही विशेषता है कि उन्होंने रूढ़ उपमानों

१. हीर वारिस, पृ० १०२
२. ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ६६
३. दक्खिनी हिन्दी का प्रेमगाथा काव्य, डॉ० दशरथराज, पृ० २६३

का प्रयोग अनेक स्थलों में मौलिक एवं नवीन रूप में किया है।.........गंभीर ज्ञान के द्वारा जायसी ने अपनी समस्त कृतियों में जिस मौलिक ढंग से उपमानों का प्रयोग किया है उससे उनकी बहुज्ञता का पता चलता है।"[1] यह निष्कर्ष यत्किंचित् उतार-चढ़ाव के साथ अनेक हिन्दी प्रेमाख्यानकारों के विषय मे सहीकहा जा सकता है काव्य-के सौष्ठव विषय में वे पूर्ण सजग थे।

अलकार का सौन्दर्य उपमान-चयन पर निर्भर करता है। जिसके लिए कवि की प्रतिभा, परिवेश, जीवन-स्तर, रुचियाँ, सस्कार एवं अध्ययन उत्तरदायी है। पंजाबी के कवियों का जीवन-स्तर सामान्य कोटि का था। साधन-सम्पन्न वर्ग से दूर, ये लोग साधनहीन एवं अनपढ़ व्यक्तियों के मनोरजन एवं आत्मतोष के लिए लिखते थे। इनका अध्ययन जो, कुछ भी था, वह फारसी रचनाओं का ही था। पुन:, इन्होने किन्ही नवीन विषयों को छूने का प्रयास भी नही किया। इनके द्वारा स्वीकृत कथाए पहले फारसी मे लिखी जा चुकी थी फलतः अपने ग्रामीण क्षेत्र के अतिरिक्त इनके उपमान फारसी काव्यसे भी गृहीतहुए इसके विपरीत हिन्दी प्रेमाख्यान-कवियों का क्षेत्र विस्तृत था। भारतीय साहित्य, लोक-साहित्य एवं यदा-कदा फारसी कवियों के ससर्ग से प्राप्त उपमानो को भी उन्होने स्वीकार किया। पंजाबी में कवि गीला उपला, मिट्टी के बर्तन मे तपता दूध, भबीरी, फूल (रक्त, सित, नील कमल नहीं सामान्य पुष्प मात्र), बाग, सरू, सूरज, चाद, तारे, धनुष, तीर, कमान, तलवार अथवा फलियों के इर्द-गिर्द ही घूमते रहे हे। लोक-साहित्य के कुछ भारतीय परम्परा-प्राप्त उपमान भी इन कवियो ने ग्रहण किये परन्तु उनमे हाशम का ज्ञान ही प्रभावशाली है। पजाबी कवियों का उपमान-चयन सामान्य कोटि का होते हुए भी बहुधा पजाब के ग्रामीण वातावरण से प्रभावित है। उसके पजाबी ग्रागीण वातावरण को फारसी साहित्य से गृहीत उपमान तिरोहित नही कर सके। इन कवियो ने परम्परा के अभाव की पूर्ति लोक जीवन से की है। इसके विपरित हिन्दी कवियो ने लोक-जीवन से गृहीत उपमानों द्वारा अपने काव्य का शृंगार किया है, उनका मुख्याधार परम्परा-प्राप्त उपमान है[2], जबकि पंजाबी मे मूलाधार लोक-जीवन के उपमान हैं।

---

१. जायसी साहित्य में अप्रस्तुत-योजना टंकित, पृ० ४६७

२. इस संबंध में डॉ० सुधा सक्सेना का मत द्रष्टव्य है—

"समष्टि में जायसी ने मौलिक कल्पना होते हुए भी अनेक उपमानों को परम्परा से ग्रहण किया है और उनका उसी रूप में प्रयोग किया है। जायसी की परवर्ती चित्रावली, मधुमालती आदि सूफी प्रेमाख्यानक कथाओं में वह बिंब ज्यों के त्यों प्रयोग किये हुए मिल जाते हैं।......ज्यादा संभव यही लगता है कि यह सभी उपमान किसी प्रौढ़ काव्य-परम्परा से गृहीत है जो उन सूफी काव्यों की रही होगी, जिनमें आज बहुत से अप्राप्य है।"

—जायसी की बिंब-योजना, पृष्ठ ३०५

छंद-योजना

हिन्दी प्रेमाख्यानों की रचना भारतीय छन्दों में हुई, मात्र दक्खिनी के प्रेमाख्यान इसके अपवाद हैं। 'दक्खिनी के प्रेमगाथाकारों के सामने ईरानी प्रेमगाथाओं का आदर्श था। इनके द्वारा प्रयुक्त छंदों मे मात्राओं की सख्या पर कोई प्रतिबध नहीं रहा, वे फारसी के छदों के अनुकरण पर लिखे गए है। कुछ कवियों ने अपनी प्रेम-गाथाओं में बीच-बीच मे भावात्मक स्थलों पर गज़लों को अपनाया है 'कुतबमुश्तरी' में अनेक सुन्दर गजलें मिलती है।[1] छंद ग्रहण की दृष्टि से हिन्दी मे तीन प्रकार की परम्पराएँ उपलब्ध होती है।

(क) कड़वकबद्ध रचनाएँ

इन्हें दोहा-चोपाई पद्धति की रचनाएँ कहा जाता है। इनमे से कुछ रचनाएँ एक 'निश्चित प्रकार' के व्यवस्था क्रम को अपनाती हैं। 'चंदायन' (दाऊद), 'मृगावती' (कुतबन), 'मधुमालती' (मझन), 'इन्द्रावती' (नूरमुहम्मद), 'कथा पुहप वरिषा' तथा 'कथा मजरी' (जान), 'माधवानल कामकंदला' (आलम) प्रभृति रचनाओं मे पाँच-पाँच अर्द्धालियों के अनन्तर 'घत्ता' का प्रयोग हुआ है। आलम की रचना में यह क्रम कहीं-कही बिगड़ गया है। 'पदमावत' (जायसी), 'चित्रावली' (उसमान), 'ज्ञानदीप' (शेखनबी)','हंसजवाहर' (कासिमशाह) में सात-सात अर्द्धालियो के अनन्तर 'घत्ता' दिया गया है। 'नलदमन' (सूरदास लखनवी) मे नौ-नौ अर्द्धालियों के अनन्तर 'घत्ता' आता है। अर्द्धालियों की एक निश्चित संख्या के अनन्तर ही 'घत्ता' प्रयोग अपनाने वाली रचनाओं के अतिरिक्त हिन्दी मे कड़वकवद्ध रचनाओं की एक दूसरी परम्परा भी है। 'रूपमजरी' (नंददास), 'चेरित्रोपाख्यान' (गुरु गोविंदसिंह), 'कथा कामरूप' (सभाचंद सौंधी) 'कथा हीर रांझिनि की' (गुरदास गुणी), 'सूररंभावत' (भूपत) में प्रति कड़वक अर्द्धालियों की सख्या भिन्न-भिन्न है। कही-कही तो तीस-तीस अर्द्धालियां एक साथ आ जाती हैं। तब वही 'घत्ता' के दर्शन होते है। रामदास एवं कुंजमणि के 'उपा चरित्र' भी इसी पद्धति के है।

(ख) एक छंदात्मक रचनाएँ

इन रचनाओ की परम्परा विशेष समृद्ध नही है। इनमें 'ढौला मारू रा दूहा' (कल्लोल), 'माधवानल कामखंदला प्रबंध' (गणपति), 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' (पृथ्वीराज), उषा अनिरुद्ध व्याह' (रामचरण) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(ग) अनेक छंदात्मक रचाएँ

इनमें एक कोटि तो उन रचनाओं की है जिनमें मुख्य छंद तो 'दोहा चौपाई' सजातीय है परन्तु बीच-बीच में गाथा, वस्तुबध, अरिल्ल आदि छंद 'घत्ता' के लिए प्रयुक्त हुए हैं। 'लखमसेन पद्मावती कथा' (दामो), 'छिताई चरित' (नारयणदास),

---

१. दक्खिनी हिन्दी का प्रेम-गाथा काव्य, डॉ० दशरथराज, पृ० ३६६

'माधवानल कथा' (दामोदर), 'माधवानल चउपई' एवं 'ढोला मारू चउपई' (कुशललाभ), मधुमालती वार्ता (चतुर्भुजदास), 'यूसफ जुलेखा' (शेखनिसार) में अनिश्चित संख्यक अर्द्धालियों के अनन्तर भिन्न-भिन्न छंदों का प्रयोग 'घता' के लिए होता है। बीच-बीच में संस्कृत श्लोक भी आ जाते हैं। जानकी 'नलदमयंती', 'ग्रंथ लै ले मजनूं' में भी इस प्रकार घता के लिए अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है। कथा कुलवंती में ६-६ अर्द्धालियो के अनन्नतर दोहे एवं सोरठे का घता मिलता है।

दूसरी कोटि वाली रचनाओं में 'रासो' के समान अनेक छंदात्मकता है। इनमें 'रसरतन' (पुहकर), 'विरह वारीश' (बोधा), 'कथा कौतुहली' (जान), उषा-हरण' (जीवनलाल नागर), 'माधवानल नाटक' (कवि केस) उल्लेखनीय है। इनमें अनेक प्रकार के छन्द हैं। राजस्थानी प्रेमाख्यानों में अपभ्रंश एवं हिन्दी के प्रसिद्ध छंदों के अतिरिक्त रागनियों का भी नामोल्लेख पूर्वक प्रयोग हुआ है। "इन प्रेमाख्यानों में मुख्यतः राग रामगिरी, मल्हम्, मारूकेदारा, धन्यासी, गौड़ी, आसासिधु, आसाउरी, वयराड़ी, सोहलारी, आसा, मारू, खंभाइती, वेलाउल, जयश्री, रसीमानी, योगिनारी, साभेदी, बिंदलीनी, नयदलनी, ओलगड़ी, गूजरी आदि शास्त्रीय एवं लोक-रागों का प्रयोग मिलता है।[1]

छन्दों के लक्षण सामंजस्य की समस्या

इनमें से प्रथम परम्परा की रचनाओं में प्रयुक्त छन्दों को दोहा चौपाई की संज्ञा दी जाती है। इन छन्दों के लक्षण को यदि ध्यान में रखा जाए तो यह नाम उचित प्रतीत नहीं होता। प्रथमतः विषम अर्द्धालियों वाली रचनाओं में स्पष्टत: चौपाई छन्द के लक्षण का समन्वय नहीं होता। इन कवियों के विषय में यह सोचना कि अभारतीय होने के कारण छंद की प्रकृति का इन्हें परिचय नहीं था, अनुचित है। विशेषत: जायसी एवं सामान्यत: अनेक कवियों की रचनाओं में जिस सूक्ष्मता से भारतीयता अनुप्राणित है, उसे देखते हुए यह कल्पना स्वत: खंडित हो जाती है। पुन: दोहे-चौपाई के लक्षणों का समन्वय इनमें नहीं हुआ। 'चंदायन', 'मृगावती', 'पदमावत' आदि रचनाओं की अनेक अर्द्धालियों से इस तथ्य की परीक्षा की जा सकती है।[2] इन रचनाओं में चौपाई के स्थान पर पन्द्रह से उन्नीस मात्राओं वाली अर्द्धालियों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार दोहे के चरणों की मात्राएँ भी लक्षणानुकूल नहीं है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जायसी द्वारा प्रयुक्त चौपाई छंद को मात्रा और तुक दोनों दृष्टियों से नियमित कहा है। उनके अनुसार केवल दोहों के विषय में ही नियमों का उल्लंघन हुआ है।[3] परन्तु उन्हीं द्वारा सम्पादित 'पद्मावत' में चौपाइयों की मात्राओं की संख्या में भी

---

१. राजस्थानी के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति, डॉ० रामगोपाल गोयल, पृ० ४५६

२. इस प्रकार के कुछ उदाहरणों के लिए देखे परिशिष्ट २

३. पदमावत प्राक्कथन, पृ० १२-१३

अन्तर देखा जा सकता है।[1] अतः डॉ० माताप्रसाद गुप्त का यह निष्कर्ष तथ्यों पर ही आधारित मानना चाहिए कि 'जायसी दोनों छन्दों की मात्राओं के सम्बन्ध में पर्याप्त स्वतन्त्रता रखते है।[2] यह स्वतन्त्रता अकेले जायसी में ही नहीं अनेक कवियों में परिलक्षित होती है। 'चंदायन' एवं 'मृगावती' में भी यह स्वतन्त्रता पर्याप्त अधिक है। 'मृगावती' में प्रयुक्त छन्दों की एक छोटी सी सूची भी कवि ने दी है —

"गाथा दोहा अरिल आरजा। सोरठा चौपाइन्ह कै सजा॥"[3]

परन्तु डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त ने अनेक छन्दों की परीक्षा कर यह निष्कर्ष निकाला है कि छन्दों के सम्बन्ध में जो स्वच्छन्दता 'मृगावती' मे देखने को मिलती है वह आश्चर्यजनक है। उन्हें देखकर यही लगता है कि कुतबन ने यद्यपि कतिपय छंदों के प्रयोग की बात कही है परन्तु उन्हें छद-शास्त्र के नियमों में बँध कर चलना अभीष्ट नही।[4] इसी प्रकार के निष्कर्ष चंदायन[5] एवं मधुमालती[6] के विषय में भी निकाले गए है। रचनाओं के उपलब्ध पाठ के आधार पर इनकी सत्यता पर प्रश्नवाचक चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। विशेष बात तो यह है कि छन्द-स्वातन्त्र्य की यह प्रवृत्ति इन कवियों तक ही सीमित नहीं है, इसका अस्तित्व मध्यकाल के अनेक कवियों में मिल जाता है।[7] पुनः यह स्वातन्त्र्यवृत्ति तथा कथित दोहा-चौपाई तक ही सीमित नहीं। अन्य छन्दों के प्रयोग में भी इसके दर्शन हो जाते है। वस्तुबध छंद में २२ (७, ७, ८ पर यति) दूसरे, तीसरे चरण में २८, २८ (१३,१५ पर यति) चौथे, पांचवें चरण में २४, २४ (१३, ११ पर यति) मात्राएँ होती हैं। परन्तु 'छिताई चरित' में दो वस्तुबन्धों[8] की मात्रा गणना इससे भिन्न तो है, परस्पर भिन्न भी है। दामो[9] एवं कुशललाभ[10] रचित वस्तुबन्ध छन्दों में भी यह स्वच्छन्दता स्पष्ट है। सोरठा एवं गाथा[11] छन्दों में भी यह अनियमितता परिलिक्षित होती है।

१ उदाहरण के लिए दोहा संख्या १५.१ ११५.५, २३४. १-५, ४५१.१, ४५१.३ ५५६.३-४ ५५६.६, ६०४.१-६

२. जायसो ग्रन्थावली, पृ० ४४

३. मृगावती, पृ० ८

४. मृगावती, पृ० ४६

५. डा० नित्यानन्द तिवारी ने अपने शोध-प्रबन्ध लोरिक चन्दा का पंवारा और मुल्ला दाऊद के चंदायन का आलोचनात्मक अध्ययन में दोहे चौपाइयों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि उस समय तक इन छन्दों का मात्रा क्रम तरल था।

—टंकित प्रति, पृ० २६२

६. मधुमालती, सं० शिवगोपाल मिश्र, भूमिका, पृ० ६८, ६६

७. कुछ उदाहरणों के लिए देखें परिशिष्ट २

८. छिताई चरित, पृ० १ एवं १४ पर मुद्रित वस्तुबन्ध छंद।

९. लखमसेन पदमावती कथा, पृ० २०, २३ पर मुद्रित वस्तुबन्ध छन्द।

१०. माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध, पृ० ३८७ पर मुद्रित वस्तुबंध छन्द।

११. वही (दामोदर की कृति) पृ० ४८६, ५०१, ४८८, ४८६ पर मुद्रित सोरठे एवं गाथाएं।

अतः 'कडवकबद्ध' रचनाएँ 'मात्रिक गणना' की दृष्टि से दोहा चौपाई नहीं कही जा सकती। छंद शास्त्र का किंचिन्मात्र ज्ञान रखने वाला विद्यार्थी भी जानता है कि समान मात्राओं वाले छंदो मे भी यत्र तत्र गुरु लघु के अन्तर से छंद का परिवर्तन हो जाता है। १६ मात्राओं वाले जिन छंदों का उल्लेख हिन्दी लक्षणकारों ने किया है उनमें पादाकुलक, पद्धरि, उपचित्रा, पज्झटिका, मात्रासमक, विश्लोक, चित्रा और वानवासिका जो संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश के लक्षण-ग्रथों मे उल्लिखित है के अतिरिक्त चौपाई (पादान्त लघु), पादाकुलक (पादान्त गुरु), कलिद (दो पाद चौपाई, दो पाद पादाकुलक), मधुकर (दो पाद पादाकुलक, दो पाद चौपाई), वशी (चार चतुष्कल अत गुरु), पद्धरि या परिझुलिया (चार चतुष्कल अंत जगण), अलिला (४ चतुष्कल अन्त दो लघु तथा यमक) और सायक (पादान्त गुरु) ...., भिखारीदास के १६ मात्राओं के पाद वाले छंद विद्युन्माला, चंपक माला, सुषमा, भ्रमर विलसिता, मता, कुसमविचित्रा, अनुकूल, नवमालिनी, चंडी, प्रहरण कलिका, जलोद्धतगति, मणि गुण, स्वागता, चंद्र वर्त्म, मालती, प्रियंवदा, रथोद्धता, द्रुतपा, पंकावली तथा अचल घृति वस्तुतः वर्णवृत्त है और इनके लक्षणों में भी प्रायः वर्ण-गुणों की सहायता ली गई है।[1] एक सोलह मात्रा वाले छंद मे छोटे-छोटे परिवर्तन से अनेक भेदों की बात इस उद्धरण से स्पष्ट होती है। अत. यह कहने में संकोच नही करना चाहिए कि 'छन्द-शास्त्र' के अनुशासन में इन्हें 'दोहा-चोपाई' नहीं माना जा सकता।

अपभ्रंश-साहित्य की छंद-परम्परा एवं हिन्दी के प्रेमाख्यान

हिन्दी प्रेमाख्यान-साहित्य के छंदों की परम्परा भी अपभ्रंश-साहित्य से जुडी हुई है। अपभ्रश में इन तीनों परम्पराओं का अस्तित्व उपलब्ध होता है। अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य कड़वक बद्ध है। पज्झटिका या अरिल छन्द की कई पंक्तियाँ लिखकर कवि एक घत्ता का ध्रुवक देता है। कई पज्झटिका, अरिल्ल, या ऐसे ही किसी छोटे छन्द को देकर अन्त में घत्ता का ध्रुवक यह कडवक है। .... कड़वक आठ यमकों का तथा एक यमक दो पदों का होता है। एक पद में यदि यह पद्धड़ियाबद्ध हो तो सोलह मात्राएं होती हैं।[2]

कडवक का मूल भाग पज्झटिका, पादाकुलक, वदनक, पाराणक, अलिल्लह, आदि छन्दों से बनता है।[3] स्वयंभू ने लयसाम्य के कारण चौपाई, पादाकुलक, अरिल्ल आदि छन्दों का एक ही कडवक मे सुविधानुसार प्रयोग किया है।[4] इसी प्रकार सोलह मात्राओं एवं आठ यमकों की बात भी सिद्धान्त रूप से ही है। यमकों की मात्राएँ एवं संख्या घटती-बढ़ती रहती है। एक कड़वक में छ. से लेकर बीस-पच्चीस तक यमक

---

१. मात्रिक छंदो का विकास, डा० शिवनन्दन प्रसाद, पृ० २३०-३१

२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ९४

३. अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड, पृ० ४५

४. मात्रिक छन्दों का विकास, डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, पृ० ३४२

मिल जाते हैं। इन कडवकबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त एक छन्दात्मक रचनाएँ भी अपभ्रंश में अनेक है। पुष्पदन्त के महापुराण मे कई सधियाँ एक छन्दात्मक है। 'गाथासप्तशती' जैसी रचनाएँ उसी पद्धति का विकास है। इसी प्रकार नयनदीकृत 'सुदसण चरिउ', 'सकल विधि विधान काव्य' आदि में अनेक छंदों की परम्परा उपलब्ध होती है।[१] रासों में उसी प्रवृत्ति का विकास है।

हिन्दी रचनाओं में अन्त्यानुप्रास की प्रवृत्ति भी अपभ्रंश से ही आई है। संस्कृत एवं प्राकृत में यह प्रवृत्ति कवि-प्रिय न हो सकी। फारसी मसनवियों के साथ इसकी समानता एक सुखद संयोग ही है। अतः इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं कि हिन्दी प्रेमाख्यानकारों ने छन्द के क्षेत्र में भी परम्परा-विकसित भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों को ही स्वीकार किया।

यह शका सर्वथा निर्मूल है कि जायसी प्रभृति मुसलमान कवियों का आदर्श फारसी मसनवियाँ थी। अनेक छंदात्मकता के अतिरिक्त कवियों द्वारा भिन्न छंदों का नामोल्लेख भी इस मान्यता को खंडित करता है। आरम्भ में कुतबन एवं जायसी मध्य में जान एवं आलम ने छंदों के नामों की गणना की है।[२]

अब केवल एक प्रश्न रह जाता है— वह है छंद-स्वातंत्र्य का। यह समस्या केवल मुसलमान कवियों की नहीं, केवल प्रेमाख्यान-कवियों की नहीं, सम्पूर्ण पूर्वमध्य-युगीन हिन्दी साहित्य की है। अनेक कवियों के उद्धरणों से इसका अस्तित्व स्पष्ट किया जा चुका है। तुलसी जैसे समर्थ कवि में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। 'कवितावली' के प्रथम दुर्मिल सवैये में यह अत्यन्त स्पष्ट है। यहाँ आठ सगणों के लिए अनेक गुरु स्वर ह्रस्व बोलने पड़ते है। उनकी चौपाइयों में भी यदा-कदा मात्राओं का अन्तर मिल जाता है। विद्वानों के विचार है कि उन्होने चौपाई से मिलते-जुलते छन्दों को भी चौपाई मे ही समेट लिया।[3] यह सब कुछ हमें बाध्य करता है कि हम सम्पूर्ण मध्य-युगीन साहित्य के छंदों पर मात्रा अथवा वर्ण की परिधि से बाहर निकल कर विचार करे। छंद-क्षेत्र में वह परिमाप है 'ताल' का। ऐसा मानना अनुचित नही होगा कि इस युग में साहित्य में ताल छंदों का प्रचार हुआ।

---

१. अपभ्रंश साहित्य, पृ० १७४

२. (क) जायसी—लिखि भाषा चौपाई कहै।

—पद्मावत, पृ० २४

(ख)—जान उनमें छंद द्वैकै तीन। या मैं वहु समझो प्रवीन।

—कथा कौतुहली (हस्तलिखित)

(ग)—नूरमुहम्मद तीन सहस चौपाइय भई।

—इन्द्रावती, पृ० १७६

(घ) आलम—भाषा बांधि चौपही जोरी।

हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह, पृ० १८५

३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५५०

मात्रिक छंदों में वर्णिक छंदों से बंधन कम होता है और तालछंदों में मात्रिक छदों से भी कम । इसीलिए लोक अर्थात् जनसाधारण के बीच ताल संगीत लोकप्रिय रहा । क्योंकि वह अशिक्षित व्यक्तियों के लिए भी स्वर अथवा वर्ण संगीत की तुलना में सहज ग्राह्य है ।[1] यही कारण है कि मध्यकालीन कवियों के छंद-विधान में आवश्य-कता के अनुसार शब्दान्तर्गत वर्णों का स्वरूप ह्रस्व या दीर्घ हो जाता है । वर्ण वृत्तों में वर्णों का क्रम निश्चित होता है परन्तु मात्रा वृत में न तो पादगत वर्णों की निशचित सख्या का निश्चित क्रम अनिवार्य है न ताल तत्व ही । इन छंदों में पादगत मात्राओं की निश्चित संख्या के साथ लय वैशिष्ट्य मात्र अपेक्षित है । इस लय वैशिष्ट्य की रक्षा का विधान विशिष्ट स्थानों पर गुरु वर्णों के निषेध द्वारा अथवा मात्रिक गणों के निर्देश द्वारा किया जाता है ।[2] ताल-गण में काल मात्राओं की निश्चित संख्या होती है । मात्रिक गण में वर्ण मात्राओं की निश्चित संख्या होती है । तालगण में सभी वर्ण उच्चरित हों यह भी जरूरी नही । ताल छंद का गायक मौन या विराम द्वारा भी अपेक्षित समय की पूर्ति कर लेता है । "अक्सर ताल गण के अन्दर वर्ण मात्राओं तथा काल मात्राओं के अन्तर की पूर्ति के लिए वर्णों के रूढ़ लघु गुरु स्वरूप में स्वेच्छापूर्वक परिवर्तन तथा लुप्त उच्चारण का सहारा लिया जाता है ।[3] ताल छंदों की इस व्याख्या से हमें इन रचनाओं की स्वछदता का रहस्य स्पष्ट हो जाता है । ये रचनाएँ प्राय: गाकर पढ़ी जाती थी । अत: उनमें 'तालछंद' का महत्वपूर्ण स्थान अनिवार्य है । रचना की गेयता के अनुसार ही उसमें छद-स्वातंत्र्य की बात है ।

प्रारम्भिक रचनाओं मे साहित्यिक परम्पराओं के साथ-साथ लोकाग्रह से ताल-छंदों को अधिक प्रश्रय दिया गया । लोकप्रियता एवं सुविधा की दृष्टि से यह उचित भी था । उनमें ऐसी शैली को अपनाया गया जिसमें लोक एवं साहित्यिकता का समन्वय था ।

परन्तु दूसरी प्रकार की रचनाओं में, जिनमें साहित्यिकता का आग्रह अधिक है, भी छंदोभंग के उदाहरण मिलते हैं । डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने पुहकर के छंदों पर विस्तार से विचार किया है ।[4] जान कवि ने भी अनेक छंदों के नाम दिये है । 'कथा कौतुहली' में तो इनकी भरमार है, परन्तु इनमें अनेक छंदों का विधान नियमानुकूल नहीं है । सत्य तो यह है कि मध्यकाल का कवि साहित्यिक अनुशासन के साथ-साथ वैविध्य का पक्षपाती भी था । नियमों के प्रति वह इतना अधिक आस्थावान नहीं जितना कि वैविध्य के प्रति । "मध्यकाल में छंद शास्त्र की जटिलता का एक कारण यह भी है कि कवि पूर्वनामों से परिचित छंदों का अपने या अपनी मान्य परम्परा के अनुसार नया नामकरण कर देते हैं ।[5] अनेक बार इन नामों का निर्देश भी कर देते

१-२ मात्रिक छंदों का विकास, पृ० १४२, १४३

३. मात्रिक छंदों का विकास, पृ० १४५

४. रसरतन पृ० १२८-१३४

५. रसरतन, पृ० १६३

है। रासों के छदों के अध्ययन में डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी के समक्ष भी यही समस्या थी। उन्हीं के शब्दों मे इस ग्रथ में अनेक छंद ऐसे हैं जिनके रूप का पता छंद ग्रन्थों मे अवश्य मिलता है परन्तु जिनके नाम छद क्षेत्र में सर्वथा नये है जिससे समस्या और भी उलझ जाती है अनेक स्थल ऐसे है जिनमें छंद के रूप के विपरीत उसका कोई नाम दिया हुआ है। अतएव रासो के छदों के वास्तविक रूप की विवेचना और उनका वर्गीकरण एक परम कष्टसाध्य विषय बन गया है।[1] इस वैविध्य के लिए वे अनेक बार प्राचीन परम्परा का त्याग कर नई योजना करते है। अत: चाहे गेयता के आग्रह से और चाहे वैविध्य के आकर्षण से मध्यकालीन हिन्दी कवियों में छन्द-स्वातन्त्र्य की प्रवृत्ति बलवती रही।

पंजाबी में छन्द-प्रयोग

एक छंदात्मकता

पंजाबी प्रेमाख्यानों में सर्वत्र एक छन्दात्मकता ही मिलती है। आरंभ से अन्त तक कवि दूसरे छंद का व्यवहार नही करते। इन सभी रचनाओं में प्रयुक्त किए गए छंदों की गिनती भी तीन तक ही सीमित है। मुख्यत: दवैया एवं बैत तथा गौणत: 'दोहरा' छंद का प्रयोग हुआ है। प्रथम कवि दमोदर ने अपनी 'हीर' में 'दवैया' छद का प्रयोग किया। हाफज बरखुरदार 'यूसफ-जुलेखा' मे हाशम ने 'हीर रांझे की बिरती' के अतिरिक्त अन्य तीनों रचनाओं में अहमदयार ने सस्सी पुन्नू के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में तथा मुहम्मद बख्श ने सैफुलमलूक में 'दवैया' छन्द का ही प्रयोग किया। पीलू एवं हाफिज बरखुरदार ने 'मिरजा साहिबां' तथा कादरयार ने 'सोहणीं महीवाल' में दोहरे को अपनाया। बरखुरदार की अन्य रचना 'सस्सी पुन्नू' में भी यही छन्द प्रयुक्त हुआ है। अहमद को सर्वप्रथम बैत छन्द का प्रयोग करने का श्रेय दिया जाता है।[2] इनके बाद हामद, मुकबल, वारिस, अब्दुल हकीम बहावलपुरी, मुहम्मद बख्श आदि कवियों ने बैत छन्द को ही अपनाया। हाशमशाह ने 'हीर रांझे की बिरती' में बैत का ही प्रयोग किया है। इन कवियों के छन्द प्रयोग की सामान्य प्रवृत्तियों के विश्लेषण के लिए कुछ कवियों द्वारा प्रयुक्त-छन्द-कौशल पर विचार करना अप्रासगिक न होगा।

दवैया-प्रयोग

दमोदर ने पंजाबी किस्सा-काव्य का आरंभ 'दवैया' छंद के प्रयोग से किया। पजाबी छंदशास्त्र में इसे दो चरणों का छद माना जाता है जिसके प्रति चरण अठ्ठाईस अठ्ठाईस मात्राएँ तथा १६, १२ पर यति विधान है।[3] परन्तु दमोदर ने इसे चार-चार चरणों की इकाई बनाकर प्रयुक्त किया है। उनकी रचना में कही-कहीं पाँच चरण

---

१. चंद बरदाई और उनका काव्य, पृ० २१४
२. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, दरदी, पृ० १७६
३. पिंगल ते अरूज, जोगिन्दरसिंह, पृ० ३१

भी एक साथ मिल जाते हैं। चारों या पाँचों चरणों का अन्त्यानुप्रास उनकी एकता का द्योतक है। इस अन्त्यानुप्रास के अतिरिक्त न तो उसमें सगीत का गुण है और न मात्राओं का आवश्यक विधान—

सुण रांझा ! इक अरज असाडी बैठ पसिंद करीहां।
ओह बेला ते ओह बेड़ी, असी गोइल बैठ करीहां।
तू ओहो रांझां असी ओहो कुड़िआं, नऊ तन इशक लईहां।
जो कोई गल्ल करे तुसाडी तां अक्खीं चाइ कटीहां।
जिउं जाणे तिउं जाल इथाईं, पल्लू गल्ल पईहां।[1]

संभवतः इसी सगीत एव लयहीनता को देख कर यह अनुमान लगाया कि 'वृत्तान्त प्रधान' रचनाओं के लिए इस छन्द को अपनाया गया।[2] उनका यह अनुमान लगभग सही है। बरखुरदार की जुलेखां एवं सस्सी पुन्नू में इसी छन्द का प्रयोग है और उनमे भी इतिवृत्तात्मकता के प्रति कवि का मोह स्पष्ट है। मात्राओं या लय के सम्बन्ध मे यह कवि भी विशेष जागरूक नही था। उसके अनेक पद्यों के चरणों मे अनेक मात्राएँ घट बढ़ गई है—

खूहे अन्दर पहुँचिआ यूसफ, भेजिआ वही शिताबी।
पुज्जे रब्ब सुनेहे यूसफ, न कर कुझ बेताबी।।[3]

अथवा

मुड़ के इशक जुलैखा वाला, यूसफ दे घट वड़िआ।
उह जांजी मांजी होइ दुबारा, जाइ महिलीं वड़िआ।।[4]

मौलवी लुत्फअली यद्यपि फारसी का उद्भट विद्वान् था परन्तु उसने 'मसनवी सैफुलमुलूक' मे किसी फारसी छन्द की अपेक्षा 'दवैये' को ही पसन्द किया।[5] यद्यपि उन्होंने प्रति प्रसग चरणों की संख्या का बन्धन स्वीकार नहीं किया। पाँच चरणों के छन्द भी है और पैतालीस चरणों के भी। इसी प्रकार लुत्फअली ने दवैये को भी बैत के ही समान चरणों की संख्या के बन्धन से मुक्त करने की परिपाटी डाली परन्तु अन्य किसी कवि ने इसे अपनाया नहीं। संगीत की दृष्टि से इस रचना की अत्यन्त प्रशसा की गई है।[6] परन्तु हाशम ने इस छंद में अपूर्व संगीतात्मकता को मिलाकर सफल प्रयोग भी किया। उन्होने दमोदर की अनुकृति पर चार चरणों वाले दुहरे दवैये का प्रयोग भी किया एवं 'शीरी फरहाद' मे द्विचरणात्मक शुद्ध दवैये का भी। सर्वत्र

---

१. हीर दमोदर, पृ० १८७
२. साहित्य समाचार किस्सा काव्य अंक पृ० ४८
३. यूसफ जुलेखा, पृ० ६३
४. वही, पृ० ११४
५. श्री मुहम्मद वशीर अहमद ने इसे 'दोहड़ा' कहा है (मसनवी सैफुलमुलूक पृ० ३२) परन्तु सुर एवं ताल तथा मात्रा-गणना में यह दवैये से अधिक मिलता है।
६. मसनवी सैफुलमुलूक, पृ० ३६

उनको समान सफलता मिली। हाशम की रचनाओं मे कहीं-कहीं मात्राओं की घटा-बढ़ी तो मिल जाएगी परन्तु उनका शब्द-प्रयोग अपूर्व-कौशलपूर्ण है। उसमे स्वतः एक संगीत लहरी उत्पन्न हो जाती है। इस दृष्टि से सस्सी सर्वोत्तम रचना है। दृश्य का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। यह सगीत अथवा शब्द-चयन उनकी अन्य रचना 'शीरी फरहाद' मे भी स्पष्ट है। यद्यपि इसमें दो चरणों वाले शुद्ध दवैये का ही प्रयोग हुआ है—

जे कर पवे पतग दलीलीं, घाटा नफा विचारे।
ता उह फेर दिवाना कोकुर, जान जूए विच हारे।[1]

शब्द-मैत्री के सहयोग से इन दो पक्तियों में भी अपूर्व लालित्य आ गया है। हाशम ने दवैये को जो संगीत एव गांभीर्य प्रदान किया उसके कारण अहमदयार ने इसे अनेक बार अपनाया। अहमदयार की 'सस्सी पुन्नू' में तो बैत छन्द का प्रयोग हुआ परन्तु 'अहसनुल कसिस', 'कामरूप', 'राजबीबी' आदि में सर्वत्र दवैया छन्द का ही प्रयोग हुआ है। इस मान्यता मे अधिक बल नही कि उन्होंने कुरान की आयतों एवं हदीशो की अरबी शब्दावली को प्रयुक्त करने के लिए इस अपेक्षाकृत छोटे छद को स्वीकार किया।[2] वस्तुत. इस कवि का प्रिय छन्द दवैया ही है और वर्णनात्मक कविता मे उसने इसी को स्वीकार किया। यद्यपि 'अहसनुल कसीस' में बार-बार कुरान के अंशो के प्रयोग के कारण छन्दोभंग के अनेक अवसर आए है परन्तु फिर भी दमोदर अथवा बरखुरदार की अपेक्षा इस कवि के अधिकांश पद्यों में सगीत एव छन्द लालित्य के दर्शन हो जाते है। इनके 'अहसनुल कसिस' में द्विचरणात्मक दवैये का प्रयोग है। कामरूप में भी इसका इसी रूप में प्रयोग हुआ है परन्तु राजबीबी और हीर में चार-चार चरणों में समान तुक का प्रयोग किया है। अनेक बार कई छंदों के समान तुकान्त होने पर यह भ्रम हो जाता है कि कवि ने आठ या बारह चरणों के छद लिखे है।

दवैये का जैसा बहुविध प्रयोग मुहम्मद बख्श ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मुहम्मदबख्श की इस विशाल रचना में सर्वत्र दवैया छन्द ही प्रयुक्त हुआ है। प्रायः उसने इसमें दो-दो चरणों का अन्त्यानुप्रास मिलाया है जिन स्थानो पर चार-चार चरणों का अन्त्यानुप्रास समान है उन्हें दोहड़ा कहा गया है।[3] और यदि विषम चरणों में अन्त्यानुप्रास है तो गजल।[4] एकाध स्थान पर इसी छन्द में आठ मात्रों का एक अंश जोड़कर उसे 'ड्योढ़' कहा गया है। नददास के भ्रमरगीत में इस प्रकार का प्रयोग हुआ है। पजाबी में किस्सा-काव्य मे इस छन्द का प्रयोग नहीं है। मुहम्मद बख्श ने भी इसे बहुत थोड़े छंदों में प्रयुक्त किया है।[5] ये नामकरण भी कवि की निजी कल्पना ही है।

१. हाशम रचनावली, पृ० १४१
२. अहसनुलकसिस, प्रवेशिका, पृ० ज।
३-५. सैफुलमुलूक पृ० ३१८; ४३३, ३६३-६५ और ६४०

'दोहरा' प्रयोग

पीलू की रचना में प्रयुक्त छंद को 'सद' कहा गया है[1] परन्तु भाई साहब भाई कान्हसिह ने अपने महान् कोष में यह स्पष्ट कर दिया है कि 'सद' कोई छंद विशेष नही है। प्रत्युत् लम्बी लय में गाया जा सकने वाला कोई भी छद 'सद' कहा जा सकता है[2] फिर भी इस छंद के बारे मे भ्रम निवारण नहीं हो पाया। अपनी पुस्तक 'पिंगल ते अरूजे' में श्री जोगिन्दरसिंह ने इसे दवैया का ही रूप मानते हुए लिखा है कि जिशनपदा (छन्द विशेष) एवं सद दोनों में मात्राएँ दवैये की ही है केवल विषय-भेद ही है।[3] निश्चित रूप से पीलू एवं बरखुरदार की रचनाओं में दवैये का प्रयोग नहीं हुआ। इनकी रचना राजस्थानी दूहा बंध के अनुकरण पर हुई है[4] और इसे दोहरा कहा गया है। इसमे सदेह नही कि छंद-शास्त्र की दृष्टि से पीलू के ही समान बरखुरदार की 'मिरजा साहिबां' या 'सस्सी पुन्नू' में भी पर्याप्त शिथिलता है। श्रुति परंपरा से इनमे कुछ छन्द दवैये के अधिक निकट प्रतीत होते है। परन्तु उसका स्वर-विधान एव ठहराव (यति) दोहे से ही मेल खाती है। इनको दोहा-बंध स्वीकार कर ही ठीक प्रकार से गाया जा सकता है। पंजाबी में दोहरे का लक्षण हिन्दी दोहे के ही समान है। यद्यपि वहाँ इस अर्धसममात्रिक छन्द मानने की अपेक्षा १३ एवं ११ मात्राओं पर यति युक्त द्विचरणात्मक छन्द माना जाता है।[5]

पीलू के इन पद्यों की मात्राएँ एवं दोनों चरणों के अन्त में (अथवा हिन्दी की दृष्टि से विषम पादान्त मे) अन्त्यानुप्रास परीक्षणीय है—

सिर सिआलां दे वढ के, देवां जंड चढ़ा।
बग्गी दी बेल पर बहि के, बगी नूं लाज नला॥

अथवा

राजा भूरे राज नूं, बन्धन भूरे चोर।
गोरी भूरे रूप नूं, पैरां भूरे मोर॥[6]

बरखुरदार में भी

चढ़दे मिरजे खान नूं, अगों मादर देवे मत्त।
जाए बगानी नार नूं, मूरख पावे हत्थ॥
लखी हथ न आंवदी, दानशमंदा दी पत्त।
मैं बकरा देसां पीर नूं, जो घर आवे मुड़ वत्त॥[7]

---

१. पंजाबी साहित दा इतिहास, दरदी, पृ० १६०
२. गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष ११३ (गुरुछंद दिवाकर, पृ० ८१, ८२)
३. पिंगल ते अरूज पृ० ३२
४. पंजाबी साहित दा इतिहास नरूला, पृ० १३०
५. पिंगल ते अरूज, पृ० २६
६. बबीहाबोल, पृ० १०३
७. कोइलकू, पृ० ११८

इस छंद को कुछ नियमबद्ध रूप में कादरयार ने सोहणी मे प्रयुक्त किया। कादरयार ने दोहे के दो चरणों अथवा दोहरे के एक चरण को चार-चार बार दुहराया। इस प्रकार दो-दो दोहरे या दोहे इकट्ठे मिलाकर उनमें समान तुकान्त का विधान किया है—

इह कहाणी इशक दी, आशक मारे लूह।
कोले होए बदन दे, खल्लां होए रूह॥
पाण चढ़ाई इशक दी, जो आहीं दा खूह।
फेर मैदानी कादरा, वेख असील धरूह॥[1]

पीलू मे दो-दो, कादरयार में चार-चार एव बरखुरदार के दोहरों मे अनेक चरणों की अन्तिम तुक मिलती है।

बैत का प्रयोग

दवैया में स्वर की शीघ्रता एव दोहरे मे स्वर की दीर्घता ही मूल अन्तर है। मात्राओं की इन कवियो ने कम चिन्ता की है। सभवतः ये बोलकर ही लय साम्य के आधार पर रचना करते थे। इन दोनो ही छदों मे प्रायः दो या चार चरणों के अन्त्यानुप्रास लगभग भारतीय काव्य-परम्परा के समान है। पंजाबी किस्सा-काव्य मे बहुप्रचलित छद बैत है। अधिकतर विद्वानों का यह विचार है कि बैत विदेशी छंद है। उनका विचार है कि यह अरबी शब्द बैत का विकृत रूप है जिसका शाब्दिक अर्थ दरवाजा या घर होता है। (जिस प्रकार दरवाज़े के दो पट या किवाड़ होते है और दो-दो को मिलाकर एक इकाई बनती है इसी प्रकार बैत या 'शेअर' के भी दो-दो चरण मिलकर एक इकाई बनते है।) साहित्यिक परिभाषा में बैत दो चरणों का छंद है जिसकी दोनों चरणों की तुक समान हो।[2] भाई साहब कान्हसिंह ने भी इसके विषय मे इसी प्रकार के विचार प्रकट किये है और इसके टकसाली रूप में चालीस मात्राओं तथा २० मात्राओं पर यति का विधान बताया है।[3] और इसके अनेक रूप दिए है। परन्तु मात्राओं का यह विधान केवल परिभाषा में ही उपलब्ध होता है। वास्तव में बैत एक स्वतन्त्र छंद है जिसे भारतीय सिद्ध करना या झूलना छंद से समानता जोड़ना[4] व्यर्थ का द्रविड़ प्रयत्न है। अहमद ने ही इसे फारसी छंद-शास्त्र में प्रसिद्ध रदीफ एवं काफिये से समृद्ध कर भारतीय छंद परम्परा से पृथक् कर दिया। रदीफ का प्रयोग विशुद्ध फारसी प्रभाव है और उसके साथ काफिया उस प्रभाव को और भी गहराई में ले जाता है। आरम्भ में अहमद, हामद एव मुकबल में चार चरणों के बैत की स्वीकृति भारतीय छंद-शास्त्र मे प्रचलित चार चरणों की मान्यता के साथ-साथ चलने की ज्ञात अथवा अज्ञात इच्छा मानी जा सकती है परन्तु

---

१. कादरयार, पृ० ८६
२. सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० ३४
३. गुरु छंद दिवाकर, पृ०२७३
४. फजलशाह की कविता पर डॉ० शेरसिंह का लेख, साहित समाचार किस्सा-काव्य अंक, पृ० ७७

वारिस, अब्दुल हकीम एवं बाद में फजलशाह ने इसे भारतीय छद-परम्परा के साथ-साथ फारसी मसनवी की छद-परम्परा से भी पृथक् कर शुद्ध रूप मे पजाबी छंद बना दिया। वारिस एव फज़लशाह में सुर या लय की ही प्रधानता है। डॉ० जीतसिंह सीतल ने उसे अरूज के असूलों के अनुकूल सिद्ध करने के लिए एक उदाहरण देकर यह निष्कर्ष निकाल लिया कि छदोबद्धता में वारिस जैसे छंद-वैज्ञानिक ने शायद ही भूल की हो या गलत प्रयोग किया हो[1] उनकी जाँचने की पद्धति ही अवैज्ञानिक है । वे मात्राओं का सहारा भी नहीं छोडते और 'मुतहरक साकिन' (चल-अजल) के नियमो पर भी व्याख्या करते हैं। वारिस की रचना में छद-दोषो को खोजने के लिए कोई बड़े प्रयत्न करने की आवश्यकता नही। जब शब्दों का रूप अनेक प्रकार से बिगाड़ना पड़े तो छद-प्रयोग के प्रति अधिक आश्वस्त नही हुआ जा सकता। छद मे सुर एव लय के लिए जुलाहा का जुलासिआं, तरखान का तरखासियां एवं दरजी से दरगासीआ[2] आदि तोड़-मरोड़ करने वाला कवि बहरों अथवा मात्राओ की गणना में सफल नही हो सकता। कम से कम इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बैत छंद का प्रयोग करने वाले किसी भी कवि की रचनाओ को मात्राओं की दृष्टि से परिनिष्ठित छंद परिभाषा के अनुरूप नहीं माना जा सकता। चरणों की अनेकता अथवा विषम सख्या इस बात का भी प्रमाण है कि ये रचनाएँ मसनवी या बैत के मूल अर्थ को भी त्याग चुकी है। इन दोनों ही शब्दों मे 'दो' की भावना है जिसे विषम चरण खंडित करते हैं। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि इसका विकास अभारतीय छद-परम्परा पर हुआ। 'रदीफ' का प्रयोग तो अहमद में ही होने लगा था परन्तु हामद ने कई बार इसके साथ काफिये का भी प्रयोग किया जैसे—

जीउ चुक्किआ सभ किनों रांझने ने, चित्त पिम्रासू बाप दा देस भाई।
आया तखत हज़ारे नूं चल्ल के है, लाह दवालिओं चाकां दा भेस भाई।
दुख हीर दा लड़ बन्ह लिआइआ है, दिल दे विच्च माशूक दी लेस भाई।
जा तखत हज़ारे दे विच्च वडिआ, सिर बग जामा लुंगी खेस भाई।[3]

इसमें आई 'रदीफ' सर्वत्र समान है उससे पूर्व 'एस' का काफिया भी मिलता है। हामद मे ऐसे भी अनेक चौपदे बैत है जिनमें केवल रदीफ की समानता है, काफिये की नहीं और कई बार केवल तुक की ही समानता है परन्तु मुकबल ने इस छंद को विशेष रूप से परिमार्जित कर इसे चार चरणों का रूप दे दिया। मुकबल के बैतों में शब्द मैत्री, नादसौन्दर्य के साथ-साथ रदीफ एवं काफिया की योजना भी सावधानी से की गई है। वारिस ने चार-चरणों की सख्या का बधन भी तोड़ दिया और बाद में इसी को आदर्श मानकर बैत लिखे जाने लगे। परन्तु अहमदयार ने

१. हीर वारिस भूमिका, पृ० १२८
२. हीर वारिस, पृ० ११७
३ गुलदस्ता हीर सं० अमरसिंह, पृ० ४७

'सस्सी पुन्नू' में मुक़बल के ही समान चार-चार चरणों के रूप को ही अपनाया। अहमदयार में भी कुछ स्थानों पर 'क़ाफिया-बन्धन' ढीला है। यद्यपि ऐसे स्थल बहुत कम है। फज़लशाह का छंद विधान और भी ढीला है। कई बार तो उसकी गति भी टूटती प्रतीत होती है। रदीफ की योजना करते समय अन्तिम शब्द कई बार निरर्थक है और काफिया भी अनेकशः पूर्ण शब्द की आवृत्ति के कारण अपने सौंदर्य को खो बैठा है जैसे—

यार यार की पई सुणाउणी हैं, जेकर जान कहें महीवाल माए।
मेरा रब्ब रहीम ते खास काबा, जे ईमान कहें महीवाल माए।
वाली वारसी दो जहान अन्दर, मेरा खान कहें महीवाल माए।
रोज अज़ल दी हो गुलाम रहीआं, मेरा हान कहें महीवाल माए।
मेरा रोज़ मिसाक दा यार पिआरा, जेकर मान कहें महीवाल माए।
फज़ल यार तों जान कुबान मेरी, मेरा तान कहें महीवाल माए।[1]

पजाबी क़िस्सा-काव्य के मुख्य कवियो के छन्द-प्रयोग सम्बन्धी इस विश्लेषण के आधार पर तीन निष्कर्ष स्पष्ट निकाले जा सकते हैं—

१. प्रारम्भ में इन कवियों ने भारतीय छंद दवैया या दोहरा का प्रयोग किया परन्तु उसमे भी मात्राओं या गणों की अपेक्षा ताल के आधार पर ही शब्द योजना की।
२. बैंत छद का प्रयोग बाद में प्रसिद्ध हुआ और इसमें रदीफो के साथ-साथ काफिया-योजना से यह निश्चय किया जा सकता है कि इसका आधार फारसी पिंगल था। परन्तु ये छद उन नियमों पर भी पूरे नहीं उतरते, क्योंकि पजाबी में उर्दू-फारसी के अनेक शब्दों के उच्चारण का सुविधानुसार परिवर्तन कर लिया जाता था।
३. इन छंदों को बोलकर ही प्रायः ताल या लय की जाँच कर ली जाती थी। वे उसमे यथासंभव ताल-लय की रक्षा के लिए शब्दों में परिवर्तन कर लेते थे। दवैया की अपेक्षा बैंत में यह तत्व अधिक मिल सकता है।

पंजाबी में छंद-वैविध्य का अभाव

पंजाबी में छदों के प्रयोग की यह प्रवृत्ति केवल प्रेमाख्यान-साहित्य को ही वैशिष्ट्य नही, प्रत्युत् सम्पूर्ण पजाबी साहित्य में इसे अपनाया गया है। डॉ० मोहन सिंह ने लिखा है कि प्रसिद्ध प्रेमकथाओं, युद्ध परिचयों और गीतियों की अधिकाधिक माँग को पूरा करने की शीघ्रतावश इन कवियों के पास नए छदों या काव्यरूपों को खोजने का समय नही था। उन लोगों ने प्रचलित छदों में से कुछ ऐसे छद चुन लिए जिनके प्रयोग के लिए न तो विशेष सगीत-ज्ञान की आवश्यकता थी और न ही छंद-शास्त्र-ज्ञान की। महाभारत या सिंहासन बत्तीसी जैसे बृहत्काव्यों के अनुवाद-कर्ताओं के अतिरिक्त सभी कवि काफी, बैंत, दोहा, श्लोक या एक दो बार छंदों के

१. सोहणी महीवाल (फजलशाह), पृ० २८

प्रयोग से ही सन्तुष्ट हो गए। इनमे अपनी इच्छानुसार परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ-साथ शब्दों को तोड़ने-मरोडने मे भी सकोच नहीं किया गया।[1] कारण चाहे मनगढ़न्त हो परन्तु प्रवृत्ति के विश्लेषण में डॉ० महोदय ने यथार्थ बात कही है। वास्तव में, जैसा कि पिछले प्रसंगों में कहा गया है ये कवि साधारण प्रतिभा के ही स्वामी थे और उनकी रचनाएँ भी जन-सामान्य के लिए ही थीं। ये काव्य अशिक्षित ग्रामीण जाट, गूजर या खत्रियों के मनोरजन के लिए लिखे गये हैं। शिक्षित जनता से इनका सम्बन्ध नही रहा। यह मजदूरो अथवा सैनिकों के मनोरजन का साहित्य है।[2] विद्याविलासियों या प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों का नही।

तुलना

छंद-प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी की रचनाओं में जो वैविध्य मिलता है पंजाबी में उसका सर्वथा अभाव है। इस दृष्टि से पंजाबी कविता पर 'मसनवी' परम्परा का गहरा प्रभाव माना जा सकता है। पंजाबी में यह विवाद प्रचलित है कि बैत भारतीय है या अभारतीय। हमारे विचार में पंजाबी किस्सा-काव्य में बहुप्रयुक्त इन दोनों छदों का प्रयोग करते समय इन कवियों में अज्ञातरूपेण राजस्थान की दूहा परम्परा, पंजाबी की वार परम्परा एवं फारसी की मसनवी परम्परा का समन्वय हो गया। इनमें कोई भी छंद विदेशी नही है, हाँ बैत का विकास करते समय इन कवियों के मन में फारसी की गजलें एवं कसीदे थे। मसनवियाँ वहाँ पर भी नही। क्योंकि फारसी की मसनवियों में इस ढग की रदीफें और काफिये प्राय: नही मिलते। इन कवियों की श्रोताभिमुखता ने इन्हें नए-नए छंदों की अपेक्षा चिरपरिचित छंदों को ही पुन:-पुन: प्रयोग करने की प्रेरणा दी। रदीफ एवं काफिया की आवृत्ति उसी का प्रमाण है। हिन्दी रचनाओं का वह वर्ग भी जिसे लोक-साहित्य के अधिक समीप समझा जाता है छंद-प्रयोग मे इतना दीन नही। छद-प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी प्रेमाख्यानों में विविध पद्धतियों का प्रयोग हुआ है और इस दृष्टि से वे पंजाबी प्रेमाख्यानों से बहुत आगे है। मात्राओं की गणना की अपेक्षा उनमें भी ताल को प्रमुखता मिली है, परन्तु यह घटा-बढ़ी पजाबी रचनाओं की तुलना मे अतिसामान्य है।

निष्कर्ष

अभिव्यक्ति पक्ष की इन विविध प्रवृत्तियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना असगत न होगा कि हिन्दी के कवि एक साहित्यिक परम्परा के अनुगामी थे। उनकी रचनाओं मे व्यवहृत शब्द-भण्डार, वर्ण-योजना, मुहावरों का अल्प प्रयोग, समृद्ध अलकार विधान, विविध छद-योजना इस मत को पुष्ट करती है। केवल मुसलमान या हिन्दू होने मात्र से कोई कवि इस परम्परा से व्यवच्छिन्न नहीं हुआ है। यह अवश्य विचारणीय विषय है कि इन कवियों ने यह सब कुछ कहाँ से सीखा। इस

१. एन इंट्रोडक्शन टु पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ११३-११४

२. ए हिस्ट्री आव् पंजाबी लिट्रेचर पृ० ९५-९६

विषय में केवल जायसी के सम्बन्ध में विचार किया गया है । ग्रियर्सन महोदय का अनुमान है कि जायसी ने जायस में आकर पडितों से संस्कृत काव्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की एवं आचार्य शुक्ल के अनुसार जायसी ने काव्य शैली किसी पंडित से न सीखकर किसी कवि से सीखी । उस समय काव्य व्यवसायियों को प्राकृत और अपभ्रश से पूर्ण परिचित होना पड़ता था । छद और रीति आदि के परिज्ञान के लिए भाषा-कविजन प्राकृत और अपभ्रश का सहारा लेते थे । ऐसे ही किसी कवि से जायसी ने काव्य-रीति सीखी होगी । इन दोनों मतों को उद्धृत कर[1] डॉ० प्रभाकर शुक्ल ने आचार्य शुक्ल के मत की ही पुष्टि की है और यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि जायसी अपने पूर्ववर्ती अवधी साहित्य से भली प्रकार परिचित थे ।[2]

इसमें तनिक भी सन्देह का अवकाश नही कि जायसी भारतीय कवि परम्परा से सुपरिचित थे अन्यथा 'सब कविन्ह केर पछिलगा ?'[3] अथवा 'सिघल कवि पिगल सब मथा'[4] कहना निरर्थक हो जाता है जायसी के विषय में जो कुछ कहा गया है वह लगभग सभी मुसलमान कवियों एव हिन्दू कवियों के लिए समान रूप से सत्य है ये कवि काव्य-शास्त्रीय परम्पराओं से परिचित थे भारतीय काव्य-रूढियो से इनका घनिष्ठ परिचय था इनकी अभिव्यक्ति परिमार्जित एवं साहित्यिक है । उसमे लोकतत्वों का उचित समावेश है । इसके विपरीत पजाबी के प्रेमाख्यानकारों की अभिव्यक्ति में वैसा चमत्कार नही । अपनी सामान्य प्रतिभा एव श्रोताभिमुखता के कारण ये कवि लोक-आंचल नही छोड़ सके । यह सत्य है कि ये कवि भी इन छोटी-छोटी रचनाओं से सतुष्ट नहीं थे । किसी विशेष कवि-परम्परा से विकसित न होने के कारण इनमे साहित्यिक गरिमा एवं आभिजात्य की सृष्टि न हो सकी । पजाबी की प्रतिभाशाली कवि लोक एवं साहित्यिक आभिजात्य के बीच तड़फडा रहा था । 'सैफुलमुलूक' के रचयिता मुहम्मदबख्श के भाई की चुनौती इसका एक सबल प्रमाण है और कवि का आत्म-दैन्य-निवेदन भी इस ओर सकेत करता है—

निक्के किस्से बहुत सी हरफी की होइआ तुध लिक्खे ।
× × ×
छप्पड़ीआं विच्च तर डिट्ठोई, आ नदीआं विच्च होखां ।
× × ×
किस्सा औखा नाले लम्मां, जोर थोड़ा पड भारी ।
डाहडे दा फुरमान न मुड़दा, रोगी जिंद विचारी ।[5]

१-२. जायसी की भाषा, पृ० १७, १८

३-४. पद्मावत, पृ० २२, ४५८

५. अर्थ—क्या हुआ यदि तूने छोटे-छोटे किस्से एवं सीहरफियाँ लिखी हैं । अभी तक तू छोटी छोटा तलैयों में ही तैरता रहा है, अब नदियों में तैरने का साहस कर ।
यह किस्सा कठिन है, लम्बा है । मेरी शक्ति कम एवं बोझा अधिक है । परन्तु बलवान् की आज्ञा भी मोड़ी नही जा सकती । मेरा शरीर तो रोगी है ।
—सैफुलमुलूक पृ० ६०

यह निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा कि यह स्थिति हमारे शोध-काल के अन्तिम दिनो में ही प्रबुद्ध हुई। इससे पूर्व तो परम्पराचरित अभिजात काव्य के 'वक्ता श्रोता च दुर्लभः' वाली उक्ति ही सत्य थी। डॉ० शान ने इस साहित्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह साहित्य अद्वितीय है। यह न तो घृणा-योग्य है और न साधारण। वे डॉ० मोहनसिंह के इस कथन से सहमत हैं 'कि कोई सामान्य कवि किस्सा नही लिख सकता। कोई महाकवि ही किस्से की विशेषताओं को निभा सकता है।' कहानी की धुरी के इर्द-गिरद हमारा धर्म, साहित्य, समाज, नीति एवं इतिहास घूमता है।[1] परन्तु इसमें अधिक सत्य नही, मूल तथ्य उन्हीं की भाषा मे इस प्रकार है 'इनका विषयवस्तु नित्य-प्रति के जीवन की उपज है। ये जन-साधारण के मानसिक धरातल से उच्च होने के स्थान पर उनके अपने अनुभव की देन है। इसीलिए जन-साधारण ने इन्हे दिल से अपनाया। लाखो ग्रामीण पंजाबियो की मानसिक थकान अभी भी वारिस की 'हीर', हाशम की 'सस्सी', पीलू का 'मिरजा' और फजलशाह की 'सोहणी' ही दूर करती है।[2] डॉ० मोहनसिंह भी इस निष्कर्ष से सहमत है। उन्होने लिखा है कि हमारा साहित्य श्रमिकों एव योद्धाओ का साहित्य है। यह न तो हिन्दी के समान पंडितों एव शब्द-चमत्कार-प्रेमियों का साहित्य है और न उर्दू के समान शासकों एव उनके दरबारियो का। ...हमारे साहित्य मे ऐसी रचनाएँ परिमाण में नगण्य है जिनको विषयवस्तु की दुर्बोधता अथवा भाषा की प्राचीनता के कारण निपट बुद्धिहीनों को छोड़कर सामान्य नर-नारी न समझ सकें। वास्तव मे इसका मुख्य भाग सुसंस्कृत अंगरेजी पढ़े नगरवासियो की अपेक्षा ग्रामवासी अशिक्षित जाट, गुज्जर या खत्री अधिक ठीक ढग से समझ सकते हैं।[3] डॉ० लाजवन्ती रामकृष्ण[4] और डॉ० विश्वनाथ तिवारी[5] के विस्तृत शोधपरक अध्ययनों के निष्कर्ष भी इसी मत

१-२. पंजाबी दुनिया, जुलाई-अगस्त, १९५६ पृ० ३९, ४१

३. ए हिस्ट्री आव पंजाबी लिट्रेचर, पृ० ९५-९६

४. वे पंजाबी के सूफी कवियो के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए लिखती हैं—

Having been evolved in the villages, it lacks that point of extreme elabo...all complexity of expression, the artificial and ornaste style, the jingle of words and bombastic language is missing from it—

—Punjabi Sufi Poets, Introduction, page xxii.

५. मिरजां साहिबाँ की कथा पर आधारित तीस से अधिक रचनाओ के परिचय के अनन्तर तत्सम्बन्धी काव्यगुणों पर उनकी टिप्पणी इस प्रकार है—

But they have neither any beauty of language nor do they show any ability in handling the theme. Their style may even be characterised as rustic...They lack inspiration and reading of their work is insipid.

—Treatment of one of the Punjabi Romances : Mirza Sahiban in Pnnjabi Verse (Typed copy) P. 44.

की संपुष्टि करते हैं। ये सब तथ्य हमारी इस मान्यता का ही समर्थन करते हैं कि पंजाबी प्रेमाख्यान-काव्य साहित्यिक परम्परा से व्यवछिन्न रहा और लोकसाहित्य से सत्साहित्य की यात्रा में अति धीमी गति से चलता रहा। हिन्दी में स्थिति इसके विपरीत है। यहाँ हिन्दुओं अथवा मुसलमानों ने समान रूप से सुदीर्घ भारतीय काव्य-परम्परा से प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अभिव्यक्ति को सजाने-संवारने का यत्न किया। मुसलमानों द्वारा रचित हिन्दी प्रेमाख्यान-साहित्य फारसी की ओर नहीं झुका। इस सम्बन्ध मे प० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि 'उन्हें उस ओर अनुप्राणित करने के लिए फारसी साहित्य का भी आदर्श विद्यमान था तथा उस काल तक स्वयं भारत के भी सूफी कवियों ने प्रेमकथात्मक मसनवियों की रचना प्रारम्भ कर दी थी। परन्तु हिन्दी के सभी सूफी कवियों ने उसका अंधानुसरण नहीं किया। जिन लोगों ने ऐसा किया उनकी एक पृथक् उर्दू रचना शैली ही चल पड़ी।'[1]

हिन्दी प्रेमाख्यानों मे परम्परागत रचना-शैली के आदर्श को स्वीकार करते हुए अभिव्यक्ति को यथासंभव सुन्दर बनाने का यत्न स्पष्ट दिखाई देता है। ये कवि शब्द-चयन, वर्ण-योजना, अलंकार-विधान, छद-प्रयोग सभी के प्रति जागरूक थे। इनमे विविधता एवं साहित्यिक उत्कृष्टता है। लोक-तत्वों की उपेक्षा न करते हुए भी ये कवि साहित्यिकता के प्रति विशेष रूप से सावधान रहते प्रतीत होते है। पंजाबी के कवि साहित्यिक परम्पराओं की अपेक्षा लोक-परम्पराओं के ही समीप रहे है। उनमे फारसी शब्दावली का मोह अवश्य है परन्तु न तो वर्ण-योजना के प्रति वे विशेष जागरूक है और न ही अपने कथ्य को सजाने सॅवारने की प्रवृत्ति ही उनमें परिलक्षित होती है। उनकी कृतियों में अपने समय के समाज के यथातथ्य चित्र अवश्य है परन्तु साहित्यिक प्रांजलता एवं सुरुचि का अभाव सर्वत्र अखरता है।

●

१. हिन्दी साहित्य [द्वितीय खंड], पृ० २८८.

उपसंहार

मध्यकाल के लगभग सवा पाँच सौ वर्षो के दीर्घकाल में हिन्दी में अनेक प्रेमाख्यान लिखे गए, जिनमें से छोटे बड़े लगभग सवा सौ प्रेमाख्यान मिलते है । हिन्दू कवियों ने ढोला-मारू, माधवानल-कामकंदला, कृष्ण-रुक्मिणी, उषा अनिरुद्ध, नल-दमयन्ती जैसे प्रसिद्ध एव लोकप्रिय कथाचक्रों के आधार पर अनेक रचनाएँ लिखी। मुसलमान कवियों ने हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं को स्वतन्त्र रूप से तो काव्यबद्ध नही किया परन्तु अपनी रचनाओ में अनेक बार इनकी ओर संकेत किया है। इन कवियों ने लोक-कथाओं अथवा काल्पनिक कथाओं को आधार बनाकर अपेक्षाकृत वृहदाकार रचनाएँ प्रस्तुत की। परन्तु यह केवल इन्हीं की विशेषता नही थी। अनेक हिन्दू कवियों ने भी इसी प्रकार की रचनाएँ लिखी।

पजाबी की प्राचीनतम उपलब्ध रचना अकबरकालीन दामोदर गुलाटी-रचित 'हीर' है। इसी के आस-पास पीलू रचित 'मिरज़ा-साहिबा' भी श्रुतिपरम्परा से ही लिपिबद्ध की गई है। इस धारा का अखंड प्रवाह औरंगजेब कालीन हाफज़ बरखुरदार से ही अस्तित्व में आता है। प्रारभिक तीन सौ वर्षों मे उपरिलिखित दो रचनाओं के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नही होता। बरख़ुरदारकृत 'यूसफ जुलेखा' १६७९ ई० की रचना है। उनकी अन्य दो कृतियाँ इससे कुछ पहले की है। इस समय तक हिन्दी प्रेमाख्यान-काव्य की गति अति मंथर हो चुकी थी।

पंजाबी प्रेमाख्यान-साहित्य का वास्तविक विकासकाल हिन्दी प्रेमाख्यान-धारा का ह्रासकाल है। इस अवधि में भी पंजाबी में लगभग चालीस कृतियाँ ही मिलती है। जिनमें प्रख्यात पंजाबी लोककथाओं के अतिरिक्त धार्मिक महत्व के कारण यूसफ जुलेखा की कथा, कवियों में अधिक प्रचलित रही। सख्या ही नही, आकार की दृष्टि से भी पंजाबी की रचनाएँ हिन्दी की अधिकांश रचनाओं की तुलना में छोटी है।

प्रेमाख्यान-काव्य का मुख्य उद्देश्य मनोरजन रहा है परन्तु हिन्दी के कवि काव्य-कौशल प्रकट करने, गुप्त रहस्यों का उद्घाटन करने या कीर्ति को स्थायी बनाने के प्रति भी जागरूक रहे हैं। पंजाबी के कवियों ने भी इन उद्देश्यों का उल्लेख किया है परन्तु उनकी अधिकाश रचनाएँ मित्रों के आग्रह पर उनके मनोरजनार्थ ही प्रस्तुत की गई है। इसी कारण उनमें श्रोताभिमुखता प्रधान हो गई है। फलतः अधिकाश हिन्दी प्रेमाख्यानों जैसा गाम्भीर्य उनमे प्रायः नहीं आ पाया।

हिन्दी प्रेमाख्यानो की रचना-व्यवस्था सुदीर्घ भारतीय काव्य-परम्परा के ही

अनुरूप है। उसे मसनवी-परम्परा से सम्बद्ध करना उचित नहीं। पंजाबी कवियों के समक्ष आरम्भ में तो कोई परम्परा थी ही नहीं किन्तु बाद मे धीरे-धीरे ये रचनाएँ फारसी काव्य-परम्परा की ओर उन्मुख होने लगीं। ग्रन्थारम्भ मे ईश्वर स्तुति की परम्परा यद्यपि दोनो ही भाषाओ में है तथापि हिन्दी में मंगल की विस्तृत एवं पंजाबी में संक्षिप्त पद्धति ही अधिक कवि प्रिय रही। अहमदयार, अमामबख्श एव मियां मुहम्मद बख्श जैसे पिछले कवियों की ही कुछ रचनाओं मे मंगल की विस्तृत पद्धति को स्वीकार किया गया। इन कवियों ने तो अपनी रचनाओं में शीर्षक भी फारसी में दिए है। शाहेवक्त की प्रशंसा में हिन्दी के अनेक हिन्दू एव मुसलमान कवियों ने अनेक पद्य लिखे है जबकि पंजाबी मे केवल एक रचना मे ही यह विधान मिलता है। वहाँ यह केवल ग्रंथारम्भ में ही नही मध्य में भी अनेक बार आया है। अतः रचना व्यवस्था की दृष्टि से हिन्दी प्रेमाख्यान-काव्य जहाँ एक काव्य-अनुशासन के अन्तर्गत फले-फूले है वहाँ पंजाबी प्रेमाख्यान-काव्य सर्वथा स्वच्छन्द रूप से ही विकसित हुआ है। अठारहवीं शताब्दी ई० के अन्त में इन पर फारसी मसनवियों का प्रभाव बढने लगा। अहमदयार एवं अमामबख्श ने फारसी कथाओं के आधार पर छोटी बडी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की।

कथा-सूत्र की दृष्टि से इन रचनाओं को तीन भागों में बाँट सकते है। लघुतर-कथात्मक रचनाएँ, लघुकथात्मक रचनाएँ एव वृहत्कथात्मक रचनाएँ। हिन्दी मे लघु एवं बृहत्कथा-सूत्र वाली अनेक रचनाएँ है। परन्तु उनमे सम्बन्ध निर्वाह एवं प्रबन्ध कल्पना की प्रायः उपेक्षा हुई है। कथा संगठन की दृष्टि से अनेक वर्णो अन्तर्कथाओं के समावेश के कारण उत्तम रचनाओ का अभाव है। इस दृष्टि से पंजाबी की रचनाओं में भी अनेक दोष है। पंजाबी के कवियों में कथा को विस्तार प्रदान करने या उसे सजाने की प्रवृत्ति बिल्कुल नही। मुख्य कथा में गौणकथा या पताका-कथा की योजना प्रायः नही। सानुपातिक कथा-निर्वाह की दृष्टि से मझनकृत 'मधु-मालती' एवं 'हीर-दमोदर' अधिक सफल रचनाएँ हैं।

कथा-गठन के लिए हिन्दी में अनेक रूपविधियों का प्रयोग हुआ है। अनेक इकहरी अथवा जटिल कथाओं मे भूमिका-कथाओं या साक्षी-कथाओं की योजना से रूपविधि सम्बन्धी परिवर्तन किए गए है। परन्तु पंजाबी में ऐसे प्रयत्नों के प्रति कोई उत्साह नहीं। भूमिका-कथाओं या साक्षी-कथाओं की योजना दो तीन रचनाओं में ही की गई है। इन रचनाओ में एक ही कथा को काव्यबद्ध करने के असकृत् प्रयासो के द्वारा कुछ उक्ति-वैचित्र्य तो आ गया परन्तु किसी प्रकार की प्रकरणवक्रता सृजन न कर सके। हिन्दी में उषा-अनिरुद्ध, ढोला-मारू या माधवानल कामकंदला प्रभृति समान कथाचक्रो पर आधारित रचनाओ में रूपविधि-जन्य वैविध्य देखा जा सकता है। हिन्दी में हीर एव सस्सी की उन कथाओं में भी अनायास ही भूमिका-कथा की योजना हो गई, जिनको अनेक बार काव्यबद्ध करने पर भी पंजाबी के कवि कोई नवीनता प्रदान न कर सके।

कथानक-रूढ़ियों की दृष्टि से दोनों भाषाओं की रचनाओं के प्रारम्भिक अंशों

में ही कुछ समानता दीख पड़ती है । कथा का विकास दोनों ही ओर सर्वथा भिन्न है । इसका कारण लक्ष्य की भिन्नता है । हिन्दी प्रेमाख्यानों का लक्ष्य प्रेमास्पद की प्राप्ति है जबकि पजाबी मे प्राप्ति को समाज द्वारा स्वीकृत करवाना । इसीलिए पजाबी की रचनाएं प्राय: दुखान्त है । हिन्दी प्रेमाखयानो के कथा-सगठन मे काव्य-रूढ़ियो एवं कथानक-रूढियों का विशेष योग है । इनके कारण कथाओ में अलौकिकता आ जाती है और सहजप्रवाह मंथर हो जाता है । परन्तु पंजाबी में इनका प्राय: अभाव है । घटनाओं का विस्तार न होने पर भी सुसंगठित कथाकृतिया पंजाबी साहित्य में भी बहुत थोडी है । हिन्दी प्रेमाख्यानों में उपलब्ध होने वाला औत्सुक्य भी इनमे प्राय: नही है । अठारहवी शती के अन्त में पंजाबी मे हिन्दी प्रेमाख्यानों के समानान्तर अलौकिक घटनाओं से युक्त रचनाएं लिखी गई परन्तु उनका स्रोत भिन्न था । उनमें अलौकिकता के प्रभाव के कारण नायक का व्यक्तित्व सर्वथा गौण हो गया है ।

हिन्दी प्रेमाख्यानों की कथाएं राजपरिवारो से सम्बद्ध है । इनके नायक-नायिका राजपरिवारों से लिए गए है । उनका वातावरण समृद्धि-मंडित है, परन्तु पंजाबी की रचनाओं के नायक-नायिका अभावग्रस्त सामान्य परिवारों से ही चुने गए हैं । हिन्दी में पजाबी की अपेक्षा पात्रो की सख्या भी अधिक है । हिन्दी प्रेमाख्यानों में नायक का स्थान महत्वपूर्ण है । वही कथा का मुख्य आधार है । परन्तु पंजाबी प्रेमाख्यानों में नायिका का चरित्र महत्वपूर्ण है । अलौकिक पात्रों का भी, हिन्दी प्रेमाख्यानों में विशिष्ट स्थान है । पजाबी मे इसका स्थान बहुत बाद में बन पाया । प्रारम्भिक एवं लोक-प्रसिद्ध रचनाओं मे अलौकिक घटनाओं की योजना नाममात्र को ही है । प्रेम-मार्ग में हिन्दी के नायक सदैव सफल हुए हैं, परन्तु पंजाबी प्रेमाख्यानों के प्रेमियो को कदाचित् ही सफलता मिली है ।

इन रचनाओं में प्रेम को महत्वपूर्ण तत्व स्वीकार किया गया है । हिन्दी के मुसलमान एवं हिन्दू कवियों की रचनाओं मे प्रेम का मिलता-जुलता रूप ही चित्रित हुआ है । नायक एवं नायिका समान रूपेण आकृष्ट होकर प्राप्ति के लिए यत्न आरंभ करते है । इस संदर्भ मे हिन्दी के मुसलमान कवियों का वैशिष्ट्य विरह को विशाल परिप्रेक्ष्य प्रदान करने में है । ये कवि नायक, नायिका, उपनायिका सभी के विरह का वर्णन बड़ी मार्मिकता से करते हैं । विरह को अलौकिक एवं ईश्वरीय वरदान बताकर सम्पूर्ण सृष्टि में उसका प्रसार दिखाते है । प्रेम के मार्ग मे कष्टों की अनिवार्यता का अनेक बार उल्लेख करते है । बिना दुख के प्रेम-मात्र की प्राप्ति नहीं होती । इस दिशा मे हिन्दू कवियों का भी कोई विरोध नहीं । जिन रचनाओं में कष्ट-सहन के बिना ही अथवा मरण-मार्ग पर चले बिना ही प्रेमास्पद प्राप्त होता है, उनकी संख्या उपेक्षणीय है, परन्तु विरह का वैसा महत्व इन कवियों मे प्राय: नहीं मिलता ।

प्रेम के महत्व अथवा स्वरूप के विषय में पंजाबी कवियों का दृष्टिकोण भी भिन्न नहीं है । उनके अनुसार तो प्रेम-मार्ग में सुख की कल्पना भी नहीं की जा सकती । प्रेम-मार्ग को अपनाने का अर्थ प्रतिपल मरण के लिए उद्यत रहना है । प्रेम

कष्टों में ही पनपता है। सुख चाहने वाले या कष्टों से घबराने वाले व्यक्तियों को उस मार्ग पर नहीं चलना चाहिए। यह सन्देश हिन्दी की अपेक्षा पंजाबी मे अधिक स्पष्टता से दिया गया है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप प्रायः सामाजिक मर्यादाओं के अनुकूल है। उस युग में पुरुष, विशेषतः राजन्य वर्ग के, अनेक विवाह करते थे। अतः इनके नायक भी अनेक नायिकाओं पर अनुरक्त होते है। परन्तु नायिकाएं सती-साध्वी एवं पतिव्रता हैं। नायिकाओं में नायिकों की अपेक्षा अधिक निष्ठा है, अपने कार्यो से उन्होंने इसको प्रमाणित किया है। पंजाबी प्रेमाख्यानों मे, प्रेम-मार्ग में सामाजिक एवं धार्मिक मर्यादाओं की सर्वत्र अवहेलना हुई है। इसी कारण इनमें अभिव्यक्त प्रेम प्रकृत्या विद्रोही है। इस दिशा मे इनकी हिन्दी प्रेमाख्यानो से कोई समानता नही। हिन्दी मे वियोग एवं सयोग उभय पक्षीय प्रेम का चित्रण हुआ है परन्तु पजाबी में बहुत कम प्रेमियों को सयोग का सौभाग्य प्राप्त हो सका। अधिकतर प्रेमी इस मार्ग में मर मिटने में (कुर्बान होने में) ही महत्व समझते है।

रसव्यजना के क्षेत्र में दोनों भाषाओ के कवियों की रुचि मुख्यतः शृंगार की ओर है। शृंगार मे भी विप्रलम्भ का विस्तृत वर्णन हुआ है। वैसे तो पजाबी में भी विरह की दसों दशाओ का वर्णन मिल जाता है, परन्तु इनमे मानसिक भावों की अपेक्षा कायिक चेष्टाओं का वर्णन अधिक विस्तार से है। शृंगार के अतिरिक्त हिन्दी में वीर, करुण, शान्त एवं वात्सल्य रसों की भी व्यजना हुई है परन्तु पंजाबी मे शृंगार के बाद करुण का ही सुन्दर परिपाक हुआ है। यद्यपि इनके अतिरिक्त वीर, भयानक एवं वात्सल्य के भी कुछ स्थल प्राप्त हो जाते हैं। तथापि रस-परिपाक की दृष्टि से पजाबी प्रेमाख्यानों मे रमणीय स्थलों के दर्शन सायास ही होते हैं। अधिकतर ये काव्य आख्यानात्मक ही हैं और हिन्दी के 'मधुमालती वार्त्ता', 'लखमसेन पद्मावती कथा' या 'छिताई चरित' जैसे काव्यों की परम्परा के समानान्तर हैं।

प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत आने वाली ये रचनाएं प्रायः 'खण्डकाव्य' या कथा-काव्य है। बीसलदेव रासो, मैनासत, उषा-अनिरुद्ध एवं कृष्ण-रुक्मिणी सम्बन्धी रचनाएँ जान की अनेक रचनाएं या गुरु गोबिन्दसिह के प्रेमाख्यान खण्डकाव्य है। इनमें न तो कथा का विस्तार है और न घटनाओं का वैविध्य। वृत्त-खण्ड या एकदेशीय कथा को लेकर चलने के कारण इन रचनाओ को 'खण्ड काव्य' कहना ही अधिक समीचीन है। घटनाओं के विस्तार, विविध वर्णनों के समावेश, अनेक प्रासंगिक कथाओं की योजना के कारण 'चदायन', मृगावती, मधुमालती', 'रसरतन', 'हसजवाहर', प्रभृति रचनाएं 'कथा-काव्य' हैं। उनमें महाकाव्योचित महत्व की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई परन्तु आकार एवं कथा-विस्तार के कारण ये खंडकाव्य भी नहीं रह जातीं।

पजाबी में दमोदरकृत हीर, लुत्फअलीकृत 'मसनवी सैफुलमलूक', मियाँ मुहम्मद बख्शकृत 'सैफुलमलूक' तथा 'यूसफ-जुलेखा' के वृत्त पर आधारित रचनाएं, अमामबख्श एवं अहमदयार की 'कामलता,' 'मलिकज़ादशाह परी, 'शाह बहराम' प्रभृति कथाकृतियां

कथा-काव्य ही हैं। जबकि 'सस्सी-पुन्नू', 'सोहणी-महीवाल', 'मिरज़ा-साहिबा,' 'राजबीबी-नामदार' या 'चन्द्रबदन महियार' जैसी छोटी-छोटी रचनाएं 'खण्डकाव्य'।

हिन्दी में जायसी के 'पद्मावत' एवं पंजाबी में 'हीरवारिस' को महाकाव्य माना जाता है। जायसी के 'पदमावत' का कथानक महाकाव्योचित है। उसका उद्देश्य महान् है। उसमें चरित्र-चित्रण, भावाभिव्यक्ति एव शैली का उत्कर्ष है। महाकाव्योपेक्षित एतद्विध औदात्य वारिस में नही मिलता। परन्तु उसमें उस समय के अपने प्रदेश के जन-चरित्र का अद्भुत चित्रण है। उसमे पंजाब के ग्रामीण जीवन एव स्वभाव का यथार्थ वर्णन हुआ है। उसकी लोकप्रियता को देखते हुए उसे महाकाव्य मानना पड़ता है। परम्पराओं का निरन्तर विरोध करने वाले इस कवि की रचना को परम्पराप्राप्त नियमों की कसौटी पर कसकर महाकाव्य कहना कठिन है।

अभिव्यक्ति के विविध पक्षों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाबी की रचनाएं लोक-परम्परा के अधिक निकट है परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यान सत्साहित्य की कोटि में आते हैं। अपने क्षेत्र विशेष की भाषा को आधार बनाते हुए भी इनकी भाषा का आदर्श 'षट्भाषा' थी। हिन्दी कवियों ने संस्कृत, अपभ्रंश एवं क्षेत्रीय शब्दों के अतिरिक्त फारसी शब्दों का प्रयोग भी किया। शब्द प्रयोग एवं वर्णो की योजना के प्रति ये कवि विशेष रूप से सावधान रहते थे, परन्तु पजाबी के कवियों ने लोकभाषा एवं उर्दू-फारसी से ही अधिकतर शब्दों को ग्रहण किया। हिन्दी या तद्भव संस्कृत शब्दों का प्रयोग इन्होंने बहुत कम किया है। इनमें फारसी शब्दों का अनुपात उत्तरोत्तर बढता गया। पंजाबी रचनाओं में हिन्दी की अपेक्षा मुहावरों का प्रयोग अधिक है। शब्दालकारो में अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग ही पंजाबी में अधिक मिलता है। अनुप्रास के प्रयोग से जो संगीततत्व एवं माधुर्य आना चाहिए, उसका पंजाबी में प्रायः अभाव है। पंजाबी मे फजलशाह एवं हिन्दी मे सूरदास लखनवी ने यमक के मुक्त प्रयोग द्वारा प्रबन्ध को नीरस ही किया है।

अर्थालंकारों में साम्यमूलक एवं अतिशयोक्तिमूलक अलंकारों का ही इन रचनाओं में अधिक प्रयोग हुआ है। परन्तु अलंकार प्रयोग का जो औत्कृष्ट्य हिन्दी में मिलता है, पंजाबी में उसका अभाव है। उपमानचयन की दृष्टि से भी पंजाबी कवियों में कोई उत्कृष्टता प्राप्त नही होती। इसमे संदेह नही कि हिन्दी कवियों के उपमान भी प्रायः रूढ़ ही हैं परन्तु विविध युक्तियों द्वारा उनकी अलकार-योजना में जो अद्भुत सौंदर्य और प्रतिभा-वैभव मिलता है वह पजाबी में प्रायः दुर्लभ है।

छंद-प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी में तीन प्रकार की रचनाएं प्राप्त होती हैं। एक छंदात्मक रचनाएं, अनेक छन्दात्मक रचनाएं एवं कड़वकबद्ध रचनाएं। 'कड़वकबद्ध' रचनाओं को दोहा-चौपाई पद्धति की रचनाए कहा जाता है परन्तु इनमें दोहे एवं चौपाइयों के लक्षण पूरे नहीं उतरते। यही स्थिति अन्य छन्दों के सम्बन्ध में भी है। अतः इन रचनाओं में मानसिक या वर्णिक छंदो की अपेक्षा तालछन्दों का ही प्रयोग मानना चाहिए।

पंजाबी की रचनाएं एकछन्दात्मक है और वहां भी दोहरा, दवैया एवं बैंत ये

तीन छन्द ही प्रयुक्त हुए है। छन्द के नियमों का इनमें भी पूर्ण पालन नहीं है। छन्द की दृष्टि से भारतीय परम्परा के अनुगामी होते हुए भी पंजाबी में मसनवी-परम्परा की अनुकृति प्रतिभासित होती है। यद्यपि बैत का विकास भी मसनवी की अपेक्षा गजल या कसीदे से मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

विविध तत्वों के आधार पर हिन्दी एवं पंजाबी के प्रेमाख्यानों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के प्रेमाख्यान परम्परा-प्राप्त भारतीय साहित्य से ही प्रेरणा ग्रहण करते रहे। सस्कृत और अपभ्रंश के स्रोतों से प्राप्त ग्रन्थन कौशल तथा काव्य-रूढ़ियो को स्वीकार कर इन कवियों ने अपनी रचनाओं में सामान्य कोटि के लोक-साहित्य से पृथक् सत्साहित्य के स्वरूप की प्रतिष्ठा की। पंजाबी के प्रेमाख्यानों का प्रारम्भिक स्वरूप लोकसाहित्य का है। आरम्भ मे अज्ञान अथवा उपेक्षावश उन कवियों की रचनाओं मे किसी साहित्यिक परम्परा का अनुगमन नहीं किया गया। कवियो की श्रोताभिमुखता ने भी उनकी रचनाओं में सत्साहित्य के स्वरूप को पनपने नही दिया। अठारहवी शताव्दी के अन्तिम चरण में पंजाबी का प्रेमाख्यान-साहित्य फारसी मसनवियों की ओर ही झुक गया परन्तु अभिजात समाज में सम्मानपूर्ण स्थान उसे प्राप्त न हो सका। फलतः उसमे लोक-साहित्य से सत्साहित्य की यात्रा का यत्न मात्र परिलक्षित होता है। तुलना करते समय साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से हिन्दी प्रेमाख्यानों की वरीयता स्पष्ट हो जाती है।

साहित्य में सौष्ठव एवं सौन्दर्य-चेतना की प्रतिष्ठा अभिजात वर्ग के संसर्ग से होती है। आभिजात्य के विरुद्ध सामान्य लोकमानस का प्रतिनिधित्व करने वाले पंजाबी प्रेमाख्यानो को वह मिल नहीं सका। यह तो आधुनिक काल का परिवर्तित दृष्टिकोण है, जिसके कारण विद्वत्समुदाय उस ओर आकर्षित हुआ है। सामन्तवादी प्रवृत्तियों का विरोध करने वाले उस साहित्य का महत्व अपने समय के जनसामान्य की रुचियों एव प्रवृत्तियों को मूर्तरूप प्रदान करने में ही है। उसमें साहित्यिकता कम है, परन्तु उसके माध्यम से लोकमानस मुखरित हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस मौलिक भेद को दृष्टि में रखकर ही दोनो भाषाओं के प्रेमाख्यानों का वैशिष्ट्य आंका जा सकता है।

परिशिष्ट-१

पंजाबी प्रेमाख्यान और कथानक-रूढ़ियां

डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव ने अपने शोध प्रबन्ध —"मध्यकालीन हिन्दी प्रबंध काव्यों मे कथानक रूढियाँ" में कवि कल्पित और लोकाश्रित कथानक-रूढ़ियों की निम्नलिखित सूची प्रस्तुत की है—

१. स्वप्न-दर्शन-जन्य प्रेम
२. चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम
३. रूप-गुण-श्रवण जन्य आकर्षण
४. मूर्तिकन्या और प्रेम
५. स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-सघटन
६. शुक-शुकी :—
   (क) कहानी के वक्ता-श्रोता के रूप में
   (ख) कथा के पात्र, प्रायः प्रेम संघटक और संदेशवाहक के रूप में
७. प्रिया-प्राप्ति के लिए योगी बनना
८. सप्त समुद्रों की यात्रा
९. समुद्र पार किसी दूर देश की कन्या से प्रेम और विवाह
१०. सिहल द्वीप की कन्या से विवाह
११. नायिका के प्रति नायक की अनुरक्ति की जोतिषियों द्वारा पूर्व-सूचना
१२. नायिका अप्सरा का अवतार
१३. उद्यान में नायक-नायिका का मिलन
१४. मदिर में नायक-नायिका का मिलन
१५. किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार और मिथ्या-लांछन
१६. वन में सरोवर के पास सुन्दरी-दर्शन
१७. समुद्र-यात्रा के समय जलपोत का टूटना
१८. भरुंड-हंस आदि की पीठ पर यात्रा
१९. उजाड़ नगर
२०. वन में मार्ग भूलना
२१. विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व
२२. विवाह के लिए असामान्य कार्य-संपदान की शर्त

२३. राक्षस, विद्याधर आदि द्वारा नायिका-हरण
२४. जीवन-निमित्त-वस्तु
२५. सत्य-क्रिया
२६. परकाय-प्रवेश
२७. पंच दिव्याधिवास
२८. उपश्रुति
२९. कक्ष-निषेध
३०. नायक का अतिप्राकृत जन्म
३१. वस्त्र-हरण द्वारा अप्सराओं और परियों की प्राप्ति
३२. रूप-परिवर्तन
३३. दिव्य-विद्या-आकाश गमन
३४. अदृश्यता
३५. योगी के नेत्र में प्रिया-देश का दर्शन
३६. मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना
३७. अज्ञान में अपराध और शाप
३८. शिव-पार्वती
३९. आकाशवाणी
४०. भविष्य सूचक स्वप्न

ये सभी रूढ़ियाँ संस्कृत-साहित्य, प्राकृत-साहित्य और तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य में प्रचुरमात्रा में उपलब्ध होती है । मध्यकालीन पंजाबी प्रेमाख्यानो में इनमें से अधिकांश तो कहीं भी नहीं मिलतीं, (उदाहरणार्थ क्रमसख्या ५, ६, ८, १२, १४, १६ १८, १९, २२, २७, २८, २९, आदि) कुछ अन्य एकाध स्थान पर दिखाई दे जाती है, (उदाहरणार्थ ४, ११, ३९, ४० आदि) परन्तु एक-दो बार आवृत्ति उसे 'रूढ़ी' कहने के लिये पर्याप्त नही । जबकि १८६४ के पश्चात् अर्थात् आधुनिक काल में लिखे गये पंजाबी प्रेमाख्यानों में प्राय: ये सभी मिल जाती है। इसका कारण संभवतः इस साहित्य मे हिंदू कथाओं का समावेश है ।

परिशिष्ट-२

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

इस प्रबन्ध में इन कवियों द्वारा प्रयुक्त मुहावरों एवं लोकोक्तियों का विस्तृत अध्ययन करना अभीप्सित नहीं। कतिपय प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं की कुछ पंक्तियो के आधार पर इतना मात्र स्पष्ट करने का यत्न किया गया है कि पंजाबी कवियो की रुचि इस ओर अपेक्षाकृत अधिक रही है।

१. दामों[1]

अंत न लहुं कमलदल तणां।
भारहु ढारनु लहुं पार।

२. कुतबन[2]—

दाम दीन्ह अगनित भरि कूपा।
जैसे आस उहि पूजी।
हिय आगि जर परहिं भंभोला।
गुन परताइ मरम तौ पाऊं।
तौ हम जिउ पतियाइ।

३. नारायणदास[3]—

उचकिउ साह पुंजि सी खोई।
पीपइ की बुधि विधना हरी।

४. जायसी[4]—

मोहि दोसरे सौं भाव न बाता।
अबहीं तेहि जिउ देइ न पावा।
सिर उतारि नेबछावरि डारौं।
दुऔ जगत तेहि देउं बड़ाई।
पुरवहु आस कि हत्या लेहु।
परिमल पेम न आछे छपा।
कसत कसौटी कंचन लगा।

---

१. लखमसेन पदमावती कथा, पृ० २५, प्रथम बीस पंक्तियां
२. मृगावती, पृ० ११४-११६, २१ पंक्तियां
३. छिताई चरित, पृ० ७५-७६, २० पंक्तियां
४. पदमावत पृ० २००-२०१, १८ पंक्तियां

५. मंझन[1]—

जीउ पैत कौड़ी पर लावा ।
जो लहि करै न सिर कहं पाऊ ।
सो जग जनमि जियन फर पावै ।
नैन खोलि देखै सब रूपा ।
सूने घर का पाहुना जेउं आया तेउं जाउ ।

६. पुहकर[2]--

चाहत आनन ओर ।
राखे रोकि लाज भरि नैना ।

७. चतुर्भुज[3]—

जीउ न ऊबरही
गति हारे
जीवत मुए रहे दम षंचे ।

८. जान[4]—

पूजी मन की चाह ।
जो मांगू तौ हाथ न आवै ।
कौन आपुनो बचन गंवावै ।
भै बिनु पीति न होत ।

९. आलम[5] —

पुनि मै जीउ विप्र को लीन्हा
राजा रंक काल सब खाए ।
जाको सब जग अपजस करई ।
जीवत मुयौ पाछे का मरई ॥

कुशललाभ[6] एवं शेखनिसार[7] में मुहावरो के प्रयोग अत्यन्त न्यून है ।

---

१. मधुमालती, पृ० २००-२०२, २१ पंक्तियां
२. रसरतन, पृ० १५०, २० पक्तियां
३. मधुमालती वार्ता, पृ० ७५-७६, बीस पंक्तियां
४. कथा छीता, छिताई चरित (सं० हरिहर निवास द्विवेदी) में संकलित, पृ० १४५, २० पंक्तियां
५. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह, पृ० २२०, २० पंक्तियां
६. माधवानल कामकंदला प्रबंध, में संकलित कुशललाभ की रचना, पृ० ४२५ की प्रथम बीस पंक्तियो में कोई मुहावरा नहीं
७. हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य-संग्रह में संकलित यूसफ-जुलेखा में पृ० ३५० की २० पंक्तियों में कोई मुहावरा नहीं

पंजाबी

१. दमोदर[1]—

तैंडा पिओ बताइया ।
करदी रज्ज हराम सु फिरदी ।
सुञ्चे खेड़े नूं भाउ न आइआ ।
भस्स सही सिर खेड़िआं सदे ।

२. अहमद[2]—

माए सड़ी नूं की पई साड़नी हैं ।
बैठी पढ़ांगी हरफ साहब बाला ।
रल हीर दे मापिआं मता कीता ।
असां बैठिआं नूं एवे बणे नाहीं ।
तुसां गिआं गल मिट जागु ताज़ी ।
होवे हीर विवाह पर आप राज़ी ।
हत्थीं पैरीं लग काजी सद आंदा ।
काज़ी हीर दा रग जां ढूंड डिट्ठा ।

३. मुकबल[3]—

रांझा वारने जाउंदा ब्रहिमने दे ।
दीवा अकल दा बाल के मुकबले नूं ।
सीना हुंदा है भुज कबाब मीआं ।
कौल आपणा पाल विखाइआ ई ।
तेरा सुख सुनेहड़ा आइआ ई ।
कीता आपणा मुकबले पाइआ ई ।
मैनू पछ के लूण छुहानीएं ।
लहू बरसदे ने खूनी नैण मेरे ।
उमरदा रोवणा पाइआ ई ।
तेरे नाल लेखा दरगाह मेरा ।
ऐवे आपणा हाल वंजाइआ ई ।
जिचर जीवना हां सिरदे जोर करसां ।

---

१. हीर दमोदर, पृ० २००, की बीस पंक्तियाँ
२. हीर अहमद, पृ० २००, की चौबीस पंक्तिया
३. हीररांझा मुकबल, पृ० ५० की बीस पंक्तियाँ

४. हाफज़ बरखुरदार[1]—

कार लाज़ीम होए सब अरज़ी उह जो कौल कीतो से ।
वेखो रब रज़ाई ।
सहंस गोता दिल खाई ।
कादर कलम वगाई ।

५. वारिस शाह[2]—

शाला यार मरी दूणे हारीए नी ।
मूहों सम्हलीं जोगीआ वारिआ वे ।
माउं सुणादिग्रां पुणे तूं यार मेरे ।
वड्डा कहर कीतो लोहड़े मारिआ वे ।
जे तां पोल कढ़ावणां नाही ग्राहा ।
जे तां कुआरिआं यार हंडावणे नीं ।
बूथे होए बलोच दे हत्थ ग्राईए ।
वारिसशाह जां ग्राकबत खाक होणा ।
जोइ जम्मिआ मरेगा सभ कोई ।
घडिग्रा भज्जसी वाह सभ वहिणागे वे ।
जदो उमर दी अहिद मिग्राद मुक्की ।

६. हाशम[3]—

बहिंदी ते दम लैंदी ।
हर गिज़ भाल न पैंदी ।
हाशम जगत न किउं कर गावे प्रति संपूरन जैंदी ।
कुदरत नाल ससी हत्थ आइग्रा ।
मिलिआ जाम खिदर दा ।
हाशम जां दिन उलटे ग्रावण सभ उलटी बण जावे ।
फड़िआ राह तिधर दा ।

७. अहमदयार[4]—

मैं भी नाल तेरे बेदरदा लाके करसां पूरी ।
साड़ गई दिल काली ग्राफत ।
सूरत न रही टकाणे ।
न कर ज़ोर धगाड़ें ।

---

१. यूसफ जुलेखा, पृ० १०० की बीस पंक्तियां
२. हीर वारिस, पृ० १५०-५१ की बीस पंक्तियां
३. हाशम रचनावली, पृ० १०० की बीस पंक्तियां
४. किस्सा कामरूप, पृ० ५० की बीस पंक्तिया

८. कादरयार[1]—

रो रो महीवाल ने फोले दुख दे वैण ।
तेरे कारण सोहणीए हाल वंजाइआ मैं ।
लखीं माल उजाडिआ कर के छेक तली ।
तेरे पिछे हूंजिआ कूड़ गली गली ।
तिस दिन उस दे कादरा खोले इश्क कुफल ।
जाण दुहां विच कादरा इशक बणाइआ साक ।
आलम बाकी कादरा छट्टे छज कलाइ ।

९. फज़लशाह[2]—

मोड़े रब्ब दी कौण रज़ा मीआं ।
निहूं चाहदे नाल निबाह दित्ता ।
गए इशक नूं लाज न ला मीआं ।
दित्ता बेलीआं तोड़ चढ़ा मीआं ।
यूसफ नाल फिराक दे आह मारी ।
पाश पाश जुलेखां दा जीउ होइआ ।
बाहीं भन्न गिआें मेरे वीर बेली ।
लगा कार कलेजड़े तीर बेली ।
कौड़े ज़हर गम दे शीरीं घुट्ट भरदी ।
रांझे चाक संदा सीना चाक होइआ ।
चंदर बदन ने खाक रला दित्ता ।

१०. मियां मुहम्मदबख्श[3]—

चाइ रिज़क मुहार उट्ठ चल्ले ।
लिखिआ पढ़ करमां दा ।
टुरिओं दे हाऊ विच्च धक्का ।

---

१. कादरयार, पृ० ७५ की २४ पंक्तियां
२. सोहणीं महीवाल, पृ० ५० की बीस पंक्तियां
३. सैफुलमलूक, पृ० १५० की २० पंक्तियां

परिशिष्ट-३

छन्दों में लक्षण-सामंजस्य का अभाव

इन छंदों को प्राय: दोहा-चौपाई कहा जाता है परन्तु इन उदाहरणों में लक्षण से भिन्नसंख्यक मात्राए देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनकी छन्द-व्यवस्था मात्राओं की अपेक्षा ताल पर आधारित थी। मात्राओ की गणना के आधार पर इन्हें किसी विशेष नाम से संबंधित करना कठिन है। छन्द-सम्बन्धी किसी नियम का सजग-पालन इन कवियों ने नही किया।

मुल्ला दाऊद[1]—

तारा पोखर कुंड खनाए। मढ़ देवर चहुं पालि उठाए।
खूनां तपसी अछहिं तहां। अउ भगवतु रहइ तिन्ह महां।
मसवासी सिव मंडपु छाई। पुरुख नांउ तेहि ठौर न जाई।
भरए डंवरू डाक बजावा। सबदु सुहाव नींद सुनि आवा।
जोगी सहस चारि तहं धावहिं। सींगी पूरहिं भसम चढ़ावहिं।
सिद्ध पुरुख गुन आगर, देखि सुभाने ठाउं।
कहत सुनत अस जानिय, दहुं चलि देखइ जाउ॥

कुतबन[2]—

मंदिर ढूंढि जौ बाहर आई। धाय कै दिस्टि मंदिर पर जाई।
देखिसि बैठी मदिर पर आहा। मिरगावती यह किन्हु काहा।
हम सेउं किछू मंदाई जानहु। तौ रे बिलग अपने जियं मानहुं।
हम सेउं किछू न आहि मदाई। किहि कारन तुम्ह चलिहु कुहाई।
काह उतर हम कुंअरहि देबा। सुनतहि मरिहि काह तौ लेबा।
आवहु उतरि सोहागिनि, पियवति होइ हमरे मन सांति।
तुम्ह न मोह मन जिय बिनु, कुंअर जिअइ केहिं भांति॥

मझन[3]—

फुनि पाछिलि सभ बात जो अही। मधुमालती कुंवर सेउं कहीं।
उतपति रैनि जो भएउ मेरावा। जस किछू अहा कहा सति भावा।

---

१. चांदायन, पृ० १८

२. मृगावती, पृ० ७६

३. मधुमालती, पृ० ३२०

औ जेत दुख बिछुरें फुनि सहा। सो सभ एक एक करि कहा।
औ फुनि कहेसी जो दोसरीं बारी। मिले दुवो पेमा चितसारीं।
औं सोवत जैसे बिहराने। जब जागे तब दिसि दिसि आने।
औ जिमि जननि नीर पढ़ि छिरका, लोग कुटुम्ब कै कानि।
सो सभ आदि अंतलहि एक एक कुंवर सेउ कहेसि बखानि॥

जायसी[1]—

भलेहि रंग तोहि आछरि राता। मोहि दोसरे सों भाव न बाता।
मोहि ओहि सँवरि मुएँ अस लाहा। नैन सौ देखसि पूँछसि काहा।
अबहीं तेही जिउ देइ न पावा। तोहि असि आछरि ठाढ़ मनावा।
जौं जिउ देहुँ ओहि की आसा। न जानौं काह होइ कबिलासा।
हौं कबिलास काह लै करऊँ। सोइ कबिलास लागि ओहि मरऊँ।
ओहि के बार जीवनहिं वारौं। सिर उतारि नेवछावरि डारौं।
ताकरि चाह कहै जो आई। दुऔ जगत तेहि देउँ बड़ाई।
ओहि न मोरि कछु आसा हौं ओहि आस करेउँ।
तेहि निरास प्रीतम कहँ जिउ न देउं का देउं॥

दामो[2]—

चउपही—हम उदास बनियोगी आहि, अरहींडइ सचराचर मांहि।
हम उपरि छइ केहउ भाय, कारण कवण बउलावइ राय॥
ज्यू मइं नाम कह्यउ तुम तणउ, हरखित भयउ राउ मनि घणउ।
कहइ सिध आणउ ततक्षणी, तुम देखण की आरित घणी॥

नारायणदास[3]—

चौपाई—मेले भीमुसेन के गोइडा, उतरे नदी नरवदा जुरइंडा।
करहिं तुरक दखिन मइ धारी, उबरहि राइ दिएं वरनारी।
दर्व सर्व दय हस्ती तरगू, चलहि ते नसुरतिखां के संगू।
नगर दुर्ग पाटन जे नयरा, रहि न सकहि तुरकन के बयरा।

कुशललाभ[4]—

चउपई—राज-पसाउ पहिलु लीयु, ते माधवइ वेस्यानई दीयउ।
वेस्या बोलइ पुरुष प्रधान, चऊदह विद्या तणुं निधान॥
भलइ पधारिउ तू इह ठामि, बहुतरि कला कुसल तूं स्वामी।
तुझ दीठइ हूँ मनि गह गही, कला माहरी सफली थई।

---

१. पदमावत, पृ० २००
२. लखमसेन पद्मावती कथा, पृ० २०
३. छिताई चरित, पृ० ९
४. माधवानल कामकंदला प्रबंध, पृ० ४०१
५. कथा हीर रांझनि की, पृ० ६७

सहायक ग्रंथ-सूची

हिन्दी

१. अनुराग बांसुरी (नूर मुहम्मद); स० चंद्रवली पांडेय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, २००७ वि० ।

२. अपभ्रंश-साहित्य, डा० हरिवंश कोछड़, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९५६ ई० ।

३. अर्धकथानक (बनारसीदास), सं० नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, १९५७ ई० ।

४. अवध के प्रमुख कवि, डा० व्रजकिशोर मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६० ई० ।

५. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय (भाग २), डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००४ वि० ।

६. आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रेम और सौदर्य, डा० रामेश्वर खण्डेलवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९५८ ई० ।

७. आधुनिक हिन्दी-काव्य मे रूप-विधाए, डा० निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १९६३ ई० ।

८. इन्द्रावती-पूर्वार्द्ध (नूरमुहम्मद), सं० श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, १९०६ ई० ।

९. कथा हीर रांझनि की (गुरदास), सं० सत्येन्द्र तनेजा, भाषा विभाग, पटियाला, १९६१ ई० ।

१०. कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६५ ई० ।

११. काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, डा० शकुन्तला दूबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५८ ई० ।

१२. कीर्तिलता (विद्यापति), सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, चिरगांव, १९६२ ई० ।

१३. कुतब मुश्तरी (मुल्ला वजही), सं० विमला वाघ्रे तथा नसीरुद्दीन हाशमी, दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५४ ई० ।

१४. गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, हरिभजनसिंह, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६३ ई० ।
१५. चंदायन (दाऊद), स० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, १९६४ ई० ।
१६. चदायन स० ठा० विश्वनाथ प्रसाद, क० मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ आगरा १९६२ ई० ।
१७ चांदायन (दाऊद), सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन आगरा, १९६७ ई० ।
१८. चंदवरदाई और उनका काव्य, डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५२ ई० ।
१९. चित्रावली (उसमान), सं० जगन्मोहन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९१२ ई० ।
२०. चित्ररेखा (जायसी), सं० श्री शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५९ ई० ।
२१. छिताई-चरित, स० हरिहरनिवास द्विवेदी तथा अगरचंद नाहटा, विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर, १९६० ई० ।
२२. छिताईवार्ता, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि० ।
२३. जायसी का काव्य शिल्प, डा० दर्शनलाल सेठी, साहित्य सदन देहरादून, १९७० ।
२४. जायसी का पद्मावत, काव्य और दर्शन, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६३ ई० ।
२५. जायसी की बिम्ब योजना, डा० सुधा सक्सेना, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ ई० ।
२६. जायसी की भाषा, डा० प्रभाकर शुक्ल, विश्वविद्यालय, हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, २०२२ वि० ।
२७. जायसी ग्रंथावली, सं० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५२ ई० ।
२८. जायसी ग्रंथावली, सं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, २००६ वि० ।
२९. ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिंह सूर्यकरण पारीक और नरोत्तम स्वामी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०११ वि० ।
३०. ढोला मारू रा दूहा, स० श्री शंभुसिंह मनोहर, दी स्टूडेंट्स बुक कम्पनी, जयपुर, १९६६ ई० ।
३१. तसव्वफ अथवा सूफी मत, पं० चन्द्रबली पांडेय, सरस्वती मंदिर बनारस, १९४८ ई० ।

३२. दक्खिनी हिन्दी का प्रेम-गाथा काव्य, डॉ० दशरथराज, सेतु प्रकाशन झांसी, १९६९ ई० ।

३३. दगवै तथा चक्रव्यूह कथा (भीम कवि), सं० डा० शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ ई० ।

३४. नंददास ग्रंथावली, स० श्री ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००६ वि० ।

३५. नलदमन (सूरदास लखनवी), सं० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा दौलतराम जुयाल, हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा, १९६१ ई० ।

३६. पजाब का हिन्दी साहित्य, श्री सत्यपाल गुप्त, पैप्सू प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटियाला, १९५९ ई० ।

३७ पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० चन्द्रकान्त बाली, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, १९६२ ई० ।

३८. पंजाब की प्रीत कहानियाँ, हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ।

३९. पंजाब की प्रेम कथाएं, संतराम वत्स्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १९६० ई० ।

४०. पद्मावत (जायसी), सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भारती-भण्डार, इलाहाबाद, १९६३ ई० ।

४१. पद्मावत (जायसी), सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, २०१२ वि० ।

४२. पद्मावत का ऐतिहासिक आधार, इन्द्रचन्द्र नारंग, हिन्दी-भवन, इलाहाबाद, १९५६ ई० ।

३३. पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय, भारती भण्डार, प्रयाग, २००९ वि० ।

४४. पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, डा० अवधबिहारी पांडेय, सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, १९५९ ई० ।

४५. पृथ्वीराज रासो—प्रथम भाग (चंदबरदाई), सं० कविराव मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, प्रथम ।

४६. फूलबन (इब्ननिशाती), सं० श्री देवीसिंग व्यंकट सिंग चौहान, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे, १९६६ ई० ।

४७. बीसलदेव रास (नरपति नाल्ह), सं० डॉ माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद् विश्व-विद्यालय, प्रयाग, द्वितीय संस्करण ।

४८. बीसलदेव रासो (नरपतिनाल्ह), सं० डॉ० तारकनाथ अग्रवाल, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम ।

४९. भारत का भाषा-सर्वेक्षण (ग्रियर्सन), अनु० उदयनारायण तिवारी, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९५८ ई० ।

५०. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस, १९५५ ई० ।

५१. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० ।
५२. भाषा प्रेमरस (शेख रहीम), सं० उदयशंकर शास्त्री, हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, १९६५ ई०।
५३. भाषा विज्ञान, डा० श्यामसुन्दरदास, इंडियन प्रेस, प्रयाग, २००७ वि० ।
५४. भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००४ वि० ।
५५. भ्रमरगीतसार, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, साहित्य सेवा सदन, बनारस, २००६ वि०
५६. मधुमालती (मझन), सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६१ ई० ।
५७. मधुमालती (मंझन), सं० डा० शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५७ ई० ।
५८. मधुमालती वार्ता (चतुर्भुज) सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०११ वि० ।
५९. मध्यकालीन धर्म-साधना, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९५६ ई० ।
६०. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ, डा० व्रजविलास श्रीवास्तव, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी १९६८ ई० ।
६१. मध्ययुगीन प्रेमाख्याय, डा० श्याममनोहर पांडेय, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद ।
६२. मध्ययुगीन भारत, डा० पी० सरन, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्ज, दिल्ली, १९६४ ई० ।
६३. मध्ययुगीन रोमानक आख्यान, डा० नित्यानन्द तिवारी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९७० ई० ।
६४. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, डा० शिवसहाय पाठक, ग्रंथम, कानपुर, १९६४ ई० ।
६५. मात्रिक छन्दों का विकास, डा० शिवनन्दन प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६४ ई० ।
६६. माधवानल कामकदला प्रबंध (गणपति तथा अन्य कवियों की रचनाएं), सं० एम० आर० मजुमदार, ओरिएंटल इंस्टीच्यूट, बड़ोदा, १९४२ ई० ।
६७. माधवानल नाटक (कविकेस), सं० डा० सत्येन्द्र जी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६७ ई० ।
६८. मिरगावती (कुतबन), स० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९६७ ई० ।
६९. मिश्रबन्धु विनोद, मिश्र बन्धु, हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली, प्रयाग, १९१३ ई० ।
७०. मृगावती (कुतबन), सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, १९६८ ई० ।

७१. मृगावती (कुतबन), सं० श्री शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १८८५ शक।

७२. मैनासत (साधन), सं० श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्या मंदिर, ग्वालियर, १९५९ ई०।

७३. रसरतन (पुहकर), सं० डा० शिवप्रसाद सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०२० वि०।

७४. राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, प्रथम, और तृतीय भाग, अगरचंद नाहटा, प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान, उदयपुर।

७५. राजस्थानी के प्रेमाख्यान : परम्परा और प्रगति, डा० रामगोपाल गोयल, राजस्थान प्रकाशन जयपुर, १९६९ ई०।

७६. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मोतीलाल मैनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, २००६ वि०।

७७. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, १९६० ई०।

७८. रास एवं रासान्वयी काव्य, डा० दशरथ ओझा एवं डा० दशरथ शर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१६ वि०।

७९. रासो-साहित्य-विमर्श, डा० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६२ ई०।

८०. रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, डा० कृष्णचन्द्र वर्मा, कैलाश पुस्तक, सदन, ग्वालियर, १९६७ ई०।

८१. लखमसेन पद्मावती कथा (दामो), सं० श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, परिमल प्रकाशन, प्रयोग, १९५९ ई०।

८२. वाङ्मय विमर्श, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पूर्णा प्रकाशन, वाराणसी, २०१४ वि०।

८३. विद्यापति की पदावली, सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भण्डार, लहरिया सराय, पटना, द्वितीय संस्करण।

८४. वेली क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज राठौर), सं० प० कृष्णचन्द्र शुक्ल, साहित्य निकेतन, कानपुर, २०१० वि०।

८५. वेली क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज राठौर), सं० डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९६६ ई०।

८६. संत-साहित्य, डॉ० सुदर्शनसिंह मजीठिया, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६२ ई०।

८७. सस्कृत के संदेश काव्य, डॉ० रामकुमार आचार्य, डॉ० रामकुमार आचार्य, अजमेर १९६३ ई०।

८८. सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां (ईश्वरदास), सं० डॉ० शिवगोपाल मिश्र और रावत ओम्प्रकाशसिंह, विद्यामन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर, १९५८ ई०।

८९. सदयवत्स वीर प्रबन्ध, डा० मंजुललाल मजुमदार, सादूंल राजस्थानी रिसर्च इस्टीच्यूट, बीकानेर।

९०. सामान्य भाषा-विज्ञान, डॉ० बाबूराम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००६ वि० ।
९१. सूफी-काव्य-विमर्श, डॉ. श्याम मनोहर पांडेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६८ई
९२. सूफी-काव्य-संग्रह, स० श्री परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २०१३ वि० ।
९३. सूफी महाकवि जायसी, डा० जयदेव कुलश्रेष्ठ, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।
९४. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, डा० शिवप्रसादसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५८ ई० ।
९५. सैफुलमुलूक व बदीउलजमाल (गवासी), सं० राजकिशोर पांडेय व अकबरुद्दीन सिद्दीकी, दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबाद, १९५५ ई० ।
९६. हसजवाहर (कासिमशाह), तेजकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ, १९५२ ई० ।
९७. हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४५ ई० ।
९८. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, डा० गोविन्दराम, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली, १९५९ ई० ।
९९. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, डा० सियाराम तिवारी, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, १९६४ ई० ।
१००. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर, १९५३ ई० ।
१०१. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, सं० गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५३ ई०
१०२. हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९६२ ई० ।
१०३. हिन्दी भाषा का उद्गम एवं विकास, डा० उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार प्रयाग, २०१२ वि० ।
१०४. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शंभूनाथसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, १९६२ ई० ।
१०५. हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड), सं० धीरेन्द्र वर्मा तथा ब्रजेश्वर वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, १९५९ ई० ।
१०६. हिन्दी साहित्य, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अत्तरचंद कपूर एण्ड संस, दिल्ली, १९५५ ई० ।
१०७. हिन्दी साहित्य का अतीत, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान, वाराणसी, २०१५ वि० ।
१०८. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५२ ई० ।
१०९. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९५४ ई० ।

११०. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००६ वि० ।
१११. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), सं० राजबली पांडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ वि० ।
११२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग); सं० पं० परशुराम चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, २०२५ वि० ।
११३. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, भारतेन्दु प्रकाशन, चंडीगढ़, १९६५ ई० ।
११४. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ० सरला शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, २०१३ वि० ।
११५. हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, रामपूजन तिवारी, ग्रंथ वितान, पटना, १९६० ई० ।

पंजाबी

१. अलीहैदर दी काव रचना, स० उजागरसिह, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६६ ई० ।
२. अहसनुलकस्सिस (अहमदयार), सं० प्यारसिह, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६२ ई० ।
३. कवि वारिसशाह, जगजीतसिह छाबड़ा, पंजाबी प्रकाशन, दिल्ली ।
४. कादरयार, स० गुरचरणसिह भाषा-विभाग, पटियाला, १९६१ ई० ।
५. किस्सा कामरूप (अहमदयार), मुंशी हीरानंद, लाहौर, प्रथम ।
६. कोइलकू, बावा बुधसिह, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, १९४८ ई० ।
७. गुरु छद दिवाकर, कान्हसिह, दरबारनामा, १९२४ ई० ।
८. गुलदस्ता हीर, स० अमरसिह सिंह, ब्रदर्ज, लाहौर ।
९. दशम ग्रन्थ, गुरु गोबिन्दसिह, जवाहरसिंह कृपालसिंह, अमृतसर, २०१३ वि० ।
१०. पजाब, सं० गडासिंह, पंजाबी साहित्त सभा, पटियाला, १९६२ ई० ।
११. पंजाबी बोली दा इतिहास, संतसिह सेखों, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६१ ई० ।
१२. पंजाबी बोली दा निकाश ते विकाश, प्रेम प्रकाशसिंह, लाहौर बुकशाप, लुधियाना, १९५५ ई० ।
१३. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, डॉ० गोपालसिंह दरदी, जसवंत पब्लिकेशंस, दिल्ली, १९५२ ई० ।
१४. पजाबी साहित्त दा इतिहास, सुरिदर सिह कोहली, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, १९५५ ई० ।
१५. पंजाबी साहित्त दा इतिहास, सुरिन्दरसिह नरूला, सिख पब्लिशिंग हाउस, अमृतसर, १९५४ ई० ।
१६. पंजाबी साहित्त दा इतिहास (मध्यकाल), भाषा-विभाग, पटियाला ।
१७. पंजाबी साहित्त दी उत्पत्ति ते विकाश, किरपालसिंह परमिंदरसिंह, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, १९५२ ई० ।

१८. पंजाबी साहित्त धारा, सं० डॉ० हरचरणसिंह, सुरजीत बुक डिपो, दिल्ली १९६४ ई०।
१९. पिंगल ते अरूज, जोगिन्दरसिंह, पंजाबी साहित्त अकादमी, लुधियाना, १९६० ई०।
२०. पुरातन पंजाबी काव दा विकास, स० रा० अमोल, लाहौर बुकशाप, लुधियाना, १९५५ ई०।
२१. बरोहा बोल, बावा बुधसिंह, लाहौर बुकशाप, लाहौर।
२२. मिरजा साहिबां (हाफिज बरखुरदार), भाई चतरसिंह जीवनसिंह, अमृतसर।
२३ मुकबल, सं० शमशेरसिंह अशोक, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६१ ई०।
२४. यूसफ जुलेखा (हाफिज बरखुरदार), सं० प्यारासिंह पद्म, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६० ई०।
२५. वारां भाई गुरदास, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर १९५२ ई०।
२६. शाह बहराम (अमामबख्श), सं० प्रीतमसिंह, पंजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, चंडीगढ़, १९६० ई०।
२७. शाह बहराम हुसनबानो (अमामबख्श), भाई चतरसिंह जीवनसिंह, अमृतसर।
२८. सस्सी पुन्नूं (अहमदयार), सं० उजागरसिंह, लाहौर बुकशाप, लुधियाना, १९६३ ई०।
२९. सस्सी हाशम, सं० हरनामसिंह शान, धनपतराय एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५९ ई०।
३०. सस्सी पुन्नूं (हाशमशाह), सं० दीवानसिंह एवं डॉ० रोशनलाल आहूजा, कृष्णा ब्रदर्स, अमृतसर, १९५८ ई०।
३१. साहित्त दी परख, डा० गोपालसिंह, पंजाबी अकादमी, नई दिल्ली, १९५० ई०।
३२. साहित्त दी रूपरेखा, गुरचरणसिंह, न्यू बुक डिपो, जालंधर, १९५५ ई०।
३३. साहित्त प्रकाश, परमिंदरसिंह किरपालसिंह, लाहौर बुकशाप, लुधियाना, प्रथम।
३४. सैफुलमुलूक (मियां मुहम्मदबख्श), स० संतोखसिंह राजी, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६१ ई०।
३५. सोहणीं महीवाल (फजलशाह), सं० डॉ० रोशनलाल आहूजा एवं दीवानसिंह, कृष्णा ब्रदर्स, अमृतसर, १९५६ ई०।
३६. सोहणीं हाशम, सं० प्यारासिंह पद्म, सरदार साहित्य भवन, पटियाला, १९५७ ई०।
३७. हाशम शाह ते किस्सा सस्सी पुन्नूं, सं० स० स० अमोल, लाहौर बुक शाप, लुधियाना।
३८. हाशम रचनावली, सं० प्यारासिंह पद्म, सरदार साहित्य भवन, पटियाला, १९५७ ई०।
३९. हीर अहमद, स० स० स० पद्म, पंजाबी साहित्य सभा, बरनाला, १९६० ई०।
४०. हीर दमोदर, स० निहालसिंह रस, भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह, अमृतसर, प्रथम।
४१. हीर रांझा (हीर मुकबल), सं० उजागरसिंह, लाहौर बुक शाप, लुधियाना।
४२. हीर वारिस, सं० डॉ० जीतसिंह सीतल, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली, १९६३ ई०।

४३ हीर वारिस, सं० शमशेरसिंह अशोक, भाषा-विभाग, पटियाला, १९६१ ई० ।
४४. हीर वारिस भूमिका, डा० जीतसिंह सीतल, पंजाब साहित्य सम्मेलन, पटियाला, १९६१ ई० ।

उर्दू (फारसी लिपि में मुद्रित हिन्दी और पंजाबी की रचनाएं भी इसी में समाविष्ट हैं)

१. उर्दू मसनवियां; डॉ० गोपीचंद नारंग; मक्तबाजामा, दिल्ली; १९६२ई० ।
२. कदीम उर्दू (जिल्द अव्वल), सं० मसूद हुसेन खां, उर्दू विभाग, अस्मानिया यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, १९६५ ।
३. चंदर बदन महियार (मुकीमी) ; सं० मुहम्मद अकबरुल्दीन सिद्दीकी; मजलिसे इशात दक्कनी मख्तूतात्, हैदराबाद; १९५६ ई० ।
४ दक्कन में उर्दू; नसीरुलदीन हाश्मी; उर्दू मरकज, लाहौर; १९५२ ई० ।
५. पंजाबी किस्से फारसी जबान में; डॉ० मुहम्मद बाकर; पंजाबी अदबी एकेडमी, लाहौर; १९५७ ई० ।
६. पंजाबी जबान दा अदब ते तारीख; अब्दुल गफूर कुरैशी, ताज बुक डिपो, लाहौर; १९५६ ई० ।
७. पंजाबी शाइरां दा तजकरा; मौलाबख्श कुश्ता; मियां मौला बख्श कुश्ता एंड संस, लाहौर; १९६० ई० ।
८. प्रेम कहानी, बावा बुधसिंह, लाहौर बुकशाप, लाहौर ।
९. मज़हब और शाइरी; डॉ० एजाज हुसैन; उर्दू एकेडमी सिंध, कराची, १९५५ ई० ।
१०. मलिक मुहम्मद जायसी, सैयद कल्ब मुस्तफा, अजुंमन तरक्की उर्दू (हिन्द), देहली; १९४१ ई० ।
११ मसनवी रिज़वांशाह व रूह अफ्जा (फायज़); सं० सैयद मुहम्मद; मजलिस इशात दक्कनी मख्तूतात, हैदराबाद; १९५६ ई० ।
१२. मसनवी सैफलमुलूक (लुत्फअली) ; सं० मुहम्मद बशीर अहमद जामी; उर्दू अकादमी, बहावलपुर; १९६४ ई० ।
१३. मसनवी सैफलमलूक (लुत्फअली) ; शेख गुलामअली बरक्तअली, लाहौर ।
१४. मैना सतवती (गवासी) ; सं० डॉ० गुलाम उमरखाँ; उसमानिया यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, १९६५ ई० ।
१५. राजबीबी नामदार (अहमदयार) ; मौलवी मुहम्मद लतीफ, फालिया, गुजरात; १९२८ ई० ।
१६. हातम नामा (अहमदयार), मुहम्मदसूबा ज्ञानचंद, कश्मीरी बाजार, लाहौर ।
१७ हीर-रांझा (फजलशाह), मुहम्मदअब्दुल अजीज पब्लिशर्ज, लाहौर, १३३७ हि० ।

संस्कृत

१. अग्निपुराण का काव्य शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५९ ई० ।

२. उज्ज्वलनीलमणि (रूपगोस्वामी), पांडुरंग जावजी, बंबई, १९३२ ई० ।
३. कालिदास ग्रंथावली, सं० श्री सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विद्या परिषद् १९५० ई० ।
४. काव्यादर्श (दण्डी), श्री कमलमणि ग्रंथमाला, कार्यालय काशी, १९८८ वि० ।
५. काव्यानुशासन (हेमचद्र), श्री महावीर जैन विद्यालय, बंबई, १९३८ ई० ।
६, काव्यालकार (भामह), कृष्णदास हरिदास गुप्त, बनारस, १९२८ ई० ।
७. काव्यालंकार (रुद्रट), सं० डॉ० सत्यदेव चौधरी, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ ई० ।
८. नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), काव्य माला सीरीज-४२, बंबई, १९४३ ई० ।
९. नारदभक्तिसूत्र, श्री मोतीलाल माणकचंद, अमलनेर, १९३९ ई० ।
१०. साहित्यदर्पण (विश्वनाथ), विमलाटीका, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६१ ई० ।
११. साहित्य दर्पण (विश्वनाथ), टीकाकार डॉ० सत्यव्रतसिंह, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, १९५७ ई० ।
१२. हरिभक्तिरसामृतसिंधु (रूपगोस्वामी), सं० डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९६३ ।

ENGLISH

1. A Comparative Phonology of Hindi and Panjabi, V. B. Arun, Panjabi Sahitya Akadmi, Ludhiana, 1961.
2. Aesthetics (Croce), Translated by Douglas Ainslic, Macmillan and Co. London, 1922.
3. An Introduction to Panjabi Literature, Mohan Singh, Nanak Singh Pustak Mala, Amritsar 1.
4. A History of Panjabi Literature, Mohan Singh, Kasturi Lal & Sons, Amritsar, 1956.
5. A History of World Civilization, James Edgar Swain, Eurasia Publication House, New Delhi, 1963.
6. English Epic & Heroic Poetry, W. M. Dixon, J. M. Dent & Sons, London, 1912.
7. European Literature and Latin Middle Ages (Ernest Robert Curtius), Trans. by Willerd R. Trask, Routledge & Kegan Paul, London, 1953.
8. Glimpses of World History, Jawahar Lal Nehru, Lindsay Drummoud, London, 1949.
9. Grierson on Panjabi, Language Department, Patiala, 1961.
10. Guru Nanak and the Sikh Religion, W. H. Mcleod, Oxford University Press, 1968.

11. History of Bengali Language & Literature, Dinesh Chandra Sen, University of Calcutta, 1954.
12. History of Indian Literature, Vol. III part one; H. Winternitz, Moti Lal Banarsi Dass, Delhi, 1963.
13. Legacy of India, Edited by G. T. Garrot, Oxford University, 1938.
14. Literary History of Persia (Vol. I), Edward G. Browne, Cambridge University Press, 1929.
15. Origin & Development of Bengali Language, S. K. Chatterjee, University Press, Calcutta, 1926.
16. Panjabi Sufi Poets, Lajwanti Rama Krishna, Oxford University Press, London, 1938.
17. Selections from Elazabeth Barret Brownings, Poetry, Smith Elder & Co. London, 1884.
18. The Epic, Lescelles Abercrombie, Martin Secker, London.
19. The Outline of History, H. G. Wells. Garden City Books, New York, 1956.

स्वीकृत शोध-प्रबन्ध (अप्रकाशित)

१. जान कवि के प्रेमाख्यान; रामकिशोर मौर्य; प्रयाग विश्वविद्यालय; १९६४ ई० (हिन्दी)।
२. जायसी साहित्य में अप्रस्तुत योजना, विद्याधर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १९६८ ई० हिन्दी।
३. ट्रीटमेंट आव् वन आव् द पंजाबी रोमांस—मिरजा साहिबां इन पंजाबी वर्स; वी० एन० तिवारी; पंजाब विश्वविद्यालय, १९६३ ई० (अंगरेज़ी)।
४. लोरक और चंदा का पंवारा और मुल्ला दाऊद के चंदायन का आलोचनात्मक अध्ययन; नित्यानंद तिवारी; इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १९६४ (हिन्दी)।
५. सतारहवी अठारहवीं सदीआं दा पजाबी शिंगार-काव; आत्मजीतसिंह; दिल्ली विश्वविद्यालय, १९६५ ई० (पंजाबी)।
६. सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में नायिका परिकल्पना, निरंजनलाल शर्मा, आगरा, १९६९ हिन्दी।
७. हिन्दी और पंजाबी की सूफी-कविता का तुलनात्मक अध्ययन; यश गुलाटी; पंजाब विश्वविद्यालय, १९६६ ई० (हिन्दी)।
८. हिन्दी और फारसी सूफी-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन; एस० एन० बत्रा, पंजाब विश्वविद्यालय, १९६६ ई० (हिन्दी)।

हस्तलिखित

१. जानकवि कृत ग्रंथ लैलै मजनूं, रतनावती, कथा सुभटराइ, कथा नलदमयंती, कथा कौतुहली, कथा कलंदर, कथा कामलता, कथा मधुकर मालती, कथा पुहपवरिषा, कथा खिजर खां सहिजादे देवलदे की, कथा कंवलावती, रतनमंजरी, कथा कुलवती। (देवनागरी)।
२. शेषनबी-कृत ज्ञानदीप (देवनागरी)।
३ अमाम बखश-कृत किस्सा मलिकजादा शाहपरी (फारसी लिपि), भाषा-विभाग, पटियाला का संग्रह।
४. समाचंद सोंधी-कृत कथा कामरूप (फारसी लिपि), भाषा-विभाग, पटियाला का संग्रह।

कोश-ग्रंथ

मानक हिन्दी कोश; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
बृहत् हिन्दी कोश; ज्ञान मंडल, बनारस।
हिन्दी शब्द सागर; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
हिन्दी साहित्य कोश; ज्ञान मंडल, बनारस।
गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोश; भाषा-विभाग, पटियाला।
पंजाबी कोश; भाषा-विभाग, पटियाला।
आप्टेज संस्कृत डिक्शनरी; पूना।
ए डिक्शनरी आव् माडर्न-रिटेन अरेबिक।
पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी; रौट लैज एन्ड कैगन पाल, लंदन।
लुगाते किश्वरी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
वाचस्पति कोश।
मेदिनी कोश।
अमर कोश।
इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खंड १५।
छैम्बर्स इंसाइक्लोपीडिया, खंड ५ एव ६।

पत्रिकाएं

हिन्दी

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी।
२. भारतीय साहित्य, आगरा।
३. सप्तसिन्धु, पटियाला।
४. साहित्य, पटना।
५. हिन्दुस्तानी, प्रयाग।

पंजाबी

१. साहित समाचार, लुधियाना।
२. पंजाबी दुनियां, पटियाला।
३. आलोचना, लुधियाना।